भूमिका

भारतीय पुराण-साहित्य अपने ढङ्ग की अनोखी रचना है । संसार के अन्य प्राचीन देशों—जैसे यूनान, ईरान आदि में भी कुछ ग्रन्थ ऐसे पाये जाते हैं, जिनको वहाँ का पुराण कहा जाता है, पर वे प्रायः वीर लोगों के अद्भुत साहस तथा भयंकर संकटों का सामना करके कोई महत्वपूर्ण कार्य सिद्ध करने की कथायें-मात्र हैं । पर भारतीय पुराणों का मुख्य उद्देश्य साधारण जन-समाज में धार्मिक भावों का संचार करना है । यद्यपि उनमें भी सत्य, अर्द्ध सत्य और काल्पनिक कथायें हैं, रूपक, अलंकार और अतिशयोक्तियों का भी बाहुल्य है, पर लेखकों का लक्ष्य लोगों को सदैव धर्म प्रेरणा देने का ही रहा है । यह ठीक है कि उनकी अतिशयोक्तियाँ अनेक स्थानों पर सीमा को पार कर जाती हैं, उन्होंने असम्भव कल्पनायें भी की हैं, अनेक जगह परस्पर विरोधी बातें भी लिख दी हैं, पर इस सबका उद्देश्य यही है कि मनुष्यों के हृदय में धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न हो और चाहे सांसारिक सुखों के लालच से ही सही, वे धर्माचरण को अपनावें । उनका सिद्धान्त है कि जो धर्म का पालन करेगा उसकी रक्षा भी धर्म करेगा । संसार में जितनी उन्नति, उत्कर्ष, कल्याण है वह सब धर्म पर ही आधारित है । इसलिए लोगों को किसी भी प्रकार से धर्म की प्रेरणा देना शुभ कर्म ही माना जायगा ।

जन-साधारण को धर्म-प्रेरणा—

पुराणों के मुख्य विषय सर्ग (सृष्टि रचना) प्रलय, मन्वन्तर और युगों का वर्णन, देव, ऋषि तथा राजाओं के वंशों का वर्णन कहा गया है । पर इनका विस्तार करते हुए मोक्ष-निरूपण, भगवत भजन, देवोपासना को भी उनमें सम्मिलित किया और प्रत्येक कथा, आख्यान, उपाख्यान, गाथामें एक यही दृष्टि-बिन्दु रक्खा है कि लोगों का धर्म के प्रति आकर्षण हो और वे अपनी बुद्धि, शक्ति, रुचि के अनुसार न्यूनाधिक अंशों में धार्मिकता की तरफ अग्रसर हों । हो सकता है कि जिन लोगों ने अपने धर्म-विषयक विचार बहुत ऊँचे तथा तर्क और बुद्धिवाद की कसौटी पर खरे उतरने वाले बना रक्खे हैं,

इसको पुराणों के धर्म सम्बन्धी विवेचन से मिलाकर देखो उनमें त्रुटियाँ नज़र आवें पर जो लोग समाज के विभिन्न स्तर के व्यक्तियों के लिये उत्तम मध्यम धर्माचरण की आवश्यकता को व्यावहारिक समझते हैं वे पुराणों के मत को ठीक ही बतलावेंगे एक धर्मशास्त्र में कहा गया है—

अप्सु देवता बालानाम् दिवि देवता मनीषिणाम् ।

बालकों का अथवा बाल-बुद्धि वाली अशिक्षित जनता का देवता गङ्गा यमुना आदि तीर्थ स्थान हैं। विद्वानों के देवता भगवान की दैवी शक्तियाँ जैसे—सूर्य इन्द्र रुद्र विष्णु आदि हैं और जो सच्चे ज्ञानी हैं उनका देवता केवल आत्मा ही होता है।

समाज में सभी श्रेणियों के व्यक्ति पाये जाते हैं। उसमें वेद और उपनिषदों के अध्यात्म ज्ञान को समझने वाले आत्मज्ञानी और योगी भी होते हैं यज्ञ और अन्य कर्मकाण्डों में संलग्न पण्डितजन भी होते हैं और केवल जीवन निर्वाह के कामों में ही लगे रहने वाले व्यापारी किसान मजदूर आदि भी होते हैं। यद्यपि पहली दो श्रेणियाँ समाज में अधिक प्रभावशाली और प्रतिष्ठित मानी जाती हैं पर अधिकता सदैव तीसरी श्रेणी की ही होती है। तो अब प्रश्न होता है कि इन अर्द्धशिक्षित अथवा अशिक्षित जन-साधारण के लिये धार्मिक नैतिक चारित्रिक नियमों की जानकारी कराने और उन पर आचरण कराने की क्या व्यवस्था की जाय ? पुराण ऐसे ही लोगों को धार्मिक शिक्षा देने के साधन हैं। इन लोगों को यदि उपनिषदों के निराकार ब्रह्म का ध्यान करने का उपदेश दिया जाय अथवा किसी बड़े कर्मकाण्ड की शिक्षा दी जाय तो वे उसे क्या समझ सकते हैं और कहाँ तक उस पर आचरण कर सकते हैं ? पर पुराणों की सरल कथाओं और रोचक दृष्टान्तों को वे भी कौतूहलपूर्वक सुनते रहते हैं और अन्त में इतना निष्कर्ष निकाल ही लेते हैं कि धर्म पुण्य सत्कर्म करने से मनुष्य को इहलोक और परलोक में सुख मिलता है इसलिये जहाँ तक बन पड़े मनुष्य को भला करने का प्रयत्न करना चाहिए।

पुराणों का प्रक्षिप्त भाग—

यह ठीक है कि मध्यकाल में पुराणों की कथा बाँचने वाले पुराणी और 'व्यासों' ने उनमें बहुत मिलावट की है। इसके कई कारण हो सकते हैं।

अनेक परिवर्तन और परिवर्द्धन देश-काल के प्रभाव से हुये हैं। राज्यों में, शासन-व्यवस्था में जैसे-जैसे परिवर्तन होते गए उसके प्रभाव से लोगों के रहन-सहन और विचारों में परिवर्तन हुये और कथा वाचकों ने उनके अनुकूल बातें बढ़ादीं। भिन्न-भिन्न प्रदेशों की परिस्थितियों के प्रभाव से जिन पुराणों का जहाँ अधिक प्रचार था उनमें वहाँ की बातों को विशेष स्थान दे दिया गया। साम्प्रदायिकता के बढ़ने पर उनके आचार्यों और विद्वानों ने अपने सिद्धान्तों की पुष्टि करने वाले उपाख्यान और विवरण पुराणों में सम्मिलित कर दिये। अन्तिम पर एक बड़ा कारण कथावाचकों की स्वार्थपरता का भी हुआ जिससे उन्होंने व्रत, तीर्थ, श्राद्ध, दान के प्रकरणों को खूब बढ़ाया और अधिक से अधिक दान देने की महिमा का प्रतिपादन किया। इस श्रेणी की मिलावट क्रमश इतनी अधिक बढ़ गई और विभिन्न प्रकार के दानों के परिमाण तथा उनके पुण्य फल को इतना बढ़ा-चढ़ा कर कहा गया कि श्रोताओं को उससे विरक्ति होने लगी। पुराणों में जिन ब्रह्माण्डदान, मेरु-दान, धरा-दान, सप्त-सागर दान, रत्नमयी धेनुदान आदि का जो वर्णन किया गया उनकी सामग्री की लागत कई लाख रुपये तक पहुँचती है। हर दान में सोने की मूर्तियों और रत्नों का विधान बतलाया गया है। एक लेखक के कथनानुसार "इन दानों के वर्णनों को पढ़कर कभी-कभी तो ऐसा जान पड़ता है जैसे कोई आधुनिक काल का बढ़िया विज्ञापनदाता अपनी किसी वस्तु की तारीफों का पुल बाँध रहा हो।"

इस मिलावट तथा हीन मनोवृत्ति का परिणाम यह हुआ है कि वर्तमान समय में अधिकांश शिक्षित व्यक्तियों ने पुराण-साहित्य को कोरी गप्पों का खजाना मान लिया है और वे बिना देखे सुने ही एक सिरे से समस्त पुराणों को और इनकी तमाम बातों को निरर्थक और बेकार घोषित कर देते हैं। यह अवस्था समाज तथा धर्म के लिये अवाञ्छनीय ही कही जायगी। इसके फल-स्वरूप हम उस लाभकारी और जन-कल्याणकारी साहित्य वंचित रह जायेंगे जो पुराणों में पर्याप्त परिमाण में सन्निहित है। इस समस्या के समस्त पहलुओं पर विचार करके एक पुराणों के ज्ञाता विद्वान ने निम्न उद्गार व्यक्त किये हैं—

पुराणों में इन अनेक गुणों के होते हुये भी अनेक लोकोपकारियों ने, जिन्हें वास्तव में देश और जाति के कल्याण करने की सच्ची लगन थी पुराणों को सर्वथा त्याज्य माना है उनकी भरपेट निन्दा की है मार्मिक कुछ स्थलों को तर्क के चाकू से चीरफाड़ कर जनता के सामने खोलकर रख दिया है। हम मानते हैं कि इन्होंने यह कार्य किसी दुर्भावना से नहीं किया है वरन् त्याज्य दुष्टः प्रियोऽप्यासीदङ्गुली वोरगक्षता (अर्थात् सांप की काटी हुई अंगुली की तरह दोषपूर्ण वस्तु अत्यन्त प्रिय होने पर भी त्याज्य है)

इस सूक्ति के अनुसार पुराणों को सर्वथा बहिष्कृत बतलाया है। उनकी धारणा थी कि ये पुराण सार्वजनिक उपयोग के लायक नहीं रह गये हैं सामान्य जनता इन में वर्णित बातों पर चलकर सुखी नहीं हो सकेगी अपना वास्तविक कर्त्तव्य भूल जायगी। उनकी धारणा कुछ अंश में सत्य है, पर यदि औषधि करने से सर्वथा विष दूर हो जाय तो अंगुली को काटकर फेंक देना समीचीन नहीं लगता। सभी औषधियों के अभाव और एक विशेष परिस्थिति में अंगुली का काट देना भी एक अन्तिम कर्तव्य है, पर जिस अंगुली ने हमें जीवन तक अनेक दुःखों एवं सुखों में साथ दिया है यथासम्भव उसकी रक्षा करनी ही चाहिये। पुराणों ने चिरकाल से हिन्दू समाज का बहुत उपकार किया है। हमारी बहुत परम्परागत पवित्र भावनायें इनके साथ जुड़ी हुई हैं, इन सब बातों को देखते हुये उनको एक दम बहिष्कृत कर देना नितान्त अनुचित है, जब कि थोड़ी सी सावधानी ही उन्हें पूर्ववत् पवित्र बना देती है। नितान्त अनर्थक कथाओं तथा स्वार्थपूर्ण उपदेशों को पुराणों से अलग करके आप उनकी उपादेयता से इनकार नहीं कर सकते। सुनारों की दुकानों की मिट्टी को बटोरकर धोने वालों को भी जीवन-यापन के लिये पर्याप्त सोना-चाँदी मिल जाता है, फिर पुराण तो अनेक रत्नों के भण्डार हैं, दृष्टि फैलाइये विवेक के चश्मे से उन मृत्तिका मिश्रित अनपेक्षित अंशों को जिनमें निन्दा घृणा आदि के सिवा दूसरी चीज नहीं है अलग कीजिये सहानुभूति एवं विश्वास का सम्बल रखिये उनसे आपको अनमोल रत्न मिलेंगे।

हमने इसी नीति का अनुसरण करके पुराणों की बहुमूल्य सामग्री को

परिमार्जित संस्करण के रूप में प्रकाशित करना आरम्भ किया है। उपर्युक्त प्रक्षिप्त अंशों के अतिरिक्त पुराणों के अनावश्यक रूप से बड़े हो जाने का एक कारण यह भी है कि कितने ही विषयों की उनमें पुनरुक्ति की गई है। जो पाठक को खटकती है जैसे श्राद्ध, नर्क, चारों वर्णों और चारों आश्रमों के आचार-विचार, पुराण सुनने का फल आदि अनेक विषय सब में एक से ही दिये गये हैं। कहीं-कहीं तो उनकी शब्दावली भी एक ही है और अध्याय के अध्याय एक दूसरे मिलते हुये हैं। बार-बार एक ही विषय को मिलते-जुलते शब्दों में पढ़ने से पाठक को सन्देह होने लगता है कि यह विषय तो पहले भी पढ़ा था, फिर ज्यों का त्यों कैसे आ गया ? ऐसे विषयों को एक जगह पूरे रूप में दिया जाय तो यह पुनरुक्ति दोष कम खटकने वाला हो सकता है। निस्सन्देह पुराणों में बहुसंख्यक जीवनोपयोगी और उच्चकोटि के धार्मिक विषयों की शिक्षा दी गई है, पर इस मिलावट और नकलखोरी की भीड़भाड़ में वे खो जाते हैं और सामान्य पाठक या श्रोता की दृष्टि उन पर नहीं पड़ती। इसलिए जैसा उपर्युक्त उद्धरण में संकेत किया गया है यदि पुराणों में पक्षपात या स्वार्थवश जो अनुचित मिलावट कर दी गई है उसे पृथक करके और अनावश्यक रूप से बढ़ाये गये अंशों को सूक्ष्म करके पुराणों को प्रकाशित और प्रचारित किया जाय तो यह हिन्दू धर्म तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति की बहुत बड़ी सेवा होगी।

'वायु-पुराण' सम्बन्धी विचार—

पौराणिक-साहित्य की दृष्टि से 'वायु पुराण' में वर्णित पाठ्य-सामग्री पर विचार करने से पूर्व इसको अनेक विद्वानों द्वारा उठाई इस शंका पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है कि 'वायु-पुराण' की गणना '१८ महा-पुराणों' में है या नहीं ? इस सम्बन्ध में आधुनिक विद्वानों में भी मतभेद पाया जाता है। कुछ आलोचकों ने इसे 'शिव महापुराण' में 'वायवीय संहिता' नामक एक खण्ड होने से इसे उक्त पुराण का एक अंश बतलाया है, जब कि अन्य विद्वानों ने दोनों पुराणों की विषय सूची तथा पाठ्य-सामग्री के महान् अन्तर के आधार इसको स्वतन्त्र 'महापुराण' ही स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध

से हमने विभिन्न पुराणों के अन्तर्गत पाई जाने वाली १८ पुराणों की सूचियों का जब मिलान किया तो उनसे हमको यही प्रतीत हुआ कि 'वायु-पुराण' को अधिकांश ने १८ पुराणों में ही माना है। पाठकों की जानकारी के लिये हम उन सूचियों को नीचे देते हैं—

(१) नारद पुराण की पुराण सूची सबसे बड़ी है। उसमें प्रत्येक पुराण के लिए एक दो पृष्ठ का स्वतन्त्र अध्याय दिया है और प्रत्येक पुराण के मुख्य-मुख्य विषयों की सूची के साथ उनकी दान करने की विधि भी बतलाई है। उसमें दिये गये अठारह पुराणों की नामावली इस प्रकार है—

(१) ब्रह्मपुराण १० श्लोक (२) पद्मपुराण ५५० (३) विष्णु-पुराण २३ (४) वायु पुराण २४ (५) भागवत पुराण १८० (६) नारदपुराण २५ (७) मार्कण्डेय पुराण ६ (८) अग्निपुराण १२ (९) भविष्यपुराण १४ (१०) ब्रह्मवैवर्त पुराण १८० (११) लिङ्गपुराण ११० (१२) वाराह पुराण २४० (१३) स्कन्द पुराण ८१ (१४) वामन पुराण १० (१५) कूर्म पुराण १७०० (१६) मत्स्य पुराण १४ (१७) गरुड़ पुराण १९ ०० (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२ ।

(२) मत्स्य पुराण में भी पुराण सूची काफी विस्तार से दी गई है। उसमें विभिन्न पुराणों के श्लोकों की जो संख्या दी गई है वह कई स्थानों पर नारद पुराण की अपेक्षा कम या ज्यादा है। इसमें भी पुराणों के दान की विधि संक्षेप में दी गई है—

(१) ब्रह्म पुराण १३ (२) पद्मपुराण ५५ (३) वायव्य [विष्णु] पुराण २३ (४) वायवीय पुराण २४ (५) भागवत पुराण १८ (६) नारद पुराण २५ (७) मार्कण्डेय पुराण ९ (८) अग्निपुराण १२ (९) भविष्य पुराण १४५ (१०) ब्रह्मवैवर्तपुराण १८ (११) लिङ्ग पुराण ११ (१२) वाराह पुराण २४ (१३) स्कन्द पुराण ८१ (१४) वामन पुराण १ (१५) कूर्म पुराण १८ (१६) मत्स्य पुराण १४ (१७) गरुड़ पुराण १९ (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२२ ।

(३) स्वयं वायु पुराण के अध्याय १०४ में पुराण-सूची दी गई है। पर उसमें अठारह पुराणों का उल्लेख करने पर भी वास्तव में १६ पुराणों के ही नाम मिलते हैं। इसलिये यह अनुमान किया जाता है कि एक श्लोक किसी तरह लिखने से रह गया है। इनकी क्रम संख्या भी अन्य पुराणों से बहुत भिन्न है—

(१) मत्स्य पुराण १४०००,(२)भविष्य पुराण १४५००, (३)मार्कण्डेय पुराण ६०००, (६) ब्रह्मवैवर्त पुराण १२०००, (७) ब्रह्म पुराण १००००, (८) वामनपुराण १००००, (९) आदि पुराण १०६००, (१०) वायु पुराण २३००० (११) नारदीय पुराण २३०००, (१२) गरुड़ पुराण १६०००, (१३) पद्म पुराण ५५०००, (१४) कूर्म पुराण १७०००, (१५) सौकर (वाराह) पुराण २४०००, (१६) स्कन्द पुराण ८१००० ।

इस सूची में विष्णु, अग्नि और लिङ्ग पुराणों के नाम नहीं हैं। लेखक की भूल मानकर हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि एक श्लोक के छूट जाने से दो पुराणों का नाम रह गया है। तो भी इस सूची में आदि पुराण को शामिल किया गया है, इससे यह स्पष्ट है, वायु-पुराण के रचयिता ने प्रचलित १८ पुराणों में से किसी एक को अवश्य ही हटा दिया है।

(४) अग्नि पुराण की सूची की क्रम-संख्या अन्य पुराणों से मिलती है, पर इसमें जो श्लोक संख्या दी है उसमें अन्य पुराणों से बहुत अधिक अन्तर है। पाठक स्वयं मिलान करके देखें—

(१) ब्रह्म पुराण २५०००, (२) पद्मपुराण १२०००, (३) विष्णु-पुराण २३०००, (४) वायु पुराण १४०००, (५) भागवत पुराण १८००० (६) नारदपुराण २५०००, (७) मार्कण्डेय पुराण ९०००, (८) अग्नि पुराण १२०००, (९) भविष्य पुराण १४००० (१०) ब्रह्मवैवर्त १८०००, (११) लिंग पुराण ११०००, (१२) वाराह पुराण २४०००, (१३) स्कन्द पुराण ८४०००, (१४) वामनपुराण १००००, (१५) कूर्म पुराण १८००० (१६) मत्स्य पुराण १३०००, (१७) गरुड़ पुराण १८०००, (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२००० ।

(५) वामन पुराण में पुराण-सूची केवल एक श्लोक में दे दी है और

यह भी बड़े अद्भुत ढंग से अन्यथा अठारह पुराणों का नाम एक श्लोक में किसी प्रकार आना सम्भव न था—

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् ।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक् ॥

अर्थात् १८ पुराणों में से दो के नाम म से आरम्भ होते हैं (मत्स्य और मार्कण्डेय) दो भ से आरम्भ होते हैं (भागवत और भविष्य) तीन ब्र से हैं (ब्रह्म ब्रह्माण्ड और ब्रह्मवैवर्त) चार व से हैं (वराह वायु वामन और विष्णु) शेष सात पुराणों के प्रथम अक्षर इस प्रकार हैं—अ—अग्नि ना—नारद प—पद्म लि—लिङ्ग ग—गरुड़ कू—कूर्म स्क—स्कन्द ।

(६) विष्णु पुराण में यह सूची संक्षेप में दी गई है पर उसने क्रम—संख्या का निर्देश बहुत स्पष्ट रूप से किया है—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ।
तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् ॥
आग्नेयमष्टमं चैव भविष्यन्नवमं स्मृतम् ।
दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् ॥
वाराहं द्वादशं चैव स्कान्दं चात्र त्रयोदशम् ।
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं तथा ॥
मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम् ।
महापुराणान्येतानि ह्यष्टादश महामुने ॥

(वि पु ३—६—२१से२४)

कुछ विद्वानों का मत है कि विष्णु पुराण में जो क्रम संख्या दी गई है वह प्राचीनता की दृष्टि से है। इस तथ्य को स्वीकार कर लेने पर ब्रह्म पुराण सबसे प्राचीन और ब्रह्माण्ड सब से अन्तिम समय का रचित कहा जायगा ।

(७) मार्कण्डेय पुराण के १३४ वें अध्याय में ८ से ११ तक विष्णु पुराण के ये चारों श्लोक ज्यों के त्यों उद्धृत करके पुराण-सूची दे दी गई है और मार्कण्डेय पुराण का सातवाँ स्थान स्वयं स्वीकृत किया है ।

(८) स्कन्द पुराण के केदार खण्ड में १८ पुराणों की नामयुक्त सूची

को देकर साम्प्रदायिक दृष्टि से उनका वर्गीकरण भी किया गया है। उसमें कहा गया है कि "१८ पुराणों में से दस शैव, चार वैष्णव, दो ब्राह्म और दो अग्नि के हैं। शैव, भविष्य, मार्कण्डेय, लिंग, वाराह, स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, वामन और ब्रह्माण्ड—ये दस पुराण शैव हैं। वैष्णव, भागवत, नारद और गरुड़—ये चार वैष्णव हैं, ब्राह्म और पद्म—ये दो ब्रह्मा के हैं। अग्नि पुराण अग्नि की तथा ब्रह्मवैवर्त सूर्य की महिमा से पूर्ण है।"

पुराणों की इन विभिन्न सूचियों में 'वायु-पुराण' को स्पष्टतः १८ पुराणों में माना गया है और उसकी श्लोक संख्या २३ या २४ हजार बतलाई गई है जो कि इस समय लगभग ११ हजार श्लोकों का ही मिलता है। 'मत्स्य पुराण' के मतानुसार इस पुराण में 'वायु देव ने श्वेत कल्प के प्रसंग में अनेकानेक धर्म प्रसंगों के साथ रुद्र महात्म्य भी विस्तार से सुनाया है।'

सबसे मुख्य ध्यान देने का विषय तो वायुपुराण तथा शिवपुराण के अन्त में दी गई 'वायवीय संहिता' की विषय सूचियाँ हैं। जब कि वायवीय संहिता के अधिकांश में यही दक्ष, सती, पार्वती की कथा अथवा शिव-दीक्षा, पाशुपत व्रत, भस्म महिमा, शिव लिंग पूजा से महापापों का नाश, शैवाचरण पूजा, योग मार्ग आदि फुटकर विषय ही अधिक पाये जाते हैं, वायुपुराण में पुराणों के लक्षणों के उपयुक्त सृष्टि रचना, कल्प और युग वर्णन, मन्वन्तरों का वर्णन सृष्टि का भूगोल, देवता, सृष्टि, राजाओं के वंशों आदि विषयों का विद्वतापूर्वक वर्णन किया गया है। हमें यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं कि वायुपुराण के रचयिता ने सृष्टि रचना और उसके क्रम-विकास का जो वर्णन किया है वह अन्य कई पुराणों के तत्सम्बन्धी वर्णन की अपेक्षा अधिक बुद्धिसंगत है और यदि उसकी रूपक तथा अलंकारयुक्त शैली की जाँच वैज्ञानिक तथा व्यवहारिक दृष्टिकोण से की जाय तो उसमें कितने ही वैदिक सृष्टि-विज्ञान के तथ्यों का पता लग सकता है। पुराणों की सबसे बड़ी विशेषता और उपयोगिता यही मानी गई है कि वे वेदों के गूढ़ तथ्यों और रहस्यवादी वर्णनों को विशद व्याख्या के साथ रोचक कथानकों में उपस्थित करते हैं जिससे सामान्य स्तर के पाठक भी उनको समझ सकते हैं। 'वायु पुराण' इस दृष्टि से निस्सन्देह अन्य कितने

ही पुराणों की अपेक्षा ग्रन्थ—सूची में रखे जाने योग्य है ।

वायुपुराण की एक सफलता —

यद्यपि परम्परागत शैली का अनुसरण करते हुए वायुपुराण के आरम्भ में इसे भी ब्रह्माजी वासुदेव व्यास की सूत जी आदि का रचा हुआ कहा है पर आगे चलकर जब वास्तविक विवेचन आरम्भ हुआ है तो रचयिता ने जगह-जगह ऐसे भाव प्रकट किये हैं जिनसे प्रकट होता है कि यह पुराण अन्य ग्रन्थों की तरह किसी विशेष व्यक्ति की रचना है । सृष्टि रचना का विषय आरम्भ करते ही तीसरे अध्याय के अन्तिम श्लोक में उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया है—

महत्यव्यक्तस्यैव च कालेषु या च स्थितिरिह पुनः प्रवृत्ति ॥
तच्छृणुध्वं पुराणाद्यं स्वमतिप्रमुखाद् यथाक्रमविस्तृतं वो मुनीन्द्राः ॥
विप्रा ऋषिभ्यः समुदाहृतम् यथापुराणं तच्छृणुतोच्यमानम् ॥

अर्थात् प्रकृति की मूल अवस्था में कारणों की कैसी स्थिति रहती है तथा फिर कैसे रचना की प्रवृत्ति होती है वे सब बातें इस शास्त्र के मतानुसार और अपनी बुद्धि के अनुसार कल्पनाओं के लिये प्रकाशित कर रहे हैं । हे विप्रो! पुराकाल में ऋषियों ने जैसे कहा है मैं भी उसी प्रकार कह रहा हूँ आप लोग ध्यान से सुनिये ॥

जगत के निर्माण और इतिहास की घटनाओं के सम्बन्ध में कोई लेखक यह तो कह नहीं सकता कि मैं इनको अपने मन या बुद्धि से विचार कर या गढ़ कर कह रहा हूँ । उनका तो कोई न कोई आधार ढूँढना और बतलाना पड़ेगा । लेखक का काम तो यह है कि वह उन तथ्यों को अपनी विशेष शैली व अपने दृष्टिकोण के अनुसार विवेचना करता हुआ पाठकों या श्रोताओं के सम्मुख उपस्थित करे । इस लिये वायुपुराणकार का यह कथन सर्वथा स्वाभाविक और आवश्यक है कि मैंने जो कुछ लिखा है वह अपनी कल्पना से नहीं लिख दिया है वरन् उसकी सामग्री विभिन्न भारतीय शास्त्रों और प्राचीन विद्वानों द्वारा रची गाथाओं आदि से एकत्रित की गई है । इस बात को प्रकट करके तथ्यों की जिम्मेदारी प्राचीन शास्त्रों पर और वंशजीवी तथा विवेचन प्रणाली की अपने ऊपर ले ली है ।

आगे जहां राजवंशों का वर्णन आया है वहां भी लेखक ने इस पुराण की रचना का समय साफ तौर पर दे दिया है। 'अनुषङ्गपाद समाप्ति' शीर्षक अध्याय में पाण्डवों की आगामी पीढ़ियों का जिक्र करते हुये वे कहते हैं—

"राजा जनमेजय का पुत्र शतानीक था, जो परम बलशाली, सत्यवादी तथा विक्रमशील था। शतानीक का पुत्र परम बलशाली अश्वमेधदत्त हुआ। अश्वमेधदत्त से शत्रुओं के किलों को जीतने वाले अधिसामकृष्ण नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। ऋषिवृन्द ! यही परम धर्मात्मा राजा इस समय राज्य कर रहा है। इसी के राज्य काल में आपने इस परम दुर्लभ तीन वर्ष चलने वाले दीर्घ-सत्र (यज्ञ) का अनुष्ठान आरम्भ किया है, इसके अतिरिक्त दृषद्वती नदी के किनारे कुरुक्षेत्र में भी दो वर्ष व्यापी एक दीर्घसत्र चल रहा है।"

यों जनता की धार्मिक मान्यता तथा श्रद्धा को सुदृढ रखने के उद्देश्य से सभी धार्मिक ग्रन्थों को किसी देवता या दैवी व्यक्ति के मुख से निकला हुआ बतलाया गया है, पर 'वायु-पुराणकार' ने उक्त परम्परा का पालन करते हुये भी अपनी रचना को अन्य ग्रन्थों की तरह मानवीय घोषित कर दिया है, यह उनका एक प्रशंसनीय गुण ही माना जायगा।

विकास-सिद्धान्त का प्रतिपादन—

प्राचीन ग्रन्थों में से अधिकांश का यह मत प्रकट होता है कि 'सतयुग' अर्थात् सृष्टि का आदिम-काल सभ्यता, संस्कृति, विद्या-बुद्धि, आचार-विचार आदि की दृष्टि से सर्वोत्तम समय था और उसके पश्चात् सब विषयों में हीनता आती चली गई। पर 'वायु-पुराण' का सतयुग वर्णन पढ़ने से ऐसा भाव उत्पन्न नहीं होता। प्रकट में उन्होंने भी उसे श्रेष्ठ बतलाया है, पर उस समय के प्राणियों का जो कुछ चित्रण किया है, उसे एक विचारशील पाठक इसी नतीजे पर पहुँचेगा कि उस समय के प्राणी एक वनमानुष से भी कम विकसित अवस्था में थे और उस समय के मनुष्य न होकर किसी और ही जाति के प्राणी हों तो भी आश्चर्य नहीं। प्रकर्ण ८ (मानव सभ्यता का आरम्भ) के ४५वें श्लोक से आगे कहा गया है—

"उस समय कृतयुग के आरम्भ काल में वे प्राणी नदी, सरोवर, समुद्र और पर्वतों के समीप रहते थे। उनको अधिक शीत और गर्मी से पीड़ा नहीं

होती थी । वे इच्छानुसार इधर उधर घूमते रहते थे । पृथ्वी से स्वयमेव उत्पन्न होने वाले पदार्थों को खाते थे । उस समय मूल फल पुष्प का अभाव था पर उनको पृथ्वी के रसमय पदार्थ मिल जाते थे । उनको भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार न था कोई भेदभाव भी न था । वे सब आयु, रूप और अनुभूति में समान थे । उनमें किसी प्रकार का स्वत्व प्रतिद्वन्द्विता और श्रम का प्रश्न नहीं था । वे समुद्रों और पर्वतों के निकट रहा करते थे । उनका कोई स्थायी घर नहीं था । उस समय बाधा करने वाले कोई नारकीय जीव न थे न कोई उद्भिज्ज पदार्थ था । यद्यपि वे अपने शरीर का संस्कार (स्नान आदि) नहीं करते थे तो भी स्थिर यौवन थे । वे जन्म और आकृति में समान थे मृत्यु भी साथ ही होती थी । उनके सब व्यवहार स्वाभाविक होते थे बुद्धि-पूर्वक नहीं । उनकी प्रवृत्ति शुभ और अशुभ कर्मों में नहीं होती थी क्योंकि उस समय शुभ और अशुभ का विभाजन था ही नहीं । उस समय वर्णाश्रम व्यवस्था न थी न संकर-दोष ही था । वे परस्पर समान और अति प्रेमपूर्वक व्यवहार करते थे । उनमें शत्रु उदासीन मित्र अमित्र प्रिय-अप्रिय न थे वे निरीह थे और मन की प्राकृतिक प्रेरणा से ही विषयों में प्रवृत्त होते थे । एक दूसरे के प्रति किसी को कोई इच्छा या स्वार्थ न था न तो परस्पर के अनुग्रह की आवश्यकता थी ।

यों कल्पना और भावुकता का संयोग करके इन प्राणियों को देवता और योगियों के समान बतलाया जा सकता है पर यदि प्रकृति के स्वाभाविक विकास की दृष्टि से विचार किया जाय तो बुद्धि-तत्व का जिसके द्वारा मनुष्य वास्तव में मनुष्य बन सका है उनमें सर्वथा अभाव था और वे उसी अवस्था में रहते थे जिसमें इस समय छोटे पशुओं या कीड़े मकोड़ों को रहते देखते हैं । जीव-सृष्टि के आरम्भ में इससे अधिक की आशा भी नहीं की जा सकती ।

त्रेतायुग का वर्णन करते हुये पुराणकार ने लिखा है कि 'उसमें स्थूल जल वृष्टि के आरम्भ हो जाने से वृक्ष उत्पन्न हो गये और उन्हीं से प्राणी अपना निर्वाह करने लगे । उन पेड़ों से एक प्रकार का रस या मधु निकलता था उसी को खाकर वे जीवित रहते थे । अब उनमें राग-द्वेष लोभ के भाव भी उत्पन्न होने लगे और उन्होंने जबर्दस्ती उन वृक्षों पर अधिकार जमाना आरम्भ किया । इससे अनेक स्थानों पर वे वृक्ष नष्ट हो गये और लोग भूख-प्यास का कष्ट पाने

लगे। अब उनको शीत और गर्मी से भी कष्ट होने लगा, इससे उन्होंने घर बनाने आरम्भ किये। वृक्ष की शाखायें जिस प्रकार आगे-पीछे, ऊपर-नीचे और इधर-उधर फैली रहती हैं उसी प्रकार काठ फैलाकर उन लोगों ने घर बनाये। वृक्ष-शाखाओं की तरह बनाये जाने के कारण ही उनका नाम 'शाला' पड़ गया। जब वृष्टि से नदी, नाले, गड्ढे भर गये तो पृथ्वी रसवती होकर शस्य-शालिनी हो गई। बिना जोते बोये चौदह प्रकार की वनस्पतियाँ गाँवों के समीप और जङ्गलों में उग आईं। उन्हीं का उपयोग करके उस समय के लोग निर्वाह करने लगे। पर जब उनमें भेदभाव और स्वार्थपरता का भाव बढ़ा तो लोग फल लेते समय पुष्प और पुष्प लेते समय पत्ते भी तोड़ लेते थे। इससे ये सब वनस्पतियाँ भी क्रमश नष्ट हो गई और लोग फिर भूख-प्यास से व्याकुल होने लगे। तब लोगों ने प्रयत्न करके वनस्पतियों के बीजों का पता लगाया और स्वयम् उनको जोत-बोकर उत्पन्न करने लगे। फिर उनमें कर्म-विभाग भी होने लगा और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि विभिन्न वर्णों की स्थापना की गई।"

वैदिक तत्वों और पौराणिक उपाख्यानों का समन्वय—

पुराणों में देवताओं, महर्षियों, राजाओं के सम्बन्ध में जो घटनायें और कथानक दिए गये हैं, वे एक निष्पक्ष पाठक को बहुत ही अतिरंजित और अनेक बार असम्भव से ही प्रतीत होते हैं। इसका कारण अन्वेषण करने वाले विद्वानों ने यही बतलाया है कि पुराणकारों ने अलौकिक वैदिक तत्वों को रूपक तथा अलंकार की शैली में ढालकर लौकिक कथाओं का रूप दे दिया है। देवासुर-संग्राम की कथायें इसका स्पष्ट प्रमाण हैं। इन्द्र और वृत्रासुर के संघर्ष को वेदों में भी कुछ अंशों में घटनात्मक ढङ्ग से लिया है, पर उनके विभिन्न स्थलों का मिलान करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका आशय सूर्य की शक्ति द्वारा बादलों से वर्षा कराने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। 'शतपथ ब्राह्मण' में एक स्थान पर इस तथ्य को स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दिया गया है—

न त्वं युयुत्से कतमच्चनाहर्न तेऽमित्रो मघवन् कश्चनास्ति।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं न नु पुरा युयुत्से॥

अर्थात् हे इन्द्र ! तुम कभी किसी से भी नहीं लड़े, तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है। तुम्हारे युद्धों का जो वर्णन किया जाता है। वह सब माया बनावटी या काल्पनिक है। न आज कोई तुम्हारा शत्रु है और न पहले कोई तुम से लड़ा था।

पर पुराणकारों ने तो उसका वर्णन दो राजाओं के सांगोपांग युद्ध की तरह इतना बढ़ा-चढ़ाकर किया कि वे सब वास्तविक व्यक्ति ही जान पड़ने लगे। यही बात महिषासुर और दुर्गा के संग्राम की है जिसका वर्णन सप्तशती में बड़ी मनोमोहक अलंकारिक भाषा में किया गया है। उसमें कहा गया है कि महिषासुर ने सत्य व प्रबल होकर देवों को भगाकर इन्द्रासन पर अधिकार कर लिया। फिर समस्त देवताओं की शक्ति को देवी के रूप में प्रकट करके उसके द्वारा महिष-वध कराया गया। पर वैदिक सूक्तों में 'महिष' को एक तम आवरण माना गया है जो आरम्भिक अवस्था में सूर्य के तेज को रोके रहता है और जब केन्द्र में सौर शक्ति पूर्ण रूपेण एकत्रित होकर परिधि की ओर बढ़ती है तो वह तम-आवरण या 'महिष' स्वयं ही नष्ट हो जाता है। ऋग्वेद में कहा है—

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ [१ ।१८९।२]

अर्थात् सूर्य के भीतर से ज्योति या प्रकाश निकलता है वह प्रकाश इनके प्राण-अपान से प्रकट हुआ है। उसके निकलने से महिष [अन्धकार] नष्ट हो जाता है और सूर्य भगवान समस्त लोक को व्याप्त कर लेते हैं।

इसी प्रकार पुराणों में पुरुरवा, उर्वशी, नहुष, ययाति, तुर्वश आदि राजाओं की बड़ी बड़ी विचित्र कथायें दी गई हैं और उन्हीं को बाद के समस्त प्रमुख भारतीय राजवंशों का मूल बतलाया गया है। पर वेदों के अध्ययन से पता चलता है कि ये सब आकाशीय पदार्थ हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों में बार-बार इन सब के नाम आये हैं। पुराणों के लेखानुसार ययाति के पाँच पुत्र थे जिनके नाम यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और पुरु थे। इन्हीं से भारत के चन्द्रवंशी यादव, कौरव आदि चले हैं। इन सब नामों को ऋग्वेद के एक मन्त्र में आकाशीय नक्षत्र बतलाया गया है—

यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषुस्थः । [१।१०८।८]

अर्थात् 'जो इन्द्र और अग्नि यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु और पुरु में स्थित करते हैं।'

इन्द्रो मायाभि पुरुरूपईयते युक्ताह्यस्य हरयः शता दश । [६।४७।१८]

अर्थात् "इन्द्र माया से पुरु बन जाते हैं। उनके रथ में सहस्रों अश्व जुते होते हैं।"

"उत्त्वा तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपति ।
इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् । (४-३०-१७)

अर्थात् "तुर्वश और यदु को शचीपति इन्द्र पार कर गया।"

इस प्रकार के मिलते-जुलते प्रयोग वेद-पुराणों में अनगिनती मिलते हैं, जिनसे प्रकट होता है कि या तो पुराणकारों ने वेदों के ग्रह-नक्षत्र सम्बन्धी विवरणों को राजवंशों का रूप दे दिया है अथवा उन्होंने अपने राजवंशों के वर्णन के लिये वैदिक नक्षत्रों की नामावली की नकल की है। जो कुछ भी हो विद्वानों की दृष्टि में इसमें कोई दोष नहीं है। पुराण-रचना का उद्देश्य ही वेदों के गूढ़ तत्वों को कथा और दृष्टान्तों का सरल रूप प्रदान करके उसका साधारण जनता में प्रचार करना है। इस सम्बन्ध में वेदों और पुराणों के एक मननशील विद्वान ने लिखा है—

"कहा गया है कि जैसे ही अव्यक्त से जन्म लेने वाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुये उनके मुखों से वेद और पुराण दो वाङ्मय तत्वों का आविर्भाव हुआ। वेद निगम तथा पुराण आगम है। वेद विश्व का केन्द्राधिष्ठित तत्व है। वह अति गूढ़ विवेचन के रूप में संगृहीत होता है। महर्षियों ने उसे वैदिक संहिताओं के रूप में प्राप्त किया है। दूसरा वह ज्ञान है जो लोकव्यापी-जीवन से सम्बन्ध रखता है, जिसका उद्गम लोक-जीवन की महती व्याख्या से होता है। वही पुराण या आगम है। पुराण शब्द की व्युत्पत्ति करते हुये कहा गया है—'पुरा नव भवति।' अर्थात् जो वाङ्मय एक ओर पुरा या पुरातन सृष्टि विद्या (वेदविद्या) से अपना सम्बन्ध बनाये रखता है और दूसरी ओर नित्य नये-नये रूप में जन्म लेने वाले लोक-जीवन से भी सम्बन्ध जोड़े रहता है, वही पुराण या आगमशास्त्र है। भारतीय साहित्य में पुराण वाङ्मय की विचित्र स्थिति

है। लोक-वाद और लोक जीवन की जैसी सुरक्षा इसमें है वैसी अन्यत्र नहीं है।

योग द्वारा शारीरिक और आत्मिक कल्याण—

वायु-पुराण में योग का महत्व और उसकी आवश्यकता पर बहुत जोर दिया है और सभी श्रेणियों के मनुष्यों को उसकी प्रेरणा दी है। उसमें कहा गया है— जितनी तरह की तपस्याएं व्रत नियम और यज्ञफल आदि हैं प्राणायाम का फल भी इनमें से किसी से कम नहीं है। सौ सम्वत्सर तक प्रत्येक मास कुश के अग्रभाग से जलबिन्दु पान करने का जो फल होता है वही फल प्राणायाम करने से प्राप्त हो जाता है। प्राणायाम से दोषों का नाश होता है धारणा से पापों का प्रत्याहार से विषय समूह का और ध्यान से अनीश्वर गुणों का नाश होता है।

आगे चलकर कहा है—"शान्ति प्रशान्ति दीप्ति और प्रसाद इन चारों को प्राणायाम का उद्देश्य समझिये। शान्ति का मतलब है इस काल अथवा परकाल में देहधारियों द्वारा स्वयं किये हुए अथवा पिता माता द्वारा किंवा भाइयों द्वारा किये हुये भयंकर अकल्याणकारक कर्म से उत्पन्न कुत्सित पाप समूह का नाश होना। प्रशान्ति उस तपस्या को कहते हैं जिससे इस लोक और परलोक में हित के लिये लोभ और अहंकार अभिमानादि पापवृत्तियों का संयम हो। जब प्रतिबुद्ध योगी को ज्ञान विज्ञान युक्त प्रसिद्ध महर्षियों की तरह चन्द्र सूर्य ग्रह, तारकादि और भूत भविष्य, वर्तमान का विषय प्रत्यक्ष हो जाय उसे दीप्ति कहते हैं। इन्द्रिय इन्द्रियार्थ मन और पंच-वायु जिससे प्रसन्न हों उसे प्रसाद कहते हैं। यह चार प्रकार का चतुर्गुणी प्राणायाम वर्णन हुआ। यह तुरन्त फलदायक और काल भय का निवारक है।

इस प्रकार पुराणकार ने प्राणायाम को बहुत महत्व दिया है और यथा समय उसकी व्यावहारिक विधि का ज्ञान कराने की चेष्टा भी है। इसके लिए उन्होंने साधक को स्पष्ट चेतावनी दे दी है कि उसे खूब सोच-समझकर और पूर्ण जानकारी प्राप्त करके समस्त नियमों का पालन करते हुये प्राणायाम करना चाहिये। जो अनियम से अथवा गलत तरीके से प्राणायाम करेगा उसे जड़ता बहिरापन मूकत्व अन्धापन स्मृतिलोप, मूर्च्छा आदि अनेक प्रकार के रोग

उत्पन्न हो जाते हैं। ये सब दुष्परिणाम अज्ञानपूर्वक योग कर्म में प्रवृत्त होने से होते हैं। इस प्रकार की चेतावनी अन्य कई ग्रन्थों में भी देखने में आती है, पर इस पुराण में इन रोगों की जो चिकित्सा दी गई है, वह सर्वत्र देखने में नहीं आती। कोई अनुभवी योगी ही उसका विधान कर सकता है। प्राणायाम जनित दोषों की चिकित्सा बतलाते हुये कहा है—

"प्राणायाम से उत्पन्न होने वाले दोषों को शान्त करने के लिये स्निग्ध पदार्थ मिश्रित गर्म यवागू (जौ की पतली लपसी बिना नमक या मीठे की) कुछ काल तक पीड़ित स्थान पर धारण करे। इससे वात गुल्म नष्ट होता है। गुदावर्त को दूर करने को यह चिकित्सा करे कि दही अथवा यवागू का भोजन करे और वायु ग्रन्थि का भेदन करके उसे ऊपर की तरफ चलावे। अगर इससे कष्ट न मिटे तो मस्तक में धारणा करे। जिस योगी के सर्वाङ्ग में कँपकँपी हो जाय, वह शरीर को आसन द्वारा स्थिर कर मन में किसी पर्वत की धारणा करे। छाती का दर्द होने पर उस स्थान या कण्ठ देश में वैसी ही धारणा करे। बोली रुक जाने पर वचन में और बहरापन हो तो कानों में धारणा करे। प्यास का कष्ट होने से स्नेहाक्त प्रज्वलित अग्नि की धारणा करे। इन चिकित्साओं के फल की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करे। क्षय, कुष्ठ, कीलसादि राजस रोगों में सात्विकी धारणा करे। जिस-जिस स्थान में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो, वहाँ-वहाँ सात्विकी धारणा करे। जो भयभीत हो जाय उसके मस्तक पर लकड़ी की कील रखकर धीरे-धीरे खटखटावे। इससे उसकी संज्ञा लौट आती है। अगर साँप ने काट लिया हो तो हृदय और उदर में धारणा करे। अगर विषाक्त पदार्थ सेवन करने में आ गया हो, तो हृदय में विशल्या धारणा करे। मन में पर्वतमय पृथ्वी की धारणा कर हृदय में देवता और समुद्र की धारणा करे। योगी ऐसी चिकित्सा के लिये हजार वर्ष तक से व्यायाम करते हैं। कण्ठ तक जल में घुसकर मस्तक में धारणा करे। आक (मदार) के सूखे पत्ते की तीलियाँ बनाकर दीमक की मिट्टी को घोलकर पी जाय। योग सम्बन्धी दोषों की चिकित्सा ऐसी ही आन्तरिक क्रिया द्वारा की जाय।"

यह तो हुई योगाभ्यास में भूल के कारण उत्पन्न हो जाने वाले विकारों और दोषों की बात। योग में शारीरिक क्रियाओं की अपेक्षा मानसिक भाव-

नाओं का महत्व अधिक है इसलिये उसके दोषों की चिकित्सा भी मानसिक ढंग की होनी चाहिये। योगी की धारणा शक्ति निःसन्देह प्रभावशाली होती है और वह शरीर की आरोग्यप्रदायक शक्ति को किसी स्थान पर संलग्न कर सकता है। इसलिये योगी के शारीरिक कष्ट सामान्य उपायों से ही दूर हो जाते हैं।

मानसिक विकारों का प्रतिकार—

शारीरिक व्याधियों की अपेक्षा भी मानसिक विकार बड़े अनिष्टकारी और मनुष्य का पतन करा देने वाले होते हैं। शरीर के कष्टों को सहते हुए जीवन के आवश्यक कार्यक्रमों को किसी प्रकार पूरा किया जा सकता है पर मनोविकारों से ग्रस्त प्राणी का तो अपने ऊपर से नियन्त्रण ही छूट जाता है और वह शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ होते हुये भी निकम्मा या हानिकर हो जाता है। इस सम्बन्ध में विवेचन करते हुये पुराणकार लिखते हैं—

तत्त्व दृष्टि से योगियों के उपसर्गों (व्याधियों) पर विचार करने से विदित होता है कि यदि मनुष्योचित विविध कामना, स्त्री प्रसंग की अभिलाषा, पुत्रोत्पादन इच्छा, विद्यादान, अग्निहोत्र, हवियज्ञ आदि तपस्याएं, कपट, धन एवं स्वर्ग की स्पृहा आदि वस्तुओं में योगी आसक्त हो गया तो वह अविद्या के वशीभूत हो जायगा। इसलिए इनको उपसर्ग समझ कर निरन्तर इनसे बचने का उपाय करना चाहिए। दूर की ध्वनि सुनने की शक्ति, देवताओं का दर्शन सिद्ध का लक्षण कहा गया है। विद्या, कवित्व, शिल्प, नैपुण्य, सब भाषाओं का बोध, विद्या का उपादान, सुनने योग्य शब्दों को सौ योजन दूर से भी सुन लेना, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व आदि का दिव्य दर्शन आदि योगियों के लिये विघ्नस्वरूप है। योगी जब इन क्रियाओं में देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, पितरों को देखने लगते हैं तब वे उन्मत्त हो जाते हैं।

आगे चलकर फिर कहा गया है कि योगियों की आठ प्रकार की सिद्धियां कही गई हैं जिन को योग के आठ ऐश्वर्य समझना चाहिये। यह तीन प्रकार का होता है—सावद्य, निरवद्य और सूक्ष्म। सावद्य नामक तत्त्व पञ्चभूतात्मक है, निरवद्य भी पञ्चमात्रात्मक है। स्थूल इन्द्रिय, मन और अहङ्कार एवं सूक्ष्म इन्द्रिय, मन और अहङ्कार तथा सम्पूर्ण आत्मख्याति-अष्ट ऐश्वर्यों को यह

त्रिविध प्रवृत्ति है। त्रैलोक्य में जितने जीव-जन्तु हैं वे सब ऐसे योगी के वश में होते हैं। वे तीनों लोकों के पदार्थ को पा सकते हैं, इच्छानुरूप विषय भोग कर सकते हैं। यहाँ तक कि शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और मन आदि प्राकृतिक इन्द्रियों के विषय भी योगी की इच्छानुसार प्रवर्तित होते रहते हैं। ऐसे योगी को जन्म, मृत्यु, खेद, भेद, दाह, मोह, संयोग क्षय, क्षरण, खेद आदि कुछ भी नहीं होते, "पर इतना सब होने पर भी यदि वे ब्रह्मज्ञान का अवलम्बन करके अपवर्ग नामक परम पद की साधना नहीं करते तो वे रागवश राजस-तामस कर्मों के आचरण से फिर उन्हीं में लिप्त हो जाते हैं। उनमें से जो सुकृत करते हैं वे उसके फलस्वरूप स्वर्गलाभ करते हैं। वे फलभोग करने की उपरान्त पुनः भ्रष्ट होकर मानव-जन्म प्राप्त करते हैं। इस कारण अत्यन्त सूक्ष्म जो परब्रह्म है वही सर्वकालीन है और उस ब्रह्म का ही सेवन करना चाहिये।"

वास्तविकता यही है कि मनुष्य ज्ञान, योग, कर्म, भक्ति किसी भी मार्ग पर चले जब तक उसके विचारों में शुद्धता, पवित्रता, निस्वार्थता और सात्विकता नहीं आयेगी, उसे किसी चिरस्थायी फल की आशा नहीं हो सकती। थोड़े समय तक हठपूर्वक इन्द्रियों को रोक कर कोई साधन करके विशेष शक्ति प्राप्त कर लेना और बात है तथा मन और अन्तःकरण को क्रमशः बिलकुल निर्मल और शुद्ध बनाकर ईश्वरीय आदेश के अनुकूल मार्ग को ही पूरी तरह ग्रहण करना दूसरी बात है। पहली श्रेणी के व्यक्ति थोड़े समय के लिये कोई चमत्कार-सा दिखलाकर दुनियाँ को प्रभावित कर सकते हैं, नामवरी, यश और प्रशंसा भी प्राप्त कर सकते हैं, पर उनकी ये चीजें ज्यादा समय तक टिक नहीं सकतीं। इतना ही नहीं ऐसे व्यक्तियों में से कितने ही बाद में स्वार्थ और विषयों की लालसा में फँसकर पतित भी हो जाते हैं। उनकी वही गति होती है जैसा कि गीता में कहा है—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

जीवन के उत्थान और अध्यात्म क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त करने का मार्ग शुद्ध और सत्य भावों से धर्मानुष्ठान करना है। जो व्यक्ति मन के भीतर

कामनाएं रखकर साधन भजन करते हैं उनको सिद्धियाँ और चमत्कार की शक्ति प्राप्त कर लेने पर भी अन्त में गिरना ही पड़ता है।

अहिंसा का प्रतिपादन—

धार्मिक-जीवन में हिंसा और अहिंसा का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। यों तो हिंसा प्राणी जगत का एक सामान्य नियम है और 'जीवो जीवस्य भोजनम्' की लोकोक्ति प्रचलित हो गई है। पर यह नियम उन विवेकशून्य प्राणियों के लिये है जिनको ईश्वर ने ज्ञान रूपी महान तत्व प्रदान नहीं किया है। पर जिस मनुष्य प्राणी के लिये भगवान ने ज्ञान-विज्ञान अध्यात्म के सब रास्ते खोल दिये हैं उसके लिये सर्वोच्च आदर्श 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का ही हो सकता है। जब समस्त संसार में एक ही आत्म-तत्व व्याप्त है और प्राणीमात्र एक ही विश्व-व्यापी चैतन्य तत्व से उद्भूत हुआ है तब कोई ज्ञानी व्यक्ति किस प्रकार जीव हिंसा का समर्थन कर सकता है। इस देश के कुछ धर्माचार्यों ने 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' लोकोक्ति का सहारा लेकर यज्ञादि में हिंसा का प्रतिपादन किया है पर उनकी इस नीतिविमुख प्रणाली के फलस्वरूप यज्ञ-कर्म का विरोध होने लगा और अन्त में ऐसा समय आया जब इस देश से यज्ञ-प्रथा का लोप ही हो गया। 'वायुपुराण' में इस समस्या की गम्भीरतापूर्वक विवेचना की है और स्पष्ट शब्दों में यह निर्णय किया है कि यज्ञादि में जीव हिंसा कदापि धर्मकार्य नहीं हो सकती। त्रेता युग में यज्ञ का प्रचलन होने का वर्णन करते हुये पशुबलि के सम्बन्ध में उसमें यह कथानक मिलता है—

जब त्रेता में सृष्टि के उपरान्त सभी प्रकार की ओषधियाँ पृथ्वी पर पैदा हो गईं लोग घर द्वार आश्रम और नगर बनाकर रहने लगे तो विश्व भावना देवराज इन्द्र ने वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था कर ऐहिक एवं पारलौकिक कल्याण के लिये वेद संहिताओं और मन्त्रों का प्रचार कर यज्ञ की प्रथा प्रचलित की। उस समय अश्वमेध यज्ञ का कार्य जब आरम्भ हुआ तो सभी महर्षिगण आकर उसमें सम्मिलित हो गये और मेध्य पशुओं के द्वारा यज्ञ का आरम्भ सुन कर सभी लोग वहाँ उपस्थित हुये। जब सभी पुरोहितगण चप निरन्तर चलने वाले यज्ञ-कर्म में व्यस्त हो गये यज्ञ में भाग लेने वाले देवता और महर्षिगण आवाहित होने लगे ठीक उसी समय यज्ञ-मण्डप में समागत महर्षिगण

अध्वर्युगण को पशुओं के स्नानादि में समुद्यत देखकर उन पशुओं की दीनता पर करुणार्द्र होकर इन्द्र से बोले कि 'यह तुम्हारे यज्ञ की कैसी विधि है ? हिंसामय धर्म मार्ग करने के इच्छुक तुम यह महान अधर्म कार्य कर रहे हो। हे सुरोत्तम ! तुम्हारे जैसे देवराज के यज्ञ में यह पशुवध कल्याणकारी नहीं है। इन दीन पशुओं की हिंसा से तुम अपने संचित धर्म का विनाश कर रहे हो। यह पशु हिंसा कदापि धर्म नहीं है, हिंसा कभी भी धर्म नहीं कहा जा सकता। यदि तुम्हें यज्ञ करने की अभिलाषा है तो वेद विहित यज्ञ का अनुष्ठान करो। हे सुरश्रेष्ठ ! वेदानुमत विधि से किया गया यज्ञ अक्षय फलदायी होगा। उन यज्ञ बीजों से तुम यज्ञ आरम्भ करो जिनमें हिंसा का नाम नहीं है। हे इन्द्र ! प्राचीनकाल में तीन वर्ष पुराने रखे हुये बीजों द्वारा ब्रह्मा ने यज्ञ का अनुष्ठान किया था। वह महान धर्ममय यज्ञाराधन है।

इस प्रकार उन तत्वदर्शी समागत मुनियों के कहने पर विश्वभोक्ता इन्द्र को यह संशय उत्पन्न हो गया कि अब हमें स्थावर तथा जंगम इन दो प्रकार के उपकरणों में से किसके द्वारा यज्ञाराधन करना चाहिये। इन्द्र के साथ विवाद में पड़े उन मुनियों ने यह समझौता किया कि इस विषय में राजा वसु की सम्मति ग्रहण की जाय।

उन सबने राजा वसु के पास जाकर कहा—हे परम बुद्धिमान राजन् ! आप परम धार्मिक राजा उत्तानपाद के पुत्र और स्वयं महामहिमशाली हैं, अतः हम लोगों के इस संशय को दूर करें। कृपया यह बतायें कि आपने यज्ञों की विधि किस प्रकार की देखी है ? इस बात को सुनकर राजा ने उचित-अनुचित का विचार न करके केवल ग्रन्थों के यज्ञ विषयक वचनों को स्मरण करके यह कहा कि शास्त्रीय उपदेशों के अनुसार यज्ञाराधन करना चाहिये। शास्त्रों का कथन है कि मेध्य पशुओं द्वारा अथवा बीजों और फलों द्वारा यज्ञ करना चाहिये। यज्ञ का स्वभाव ही हिंसा है, ऐसा मुझे वेद वाक्यों से मालूम हुआ है। परम तपस्वी योगी, महर्षियों के द्वारा आविष्कृत मंत्र-समूह हिंसा के द्योतक हैं और तारकादि दर्शनों द्वारा भी यज्ञों का हिंसामूलक होना अनुमित है। राजा वसु की ऐसी बातों से निरुत्तर होकर उन योगयुक्त तपस्वी ऋषियों ने कहा—'हे राजन् ! तू राजा होकर भी ऐसी मिथ्या बात कह रहा है, अतः चुप रह।'

ऐसा कहने के बाद उन्होंने नीचे की ओर बने एक भवन की ओर देखा और कहा अब तू रसातल में प्रवेश कर। मुनियों के ऐसा कहते ही राजा वसु, जो आकाशचारी था भूमि तल पर आ गया। अतः पण्डित व्यक्ति को भी धर्म का निर्णय करने में बहुत सतर्क रहना चाहिये। क्योंकि धर्म के अनेक द्वार होते हैं, इसकी सूक्ष्म गति का वास्तविक ज्ञान अतिशय गूढ़ है। महर्षियों ने जीव हिंसा को धर्म का द्वार नहीं माना है।

यद्यपि अधोगति में पड़े जीवों के लिये हिंसा का सर्वथा त्याग और अहिंसा के उच्च आदर्शों का पालन बड़ा कठिन है तो भी धर्म कार्यों में हिंसा का प्रवेश कदापि शास्त्रीय नहीं कहा जा सकता। किसी एक व्यक्ति के हिंसा करने से उसका प्रभाव आस-पास के थोड़े लोगों पर ही पड़ता है और उसे कोई महत्व नहीं दिया जाता, पर धर्म कार्य में हिंसा होने से उसे एक प्रमाण की तरह मान लिया जाता है और समस्त समाज के लिये ही एक दुष्प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होने का मार्ग खुल जाता है। अतः यज्ञों के रूप में जीव हिंसा का विधान निःसन्देह क्रूरता और अधार्मिकता का परिचायक है और इससे मनुष्य की निम्न वृत्तियों को प्रोत्साहन मिलकर उसका पतन ही होता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण——

प्राचीन समय में ज्ञान विज्ञान के सम्बन्ध में जितनी खोज की गई थी वह पर्याप्त महत्वपूर्ण है। उसी के आधार पर आज का विज्ञान चमत्कारी आविष्कार कर रहा है। अग्नि और जल द्वारा भाप का इंजिन बनाकर रेल चलाना निस्सन्देह बुद्धिमत्ता का प्रमाण है पर जिन मनुष्यों ने दावानल के भयंकर अग्निकाण्ड में से थोड़ी अग्नि लेकर उसे गृहोपयोगी रूप में प्रयोग किया वह भी कम प्रशंसा के पात्र नहीं है। इसी प्रकार वर्तमान युग में अणु-बम एक युग परिवर्तनकारी आविष्कार है, पर जिन भारतीय मनीषियों ने कई हजार वर्ष पहले यह घोषित कर दिया था कि संसार के प्रत्येक पदार्थ का आदि कारण परमाणु है और यही सृष्टि-प्रक्रिया का मूल आधार है वे ही परमाणु विज्ञान के आदि पुरुष माने जायेंगे। मत्स्य-पुराणकार की दृष्टि भी सृष्टि प्रक्रिया और उससे निर्मित विभिन्न प्रकार के पदार्थों के मूल कारण पर रही है। यद्यपि उन्होंने पौराणिक परम्परा के अनुसार सूर्य चन्द्रमा ग्रह नक्षत्रों को

देवता मानकर उनके रथो, घोड़ो, महलो और दरबारियों का मनोरंजक वर्णन किया है, जिससे जन समूह उनकी ओर आकर्षित हो, पर साथ ही बीच-बीच मे विशुद्ध वैज्ञानिक तथ्यो का परिचय भी दे दिया है । यद्यपि सूर्य को उन्होंने सर्वसाधारण के ज्ञानानुसार पृथ्वी से बहुत छोटा और चन्द्रमा से आधा प्रकट किया है और लोकरंजन के निमित्त उसमे मुनि, ऋषि गन्धर्व, अप्सरा यातुधान, सर्प आदि का दरबार लगता भी बतलाया है, पर साथ ही अन्य स्थान पर यह भी प्रकट कर दिया है संसार का एकमात्र और आदि कारण सूर्य ही है । उसमें कहा गया है—

"तीनो लोको का मूलकारण सूर्य ही है इसमे सन्देह नहीं । देवता, असुर और मनुष्यो से पूर्ण यह सम्पूर्ण जगत सूर्य का ही है । रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र और चन्द्रादि देवो का जो तेज है, वह सूर्य का ही तेज है । ये ही सर्वात्मा, सर्वलोकेश और मूलभूत परम देवता है । सूर्य से ही सब उत्पन्न होते हैं और सूर्य मे ही सब लीन होते हैं । पूर्वकाल मे लोको की उत्पत्ति और विनाश सूर्य से ही हुआ है । जहाँ से बारम्बार क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, संवत्सर, ऋतु, वर्ष, युग आदि उत्पन्न होकर जिसमे लय को प्राप्त होते है, वह सूर्य ही है । सूर्य को छोड़कर और किसी साधन से काल की गणना नहीं की जा सकती । और बिना काल तथा समय के न आह्न, न दीक्षा, न दैनिक कृत्य हो सकते हैं । तब न ऋतुओं का विभाग होगा, न पुष्प खिलेंगे न फल-फूल की उत्पत्ति होगी, न सस्य होगा न औषधियाँ बढ़ेंगी । संसार को उत्तप्त करने वाले और जल का आहरण करने वाले सूर्य के बिना यहाँ क्या, स्वर्ग मे भी देवो का व्यवहारिक कार्य रुक जायगा । विप्रो ! सूर्य ही काल है, अग्नि है और द्वादशात्म प्रजापति है । ये ही तीनो लोकों के चराचर को उत्तप्त किया करते हैं । सूर्य देव परम तेजस्वी और लोक वालो के आत्मा है ये उत्तम वायु-मार्ग का अवलम्बन करके किरणो द्वारा ऊपर-नीचे, अगल-बगल और सभी जगहो मे ताप-दान करते हैं ।"

वायु पुराण ने सूर्य के विषय मे जो लिखा है वही आधुनिक विज्ञान की खोज से प्रकट हुआ है । सूर्य से ही समस्त ग्रहों और उपग्रहो की उत्पत्ति होती है, वही इनमे जीवन और प्राणतत्व की उत्पत्ति का मुख्य हेतु है, वही

उनकी चर्चा आई है सम्मान सूचक शब्द का प्रयोग किया है। विष्णु के विभिन्न अवतारों के रहस्य को जानने की इच्छा रखने वाले ऋषियों ने उनकी महिमा का जिस प्रकार वर्णन किया उससे प्रकट होता है कि इस पुराण के रचयिता के विचारानुसार विष्णु का सम्मान महादेव के समान ही है। ऋषियों ने सूतजी से विष्णु भगवान की कथा सुनने की अभिलाषा करते हुये कहा—

सूतजी! भगवान विष्णु किस लिये पृथ्वी पर प्रादुर्भूत होते हैं? उनके कितने अवतार कहे जाते हैं? भविष्य में अन्य कितने अवतार होंगे? युगान्त के अवसर पर ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जाति में वे किस लिये उत्पन्न होते हैं? वे इस प्रकार बारम्बार मानव-योनि में किस लिये जन्म धारण करते हैं? इसे हम लोग जानना चाहते हैं, कृपया कहिये। उन परम बुद्धिमान शत्रु संहार कारी भगवान कृष्ण के शरीर से जो जो कर्म सम्पन्न होते हैं उन सबको हम भली भाँति सुनना चाहते हैं। उनके ऐसे कार्यों को क्रमपूर्वक हमें बतलाइये उसी प्रकार उनके अवतारों के विषय में भी वर्णन कीजिये। उन सर्वव्यापी भगवान की प्रवृत्ति के विषय में भी हमें जिज्ञासा है। महा महिमामय वे भगवान विष्णु किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए वसुदेव के कुल में उत्पन्न होकर वासुदेव (वसुदेव के पुत्र) की पदवी प्राप्त करते हैं? देवताओं और मनुष्यों को उचित मार्ग पर लगाने वाले भूर्भुव आदि लोकों के उत्पत्तिकर्ता भगवान हरि किसलिए दिव्यगुण सम्पन्न अपनी आत्मा को मानव-योनि में समाविष्ट करते हैं? चक्र धारण करने वालों में श्रेष्ठ जो भगवान अकेले ही संसार के मानव मात्र के मनरूपी चक्र को सदा परिचालित करते रहते हैं उन्हें मानव-योनि में उत्पन्न होने की इच्छा क्यों हुई? सदा व्याप्त रहने वाले जो भगवान विष्णु इस समस्त चराचर जगत की सर्वत्र रक्षा करने वाले हैं वे किसलिये इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं और किसलिए गौओं का पालन करते हैं।

जो भूतात्मा भगवान संसार के समस्त भूतों (पृथ्वी जल अग्नि आदि) को धारण करने वाले तथा उत्पन्न करने वाले हैं, जो लक्ष्मी द्वारा धारण किये जाने वाले हैं, वे एक मर्त्यलोक निवासिनी सामान्य गृहिणी के गर्भ में क्यों वास किये जाते हैं। जिन्होंने देवताओं को यज्ञभोक्ता तथा पितरों को श्राद्ध भोक्ता बनाया जो स्वयं यज्ञादि शुभ कार्यों में विधि के अनुसार भोग के लिए

महिषासुर के उपाख्यान में उसके पूरे शरीर का वर्णन किया गया है कि महादेव जी के मुख से जो तेज निकला उससे उसका मुख बना, यम के तेज से केश और विष्णु के तेज से उसकी दोनों बाहु बनीं। चन्द्रमा के तेज से दोनों स्तन इन्द्र के तेज से मध्यदेश, वरुण के तेज से जंघा और उरु पृथ्वी के तेज से नितम्ब ब्रह्मा के तेज से दोनों चरण, सूर्य के तेज से पैरों की अंगुली और वसुगणों के तेज से हाथों की अंगुली बनी। कुबेर से नासिका, प्रजापति से दांत, पावक के तेज से तीनों नेत्र, वायु के तेज से दोनों कान बने। इस प्रकार वह सर्वमयी देवी उत्पन्न हुई। सब देवताओं ने उसे अपने-अपने मुख्य अस्त्र-शस्त्र भी दिये जिनके द्वारा संग्राम करके उसने महिषासुर को मार दिया।

वायु पुराण में भी मधु कैटभ के वध का वर्णन आया है। यह वर्णन बड़े सरल ढङ्ग से किया गया है। उसमें कहा गया है—

भगवान शंकर के चले जाने पर प्रसन्न होकर विष्णु भगवान फिर शयन करने जल में घुस गये। तब पद्म रूपी ब्रह्माजी भी प्रसन्न होकर उस पद्मासन पर जा बैठे। उसके बहुत दिन बाद वहाँ मधु कैटभ नामक दो अतुल वीर बलशाली भ्राताओं ने तरुण सूर्य की तरह चमकने वाले उस पद्म को हिलाना प्रारम्भ कर दिया। उन दोनों की आँखें क्रोधकारण से चमक रही थीं और वे दोनों ही वीर हँस-हँस निमग्नभाव से पद्म पत्रों को तोड़ रहे थे। उन दोनों ने ब्रह्मा से कहा, तुम हमारे भक्ष्य बनो। यह कहकर वे दोनों अन्तर्धान हो गये। पद्मयोनि ब्रह्मा ने उनके कठोर भाव को और अपने पराक्रम को जानकर तात्कालिक रहस्य को समझना चाहा। वे उस कमल नाल के सहारे नीचे रसातल में उतर गये। वहाँ उन्होंने कृष्णाजिन और उत्तरीय धारी विष्णु को देखा। उन्होंने उनको जगाया और जगने पर कहा—देव! हमें शत्रुओं से भय हो रहा है, इसलिये हमें बचाइये, हमारा कल्याण कीजिये।

शत्रु को दमन करने वाले स्वयं भगवान विष्णु हँसते हुये बोले— कुछ चिन्ता नहीं करने की कोई बात नहीं। ब्रह्मा जी के कहे जाने पर उन सनातन भगवान ने अपने मुख से जिष्णु और विष्णु नामक दो भ्राताओं को उत्पन्न करके कहा—तुम दोनों ब्रह्मा की रक्षा करो। इधर मधु-कैटभ ने जिष्णु विष्णु के आगमन की वार्ता जान कर उनकी ही तरह अपना रूप बना लिया। उन्होंने

जल को अपनी माया से स्तम्भित कर दिया और विष्णु-जिष्णु से संग्राम करने लगे। उनको युद्ध करते हुये सौ दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये पर रणमद से मत्त उनमें से कोई भी युद्ध से विरत नहीं हुआ। उनका आकार-प्रकार और संस्थानादि एक प्रकार का था और गति, स्थिति भी उनकी समान ही थी तथा दोनों का स्वरूप भी एक प्रकार का ही था, इससे ब्रह्मा व्याकुल हो ध्यान करने लगे। तब उन्होंने दिव्य-दृष्टि से उनके रहस्य को समझा और विष्णु-जिष्णु के ऊपर के शरीर को कमल केसर के सूक्ष्म कवच द्वारा बाँध दिया और मन्त्रों का पाठ करने लगे। मन्त्र जपते हुए ब्रह्म को एक इन्दुवदनी, पद्म-सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। ब्रह्मा ने पूछा—तुम कौन हो? कन्या ने कहा आप मुझे विष्णु की आज्ञानुवर्तिनी मोहिनी माया समझें। इधर युद्ध करते-करते मधु कैटभ थक गये और विष्णु-जिष्णु ने उनको मार डाला।"

दक्ष-यज्ञ का विचित्र कथानक—

वायु-पुराणमें दक्ष-यज्ञके विध्वंस का जो वर्णन किया है वह अन्य समस्त पुराणों से भिन्न है। अभी तक सब जगह यही पढ़ने में आया था कि शिव-पत्नी सती ने दक्ष-यज्ञ में शंकर का भाग न देखकर योगाग्नि में जल कर आत्म-बलिदान कर दिया, तब शिवजी ने वीरभद्र को भेजकर यज्ञ का विध्वंस करा दिया। इसके बहुत काल पश्चात् देवताओं की अपार चेष्टा करने पर उन्होंने पार्वती से विवाह किया था। पर 'वायुपुराण' का कथन है कि किसी समय सती दक्ष के घर परिवार वालों से मिलने गई थीं पर दक्ष ने उनका सम्मान नहीं किया जिससे उसने स्वतः आत्मघात कर लिया। तब शिव ने दक्ष को शाप दिया कि तुम अगले जन्म में एक वृक्ष-कन्या के गर्भ से उत्पन्न होंगे और तब भी तुम्हारा नाम 'दक्ष' ही रखा जायगा। ऐसा ही हुआ है और उस जन्म में भी दक्ष ने एक यज्ञ किया और महादेव को उसमें नहीं बुलाया। उस अवसर पर देवताओं को आकाश मार्ग से जाते देखकर पार्वतीजी ने उसका कारण पूछा। जब उनको शिव के अपमान की बात मालूम हुई तो वे बहुत रुष्ट हुई और शिवजी को प्रेरित करके वीरभद्र द्वारा यज्ञ को नष्ट करवा दिया। उसी समय उमा के क्रोध से भद्रकाली की उत्पत्ति हुई जिसने इस कार्य में पूर्ण सहयोग दिया।

इस प्रकार 'वायुपुराण' में वर्णित दक्ष-यज्ञ के ध्वंस किये जाने का वर्णन 'शिव पुराण' 'रामायण' आदि के वर्णन से बहुत भिन्नता रखता है।

सम्भवतः पुराण-प्रेमी इसका उत्तर 'कल्प भेद' बतलायें पर जब और सब कथायें इसी प्रकार की हों और अन्य ग्रन्थों से मिलती हों तो किसी एक को ही पूर्वकल्प की कहना कोई सारयुक्त तर्क नहीं है।

ज्योतिर्मय लिङ्ग की कथा—

पुराणों में अनेक स्थलों पर सृष्टि आरम्भ होने से पूर्व ब्रह्मा और विष्णु के पारस्परिक विवाद के अवसर पर ज्योतिर्लिङ्ग के उद्भव की कथा दी गई है और एकाध पुराण में इस प्रसंग में ब्रह्माजी को बहुत नीचा दिखाया गया है और विष्णु को भी शिव की अपेक्षा बहुत हीन प्रकट किया गया है। पर वायुपुराण में इस कथा को भी बहुत स्वाभाविक रूप में लिखा गया है और शिवजी द्वारा यही कहलाया गया है कि—"देवताओ मैं संतुष्ट हूँ। मैं तुम दोनों पर प्रसन्न हूँ। पूर्वकाल में तुम दोनों सनातन पुरुष मेरे शरीर से ही उत्पन्न हुये हो। यह लोक पितामह ब्रह्मा मेरे दाहिने हाथ हैं और यह नित्य युद्ध में स्थित रहने वाले विष्णु मेरे बाँये हाथ हैं।" इस कथानक में और अन्य पुराणों में ब्रह्मा को झूँठा बताने और उनका एक मस्तक काट दिए जाने के भक्तिपूर्ण वर्णनों में जमीन आसमान का भेद है।

अध्यात्म ज्ञान की प्रधानता—

ग्रन्थ के अन्त में पुराणकार ने व्यासजी के हृदय में निराकार और साकार ब्रह्म का प्रश्न उठने की बात कह कर इस विषय पर विचार किया है कि परब्रह्म का स्वरूप वेदों के कथनानुसार अक्षर, अव्यक्त, अतीन्द्रिय और निराकार है, अथवा जैसा वर्णित प्रधान कथाओं के प्रणेता बतलाते हैं वह नाना प्रकार के आभरण धारण करके वेणु वादन करते हुए गोपियों संग रासलीला, हास विलास, रतिक्रीड़ा आदि के प्रेमी लोगों की रक्षार्थ इधर-उधर दौड़ते हुये राधा विलासी के रूप में है। भक्तजनों ने जब परम पुरुष श्रीकृष्ण को गोलोक धाम के वासी बताया है और कहा है कि वे अक्षर अव्यय ब्रह्म से भी परे हैं।

सत्यवती नन्दन व्यास जी जब बहुत सोच विचार करने पर भी इस समस्या का निराकरण नहीं कर सके तो उन्होंने एकान्त में बैठकर आहार, चित्त एवं आसन पर अधिकार प्राप्त करके एकाग्र मनसे चारों वेदों का आवाहन किया। दीर्घ काल तक इस प्रकार स्मरण और ध्यान करने के पश्चात् मूर्तिमान वेद उनके समक्ष उपस्थित हुये तो व्यास जी ने उनसे जिज्ञासा की कि--"अपने शब्द ब्रह्मरूप शरीरों से आप लोगों ने अधिकारियों में भेद बनाकर कर्म और ज्ञान का उपदेश दिया है। उसके अनुसार कामनाओं से घिरे हुये चित्त वाले मनुष्यों के जो कुछ सत्कर्म होते हैं, उनका फल स्वर्ग कहा गया है। और ईश्वर में ही अपनी चित्त वृत्ति लगाने वाले पुरुषों के कर्मों का फल चित्त शुद्धि मानी गई है। चित्त शुद्धि से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान से ही मोक्ष मिलता है। वही मोक्ष ही ब्रह्म के साथ एकता है, वह सत् चित् एवं आनन्द स्वरूप है। यह सब जान लेने पर भी मेरे हृदय में एक जिज्ञासा उत्पन्न हो रही है कि उस परब्रह्म से भी बढ़ कर कोई अन्य सत्ता है अथवा नहीं ?"

वेदों के कथन से व्यास जी को जो कुछ ज्ञात हुआ उसका निष्कर्ष यही निकला कि 'वह परब्रह्म अक्षर, परम और कारणों का कारण स्वरूप है, अर्थात् उससे परे कोई नहीं है। पुष्प के रस एवं गन्ध की भांति वह आत्मस्वरूप का भी आत्मस्वरूप है, उसी को सबसे परम समझो। वह अक्षर ब्रह्म शब्दों द्वारा गम्य नहीं है।"

अधिकांश पुराणों में जिस प्रकार अवतारों के वर्णन को प्रधानता देकर भगवान के साकार स्वरूप की उपासना पर अधिक जोर दिया है, यह बात 'वायु पुराण' में देखने में नहीं आती। इसमें ज्ञान और योग पर आधारित अध्यात्म-मार्ग की श्रेष्ठता स्वीकार की गई है और अन्त में व्यास के सन्देह की कथा के रूप में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से प्रकट भी कर दिया है।

'वायु-पुराण' की इस प्रकार की अनेक विशेषताओं पर ध्यान देने पर इसे 'महा-पुराणों' की सूची में स्थान देना सब प्रकार से समीचीन मालूम देता है। वास्तव में पौराणिक-साहित्य एक विशेष क्षेत्र और वर्ग से सम्बन्धित है

और मध्यकाल में उसका बहुत अधिक विस्तार किया गया है। उसमें केवल १८ महापुराणों का ही समावेश नहीं है, परन्तु १८ उप-पुराण १८ अति-पुराण और १८ लघु-पुराणों का समावेश भी उनमें कर दिया गया है। इन सब ग्रन्थों की विषय-सूची और वर्णन शैली पर जब दृष्टिपात करते हैं तो 'वायु पुराण' का दर्जा बहुत ऊँचा जान पड़ता है। उसमें सृष्टि रचना, जीव-जगत का विस्तार, मानवीय सभ्यता का विकास, समाज व्यवस्था, शासन व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था का क्रम, उद्भव आदि विषयों का वर्णन किसी भी पुराणों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक तथा युक्तिसंगत रूप से वर्णन किया है। हमारा विश्वास है कि पाठकगण इस पुराण का अध्ययन करके अनेक प्राचीन युग सम्बन्धी तथ्यों को अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे। धर्म के स्वरूप और उपासना का भी इसमें जिस रूप में वर्णन किया गया है उससे विवादास्पद प्रश्न उपस्थित करने के बजाय मन में उन शुभ तत्वों पर प्रकाश पड़ता है जो मानव जीवन की सार्थकता के लिये मार्गदर्शक सिद्ध होंगे।

—श्रीराम शर्मा, आचार्य

विषय-सूची

१.	मुनियों द्वारा पुराण जिज्ञासा	...	४१
२.	द्वादश वर्षीय सत्र निरूपण	...	४९
३	प्रजापति सृष्टि-कथन	...	५६
४	हिरण्यगर्भ के रूप में विभिन्न तत्वों की उत्पत्ति तथा आदि सृष्टि वर्णन	...	६०
५	सृष्टि-व्यवस्था और दैवी शक्तियाँ	...	७४
६.	सृष्टि रचना के विभिन्न सर्ग, वाराह रूप से पृथ्वी की स्थापना	...	८२
७.	वर्तमान कल्प में मानुषी-सृष्टि, दो कल्पों के बीच की प्रति सन्धि का वर्णन, प्रलय-वर्णन	...	९४
८.	मानव सभ्यता का आरम्भ, विभिन्न युगों में मनुष्य का विकास क्रम	...	१०६
९	देव-सृष्टि, देव, पितर, असुर, दानव, आदि की उत्पत्ति	...	१२७
१०.	मन्वन्तर वर्णन—स्वायम्भुव मनु तथा दक्षप्रजापति की सन्तति	...	१५५
११.	पाशुपत योग—प्राणायाम आदि योग के अङ्गों का वर्णन	...	१६८

१२	योगमार्ग में विघ्न—सिद्धियों के कारण पतन की सम्भावना	—	१७८
१३	योगमार्ग के ऐश्वर्य	—	१८४
१४	पाशुपतयोग का स्वरूप		१८७
१५.	पाशुपत-योग महिमा	—	१९४
१६	ओंकार द्वारा मनुष्य की सद्गति		१९७
१७	परमात्मप्राप्ति	—	२ १
१८	प्रायश्चित्त विधि	—	२०२
१९.	अरिष्ट वर्णन—मृत्यु का समय जानने के लक्षण		२ ५
२०	ओङ्कार प्राप्ति के लक्षण	—	२१२
२१	कल्प निरूपण		२१८
२२	कल्प-संख्या निरूपण		२२६
२३	महेश्वरावतारयोग	—	२३४
२४	ध्यानयोग		२४३
२५	मधुकैटभ उत्पत्ति क्रमशः उनका वध और सृष्टि रचना	—	२४९
२६	एकोत्पत्ति ओङ्कार और वेदों का आविर्भाव	—	२५४
२७	महर्षियों का कीर्तन—भृगु मरीचि अग्नि आदि की संतति		२६१
२८	अग्नि-वंश वर्णन	—	२६७
२९.	वेन वध मन्थन	—	२ ५
१	पृथु धर्म निरूपण		३१६
३१	स्वायम्भुव मनु कीर्तन—सात द्वीप के अधिपतियों का वर्णन		३२६

३२ भुवन-विन्यास—भारत के विभिन्न प्रदेशों का वर्णन ... ३३९

३३. ज्योतिष प्रचार (१) चौदह लोक, सप्तद्वीप,
सूर्य, चन्द्र ग्रह, नक्षत्रों का स्वरूप वर्णन ... ३४८

३४. ज्योतिष प्रचार (२) सूर्य, चन्द्र, तारा, नक्षत्र,
ग्रह, आदि की गति, वर्षा करने वाले
मेघों का वर्णन ... ३८१

३५ ध्रुव-चर्या—सूर्य के रथ के देव, गन्धर्व आदि,
समस्त ग्रहों के रथ व घोड़ों का वर्णन, ध्रुव
द्वारा सबका धारण किया जाना ... ३९३

३५ (क) ज्योतिष मण्डल का विस्तार—विविध अग्नि,
मंगल आदि ग्रहों की सूर्य से उत्पत्ति, ज्योतिष
शास्त्र का आधार ... ४०८

३६ नीलकण्ठ स्तुति, समुद्र मन्थन में विष के
निकलने पर ब्रह्मा द्वारा भगवान शिव की
स्तुति और उनका गरल-पान ... ४२७

३७ लिंगोद्भव स्तुति, ब्रह्मा और विष्णु के सम्मुख
ज्योतिर्लिंग का प्रकट होना और दोनों के द्वारा
उसकी स्तुति ... ४३८

३८ पितर-वर्णन—पुरुरवा द्वारा पितरों का तर्पण,
विभिन्न प्रकार के पितरों और उनकी श्राद्ध
विधि का वर्णन ... ४४८

३९, यज्ञ-प्रथा का वर्णन—चारों युगों के धर्म कथन में
यज्ञ का महत्व, हिंसात्मक यज्ञ का निषेध राजा
वसु का पतन ... ४६२

४० चारों युगों का आख्यान—चारों युगों का परिमाण युगभेद युगक्रम युगसन्धि युगान्त और युग-परिवर्तन के समय राज्य तथा समाज की दशा — ४८१

४१ ऋषि-प्रकरण—ऋषियों के प्रकार तपस्या का रूप गुणानुरूप व्यवहार महर्षि ऋषि ऋषीक के भेद प्राचीनकाल के मुख्य ऋषिवंशों की गणना ५००

४२ महाप्रस्थान वेद वर्णन—वेदों की शाखाओं का विभाजन और उनके प्रवर्तक ऋषियों का परिचय तथा द्वापर के अन्त में पाखण्ड का विनाश ५१७

वायु-महापुराण

।। मुनियों द्वारा पुराण-जिज्ञासा ।।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ।
जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति ।

प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ।
महादेवं महात्मानं सर्वस्य जगतः पतिम् ।।१
ब्रह्माणं लोककर्त्तारं सर्वज्ञमपराजितम् ।
प्रभुं भूतभविष्यस्य साम्प्रतस्य च सत्पतिम् ।।२

ज्ञानमप्रतिमं यस्य वैराग्यं च जगत्पतेः ।
ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सहसिद्धिचतुष्टयम् ।।३
य इमान् पश्यते भावान्नित्यं सदसदात्मकान् ।
आविशन्ति पुनस्तं वै क्रियाभावार्थमीश्वरम् ।।४

लोककृल्लोकतत्त्वज्ञो योगमास्थाय तत्त्ववित् ।
असृजत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ।।५
तमहं विश्वकर्माणं सत्पतिं लोकसाक्षिणम् ।
पुराणाख्यानजिज्ञासुर्व्रजामि शरणं प्रभुम् ।।६

श्री मन्नारायण को नमस्कार करके और नरों में उत्तम नर को नमस्कार करे। इसी प्रकार देवी सरस्वती को नमस्कार करके इसके पश्चात् 'जय' शब्द का उच्चारण करना चाहिए। सत्यवती के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले पराशर ऋषि के पुत्र व्यास मुनि की जय हो, जिनके मुख रूपी कमल से निःसृत

अमृत का यह समस्त जगत् पान करता है। निरञ्जन अविनाशी शाश्वत महान् आ मा वाले समस्त जगत् के पति देव ईशान महेश्वर की शरण गति में जाता हूँ ॥१॥ इस लोक की रचना करने वाले सब विषयों के ज्ञाता पराजित न होने वाले भूत काल और भविष्य काल के पति तथा वर्तमान समय के उत्पत्ति ब्रह्माजी की शरण में जाता हूँ ॥२॥ जिस जगत् के पति का अनुपम ज्ञान और वैराग्य है तथा चारो सिद्धियों के साथ धर्म और ऐश्वर्य भी अद्भुत है ॥ ३ ॥ जो इस सत् और असत् स्वरूप वाले भावों को नित्य देखते हैं वे क्रिया भाव के सर्व रूप ईश्वर में फिर प्रवेश कर जाते हैं ॥ ४ ॥ लोकों का सृजन करने वाले और लोकों के तत्त्व को जानने वाले तत्त्ववेत्ता ने योग से स्थिर होकर स्थावर और चर समस्त प्राणियों की सृष्टि की है ॥ ५ ॥ पुराण के आख्यानों को जानने की इच्छा रखने वाला मैं उस प्रजापति विश्वकर्मा अर्थात् सम्पूर्ण विश्व की रचना वाले जगत् के पति लोकों के साक्षी प्रभु की शरण में जाता हूँ ॥६॥

ब्रह्माणमायुर्महेन्द्र च्यौ नमस्कृत्य समाहितः ।
अपोपाश्व वसिष्ठाय अधिष्ठाय महात्मने ॥७
तद्‌पत्ने पराशरये जातूकर्णाय धर्मवे ।
वसिष्ठाय च शुचये कृष्णद्वैपायनाय च ॥८
पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वेदसम्मितम् ।
धर्मार्थन्यायसंयुक्तं रागमैः सुप्रतिष्ठितम् ॥९
असीमकृष्णे विक्रान्ते राज्ञ्येऽनुपमत्विषि ।
प्रशासतीमां धर्मेण भूमिं भूमिपसत्तमे ॥१०
ऋषयः संशितात्मानः सत्यव्रतपरायणाः ।
ऋजवो नष्टरजसः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ॥११
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रन्तु ईजिरे ।
नद्यास्तीरे दृषद्वत्याः पुण्यायाः शुचिरोधसः ।
दीक्षितास्ते यथाशास्त्रं नैमिषारण्यगोचराः ॥१२
द्रष्टुं तान् स महाबुद्धिः सूतः पौराणिकोत्तमः ।
लोमानि हर्षयांश्चक्रे श्रोतॄणां यद् सुभाषितैः ।

कर्मणा प्रथितस्तेन लोकेऽस्मिल्लोमहर्षण ॥१३
तपः श्रुताचारनिधेर्वेदव्यासस्य धीमत ।
शिष्यो बभूव मेधावी त्रिषु लोकेषु विश्रुत ॥१४

समाहित अर्थात् सावधान होकर ब्रह्मा, वायु और महेन्द्र के लिये नमस्कार करके, ऋषियों में सर्वश्रेष्ठ महात्मा वशिष्ठ के लिये, अत्यन्त यशस्वी उनके नाती जातूकर्ण ऋषि के लिये परम पवित्र वशिष्ठ के लिये तथा कृष्णद्वैपायन के लिये नमस्कार करके धर्म, अर्थ और न्याय से सञ्जुत अर्थात् संयुक्त आगमों से सुशोभित वेदों की सम्मति से युक्त ब्रह्मोक्त पुराण को भली-भाँति कहता हूँ ॥७—८—९॥ अनुपम कान्ति वाले, परम विक्रमशाली, समस्त नृप मण्डल में अति श्रेष्ठ अधीमकृष्ण नामक राजा के द्वारा इस भू मण्डल पर शासन करने के समय में सत्य के व्रत में तत्पर, परम सरल रजोगुण से हीन, शान्त प्रकृति वाले दमन-शील और इन्द्रियों को जीतने वाले ऋषि लोग वशित आत्मा वाले होकर धर्म के धाम कुरुक्षेत्र में प्रविष्ट वह वाली परम पवित्र दृषद्वती नदी के तट पर दीर्घ-सत्र का यजन करने लगे। सभी ऋषि लोग शास्त्र की विधि के अनुसार दीक्षा प्राप्त करने वाले और नैमिषारण्य के भ्रमण करने वाले थे ॥१०—११—१२॥ महान् तीव्र बुद्धि वाले, पुराणों के ज्ञाता तथा वक्ताओं में परमश्रेष्ठ सूतजी ने उन ऋषियों को देखने के लिये वहाँ आकर अपनी सुन्दर उक्तियों के द्वारा लोगों को हर्षित कर दिया अर्थात् सबको पुलकित बना दिया। इसी सत्कर्म से अर्थात् पुलकायमान बना देने के काम से संसार में वे 'लोम-हर्षण' इस नाम से प्रसिद्ध हो गये थे ॥१३॥ वे तपस्या, शास्त्रों का श्रवण और आचार की निधि अत्यन्त बुद्धिमान् व्यास मुनि के श्रेष्ठ बुद्धि वाले सूतजी शिष्य थे और लोकों में बहुत ही प्रसिद्ध थे ॥ १४ ॥

पुराणं वेदो ह्यखिलो यस्मिन् सम्यक् प्रतिष्ठितः ।
भारती चैव विपुला महाभारतवर्द्धिनी ॥१५
धर्मार्थकाममोक्षार्थाः कथा यस्मिन् प्रतिष्ठिताः ।
सूक्ताः सुपरिमापाश्च भूमावोषधयो यथा ॥१६
स तान् न्यायेन सुधियो न्यायविन्मुनिपुङ्गवान् ।

अभिगम्योपसंगृह्य नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ।
तोषयामास मेधावी प्रणिपातेन तानथ ॥१७
ते चापि सत्रिणः प्रीताः ससदस्या महौजसः ।
तस्मै साम च पूजां च यथावत् प्रतिपेदिरे ॥१८

अथ तेषां पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत ।
दृष्ट्वा तमतिविश्वस्तं विद्वांसं लोमहर्षणम् ॥१९
तस्मिन् सत्रे गृहपतिः सर्वशास्त्रविशारदः ।
इङ्गितैर्भावमालक्ष्य तेषां सूतमचोदयत् ॥२०

त्वया सूत महाबुद्धिर्भगवान् ब्रह्मवित्तमः ।
इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः ।
दुदोह त्वं मतिं तस्य त्वं पुराणाश्रयां कथाम् ॥२१

समस्त पुराण और सम्पूर्ण वेद जिसमें भली भाँति प्रतिष्ठित थे और महाभारत के बढ़ाने वाली प्रचुर सरस्वती विराजमान थी ॥ १५ ॥ धर्म अर्थ काम और मोक्ष के प्रयोजन वाली अनेक कथाएँ जिसमें प्रतिष्ठित थीं। सूक्ष्म और लम्बी परिभाषाएँ भूमि में ओषधियों के तुल्य जिसमें विद्यमान थीं ॥ १६ ॥ ऐसे न्याय के ज्ञाता उन सबमें से न्याय से अच्छी बुद्धि वाले उन श्रेष्ठ मुनियों के समीप आकर और निकट में पहुँच कर हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया और उन समस्त ऋषियों को अपने प्रणिपात तथा विनम्र व्यवहार से सन्तुष्ट किया ॥१७॥ सत्र का यजन करने वाले महान् ओज वाले सदस्यों के सहित वे सब भी उस समय बहुत ही प्रसन्न हुए और वे भी उन सूतजी का अभिवादन यथाविधि करने में तत्पर हुए ॥१८॥ इसके अनन्तर उन समस्त ऋषियों के हृदय में पुराण के श्रवण करने की इच्छा उत्पन्न हुई क्योंकि उन्होंने अत्यन्त विश्वास के पात्र और महान् विद्वान् लोमहर्षण मुनि का दर्शन प्राप्त कर लिया था ॥१९॥ उस सत्र में समस्त शास्त्रों के पण्डित गृहपति ने उन सब ऋषियों के हार्दिक भाव को इंगितों के द्वारा लक्ष्य करके श्री सूतजी को प्रेरित किया ॥ २० ॥ गृहपति ने कहा—हे सूतजी ! आपने ब्रह्म के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ महान् बुद्धि शाली भगवान् व्यासजी की इतिहास और पुराणों के ज्ञान प्राप्त करने के लिये

भली-भाँति उपासना की है और आपने पुराणों में आश्रित कथा वालों उनकी बुद्धि का अच्छी तरह दोहन किया है अर्थात् आपने अच्छा पौराणिक ज्ञान उनसे प्राप्त किया है ॥ २१ ॥

एषाञ्च ऋषिमुख्यानां पुराणं प्रति धीमताम् ।
शुश्रूषाऽस्ति महाबुद्धे तच्छ्रावयितुमर्हसि ॥२२
सर्वे हीमे महात्मानो नाना गोत्राः समागताः ।
स्वान् स्वान् वंशान् पुराणैस्तु शृण्वन्तु ब्रह्मवादिनः ॥२३
सपुत्रान् दीर्घसत्रेऽस्मिन्नुपवर्येषा मुनीनथ ।
दीक्षिष्यमाणैरस्माभिः त्वमेव प्रागसि सत्कृत ॥२४
इति सत्रोदितः सूतस्तैरेव मुनिभिः पुरा ।
पुराणार्थं पुराणज्ञः सत्यव्रतपरायणैः ॥२५
स्वधर्म एष सूतस्य सद्भिर्दृष्टः पुरातनैः ।
देवतानामृषीणाञ्च राज्ञाञ्चामिततेजसाम् ॥२६
वंशानां धारणं कार्यं श्रुतानाञ्च महात्मनाम् ।
इतिहासपुराणेषु दिष्टा ये ब्रह्मवादिभिः ॥२७
न हि वेदेष्वधीकारः कश्चित् सूतस्य दृश्यते ।
वैन्यस्य हि पृथोर्यज्ञे वर्तमाने महात्मनः ।
सुत्यायामभवत् सूतः प्रथमं वर्णवैकृतः ॥२८

हे महाबुद्धे ! इन बुद्धिमान् मुख्य ऋषियों की पुराण के प्रति श्रवण करने की अत्यन्त हार्दिक इच्छा है सो आप इन्हें वह सुनाने को योग्य होते हैं ॥ २२ ॥ ये सब महान् आत्मा वाले हैं और अनेक गोत्र वाले यहाँ एकत्रित हुए हैं। ये सब ब्रह्मवादी लोग पुराणों के द्वारा अपने-अपने वंशों का श्रवण करें ॥ २३ ॥ इस दीर्घ सत्र में पुत्रों के सहित इन मुनियों को श्रवण कराइये। हमके द्वारा दीक्षिष्यमाण हम सबके द्वारा आप पहिले ही सत्कृत हुए हो ॥२४॥ इस प्रकार से सत्यव्रत में परायण पुराणों के ज्ञाता उन्हीं मुनियों के द्वारा पहिले पुराण के लिये सूतजी से यह कहा गया ॥ २५ ॥ प्राचीन सत्पुरुषों ने यह सूत का अपना धर्म देखा है कि देवताओं का ऋषियों का और अपरिमित तेज

वाले राजाओं का तथा महात्माओं के सूत वंशों का धारण करना चाहिए जो कि ब्रह्म वादियों ने इतिहास और पुराणों में [ह] किये हैं ॥ २६-२७ ॥ किन्तु सूत का वेदों में कहीं भी कोई अधिकार नहीं दिखाई देता है क्योंकि महात्मा राजा वैन के पुत्र पृथु के वर्तमान यज्ञ में सुत्या में प्रथम विकृत वर्ण वाले सूत की उत्पत्ति हुई थी ॥ २८ ॥

ऐन्द्रेण हविषा तत्र हविः पृक्तं बृहस्पतेः ।
जुहावेन्द्राय देवाय ततः सूतो व्यजायत ।
प्रमादात्तत्र सञ्जज्ञे प्रायश्चित्तं च कर्मसु ॥२९
शिष्यहव्येन यत् पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः ।
अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृतम् ॥३०
यच्च क्षत्रात् समभवद्‌ब्राह्मण्यवरयोनितः ।
ततः पूर्वेण साधर्म्यात्तुल्यधर्मा प्रकीर्तितः ॥३१
मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षत्रोपजीवनम् ।
रथनागाश्वचरितं जघन्यं च चिकित्सितम् ॥३२
तत स्वधर्ममहं पृष्टो भवद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ।
कस्मात् सम्यङ् न विब्रूयां पुराणमृषिपूजितम् ॥३३
पितॄणां मानसी कन्या वासवी समपद्यत ।
अपध्याता च पितृभिर्मत्स्ययोनौ बभूव सा ॥३४
अरणीव हुताशस्य निमित्तं यस्य जन्मनः ।
तस्यां जातो महायोगी व्यासो वेदविदां वरः ॥३५

वहाँ पर इन्द्र सम्बन्धी हवि से पृक्त बृहस्पति की हवि को इन्द्र देव के लिये के लिये हुत किया था । इससे सूत की उत्पत्ति हुई । वहीं प्रमाद से कर्मों में प्रायश्चित्त किया ॥ २९ ॥ जो शिष्य के हव्य से गुरु का हवि पृक्त होकर अभिभूत हो गया और इन अधरोत्तर चार से ही यह वर्ण वैकृत उत्पन्न हुए ॥ ३० ॥ और जो क्षत्रिय से ब्राह्मण की अवर योनि से हुआ वह पहिले के साथ साधर्म्य होने के कारण तुल्य धर्म वाला कहा गया है ॥ ३१ ॥ रथ नाग और अश्व का चरित चिकित्सा का उपजीवन यह सूत का मध्यम धर्म का धर्म होता

है तथा चिकित्सा करना जघन्य श्रेणी का धर्म है ॥ ३२ ॥ सो ब्रह्म-वादी आप लोगों ने मुझसे मेरे धर्म के अनुकूल ही पूछा है। मैं ऋषियों के द्वारा समन्वित पुराण को भली-भाँति क्यों नहीं कहूँगा अर्थात् अवश्य ही कहूँगा ॥३३॥ पितरों की वासवी नामक मानसी कन्या हुई थी वह पितरों के द्वारा अपध्यात होकर मत्स्य योनि में हुई थी ॥ ३४ ॥ जिस तरह अग्नि की उत्पत्ति का निमित्त अरणी होती है उसी भाँति वेदों के शाखाओं में सर्वश्रेष्ठ महान् योगी व्यास मुनि उससे उत्पन्न हुए ॥ ३५ ॥

तस्मै भगवते कृत्वा नमो व्यासाय वेधसे ।
पुरुषाय पुराणाय भृगुवाक्यप्रवर्तिने ।
मानुषच्छद्मरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥३६
जातमात्रश्च यं वेद उपतस्थे ससङ्ग्रहः ।
धर्ममेव पुरस्कृत्य जातूकर्ण्यादवाप तम् ॥३७
मतिं मन्थानमाविध्य येनासौ श्रुतिसागरात् ।
प्रकाशं जनितो लोके महाभारतचन्द्रमाः ॥३८
वेदद्रुमश्च यं प्राप्य सशाखः समपद्यत ।
भूमिकालगुणान् प्राप्य बहुशाखो यथा द्रुमः ॥३९
तस्मादहमुपश्रुत्य पुराणं ब्रह्मवादिनः ।
सर्वज्ञात्सर्ववेदेषु पूजितादीप्ततेजसः ॥४०
पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं मातरिश्वना ।
पृष्टेन मुनिभिः पूर्वं नैमिषीयैर्महात्मभिः ॥४१

उन पुराण पुरुष, भृगु के वाक्य प्रवर्त्ती, विद्वान्, छद्म से मनुष्य का रूप धारण करने वाले, होनहार विष्णु भगवान् व्यासजी के लिये नमस्कार करके जिनके उत्पन्न होते ही संग्रह सहित सम्पूर्ण वेद उपस्थित हो गये थे, किन्तु धर्म को ही मर्यादा का पालन कर जातूकर्ण्य से उनको प्राप्त किया था ॥ ३६-३७ ॥ जिसने श्रुति रूपी सागर से बुद्धि रूपी मन्थन करने वाले से मथ कर संसार में महाभारत रूपी चन्द्रमा को प्रकट कर दिखलाया है ॥ ३८ ॥ जिस तरह भूमि के तथा काल के गुणों को प्राप्त कर वृक्ष बहुत सी शाखाओं से युक्त

हो जाता है उसी प्रकार वेद रूपी वृक्ष भी वेद व्यास मुनि को प्राप्त कर अनेक शाखाओं से युक्त हो गया ॥ ३९ ॥ उन ही दीप्त तेज वाले समस्त वेदों के पण्डित, सर्वज्ञ और ब्रह्म के वक्ता से मैंने इस श्रवण करके पहिले महात्मा और नैमिषारण्य में निवास करने वाले मुनियों के द्वारा पूछे गये वायु देव ने जो पुराण कहा था उस वायु-पुराण को मैं अब आप लोगों के समक्ष में कहता हूँ ॥ ४०-४१ ॥

कथ्यते यत्र विप्रर्षा वायुना ब्रह्मवादिना ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं पापप्रणाशनम् ।
कीर्त्तनं श्रवणं चास्य धारणञ्च विशेषतः ॥४२
अनेन हि क्रमेणेदं पुराणं सम्प्रचक्ष्यते ।
सुखमर्थं समासेन महानप्युपलभ्यते ।
तस्मात् किञ्चित्समुद्दिश्य पश्चाद्वक्ष्यामि विस्तरम् ॥४३
पादमाद्यमिदं सम्यक् योऽधीयीत जितेन्द्रियः ।
तेनाधीतं पुराणं तत् सर्वं नास्त्यत्र संशयः ॥४४
यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः ।
न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ॥४५
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥४६
अध्यायमिममध्याय साक्षात्प्रोक्तं स्वयम्भुवा ।
आपदं प्राप्य मुच्येत यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥४७
यस्मात् पुरा ह्यनक्तीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम् ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४८
नारायणः सर्वमिदं विश्वं व्याप्य प्रवर्त्तते ।
तस्यापि जगतः स्रष्टुः स्रष्टा देवो महेश्वरः ॥४९
यतश्च संक्षेपमिमं शृणुध्वं महेश्वरः सर्वमिदं पुराणम् ।
स सर्गकाले च करोति सर्गान् संहारकाले पुनराददीत ॥५०

सूतजी ने कहा—जिस वायु पुराण में ब्रह्मवादी वायु देव के द्वारा विप्रो

यत्र सा गोमती पुण्या सिद्धचारणसेविता ।
रोहिणी सुषुवे तत्र तत्र सोमोऽभवत् सुत ॥८
शक्तिर्ज्येष्ठ समभवद्वसिष्ठस्य महात्मन ।
अरुन्धत्या सुता यत्र शतमुत्तमतेजस ॥९
कल्माषपादो नृपतिर्यत्र शप्तश्च शक्तिना ।
यत्र वैरं समभवद्विश्वामित्रवसिष्ठयो ॥१०
अदृश्यन्त्या समभवन्मुनिर्यत्र पराशर ।
पराभवो वसिष्ठस्य स इयत् जातोऽन्यथा तेन ॥११
यत्र ते ईजिरे यज्ञ नैमिषे ब्रह्मवादिन ।
नैमिषे ईजिरे यत्र नैमिषेयास्तत स्मृता ॥१२
तत्पश्चयमवर्तया समा द्वादश धीमताम् ।
पुरूरवसि विक्रान्ते प्रशासति वसुन्धराम् ॥१३
अष्टादश समुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवा ।
तुतोष नैव रत्नानां लोभादिति हि न श्रुतम् ॥१४

शृणुध्वं यत्र ते धीरा ईजिरे सत्रमुत्तमम् ।
यावन्तं चाभवत् कालं यथा च समवर्तत ॥४

विसृजमाना विश्वं हि यत्र विश्वसृजः पुरा ।
सत्रं हि ईजिरे पुण्यं सहस्रं परिवत्सरान् ॥५

तपो गृहपतिर्यत्र ब्रह्मा ब्रह्माऽभवत् स्वयम् ।
इलाया यत्र पत्नीत्वं शामित्रं यत्र बुद्धिमान् ।
मृत्युश्चक्रे महातेजास्तस्मिन् सत्रे महात्मनाम् ॥६

विबुधा ईजिरे यत्र सहस्रं परिवत्सरान् ।
भ्रमतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत ।
कर्मणा तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम् ॥७

श्री शुकदेवजी ने कहा—तपश्चर्या के ही धन वाले उन ऋषियों ने सूतजी से फिर कहा कि यह सत्र कहाँ पर हुआ था कि अद्भुत कर्म करने वाले उन ऋषियों ने किया था ? ॥ १ ॥ इन सत्र को कितने समय तक और किस प्रकार से किया था और प्रभञ्जन (वायु) ने उनको किस तरह यह पुराण कहा यह सब आप कृपा करके विस्तारपूर्वक वर्णन करें क्योंकि हम सबको इस बात का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हृदय में अत्यधिक कौतूहल हो रहा है। इस तरह से ऋषियों के द्वारा पूछे गये सूतजी यह शुभ वचन बोले ॥ २-३ ॥ सूतजी ने कहा—हे ऋषियो ! आप लोग श्रवण करें मैं बतलाता हूँ जहाँ पर उन परम धीर ऋषियों ने इस उत्तम सत्र का यजन किया था जिस प्रकार से और जितने समय तक किया था ॥ ४ ॥ पहिले जहाँ पर इस विश्व के सृजन करने वालों ने विश्व का सृजन करते हुए एक सहस्र वर्ष पर्यन्त इस परम पवित्र सत्र का यजन किया था ॥ ५ ॥ जिस स्थान पर तपो गृहपति ब्रह्मा स्वयं ब्रह्मा हुआ जिस स्थान पर इला का पत्नीत्व हुआ और महान् तेज वाले मृत्यु ने जहाँ पर शामित्र (पशु बाँधने का स्थान) किया था उन महात्माओं के सत्र में देवों ने एक सहस्र वर्ष पर्यन्त वहाँ यजन किया था। वहाँ पर धर्म चक्र के भ्रमण करते हुए नेमि विशीर्ण हो गई थी इस कर्म के कारण बहु मुनियों के द्वारा परम पूजित यह स्थान नैमिष—इस नाम से विख्यात हुआ है ॥ ६-७ ॥

यत्र सा गोमती पुण्या सिद्धचारण सेविता ।
रोहिणी सुषुवे तत्र तत्र सौम्योऽभवन् सुत ॥८
शक्तिर्ज्येष्ठ समभवद्वसिष्ठस्य महात्मन ।
अरुन्धत्या सुता यत्र शतमुत्तमतेजस ॥९
कल्माषपादो नृपतिर्यत्र शप्तश्च शक्तिना ।
यत्र वैर समभवद्विश्वामित्रवसिष्ठयो ॥१०
अदृश्यन्त्या समभवन्मुनिर्यत्र पराशर ।
पराभवो वसिष्ठस्य य स्मिन् जातेऽभवत्तत ॥११
तत्र ते ईजिरे सत्र नैमिषे ब्रह्मवादिन ।
नैमिषे ईजिरे यत्र नैमिषेयास्तत स्मृता ॥१२
तत्सत्रमभवत्तेषा समा द्वादश धीमताम् ।
पुरूरवसि विक्रान्ते प्रशासति वसुन्धराम् ॥१३
अष्टादश समुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवा ।
तुतोष नैव रत्नाना लोभादिति हि न श्रुतम् ॥१४

जिस स्थान पर बड़े बड़े सिद्धो तथा चारणों के द्वारा सेवित परम पवित्र गोमती है वहाँ पर रोहिणी ने पुत्र का प्रसव किया जोकि परम सौम्य हुआ ॥८॥ जहाँ पर महात्मा वसिष्ठ के अरुन्धती में अत्युत्तम तेज वाले सौ पुत्र उत्पन्न हुए उनमें शक्ति नाम वाला सबसे बड़ा पुत्र था ॥ ९ ॥ उस वसिष्ठ के पुत्र शक्ति के द्वारा कल्माषपाद नामक राजा को शाप दिया गया था और जिस स्थान में विश्वामित्र और वसिष्ठ का पारस्परिक वैर हो गया था ॥ १० ॥ जहाँ पर दृश्यमान न होती हुई में पराशर मुनि हुए जिनके उत्पन्न होने पर भी वसिष्ठजी का पराभव हुआ था ॥ ११ ॥ जहाँ पर नैमिष नामक स्थान मे ब्रह्मवादी उन ऋषियो ने सत्र का यजन किया था क्योंकि वह सत्र उन्होंने नैमिष नाम वाले स्थान मे किया था अतएव इसी से वे सब नैमिषेय इस नाम से कहे गये हैं ॥१२॥ उन धीमान् ऋषियो का वह सत्र बारह वर्ष पर्यन्त हुआ जबकि विक्रमशील पुरूरवा राजा इस भूमण्डल का शासन करता था ॥ १३ ॥ पुरूरवा राजा को समुद्र के अठारह द्वीपो को अपने अधिकार मे रखते हुए भी रत्नों के लोभ की अधिकता होने के कारण सन्तोष नही हुआ था, ऐसा हमने सुना है ॥ १४ ॥

उर्वशी गर्भमें घ च नेत्रहां प्रणोनिना ।
आजहार च तत्सर्व दर्वा स्याम् यज्ञ्न ॥१५
तस्मिन्नरम्ने सत्र नमिषया प्रचक्रिरे ।
ध गर्भं सुषुवे गङ्गा पावकान्नीमनेजसम् ।
तद्दुल्ब पर्वते न्यस्त हिरण्य प्रत्यपद्यत ॥१६
हिरण्मय ततश्चक्र यज्ञवाट महात्मनाम् ।
विश्वकर्मा स्वय देवो भावयन् लोकभावनम् ॥१७
बृहस्पतिस्ततस्तेषाममितलेजसाम ।
ऐल पुरूरवा भेजे त देश मृगया चरन् ॥१८
त दृष्ट्वा महदाश्चर्य यज्ञवाट हिरण्मयम् ।
लोभेन हृतविज्ञानस्तदादातु प्रचक्रमे ॥१९
नमिषमास्ततस्तस्य चुक्रुधुर्न पतेभृशम् ।
निजघ्नुश्चापि सक्रुद्धा कुशवज्र मनीषिण ।
ततो निशान्ते राजान मुनयो देवनोदिता ॥२
कुशवज्र विनिष्पिष्ट स राजा व्यजहात्तनुम् ।
और्वशेय ततस्तस्य पुत्रञ्चक्रुर्नृप भुवि ॥२१

देवहूति के द्वारा प्रेरित की हुई उर्वशी उसके समीप मे गई और उस स्वर्ग की वेश्या के साथ में सङ्गति करने वाले अपने उस सब का आहरण कर लिया था ॥१५॥ उस राजा के होने के समय मे नैमिषेय महर्षियों ने इस सत्र को किया था जिस उद्दीप्त तेज वाले की अग्नि से गङ्गा ने गर्भ मे प्रसूत किया था वह गर्भ पर्वत पर रख दिया गया जोकि सुवर्ण हो गया था ॥१६॥ लोकों की भावना को हृदय मे विभावित करते हुए देव विश्वकर्मा ने स्वय महात्माओं के उस यज्ञवाट को सबसे हिरण्मय कर दिया था ॥१७॥ इसके अनन्तर अपरिमित तेज के धारण करने वाले उनमे बृहस्पति हुए । एक बार शिकार करते हुए पुरूरवा ऐल वहाँ पर उस देश में पहुँच गया था ॥१८॥ उसने उस यज्ञ वाट को हिरण्मय देखकर बहुत अधिक आश्चर्य किया और लोभ के कारण ज्ञान हीन होकर उसे ग्रहण करने की इच्छा की ॥१९॥ इसके अनन्तर नैमिषेय

ऋषियों ने उस राजा पर अत्यन्त क्रोध किया। और दैव से प्रेरित उन मनीषी ऋषियों ने विशेष क्रोधित होकर प्रातः काल में कुशा रूपी वज्रों से उस राजा का हनन भी किया था ॥२०॥ डाभ के वज्रों से विशेष रूप से पिसे हुए उस राजा ने अपने शरीर का त्याग कर दिया। इसके पश्चात् भूमि पर उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न उसके पुत्र को राजा बना दिया गया ॥२१॥

नहुषस्य महात्मानं पितरं य प्रचक्षते।
स तेषु वर्त्तते सम्यग् धर्मशीलो महीपतिः।
आयुरारोग्यमत्युग्रं तस्मिन् य नरसत्तम ॥२२
सान्त्वयित्वा च राजानं ततो ब्रह्मविदां वराः।
सत्रमारेभिरे कर्त्तुं यथावद्धर्मभूतये ॥२३
बभूव सत्रं तत्तेषां बह्वाश्चर्यं महात्मनाम्।
विश्वं सिसृक्षमाणानां पुरा विश्वसृजामिव ॥२४
वैखानसैः प्रियसखैर्वालखिल्यमरीचिकैः।
अन्यैश्च मुनिभिर्जुष्टं सूर्यवैश्वानरप्रभैः ॥२५
पितृदेवाप्सरःसिद्धैर्गन्धर्वोरगचारणैः।
सम्भारैस्तु शुभैर्जुष्टं देवेन्द्रसदो यथा ॥२६
स्तोत्रशस्त्रग्रहैर्देवान् पितॄन् पित्र्यैश्च कर्मभिः।
आनर्चुश्च यथाजाति गन्धर्वादीन् यथाविधि ॥२७
आराधयित्वा त्वब्रह्मन्स्तत्र कर्मान्तरेष्वथ।
जगुः सामानि गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥२८

जिस महान् आत्मा वाले को नहुष का पिता कहते हैं, वह धर्मशील राजा उन सबके साथ बहुत ही अच्छा बरताव करता था। वह एक परमश्रेष्ठ नृप था, इसलिये उसमें अत्युग्र आरोग्य और आयु सभी कुछ था ॥२२॥ ब्रह्म-वादियों में परमश्रेष्ठ ऋषियों ने फिर उस राजा को सान्त्वना करके यथारीति धर्म की विभूति की वृद्धि के लिये अपने सत्र के करने का आरम्भ कर दिया ॥२३॥ पहिले समय में इस विश्व की सृष्टि करने की इच्छा वाले विश्व सृष्टाओं की भाँति उन महान् आत्मा वाले ऋषियों का वह सत्र अत्यन्त आश्चर्य से पूर्ण

हुआ था ॥२४॥ उदार सदा वैखानसों के द्वारा, बाल खिल्यों के, मरीचियों के और सूर्य तथा अग्नि के समान प्रभा वाले अन्य अनेक मुनियों के द्वारा उस यज्ञ का सेवन किया गया था ॥२५॥ पितर, देव, अप्सरागण, सिद्ध, गन्धर्व, उरग और चारणों के द्वारा अनेकानेक शुभ सम्भारों से युक्त होकर इन्द्रदेव के निवास स्थान (स्वर्ग) की भाँति उस सत्र का सेवन किया गया था ॥२६॥ स्तोत्र शस्त्र ग्रहों से देवताओं का तथा पित्र्य कर्मों के द्वारा पितृगण का और अन्य समस्त गन्धर्व आदि का उनकी जाति एवं स्वभाव के अनुसार विधि विधान के साथ वहाँ अर्चन किया था ॥२७॥ इसके अनन्तर अन्य कर्मों में आराधना की इच्छा करते हुए गन्धर्वों ने साम का गायन किया और अप्सराओं ने वहाँ नृत्य किया ॥२८॥

व्याजह्रुर्मुनयो वाचं चित्राक्षरपदां शुभाम् ।
मन्त्रादिनत्त्वविद्वांसो जगदुश्च परस्परम् ॥२९
वितण्डावचनाश्चैके निजघ्नुः प्रतिवादिनः ।
ऋषयस्तत्र विद्वांसः शब्दार्थन्यायकोविदाः ॥३०
न तत्र कुर्वते किञ्चिद्विघ्नं ब्रह्मराक्षसाः ।
न च यज्ञहनो दैत्या न च यज्ञमुषोऽसुराः ॥३१
प्रायश्चित्तं दुरिष्टं वा न तत्र समजायत ।
शक्तिप्रज्ञाक्रियायोगैर्विधिरासीत् स्वनुष्ठितः ॥३२
एवं वितेनिरे सत्रं द्वादशाब्दं मनीषिणः ।
भृग्वाद्या ऋषयो धीरा ज्योतिष्टोमान् पृथक् पृथक् ।
चक्रिरे पृष्ठगमनान् सर्वानयुतदक्षिणान् ॥३३
समाप्तयज्ञास्ते सर्वे वायुमेव महाधिपम् ।
पप्रच्छुरमितात्मानं भवद्भिर्यदहं द्विजाः ।
प्रणोदितश्च वंशार्थं स च तानब्रवीत् प्रभुः ॥३४
शिष्यः स्वयम्भुवो देवः सर्वप्रत्यक्षदृग्वशी ।
अणिमादिभिरष्टाभिरैश्वर्यैः समन्वितः ॥३५

शब्द आदि के तत्त्व के ज्ञाता परम विद्वान् मुनिगण अति विविध पदों

मति वाली शुभ कल्याणकारिणी वाणी का उच्चारण करने लगे और परस्पर मे बोलने लगे ॥२६॥ वहाँ पर साख्य दर्शन के अर्थ तथा न्याय-दर्शन-शास्त्र के अर्थ के जानने वाले परम विद्वान् कुछ ऋषि लोग वितण्डायुक्त वचन बोलते हुए अपने प्रतिवादियो पर वाक्प्रहार करने लगे ॥३०॥ वहाँ उस दीर्घ सत्र में महाराक्षसो ने कोई दुरित (पाप) कर्म नही किया था। दैत्य लोगो ने भी यज्ञ का हनन करने का कोई कर्म नही किया और वहाँ यज्ञीय वस्तुओ का हरण करने वाले असुर भी नही थे ॥३१॥ वहाँ उस समय कोई भी अनभीष्ट एव प्रायश्चित्त के योग्य कर्म नही हुआ था। शक्ति, बुद्धि और क्रिया के सद्योगो के द्वारा बहुत ही अच्छी तरह से की गई विधि का अनुष्ठान हो रहा था ॥३२॥ परम धीर भृगु आदि मनीषी ऋषियो ने इस प्रकार से वहाँ पृथक्-पृथक् ज्योति-ष्टोम किये और बारह वर्ष पर्यन्त उस सत्र को करते रहे और सभी पृष्ठ शमनी को अयुत दक्षिणा वाले किया था ॥३३॥ यज्ञ समाप्त करने वाले उन सब ने अमित आत्मा वाले महान् स्वामी वायु से ही पूछा और वायुदेव ने कहा—हे ब्राह्मणो ! यदि आप लोगो ने मुझे ही यश कथन करने के लिये प्रेरित किया है तो सुनो—ऐसा प्रभु वायुदेव ने उनसे कहा ॥३४॥ वे स्वयम्भू के शिष्य, सब को प्रत्यक्ष रूप से देखने वाले, अपने ही वश में रहने वाले देव हैं, जो आठ अणिमादि ऐश्वर्यों से युक्त है ॥३५॥

तिर्यग्योन्य' दिभिर्धर्मै सर्वलोकान्विभर्त्ति य ।
सप्तस्कन्धादिक शश्वत् प्लवते योजनादर ॥३६
विषये नियता यस्य सस्थिता सप्तका गणा ।
व्यूढाश्च याणा भूताना कुर्वन् यश्च महाबल ।
तेजसश्चाप्युपष्टानन्दधातीम शरीरिणम् ॥३७
प्राणाद्या वृत्तय पञ्च करणाना च वृत्तिभि ।
प्रेर्यमाणा शरीराणा कुरुते यास्तु धारणम् ॥३८
आकाशयोनिर्हि गुणः शब्दस्पर्शसमन्वित ।
तैजसप्रकृतिश्चोक्तोऽप्यय भावो मनीषिभि ॥३९
तत्राभि मानी भगवान् वायुश्चातिक्रियात्मक ।

यावादीणि समाख्यात अक्षराक्षर विचारे ॥६०
भारत्या श्लक्ष्णया सर्वान् मुनीन् प्रह्लादयन्निव ।
पुराणार्थ सुमनस पुराणाश्रययुक्तया ॥६१

जो शिवध्यानि आदि धर्मो से समस्त लोकों का भरण करते है और यह जो निरन्तर योजन में सात स्वर्ग आदि का स्रजन करते हैं ।६९।। जिसके विषय मे नियत धर्मकर्म अभिव्यक्त रहते है और जो महान् बल वाला तीन भूतो के समूहो को करता हुआ देह के उपादान को करता है और इस शरीर को धारण करता है ।।६७।। प्राणादिक परम वृत्तियाँ होती है और जो इन्द्रियो की वृत्तियो से प्रेरणा होती हुई शरीरो को धारण करती है ।।६ ।। आकाश योनि वाला गुण शब्द और स्पर्श से समन्वित होता है । मनीषियो के द्वारा यह प्राण तामस प्रकृति वाला भी कहा गया है ।।६८।। मान वाला भगवान् वायु देव अत्यधिक क्रिया के स्वरूप वाला होता है । यह अर्थ शास्त्र के पण्डित तथा पुराणो के ज्ञाता ने पुराणो के आश्रय से युक्त परम मधुर वाणी के द्वारा अच्छे मन वाले समस्त मुनियो को परमाह्लाद से युक्त करते हुए यतादि का कथन किया ।।४ ।।४१।।

।। प्रजापति सृष्टि कथन ।।

महेश्वरायोत्तमवीर्यकर्मणे सुरप्रभायामितबुद्धितेजसे ।
चन्द्रार्कवह्न्यनिलनेत्र से नमस्त्रिलोकस्रष्ट्रे विसृष्टये नमः ।।१
प्रजापतीन् लोकनमस्कृतान् तथा स्वयम्भुवप्रभृतीन् महेश्वरान् ।
भृगु मरीचि परमेष्ठिनं मनुं रजस्तमोधर्ममयापि कश्यपम् ।।२
वसिष्ठदक्षात्रिपुलस्त्यकर्दमान् रुचि विनस्वन्तमथापि च क्रतुम् ।
मुनि तथैवाङ्गिरसं प्रजापतिं प्रणम्य मूर्ध्ना पुलहं च भावतः ।।३
तथैव शुक्रोशनमेकविशादि प्रजा विशुद्धपापिनकायवाशनम् ।
पुरातनानप्यपराश्च शाश्वतांस्तथैव चान्यान् सगणानवस्थितान् ।।४
तथैव चान्यानपि धर्मचोदिनो मुनीन् बृहस्पत्युशन पुरोगमान् ।
तप शुभाचारव्रतीन् दयान्वितान् प्रणम्य वक्ष्ये कलिपापनाशिनीम् ।।५

प्रजापतेः सृष्टिमिमामनुत्तमां सुरेश देवर्षिगणैरलङ्कृताम् ।
शुभामतुल्यामनघामृषिप्रियां प्रजापतीनामपि चोज्ज्वलाग्नियाम् ॥६
तपोभृतां ब्रह्मदिनादिकालिकीं प्रभूतमाविष्कृतपौरुषश्रियम् ।
श्रुतौ स्मृतौ च प्रसृतामुदाहृतां परां पराणामनिलप्रकीर्त्तिताम् ॥७

सूतजी ने कहा—समस्त देवों में परम श्रेष्ठ, अपरिमित बुद्धि के तेज वाले, सहस्रों सूर्यों के अनल के तुल्य वर्चस वाले, उत्तम वीर्य के कर्म करने वाले महेश्वर भगवान के लिये नमस्कार है और तीनों लोकों के संहार की विसृष्टि करने वालों के लिये नमस्कार है ॥१॥ समस्त लोकों के वन्दनीय प्रजापतियों को तथा स्वयम्भू (ब्रह्मा) और रुद्र प्रभृति महान् ईश्वरों को एवं भृगु, मरीचि, परमेष्ठी और रुच तथा शम के धर्म वाले मनु को और कश्यप को भी नमस्कार है ॥२॥ वसिष्ठ, दक्ष, अत्रि, पुलस्त्य और कर्दम को और ऋषि, विवस्वान् तथा क्रतु एवं आंगिरस मुनि तथा प्रजापति को नत-मस्तक से प्रणाम करके पुलह को भाव सहित नमस्कार है ॥३॥ उसी भाँति प्रजा की विशेष वृद्धि के लिये कार्य-शासन को अर्पित कर देने वाले इक्कीस चतुर्दोश धन को नमस्कार है और दूसरे पुरातनों को, नित्य निवास करने वालों को तथा गणों के सहित अवस्थित अन्यों को नमस्कार है ॥४॥ इसी प्रकार से धैर्य की शोभा वाले बृहस्पति एवं उशना जिनके अग्रेसर हैं, ऐसे अन्य मुनियों को, दया से युक्त वाग्वर्चा एवं शुभ आचार वाले ऋषियों को प्रणाम करके कलियुग के पापों के नाश करने वाली प्रजापति की स्तुति को कहता हूँ ॥५॥ यह प्रजापति की सृष्टि सर्वोत्तम है और सुरेश तथा देवर्षियों के समूह से अलङ्कृत है। यह सृष्टि परम शुभ, अनुपम, निष्पाप और ऋषियों की अति प्रिय है एवं अत्यन्त तीव्र कान्ति वाले प्रजापतियों की भी प्यारी है ॥६॥ जो तपस्वी लोग हैं,उनकी भी प्रिय है। ब्रह्मा के दिन से भी अधिक काल वाली है। यह सृष्टि ऐसी है, जिसने अत्यधिक पुरुषार्थ की श्री का आविष्कार किया है तथा श्रुति एवं स्मृति में प्रसृत एवं उदाहृत है। यह परे से भी परे है और वायु के द्वारा प्रकीर्तित है ॥७॥

समासबन्धैर्निगदैर्यथातथं विशब्दनेनापि मम प्रहर्षिणीम् ।
यस्मात्त्वब्द्धा प्रथमा प्रवृत्तिः प्राधानिकी चेश्वरकारिता च ॥८

यत्तत् स्मृतं कारणमप्रमेयं ब्रह्म प्रधानं प्रकृतिप्रसूतिः।
आत्मा गुहा योनिरथापि चक्षुः क्षेत्रं तथैवामृतमक्षरं च ॥९
शुक्रं तपः सत्यमतिप्रकाशं तदव्ययं नित्यं पुरुषं द्वितीयम्।
तमप्रमेयं पुरुषेण युक्तं स्वयम्भुवा लोकपितामहेन ॥१०
उत्पादकत्वाद्रजसोऽतिरेकात् कालस्य योगाद्विगमाच्च योगः।
क्षेत्रज्ञयुक्तात् नियतान्विकारान् लोकस्य सन्तानविवृद्धिहेतून्।
प्रकृत्यवस्था सुषुवे तथाष्टौ सङ्कल्पमात्रेण महेश्वरस्य ॥११
देवासुरादिद्रुमसागराणां मनुप्रजेशर्षिपितृद्विजानाम्।
पिशाचयक्षोरगराक्षसानां ताराग्रहार्कशशिनिशाचराणाम् ॥१२
मासर्तुसंवत्सररात्र्यहानां दिक्कालयोगादियुगायनानाम्।
वनौषधीनामपि वीरुधां च वसोश्च तामप्सरसां पशूनाम् ॥१३
विद्युत्सरिन्मेघविहङ्गमानां यत्सूक्ष्ममग्र्यं ध्रुवमव्ययं च।
यत् स्थावरं यच्च यदस्ति किञ्चित् सर्वस्य तस्यास्ति महाविभक्तिः ॥१४

यथास्थान अर्थात् समुचित रूप से नियत समास बन्धों के द्वारा बिना ध्वनि के भी मन को परम सुख देने वाली है। जिसमें प्रधान की प्रथम प्रवृत्ति और ईश्वराधिता सब ही रही है ॥८॥ जो ब्रह्म का अप्रमेय कारण कहा गया है, वह ब्रह्म तथा प्रकृति की प्रसूति प्रधान है। गुहा को योनि वाला आत्मा चक्षु, क्षेत्र अमृत और अक्षर शुक्र तप और अति प्रकाश वाला सत्त्व एवं वह पृथक् नित्य द्वितीय पुरुष को पुरुष के द्वारा अप्रमेय लोकों के पितामह स्वयम्भू से युक्त उस पुरुष को उत्पादक होने से रजोगुण के अतिरेक से काल के योग से और निगम की अवधि से लोक की सन्तान की विशेष वृद्धि के हेतु स्वयम् क्षेत्रज्ञ से युक्त नियत विकारों को महेश्वर के संकल्प मात्र से आठ प्रकृति की अवस्था को उत्पन्न किया ॥९॥१०॥११॥ देव असुर आदि द्रुम सागरों को—मनु, प्रजा ईश ऋषि, पितृगण और द्विजों को—पिशाच, राक्षस उरग और यक्षों को—तारा ग्रह अर्क शशि और निशाचरों को—मास ऋतु संवत्सर रात्रि और दिवसों को—दिशा काल योगादि युग और अयनों को—वन की औषधियों को—वीरुधों को—वसु से पर अप्सराओं को—

अप्सराओं की—पशुओं की—विद्युत, सरित (नदी), मेघ और विहंगमों की स्थिति में जो सूक्ष्म गमन करने वाला है, जो भूमि में है और जो नभ में स्थित है तथा जो स्थावर है, जहाँ भी जो कुछ है उन सब की गति विमुक्ति ही है ॥१२।१३।१४॥

छन्दांसि वेदाः सऋचो यजूंसि सामानि सोमश्च तथैव यज्ञः ।
आजीव्यमेषां यदभीप्सितञ्च देवस्य तस्यैव च वै प्रजापतेः ॥१५
वैवस्वतस्यास्य मनोः पुरस्तात् सम्भूतिरुक्ता प्रसवश्च तेषाम् ।
येषामिदं पुण्यकृतां प्रसूत्या लोकत्रयं लोकनमस्कृतानाम् ।
सुरेशदेवर्षिमनुप्रधानामापूरितञ्चोपरिभूषितञ्च ॥१६
रुद्रस्य शापात् पुनरुद्भवश्च दक्षस्य चाप्यत्र मनुष्यलोके ।
वासः क्षितौ वा नियमाद्भवस्य दक्षस्य चात्र प्रतिशापलाभः ॥१७
मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि युगेषु सम्भूतिविकल्पनञ्च ।
ऋषित्वमार्षस्य च सप्रवृद्धिर्यथा युगादिष्वपि चेत्तदत्र ॥१८
ये द्वापरेषु प्रथयन्ति वेदान् व्यासाश्च तेऽत्रक्रमशो निबद्धाः ।
कल्पस्य संख्या भुवनस्य संख्या ब्राह्मस्य चाप्यत्र दिनस्य संख्या ॥१९
अण्डोद्भिजस्वेदजरायुजानां धर्मात्मनां स्वर्गनिवासिनां वा ।
ये यातनास्थानगताश्च जीवास्तत्कर्मणं तेषामपि च प्रमाणम् ॥२०
आत्यन्तिकः प्राकृतिकश्च योऽयं नैमित्तिकश्च प्रतिसर्गहेतुः ।
बन्धश्च मोक्षश्च विशिष्य तत्र प्रोक्ता च संसारगतिः परा च ॥२१
प्रकृत्यवस्थेषु च कारणेषु या च स्थितिर्या च पुनः प्रवृत्तिः ।
तच्छास्त्रयुक्त्या स्वमतिप्रयत्नात् समस्तमाविष्कृतधीवृतिस्य ।
विप्रा ऋषिभ्यः समुदाहृतं यद्यथातथ्यं तच्छृणुतोच्यमानम् ॥२२

छन्द, वेद, ऋचाओं के सहित यजु, साम और सोम तथा यज्ञ इन सबका आजीव्य और जो भी इनका अभीप्सित है, वह सब उसी प्रजापति देव का निश्चित रूप से होता है ॥१५॥ पहिले इस वैवस्वत मनु की सम्भूति कही गई है और उनका प्रसव अर्थात् जन्म भी कहा गया है। ये तीनों लोक लोकों के द्वारा वन्दनीय सुरेश, देवर्षि, मनु आदिकों की प्रसूति से अर्थात् परम पुण्य

वासियों के श्रम से समस्त तीनों लोक परिपूरित हैं और भूषित भी हैं ॥१६॥ इस मनुष्य लोक में रुद्र के शाप से दक्ष का पुनर्जन्म अथवा जन्मान्तर में निवास हुआ और नियम से यहाँ पर दक्ष का और भव का प्रतिवाद प्राप्त हुआ ॥१७॥ मन्वन्तरों का परिवर्तन युगों में उनकी सम्भूति (उत्पत्ति) और विकल्पन तथा युगों में ऋषित्व और आर्ष की सम्प्रवृत्ति हुई वही ही यहाँ पर भी हुई ॥१८॥ जिन व्यासदेव ने द्वापर में वेदों का विस्तार किया वे यहाँ पर भी समय सिद्ध हैं। कल्प की संख्या है भुवन की संख्या है और ब्रह्मा के दिन की भी संख्या होती है ॥१९॥ जीवों की जो अण्डज हैं उद्भिज हैं स्वेदज हैं और जरायुज हैं धर्मात्मा हैं या स्वर्ग के निवास करने वाले जीव हैं और जो यातना सहने के लिये यातना स्थान (नरक) में पड़े हुए हैं उन सबका भी वर्णन है ॥२०॥ आत्यन्तिक प्राकृतिक और नैमित्तिक जो यह प्रतिसर्ग का हेतु है तथा बन्ध और विशेष कर मोक्ष इनमें यहाँ पर सदा संसार की गति बताई गई है ॥२१॥ प्रकृति में अवस्थित कारणों में जो स्थिति होती है अथवा जो प्रवृत्ति होती है हे विप्रो! यह शास्त्र की युक्ति से अपनी बुद्धि के प्रयत्न से समस्त धर्म और बुद्धि को अभिव्यक्त करने वाले ऋषियों के लिये जो भली भाँति समझा कर कहा गया है अब आप लोग कहे जाने वाले उस सबको श्रवण करो ॥२२॥

॥ हिरण्यगर्भ के रूप में विभिन्न तत्वों की उत्पत्ति ॥

ऋषयस्तु तदा श्रुत्वा नैमिषारण्यवासिन ।
प्रत्यूचुस्ते ततः सर्वे सूतं पर्याकुलेक्षणा ॥१

भवान् वै वंशकुशलो व्यासात् प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
तस्मात्त्वं भवन कृत्स्नं लोकस्यामुष्य वर्णय । २

यस्य यस्यान्वया ये ये तांस्तानिच्छाम वेदितुम् ।
तेषां पूर्वविसृष्टिं च विचित्रां तां प्रजापते ॥३

असङ्गरोपि पृष्टस्तु महात्मा लोमहर्षण ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च कथयामास सत्तम ॥४

पृष्टा चैता कथा दिव्या श्लक्ष्णा पापप्रणाशिनीम् ।
कथ्यमाना मया चित्रा बह्वर्था श्रुतिसम्मताम् ॥५
यश्चेमां धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ।
श्रावयेच्चापि विप्रेभ्यो यतिभ्यश्च विशेषतः ॥६
शुचिः पर्वसु युक्तात्मा तीर्थेष्वायतनेषु च ।
दीर्घमायुरवाप्नोति स पुराणानुकीर्त्तनात् ।
स्ववंशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥७

नैमिषारण्य के निवास करने वाले ऋषियों ने यह सुनकर इसके अनन्तर पयक्लिन्न नेत्रों वाले उन सबने सूतजी से कहा ॥ १ ॥ महा महर्षि व्यास जी से प्रत्यक्ष दर्शन करने के कारण से आप निश्चय ही परम कुशल महापुरुष हैं, इसलिये आप इस लोक का सम्पूर्ण भवन का हमारे सामने वर्णन करें ॥ २ ॥ जिस जिसके जो जो अन्वय (वंश) हैं और उनकी प्रजापति की विचित्र पूर्वकालीन ऋषियों की सृष्टि को तथा अन्वयों को हम जानना चाहते हैं ॥ ३ ॥ ऋषियों के द्वारा इस प्रकार बार-बार पूछे जाने पर महात्मा लोमहर्षणजी, जो कि सत्पुरुषों में परमश्रेष्ठ हैं उसे विस्तार से तथा आनुपूर्वी से कहने लगे ॥ ४ ॥ लोमहर्षण जी ने कहा—मुझ से पूछी गयी यह कथा अत्यन्त दिव्य-मधुर और पापों के नाश करने वाली है और अब मेरे द्वारा कही जाने वाली यह कथा सर्वथा श्रुति (वेद) से सम्मत, गहरे अर्थ से परिपूर्ण और अति विचित्र है । जो पुरुष इस कथा को नित्य धारण करेगा अथवा कई बार श्रवण करेगा और ब्राह्मणों को श्रवण करायेगा तथा विशेष रूप से यतियों को सुनायेगा और देवायतनों में, पर्व दिनों में पवित्र तथा समाहित होकर श्रवण करायेगा वह इस पुराण के अनुकीर्तन करने से दीर्घ आयु को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है और अपने वंश को धारण करके स्वर्गलोक में जाकर अन्त में प्रतिष्ठित होता है ॥ ५—६—७ ॥

विस्तारावयवं तेषां यथाशब्दं यथाश्रुतम् ।
कीर्त्यमानं निबोधध्वं सर्वेषां कीर्तिवर्द्धनम् ॥८
धन्यं यशस्यं शत्रुघ्नं स्वर्ग्यमायुर्विवर्धनम् ।
कीर्तनं स्थिरकीर्तीनां सर्वेषां पुण्यकारिणाम् ॥९

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितञ्चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥१०
कल्पेभ्योऽपि हि य कल्प शुचिभ्यो नियत शुचिः ।
पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि मारुतं वेदसम्मितम् ॥११
प्रबोधः प्रलयश्चैव स्थितिरुत्पत्तिरेव च ।
प्रक्रिया प्रथमः पादः कथावस्तुपरिग्रहः ॥१२
उपोद्घातोऽनुषङ्गश्च उपसंहार एव च ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१३
एवं हि पादाश्चत्वारः समासात् कीर्तिता मया ।
वक्ष्याम्येतान् पुनस्तांस्तु विस्तरेण यथाक्रमम् ॥१४

उनके विस्तार के अङ्गों को जिन शब्दों में जैसा भी मैंने सुना है वह सब मेरे द्वारा कीर्तन किया जा रहा है आप उसे श्रवण करें यह सबकी कीर्ति का बढ़ाने वाला है ॥ ८ ॥ परम पुण्यकारी और स्थिर कीर्ति वाले सबको यह कीर्त्तन धन यश के बढ़ाने वाला है शत्रुओं का नाशक स्वर्ग प्रदान कराने वाला और आयु की वृद्धि कराने वाला है ॥ ९ ॥ पुराण के पाँच लक्षण होते हैं पुराण में सर्ग प्रतिसर्ग वंश मन्वन्तर और वंशानुचरित ये पाँचों होते हैं तभी वह पूर्ण लक्षण सम्पन्न पुराण कहा जाता है ॥ १० ॥ कल्पों के भी जो कल्प है और शुचियों का भी जो नियत शुचि है ऐसा वेद से सम्मत यह मारुत पुराण मैं कहता हूँ ॥ ११ ॥ प्रबोध—प्रलय स्थिति और उत्पत्ति ये प्रक्रिया प्रथम पाद है। कथन के योग्य वस्तु का परिग्रह उपोद्घात अनुषङ्ग और उपसंहार होता है। यह धर्म से युक्त यश देने वाला धन्य वाला आयु बढ़ाने वाला और सब प्रकार के पापों का नाशक होता है ॥१२—१३॥ इस प्रकार से मैंने संक्षेप में चार पादों को वर्णन किया है पुनः इनको क्रमानुसार विस्तार के साथ कहूँगा ॥ १४ ॥

तस्मै हिरण्यगर्भाय पुरुषायेश्वराय च ।
अजाय प्रथमायैव विशिष्टाय प्रजात्मने ।
ब्रह्मणे लोकतन्त्राय नमस्कृत्य स्वयम्भुवे ॥१५

महदाद्य विशेषान्त सवैरूप्य सलक्षणम् ।
पञ्चप्रमाण षट्स्रोत पुरुषाधिष्ठित पुरम् ।
असंशयात्प्रवक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तमम् ॥१६
अव्यक्त कारण यत्तु नित्य सदसदात्मकम् ।
प्रधान प्रकृति चैव यमाहुस्तत्त्वचिन्तका ॥१७
गन्धवर्णरसैर्हीन शब्दस्पर्शविवर्जितम् ।
अजरं ध्रुवमक्षय्य नित्य स्वात्मन्यवस्थितम् ॥१८
जगद्योनि महद्भूत पर ब्रह्म सनातनम् ।
विग्रह सर्वभूतानामव्यक्तमभवत् किल ॥१९
अनाद्यन्तमज सूक्ष्मन्त्रिगुण प्रभवाव्ययम् ।
असाम्प्रतमविज्ञेय ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥२०
तस्यात्मना सर्वमिद व्याप्तमासीत्तमोमयम् ।
गुणसाम्ये तदा तस्मिन् गुणभावे तमोमये ॥२१
सर्गकाले प्रधानस्य क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य वै ।
गुणभावाद्वाच्यमानो महान् प्रादुर्बभूव ह ॥२२

उस हिरण्यगर्भ पुरुष और ईश्वर के लिये—अन्त रूप और प्रथम स्वरूप वाले के लिये – विशेषताओं से युक्त और प्रजापति के लिये—लोकतन्त्र, स्वयम्भू ब्रह्मा जी के लिये नमस्कार करके ॥ १५ ॥ मैं ऐसे सर्वश्रेष्ठ इस भूत सर्ग को बिना किसी संशय के कहता हूँ जिसके आदि में महत् है, अन्त में विशेष है, वैरूप्य से युक्त है और लक्षण के सहित है तथा पाँच प्रमाण वाला है, षट्स्रोत युक्त है एवं पुरुष से अधिष्ठित है और मण्डित है ॥ १६ ॥ और जो इसका अव्यक्त कारण है वह नित्य और सत् तथा असत् स्वरूप वाला होता है। तत्वों के चिन्तन करने वाले पुरुष उसे प्रधान और प्रकृति कहा करते हैं ॥ १७ ॥ अब उस अव्यक्त का वर्णन किया जाता है, वह अव्यक्त गन्ध-वर्ण और रस से रहित है तथा शब्द और स्पर्श से भी हीन होता है। वह अजर, ध्रुव, अक्षय्य, नित्य और अपनी ही आत्मा में अर्थात् स्वरूप में अवस्थित है ॥ १८ ॥ यह अव्यक्त इस जगत् का योनि, महद्भूत, सनातन, पर और ब्रह्म है। समस्त

प्राणियों का विग्रह ऐसा अव्यक्त हुआ था ॥ १९ ॥ जिसका न आदि है और न अन्त ही है ऐसा अदभुत अजसहम त्रिगुण प्रभवाप्यय असाम्प्रत और अविज्ञेय अर्थात् न जानने के योग्य अव्यक्त ब्रह्म के आगे आया ॥ २० ॥ उसकी आत्मा से अर्थात् स्वरूप से यह सब अन्धकारमय व्याप्त था। उस समय सृजन के काल में गुण साम्य अर्थात् गुणों की समष्टि में और तमोमय गुण भाव से क्षेत्रज्ञ के द्वारा अधिष्ठित प्रधान के गुण भाव से बाध्यमान महान् प्रादुर्भूत हुआ अर्थात् उत्पन्न हुआ ॥ २१—२२ ॥

सूक्ष्मेण महता सोऽथ अव्यक्तेन समावृतः ।
सत्त्वोद्रिक्तो महानग्रे सत्त्वमात्रप्रकाशकम् ।
मनो महांश्च विज्ञेयो मनस्तत्कारणं स्मृतम् ॥२३
लिङ्गमात्रसमुत्पन्नः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः ।
धर्मादीनां तु रूपाणि लोकतत्त्वार्थहेतवः ।
महांस्तु सृष्टिं कुरुते नोद्यमानः सिसृक्षया ॥२४
मनो महान्मतिर्ब्रह्मा पूर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वरः ।
प्रज्ञा चितिः स्मृतिः संवित् विपुरं चोच्यते बुधैः ॥२५
मनुते सर्वभूतानां यस्माच्चेष्टाफलं विभुः ।
सौक्ष्म्यत्वेन विभक्तानां तेन तन्मन उच्यते ॥२६
तत्त्वानामग्रजो यस्मान्महांश्च परिमाणतः ।
शेषेभ्योऽपि गुणेभ्योऽसौ महानिति ततः स्मृतः ॥२७
बिभर्ति मानं मनुते विभागं मन्यतेऽपि च ।
पुरुषो भोगसम्बन्धात् तेन चासौ मतिः स्मृतः ॥२८

अव्यक्त और सूक्ष्म महत् से समावृत वह सत्व के उद्रेक वाला महान् आगे हुआ जो केवल सत्व का प्रकाश करने वाला था। वह महान् मन ही समझना चाहिये क्योंकि मन ही उसका कारण कहा गया है ॥ २३ ॥ वह क्षेत्रज्ञ के द्वारा अधिष्ठित महान् लिङ्गमात्र उत्पन्न हुआ। धर्म आदि के रूप जो लोक तत्वार्थ के हेतु हैं। सृजन करने की इच्छा से प्रेरित किया हुआ यह महान् सृष्टि को करता है ॥ २४ ॥ विद्वानों के द्वारा यह महान् मन मति ब्रह्मा

पूर्बुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, चिति, स्मृति, संवित और विपुर कहा जाता है ॥ २५ ॥ सूक्ष्मता से विशेष बढ़े हुए समस्त भूतों की चेष्टा के फल को यह विभु अवबोधित करता है इसी कारण से यह मन कहा जाता है ॥ २६ ॥ यह समस्त अन्य तत्वों के पहिले उत्पन्न हुआ है और परिमाण में महान् अर्थात् बड़ा है तथा शेष अन्य गुणों से भी बड़ा है इसीलिये इसे महान् कहा गया है ॥ २७ ॥ मान को धारण करता है और विभाग को समझता है तथा भोग के सम्बन्ध से पुरुष भी मानता है इसलिये यह 'मति' इस नाम से कहा गया है ॥ २८ ॥

बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च भावानां सलिलाश्रयात् ।
यस्माद् बृंहयते भावान् ब्रह्मा तेन निरुच्यते ॥२९
आपूरयित्वा यस्माच्च कृत्स्नान् देहाननुग्रहैः ।
तत्त्वभावाश्च नियता स्तेन पूरिति चोच्यते ॥३०
बुध्यते पुरुषश्चात्र सर्वभावान् हिताहितान् ।
यस्मादवबोधयते चैव तेन बुद्धिर्निरुच्यते ॥३१
ख्यातिः प्रत्युपभोगश्च यस्मात् संवर्त्तते ततः ।
भोगस्य ज्ञाननिष्ठत्वात्तेन ख्यातिरिति स्मृतः ॥३२
ख्यायते तद्गुणैर्वापि नामादिभिरनेकशः ।
तस्माच्च महतः संज्ञा ख्यातिरित्यभिधीयते ॥३३
साक्षात् सर्वं विजानाति महात्मा तेन चेश्वरः ।
तस्ताज्जाता ग्रहाश्चैव प्रज्ञा तेन स उच्यते ॥३४
ज्ञानादीनि च रूपाणि क्रतुकर्मफलानि च ।
चिनोति यस्माद्भोगार्थांस्तेनासौ चितिरुच्यते ॥३५

बृहत् का भाव होने से और बृंहणत्व के कारण से तथा भावों के सलिलाश्रय होने से यह भावों को बृंहित करता है इसीलिये इसे ब्रह्म कहा जाता है ॥ २९ ॥ इसी कारण से कि यह अनुग्रहों के द्वारा समस्त देहों का तथा नियत तत्वभावों का आपूरण किया करता है इसका नाम 'पू'—यह कहा जाता है ॥ ३० ॥ इससे पुरुष हित और अहित सभी भावों को जानता है और जिससे ज्ञान प्राप्त किया करता है इसलिये इसका नाम "बुद्धि"—यह कहा

जाता है ॥ ३१ ॥ ख्याति और प्रत्युपभोग जिससे होते हैं तथा ज्ञान की निष्ठा होने से योग होता है इसीलिये यह ख्याति कहा जाता है ॥ ३२ ॥ उसके गुणों के द्वारा अनेक नामादि से यह ख्यात होता है इसीलिये इस महत् की ख्याति यह संज्ञा कही गयी है ॥ ३३ ॥ यह सभी कुछ को साक्षात् रूप से जानता है इसीलिये इस महात्मा का ईश्वर नाम होता है। और इससे समस्त ब्रह्मों की उत्पत्ति हुई है अतएव यह प्रज्ञा —इस नाम से कहा जाता है ॥ ३४ ॥ ज्ञान आदि के रूप और कर्मफल के फल को तथा भोगादिकों को जो चयन करता है इसीलिये यह चिति —इस नाम से कहा जाता है ॥ ३५ ॥

वर्तमानान्यतीतानि तथा चानागतान्यपि ।
स्मरते सर्वकार्याणि तेनासौ स्मृतिरुच्यते ॥३६
कृत्स्नं च विन्दते ज्ञानं तस्मान्माहात्म्यमुच्यते ।
तस्माद्विद्वेर्विदेश्चैव संविदित्यभिधीयते ॥३७
विद्यते स च सर्वस्मिन् सर्वं तस्मिश्च विद्यते ।
तस्मात्संविदिति प्रोक्तो महान्वै बुद्धिमत्तरः ॥३८
ज्ञानात् ज्ञानमित्याहु भगवान् ज्ञानसन्निधिः ।
द्वन्द्वानां विपुरीभावाद्विपुरः प्रोच्यते बुधैः ॥३९
सर्वेशत्वाच्च लोकानामवश्यं च तथेश्वरः ।
बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भव उच्यते ॥४०
क्षेत्रक्षेत्रज्ञविज्ञानादेकत्वाच्च स कः स्मृतः ।
यस्मात् पुर्यनुशेते च तस्मात् पुरुष उच्यते ।
नोत्पादितत्वात् पूर्वत्वात् स्वयम्भूरिति चोच्यते ॥४१
पर्यायवाचकैः शब्दैस्तत्त्वमाद्यमनुत्तमम् ।
व्याख्यातं तत्त्वभावज्ञैर्देवं सद्भावचिन्तकैः ॥४२

वर्तमान भूत और अनागत समस्त कार्यों का स्मरण इसके द्वारा किया जाता है इसलिये यह स्मृति —इस नाम वाला कहा गया है ॥ ३६ ॥ यह सम्पूर्ण ज्ञान का लाभ करता है इससे माहात्म्य कहा जाता है और पूर्ण ज्ञान का ज्ञाता होने से इसका नाम संवित् कहा जाता है ॥ ३७ ॥ यह सभी में

विद्यमान रहता है और सभी कुछ इसमें विद्यमान है इसीलिये श्रेष्ठ बुद्धि वालों के द्वारा यह महान् 'सम्विद' कहा जाता है ॥ ३८ ॥ ज्ञान होने से इसे 'ज्ञान' यह कहा जाता है और ज्ञान की अच्छी निधि होने के कारण 'भगवान्' कहा जाता है। समस्त द्वन्द्वों के विपरीभाव होने के कारण बुधों के द्वारा इसका नाम 'विपुर'—यह कहा जाता है ॥ ३९ ॥ लोकों का सबसे बड़ा ईश होने के कारणवश ही इस महत् का नाम 'ईश्वर'—यह हुआ है। बृहत् होने से 'ब्रह्मा'—यह कहा गया है और भूतत्व भाव इसमें रहने से इसे 'भव'—यह कहा जाता है ॥ ४० ॥ क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के विशेष ज्ञान होने से और एकत्व होने से उसे 'क'—यह कहा जाता है। क्योंकि वह पुरी में अनुशयन किया करता है अतएव उसका नाम 'पुरुष'—यह कहा जाता है। वह किसी के द्वारा उत्पादित नहीं हुआ है और पूर्ववर्ती है इसीलिये 'स्वयम्भू'—इस नाम वाला है ॥४१॥ तत्त्वभाव के ज्ञाता तथा सद्भाव के चिन्तन करने वालों के द्वारा पर्यायवाचक अर्थात् समानार्थक बोधक तत्त्व-आद्य और तत्पद्—इन शब्दों से व्याख्या की गई है ॥ ४२ ॥

महान् सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानः सिसृक्षया।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वयं स्मृतम् ॥४३
धर्मादीनि च रूपाणि लोकतत्त्वार्थहेतवः।
त्रिगुणस्तु स विज्ञेयः सत्त्वराजसतामसः ॥४४
त्रिगुणाद्रजसोद्रिक्तादहङ्कारस्ततोऽभवत्।
महता चावृतः सर्गो भूतादिर्विकृतस्तु सः ॥४५
तस्माच्च तमसोद्रिक्तादहङ्कारादजायत।
भूततन्मात्रसर्गस्तु भूतादिस्तामसस्तु सः ॥४६
आकाशं शुषिरं तस्मादुत्पन्नं शब्दलक्षणम्।
आकाशं शब्दमात्रन्तु भूतादिश्चावृणोत् पुनः ॥४७
शब्दमात्रं तदाकाशं स्पर्शमात्रं ससर्ज ह।
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज ह ॥४८
बलवान् जायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः।
आकाशं शब्दमात्रन्तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ॥४९

सृजन करने की इच्छा से जब इस महान् को प्रेरणा दी जाती है तो यह इस जगत् की सृष्टि किया करता है। उसकी सङ्कल्प और अध्यवसाय ये दो प्रकार की वृत्ति कही गई है। मानसिक कर्म का नाम सङ्कल्प और लगातार श्रम से कार्य करने को अध्यवसाय कहते हैं ॥ ४३ ॥ धर्म आदि के रूप लोक के तत्व के हेतु होते हैं। यह सात्विक राजस और तामस प्रकार से तीन गुणों वाला समझना चाहिये ॥ ४४ ॥ उस त्रिगुण स्वरूप से जब रजोगुण का उद्रेक होता है तो उससे अहङ्कार हुआ है। यह उस महत् से आवृत है और भूतादि से विकृत स्वरूप वाला होता है ॥ ४५ ॥ तमोगुण के उद्रेक वाले उस अहङ्कार से भूतों की तन्मात्राओं का सर्ग होता है। यह भूतादि नामक उसका तामस स्वरूप है ॥ ४६ ॥ उससे शब्द लक्षण वाला आकाश सुषिर उत्पन्न हुआ। शब्द मात्र आकाश को फिर भूतादि ने आवृत कर लिया ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर शब्द मात्र आकाश को स्पर्श मात्र सृजन किया। विकृत रूप वाले होते हुये भूतादि ने रूप मात्र का सृजन किया ॥ ४८ ॥ फिर बल वाला वायु उत्पन्न होता है जिसका एक मात्र गुण स्पर्श ही कहा गया है। शब्द मात्र आकाश ने स्पर्श मात्र वायु को समावृत कर लिया था ॥ ४९ ॥

रसमात्रास्तु ता ह्यापो रूपमात्राभिरावृणोत् ।
आपो रसात् विकुर्वन्त्यो गन्धमात्रं ससर्जिरे ॥५०
सङ्घातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणः स्मृतः ।
रसमात्रं तु तत्तोयं गन्धमात्रं समावृणोत् ॥५१
तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रा तेन तन्मात्रता स्मृता ।
अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततः स्मृताः ।
अशान्तघोरमूढत्वादविशेषास्ततः पुनः ॥५२
भूततन्मात्रसर्गोऽयं विज्ञेयस्तु परस्परात् ।
वैकारिकादहङ्कारात्सत्त्वोद्रिक्तात् सात्त्विकात् ।
वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्सम्प्रवर्तते ॥५३
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्च च पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यपि ।
साधकानीन्द्रियाणि स्युर्देवा वैकारिका दश ।
एकादशं मनस्तत्र देवा वैकारिकाः स्मृताः ॥५४

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।
शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वक्ष्यते ॥५५
पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ वाग्दशमी भवेत् ।
गतिर्विसर्गो ह्यानन्द शिल्प वाक्यश्च कर्म च ॥५६

जल केवल रस मात्र होता है जो कि रूप मात्राओं से आवृत हुआ था । जल ने रसों का विकार करते हुये गन्धमात्रा का सृजन किया ॥ ५० ॥ उससे सङ्घात की उत्पत्ति होती है जिसका गुण गन्ध होता है । रस मात्रा वाले जल ने गन्ध मात्रा वाले को समावृत कर लिया था ॥ ५१ ॥ उस उसमें जो तन्मात्रा है उससे उसकी तन्मात्रता कही गयी है । अविशेष वाचक होने से सब ये अविशेष कहे गये हैं । अशान्त, घोर और मूढ होने से फिर अविशेष कहे गये हैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार परस्पर से यह भूत तन्मात्र का सर्ग जानना चाहिये । वैकारिक अर्थात् विकारयुक्त अहङ्कार से और सत्व के उद्रेक वाले सात्विक से यह वैकारिक सर्ग एक साथ सम्प्रवृत्त होता है ॥ ५३ ॥ पाँच बुद्धीन्द्रियाँ अर्थात् ज्ञानार्जन करने वाली ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच साधक कर्मेन्द्रियाँ अर्थात् केवल कर्म करके ज्ञानार्जन करने वाली इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं । इनके दश के दश ही अधिष्ठाता देव होते हैं जो वैकारिक कहे जाते हैं । इन दश उपर्युक्त इन्द्रियों के अतिरिक्त ग्यारहवाँ मन होता है । वहाँ वैकारिक देव होते हैं ॥५४। अब उन समस्त उक्त इन्द्रियों के विषय में बतलाते हैं । श्रोत, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और पाँचवीं इन्द्रिय नासिका है । ये सब शब्दादि विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये होती है इसीलिये बुद्धीन्द्रिय कहा जाता है ॥ ५५ ॥ दोनों चरण, पायु अर्थात् गुदा-उपस्थ अर्थात् मूत्रेन्द्रिय दोनों, हाथ और दशवीं वाक् ये इन्द्रियाँ दश तरह हैं । इनका काम से क्रमगति-विसर्ग अर्थात् मल का त्याग, आनन्द अर्थात् रमण सुख, शिल्प अर्थात् दस्तकारी और वाक्य कथन होता है ॥५६॥

आकाश शब्दमात्रञ्च स्पर्शमात्रं समाविशेत् ।
द्विगुणस्तु ततो वायु शब्द स्पर्शात्मकोऽभवत् ॥५७
रूपन्तथैव विशत शब्दस्पर्शगुणावुभौ ।
त्रिगुणस्तु ततश्चाग्नि स शब्दस्पर्शरूपवान् ॥५८

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसमात्रं समाविशत् ।
तस्माच्चतुर्गुणा ह्यापो विज्ञेयास्तु रसात्मिकाः ॥५९
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसस्तेषु समाविशत् ।
संयुक्ता गन्धमात्रेण आचिन्वन्ति महीमिमाम् ।
तस्मात्पञ्चगुणा भूमिः स्थूलभूतेषु दृश्यते ॥६०
शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः ।
परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम् ॥६१
भूमेरन्तस्त्विदं सर्वं लोकालोकघनावृतम् ।
विशेषा इन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्च ते स्मृताः ॥६२
गुणं पूर्वस्य पूर्वस्य प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् ।
तेषां यावच्च यद्यच्च तत्तत्तावद्गुणं स्मृतम् ॥६३
उपलभ्याप्सु वै गन्धं केचिद्ब्रूयुरनैपुणात् ।
पृथिव्यामेव तं विद्यादपां वायोश्च संश्रयात् ॥६४

शब्द मात्र आकाश स्पर्श मात्रा वाले वायु में समावेश करता है। अतएव वायु स्पर्श और शब्द इन दो गुणों वाला हो गया ॥ ५७ ॥ शब्द और स्पर्श ये दोनों गुण इसी प्रकार से रूप में समावेश करते हैं। इसलिये अग्नि शब्द-स्पर्श और रूप इन तीन गुणों वाला हो गया ॥ ५८ ॥ इसी रीति से शब्द स्पर्श और रूप रस तन्मात्रा वाले जल में समाविष्ट हो गये। इसलिये जल शब्द स्पर्श रूप और रस इन चार गुणों वाला हो गया ॥ ५९ ॥ शब्द स्पर्श रूप रस इनमें गन्ध का समावेश हो गया। किन्तु मही को केवल गन्ध से ही निर्धारित किया करते हैं। वस्तुतः यह भूमि पाँच गुणों वाली स्थूल भूतों में दिखलाई देती है ॥ ६० ॥ शान्त घोर और मूढ़ हैं अतएव ये विशेष कहे गये हैं। ये परस्पर में अनुप्रवेश करने से परस्पर को धारण किया करते हैं ॥ ६१ ॥ लोकालोक घन से आवृत यह सब भूमि के अन्दर है। विशेष इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने योग्य हैं नियत होने से वे कहे गये हैं ॥ ६२ ॥ पूर्व पूर्व के गुण उत्तर से उत्तर को प्राप्त होते हैं। उनका जितना और जो है वह उतना ही गुण कहा गया है ॥ ६३ ॥ कुछ लोग वायु के गन्ध को प्राप्त कर निपुणता के

अभाव से इसे वायु का ही गुण मान लेते हैं किन्तु ऐसा नहीं है। इसे पृथिवी का ही समझना चाहिये और वायु में तो केवल उसका सम्पर्क हो जाता है॥ ६४॥

एते सप्त महावीर्या नानाभूताः पृथक् पृथक्।
नाशक्नुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः।
ते समेत्य महात्मानो ह्यन्योन्यस्यैव संश्रयात्॥६५
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च।
महदाद्या विशेषान्ता अण्डमुत्पादयन्ति ते॥६६
एककाल समुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत्।
विशेषेभ्योऽण्डमभवद् बृहत्तदुदकं च यत्।
तस्मिन् कार्यंकरण संसिद्धं ब्रह्मणस्तदा॥६७
प्राकृतेऽण्डे विवृद्धे सन् क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञित।
स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते॥६८
आदिकर्त्ता च भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्त्तत।
हिरण्यगर्भः सोऽग्रेऽस्मिन् प्रादुर्भूतश्चतुर्मुख।
सर्गे च प्रति सर्गे च क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञित॥६९
करणैः सह सृज्यन्ते प्रत्याहारे त्यजन्ति च।
भजन्ते च पुनर्देहानसमाहारसन्धिषु॥७०
हिरण्मयस्तु यो मेरुस्तस्योल्ब तन्महात्मन।
गर्भोदकं समुद्राश्च जराय्वस्थीनि पर्वताः॥७१

ये सात महान् वीर्य वाले हैं और पृथक् पृथक् अनेक भाँति के होते हैं। पूर्णरूप से न मिलकर प्रजा की सृष्टि करने में समर्थ नहीं हुए थे सब महान् आत्मा वाले अन्योन्य के अर्थात् एक दूसरे के संश्रय से मिलकर पुरुष के अधिष्ठित होने से और अव्यक्त के अनुग्रह से महत् से आदि लेकर विशेष के अन्त तक ये सब अण्ड को उत्पादित किया करते हैं॥६५-६६॥ एक ही काल में वह जल के बुदबुदे की भाँति समुत्पन्न हुआ और विशेषों से अण्ड के स्वरूप में हुआ। फिर वह और उदक बृहत् हुआ और उसमें उस समय ब्रह्मा

की कार्य करणता प्रसिद्ध हुई ॥६७॥ प्राकृत अण्ड के विवृद्ध होने पर क्षेत्रज्ञ ब्रह्म ऐसा नाम हुआ। वही सर्वप्रथम शरीरधारी है और वही पुरुष—इस नाम से कहा जाता है ॥६८॥ भूतों का अर्थात् प्राणियों का आदिकर्ता अर्थात् सर्वप्रथम सृजन करने वाला पहिले ब्रह्मा हुआ। यह हिरण्यगर्भ इसके आगे चार मुखों वाला प्रादुर्भूत अर्थात् प्रकट हुआ। और सर्ग प्रति-सर्ग में क्षेत्रज्ञ ब्रह्म कहा जाता होता है ॥६९। ये कल्पों के साथ सृजन किये जाते हैं और प्रत्याहार में त्याग देते हैं तथा फिर प्रत्याहार कल्पों में देहों को धारण कर लेते हैं। ॥७० ॥ उस महान् आत्मा का उल्ब हिरण्मय मेरु जो है समुद्र गर्भ का जल है और जरादि पर्वत हैं ॥७१॥

तस्मिन्नण्डे त्विमे लोका अन्तर्भूतास्तु सप्त च।
सप्तद्वीपा च पृथ्वीयं समुद्रैः सह सप्तभिः ॥७२
पर्वतैः सुमहद्भिश्च नदीभिश्च सहस्रशः।
अन्तस्थास्मिंस्त्विमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगत् ॥७३
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना।
लोकालोकं च यत् किञ्चिदण्डे तस्मिन् समर्पितम् ॥७४
अद्भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोऽण्डं समावृतम्।
आपो दशगुणा ह्येव तेजसा बाह्यतो वृताः ॥७५
तेजोदशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम्।
वायोर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतम् ॥७६
आकाशेन वृतो वायुः खं च भूतादिना वृतम्।
भूतादिर्महता चापि अव्यक्तेन वृतो महान्।
एतैरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ॥७७
एताश्चावृत्य चान्योन्यमष्टौ प्रकृतयः स्थिताः।
प्रसर्गकाले स्थित्वा च ग्रसन्त्येताः परस्परम् ॥ ७८

उस अण्ड में ये सातों लोक अन्तर्भूत हैं अर्थात् उस के अन्दर रहते हैं। सात द्वीप और सातों समुद्रों के सहित यह भूमण्डल बड़े विशाल पर्वत सहस्रों की संख्या वाली नदियाँ—ये सब इसी के अन्तर्भाग में हैं। ये सब लोक और

यह सम्पूर्ण जगत् तथा समस्त विश्व उसके ही अन्दर होते हैं ॥७२-७३॥ चन्द्रमा और सूर्य समस्त नक्षत्रों के साथ तथा सम्पूर्ण ग्रहों के सहित उसमें हैं और वायु के साथ लोकालोक जो कुछ भी है वही अण्ड में समर्पित है ॥७४॥ यह अण्ड बाहिर से दश गुने जल से समावृत है और फिर जल से दश गुने तेज से इसी प्रकार बाहिर से आवृत है ॥७५॥ इसी भाँति तेज जितना है उससे दश गुना वायु से आवृत होता है और वायु से दश गुना उसके बाद आकाश से आवृत होता है ॥७६॥ वायु से आकाश से आवृत है और नभ भूतादि से आवृत है। भूतादि सब महान् से तथा यह महत् अव्यक्त से आवृत होता है। इस प्रकार से यह अण्ड इन सात प्राकृत आवरणों से आवृत होता है ॥ ७७॥ इन सब को अन्योन्य को आवृत करके आठ प्रकृतियाँ स्थित होती हैं। प्रलय के काल में ये स्थित होकर परस्पर में ग्रसती हैं ॥७८॥

एवं परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
आधाराधेयभावेन विकारस्य विकारिषु ॥७९
अव्यक्तं क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते।
इत्येष प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः।
अबुद्धिपूर्वं प्रागासीत् प्रादुर्भूता तडिद्यथा ॥८०
एतद्धिरण्यगर्भस्य जन्म यो वेद तत्त्वतः।
आयुष्मान् कीर्तिमान् धन्यः प्रजावांश्च भवत्युत ॥८१
निवृत्तिकामोऽपि नरः शुद्धात्मा लभते गतिम्।
पुराणश्रवणान्नित्यं सुखं च क्षेममाप्नुयात् ॥८२

इस रीति से परस्पर में उत्पन्न होती हुई परस्पर में ही ये धारण किया करती हैं। विकार वालों में विकार का आधार आधेय भाव होता है ॥७९॥ यहाँ इस अव्यक्त को क्षेत्र बताया गया है, ब्रह्मा इसका क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। यही प्राकृत-सर्ग होता है जो कि क्षेत्रज्ञ के द्वारा अधिष्ठित होता है। यह पहिले अबुद्धि पूर्व वाला था और जिस तरह अचानक बिजली चमक कर दिखाई दिया करती है उसी तरह यह प्रादुर्भूत हुआ ॥८०॥ इस हिरण्यगर्भ के जन्म को तत्त्व बुद्धि पूर्वक ठीक-ठीक जो जानता है वह आयु वाला-कीर्ति वाला-धन्य

और प्रभा वाला होता है ।।८१।। जो मानव निवृत्ति की ही कामना रखता है वह भी शुद्ध आत्मा वाला ब्राह्मी गति को प्राप्त करता है। पुराण के नित्य श्रवण करने से सुख और क्षेम की प्राप्ति होती है ।।८२।।

।। सृष्टि रचना और उसकी शक्तियाँ ।।

यद्धि सृष्टं त्वसंख्यातं मया कालान्तरं द्विजाः ।
एतत् कालान्तरं ज्ञेयमहर्वै पारमेश्वरम् ।।१
रात्रिश्चैतावती ज्ञेया परमेशस्य कृत्स्नशः ।
अहस्तस्य तु या सृष्टिः प्रलयो रात्रिरुच्यते ।।२
अहर्न विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारणा ।
उपचारः प्रक्रियते लोकानां हितकाम्यया ।।३
प्रजाः प्रजानां पतयः ऋषयो मुनिभिः सह ।
ऋषीन् सनत्कुमाराद्यान् ब्रह्मसायुज्यगान् सह ।।४
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च महाभूतानि पञ्च च ।
तन्मात्राणीन्द्रियाण्येव बुद्धिश्च मनसा सह ।।५
अहस्तिष्ठन्ति ते सर्वे परमेशस्य धीमतः ।
अहरन्ते प्रलीयन्ते रात्र्यन्ते विश्वसम्भवः ।।६
स्वात्मन्यवस्थिते सत्त्वे विकारे प्रतिसंहृते ।
साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ ।।७

श्री लोमहर्षणजी ने कहा—हे द्विजवृन्द ! यह मैंने जो सृष्टि के कालान्तर की संख्या की है यह कालान्तर परमेश्वर का दिन समझना चाहिए ।।१।। परमेश्वर की रात्रि भी इतनी ही जाननी चाहिए उसका जो दिन होता है वही सृष्टि का समय होता है और जो रात्रि होती है वह प्रलय कहा जाता है ।।२।। उसका दिन तो होता है किन्तु रात्रि नहीं होती है—यह धारणा लोकों के हित की कामना से उपचार किया जाता है ।।३।। प्रजा-प्रजाओं के पति—ऋषिवृन्द मुनियों के सहित—सनत्कुमारादि नाम वाले ब्रह्म सायुज्य को जाने वालों के सहित समस्त इन्द्रियाँ और इन इन्द्रियों के सब अर्थ अर्थात् विषय—पंचमहाभूत पाँच तन्मात्रा इन्द्रियों का समुदाय और मन के साथ बुद्धि ये सब परमेश्वर के

दिन के समय में रहा करते हैं और उस श्रीमान् परमेश्वर के दिन के अन्त समय में ये सब प्रलीन हो जाते हैं फिर जब रात्रि का अवसान होता है तो इस विश्व की उत्पत्ति हो जाती है ।।४-५-६।। अपनी आत्मा में नश्वर के अनन्वित होने पर और विकार प्रतिगृहीत हो जाने पर प्रधान और पुरुष दोनों साधर्म्य से अवस्थित रहा करते हैं ।।७।।

तम सत्त्वगुणावेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ।
अनोद्रिक्तौ प्रसूतौ च तौ तथा च परस्परम् ।
गुणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिरुच्यते ।।८
तिलेषु वा यथा तैलं घृतं पयसि वा स्थितम् ।
तथा तमसि सत्त्वे च रजोऽप्यनुसृतं स्थितम् ।।९
उपास्य रजनीं कृत्स्नां परां माहेश्वरीं तदा ।
अहर्मुखे प्रवृत्ते च परः प्रकृतिसम्भवः ।।१०
क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ।
प्रधानं पुरुषञ्चैव प्रविश्याण्ड महेश्वरः ।।११
प्रधानात् क्षोभ्यमाणात्तु रजो वै समवर्तत ।
रजः प्रवर्तकं तत्र बीजेष्वपि यथा जलम् ।।१२
गुणवैषम्यमासाद्य प्रसूयन्ते ह्यधिष्ठिताः ।
गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे ।
आश्रिताः परमा गुह्याः सर्वात्मानः शरीरिणः ।।१३
रजो ब्रह्मा तमो ह्यग्निः सत्त्वं विष्णुरजायत ।
रजः प्रकाशको ब्रह्मा स्रष्टृत्वेन व्यवस्थितः ।।१४

तमोगुण और सत्त्वगुण ये दोनों समत्व रूप से व्यवस्थित हैं। यहाँ पर ये दोनों उद्रेक वाले होते हैं और परस्पर में प्रसूत होते हैं। जब गुणों का साम्य हो अर्थात् दोनों गुण समान स्वरूप में स्थिति रखने वाले होते हैं तो सृष्टि का लय समझ लेना चाहिए। जब इनमें विषमता का भाव होता है तो उसे ही सृष्टि कहा जाता है ।।८।। वस्तुतः स्पष्ट दर्शन में ये दो ही गुण आते हैं सत्त्वगुण और तमोगुण किन्तु तृतीय जो रजोगुण होता है वह जिस तरह तिलों में तैल

रहता है और दूध में घृत रहा करता है किन्तु वह तब और घृत स्पष्ट दिखलाई नहीं दिया करता है उसी तरह तमोगुण में और सत्त्वगुण में रजोगुण अव्यक्त रूप से आश्रित होकर स्थित रहता है जो कि प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता है ॥९॥ महेश्वर प्रभु की परा सम्पूर्ण रजनी की उपासना करके तब दिन के आरम्भ प्रवृत्त हो जाने पर आगे प्रकृति का सम्भव (उत्पत्ति) हुआ ॥१०॥ महेश्वर ने अव्यक्त में प्रवेश करके उस योग से प्रधान और पुरुष को क्षुब्ध कर दिया ॥११॥ उस समय जब प्रधान क्षोभ्यमाण हुआ तो उससे रजोगुण हुआ यहाँ पर बीजों में जल के सदृश वह रजोगुण ही प्रवर्तक हो गया ॥१२॥ उस समय गुणों की विषमता को प्राप्त कर जो अव्यक्त में अधिष्ठित थे वे प्रसूत होते हैं। क्षोभ को प्राप्त हुए गुणों से तीन देव समुत्पन्न हुए जो वहाँ आश्रित थे—परम गुह्य थे—सब की आत्मा स्वरूप थे और शरीर धारण करने वाले थे ॥१३॥ रजोगुण तो ब्रह्मा है—तमोगुण अग्नि है और सत्त्वगुण विष्णु उत्पन्न हुए। ब्रह्मा सृष्टा होने से रजोगुण के प्रकाशक व्यवस्थित हुए ॥१४॥

तम प्रकाशकोऽग्निस्तु कालत्वेन व्यवस्थित ।
सत्त्वप्रकाशको विष्णुरौदासीन्ये व्यवस्थित ॥१५
एत एव त्रयो देवा एत एव त्रयोऽग्नय ।
परस्पराश्रिता ह्येते परस्परमनुव्रता ॥१६
परस्परेण वर्तन्ते धारयन्ति परस्परम् ।
अन्योन्यमिथुना ह्येते ह्यन्योन्यमुपजीविन ।
क्षण वियोगो न ह्येषा न त्यजन्ति परस्परम् ॥१७
ईश्वरो हि परो देवो विष्णुस्तु महत पर ।
ब्रह्मा तु रजसोद्रिक्त सर्गायेह प्रवर्तते ।
परश्च पुरुषो ज्ञेय प्रकृतिश्च परा स्मृता ॥१८
अधिष्ठितोऽसौ हि महेश्वरेण प्रवर्तते चोद्यमान समन्तात् ।
अनुप्रवर्तन्ति महान्त एव चिरस्थिता स्वे विषये प्रियत्वात् ॥१९
प्रधान गुणवैषम्यात्सर्गकाले प्रवर्तते ।
ईश्वराधिष्ठितात् पूर्वन्तस्मात्सदसदात्मकात् ।

ब्रह्मा बुद्धिश्च मिथुनं युगपत्सम्बभूवतुः ॥२०
तस्मात्तमोऽव्यक्तमयः क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ।
संसिद्धः कार्यकरणैर्ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥२१

अग्नि तमोगुण का प्रकाश करने वाला है अतः वह काल के स्वरूप से व्यवस्थित हुए। सत्वगुण के प्रकाशक विष्णु हैं अतः उदासीनता की स्थिति में व्यवस्थित हुए हैं ॥१५॥ ये ही तीन वेद हैं, ये ही तीन अग्नियाँ हैं। ये परस्पर से एक-दूसरे के आश्रित हैं और परस्पर में अनुरक्त भी होते हैं ॥१६॥ ये तीनों परस्पर में वर्त्तन किया करते हैं और परस्पर में धारण किया करते हैं। ये अन्योन्य मिथुन अर्थात् जोड़े वाले हैं और अन्योन्य के उपजीवी होते हैं। इनका आपस में एक दूसरे से एक क्षण मात्र का भी वियोग नहीं होता है और ये एक दूसरे को आपस में कभी त्याग नहीं करते हैं ॥१७॥ ईश्वर सबसे पर देव हैं और विष्णु महान् से भी पर हैं। ब्रह्मा तो रजोगुण के उद्रेक वाले हैं जो यहाँ सर्ग के लिये ही प्रवृत्त होते हैं। पुरुष को पर समझना चाहिए और प्रकृति परा कही गई है ॥१८॥ महेश्वर के द्वारा अधिष्ठित यह चारों ओर से उद्यम युक्त होता हुआ प्रवृत्त होता है। अपने विषय में प्रिय होने के कारण चिर स्थित महान् ही फिर अनुप्रवृत्त किया करते हैं ॥१९॥ प्रधान गुणों की विषमता होने के कारण से सर्ग काल में अर्थात् सृजन के समय में प्रवृत्त होता है। पहिले ईश्वर से अधिष्ठित उस सदसदात्मक से ब्रह्मा और बुद्धि का जोड़ा एक ही समय में उत्पन्न हुआ ॥२०॥ इस कारण से तम अव्यक्तमय और क्षेत्रज्ञ ब्रह्म संज्ञा वाला होता है तथा कार्य कारणों से संसिद्ध होता हुआ ब्रह्मा आगे हुआ ॥२१॥

तेजसा प्रथमो धीमानव्यक्तः सम्प्रकाशते ।
स वै शरीरी प्रथमः कारणत्वे व्यवस्थितः ॥२२
अप्रतीघेन ज्ञानेन ऐश्वर्येण च सोऽन्वितः ।
धर्मेण चाप्रतीघेन वैराग्येण समन्वितः ॥२३
तस्येश्वरस्याप्रतिघं ज्ञानं वैराग्यलक्षणम् ।
धर्मैश्वर्यकृता बुद्धिर्ब्राह्मी जज्ञेऽभिमानिनः ॥२४
अव्यक्ताज्जायते चास्य मनसा च यदिच्छति ।

त्रिधा विभज्य स्वात्मानं त्रैलोक्ये सम्प्रवर्तते ।
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिस्तु यत् ।
अग्रे हिरण्यगर्भः स प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ॥३६
आदित्वाच्चादिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः ।
पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरतः स्मृतः ॥ ३७
देवेषु च महान् देवो महादेवस्ततः स्मृतः ।
सर्वत्वाच्च लोकानामवश्यत्वात्तथेश्वरः ॥३८
बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भूत उच्यते ।
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानाद्विभुः सर्वगतो यतः ॥३९
यस्मात् पुर्यनुशेते च तस्मात् पुरुष उच्यते ।
नोत्पादितत्वात् पूर्वत्वात् स्वयम्भूरिति स स्मृतः ॥४०
इज्यत्वादुच्यते यज्ञः कविर्विक्रान्तदर्शनात् ।
क्रमणः क्रमणीयत्वाद्ब्राह्मणस्याभिपालनात् ॥४१
आदित्यसंज्ञः कपिलस्त्वग्रजोऽग्निरिति स्मृतः ।
हिरण्मयस्य गर्भोऽभूद्धिरण्यस्यापि गर्भजः ।
तस्माद्धिरण्यगर्भः स पुराणेऽस्मिन्निरुच्यते ॥४२

अपनी आत्मा को तीन प्रकार से विभक्त करके इस त्रैलोक्य में सम्प्रवृत्त होता है । तीन रूपों की दशा से ही लोकों का सृजन करता है, संहार करता है और वीक्षण किया करता है । यह पहिले चार मुखों वाला हिरण्यगर्भ के स्वरूप से प्रकट हुए ॥३६॥ सबके आदि में होने से आदिदेव तथा अजन्मा होने के कारण से अज कहा गया है । समस्त प्रजाओं का पालन पोषण करता है, अतएव प्रजापति कहा गया है ॥३७॥ समस्त देवगणों में सबसे बड़ा देव है इसीलिये इसका 'महादेव' यह नाम पड़ गया है । समस्त लोकों का आवश्यक रूप से ईश होने के कारण से ही ईश्वर इस नाम से यह पुकारा जाया करता है ॥३८॥ सबसे बृहत् होने से ब्रह्मा तथा भूत होने के कारण से 'भूत' इस नाम से यह कहा जाता है । क्षेत्र के विशेष ज्ञाता होने से क्षेत्रज्ञ और क्योंकि यह सब में गत होकर रहा करता है, इसलिये इसे 'विभु' इस नाम से

कहा गया है ॥३९॥ क्योंकि यह पुर में अनुशयन किया करता है, इसी कारण से इसे 'पुरुष' कहा गया है। किसी के द्वारा उत्पादित नहीं किया गया है और सबके पहिले होने वाला है, इससे इसका 'स्वयम्भू' यह नाम कहा गया है ॥४०॥ यह इज्य अर्थात् यजन करने के योग्य है इसीलिए इसका नाम 'यज्ञ' यह होता है। त्रिकालिक के देखने से 'कवि' नाम होता है। क्रमण करने के योग्य होने से 'क्रमण' तथा अभिपालन करने से 'वर्णक' ये नाम हुए हैं ॥४१॥ कपिल, आदित्य वर्ण वाला, अव्यय और अग्नि ये नाम कहे गये हैं। इसका गर्भ हिरण्य हुआ था और हिरण्य के ही गर्भ से जन्म लेने वाला है, इसलिये इस पुराण में उसे 'हिरण्यगर्भ' इस नाम से कहा जाता है ॥४२॥

स्वयम्भुवो निवृत्तस्य कालो वर्षाग्रजस्तु यः ।
न शक्यः परिसंख्यातुमपि वर्षशतैरपि ॥४३॥
कल्पसंख्यानिवृत्तौ तु पराख्यो ब्रह्मणः स्मृतः ।
तावच्छेषोऽस्य कालोऽन्यस्तस्यान्ते प्रतिसृज्यते ॥४४॥
कोटिकोटिसहस्राणि अन्तर्भूतानि यानि वै ।
समतीतानि कल्पानां तावच्छेषाः परास्तु ये ॥४५॥
यस्त्वयं प्रवर्तते कल्पो वाराहस्तं निबोधत ।
प्रथमः साम्प्रतस्तेषां कल्पोऽयं वर्तते द्विजाः ॥४६॥
तस्मिन् स्वायम्भुवाद्यास्तु मनवः स्युश्चतुर्दश ।
अतीता वर्तमानाश्च भविष्या ये च वै पुनः ॥४७॥
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा समन्वता ।
पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः ।
प्रजाभिस्तपसा चैव तेषां शृणुत विस्तरम् ॥४८॥
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै ।
भविष्याणि भविष्यैश्च कल्पः कल्पेन चैव हि ॥४९॥
अतीतानि च कल्पानि सोदर्काणि सहान्वयैः ।
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता ॥५०॥

निवृत्त स्वयम्भू के वर्षों पहिले उत्पन्न होने वाला जो काल है, वह

सैकड़ों वर्षों में भी नहीं गिना जा सकता है ॥४४॥ कल्प की संख्या के निवृत्त होने वाले ब्रह्मा को पराद्धर्य कहा जाता है। उसका उतना अन्य प्रलय-काल होता है उसके अन्त में प्रतिसृजन किया जाता है ॥४४॥ करोड़ों करोड़ों सहस्र जो कल्पपूर्व व्यतीत हुए हैं अर्थात् अन्तर में रहने वाले गुजर चुके हैं वे सबने शेष पर रहे जाते हैं ॥४५॥ जो यह वर्तमान कल्प है, इसका नाम वाराह समझ लेना चाहिए। हे द्विजवृन्द! उन अन्य समस्त कल्पों में यह इस समय वर्तने वाला प्रथम ही कल्प है ॥४६॥ इस वाराह-कल्प में स्वायम्भुव आदि चौदह मनु हुए हैं जो कुछ तो अतीत हो चुके हैं कुछ वर्तमान हैं और कुछ आगे होंगे ॥४७॥ उन सब के द्वारा चारों ओर यह भूमण्डल सात द्वीपों वाला है, क्योंकि पूरे एक सहस्र युग पर्यन्त नरवरों के द्वारा परिपालन करने के योग्य है। प्रजाओं के द्वारा और तप से युक्त है उसका पूर्ण विस्तार में बतलाता हूँ उसको आप लोग अब श्रवण करें ॥४८॥ एक मन्वन्तर के द्वारा सब ही अनागत होते हैं। जो आगे होंगे वे आगे होने वालों के द्वारा और कल्प कल्प के द्वारा अन्वयवत् होते हैं ॥४९॥ विशेष रूप से जानने वाले के द्वारा अन्वयों के सहित और लोक जो कल्प व्यतीत हो गये हैं तथा उसी प्रकार से जो अनागत हैं अर्थात् अर्थात् आगे आने वाले हैं उनमें तर्क करना चाहिए ॥५० ॥

॥ सृष्टि रचना के विभिन्न सर्ग ॥

आपो ह्यग्रे समभवन्नष्टेऽग्नौ पृथिवीतले ।
सान्तरालनलीनेऽस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥१
एकार्णवे तदा तस्मिन् न प्राज्ञायत किञ्चन ।
तदा स भगवान् ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥२
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णोऽह्यतीन्द्रियः ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥३
सत्त्वोद्रेकात् प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमुदीक्ष्य सः ।
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ॥४
आपो नारा वै तनव इत्येवं नाम शुश्रुम ।
अप्सु शेते च यत्तस्मात्तेन नारायणः स्मृतः ॥५

तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य स ।
शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥६
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुर्भूत्वा तदाचरत् ।
निशायामिव खद्योत प्रावृट्काले ततस्ततः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अग्नि से जल हुए और पृथिवी जल में अग्नि के नष्ट हो जाने पर तथा अन्तराल के सहित लीन होने पर स्थावर और जङ्गम नष्ट हो गये ॥१॥ उस समय जग एक अर्णव में कुछ भी नहीं जाना गया था। तब सहस्र नेत्रों वाला और सहस्र चरण वाला भगवान् ब्रह्मा तथा सहस्र मूर्धा वाला रुक्म (सुवर्ण) के समान वर्ण से युक्त, इन्द्रियों से अगोचर पुरुष जो 'नारायण' इस नाम से कहा जाता है, वह ब्रह्मा उस समय में जल में शयन करता था ॥२॥३॥ उस समय सत्व के उद्रेक होने से वह प्रबुद्ध हुए और उन्होंने इस लोक को पूर्णतया शून्य देखा। यहाँ नारायण के प्रति इस श्लोक को उदाहृत करते हैं ॥४॥ आप नार ये तनु हैं, ऐसा जलों का नाम सुनते हैं। क्योंकि जलों में शयन किया करते हैं, इसी कारण से 'नारायण' यह नाम कहा गया है ॥५॥ एक युगों के सहस्र के तुल्य निशा का समय पर्यन्त उसने वहाँ उसी तरह उपासना की और फिर रात्रि के अन्त में सर्ग (सृजन) के कारण होने से ब्रह्मत्व को प्राप्त करते हैं ॥६॥ उस जल में ब्रह्मा उस समय वायु होकर विचरण करता था, जैसे कोई खद्योत (जुगनू) वर्षा-काल की रात्रि में इधर-उधर घूमा करता है ॥७॥

ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतां महीम् ।
अनुमानादसम्मूढो भूमेरुद्धरणं प्रति ॥८
अकरोत् स तनुं त्वन्या कल्पादिषु यथा पुरा ।
ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत् ॥९
सलिलेनाप्लुतां भूमिं दृष्ट्वा स तु समन्ततः ।
किन्तु रूपं महत् कृत्वा उद्धरेयमहं महीम् ॥१०
जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमस्मरत् ।

अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं धर्मसंज्ञितम् ॥११
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमुच्छ्रितम् ।
नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिस्वनम् ॥१२
महापर्वतवर्ष्माणं श्वेतं तीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम् ।
विद्युदग्निप्रकाशाक्षमादित्यसमतेजसम् ॥१३
पीनवृत्तायतस्कन्धं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
पीनोन्नतकटीदेशं सुलक्षणं शुभलक्षणम् ॥१४
रूपमास्थाय विपुलं वाराहमजितो हरिः ।
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ॥१५

इसके अनन्तर उस जल में अन्तर्गत भूमि का ज्ञान प्राप्त करके भी भूमि के उद्धार के प्रति वह अनुमान से संयमित था अर्थात् अनुमान के ज्ञान से युक्त था ॥८॥ इसके अनन्तर उसने अन्य तनु किया जैसा कि पहिले कल्प आदि में बनाया था और फिर उस महान् आत्मा ने मन से उस दिव्य रूप का चिन्तन किया था ॥९॥ उसने उस समय चारों ओर जल में आप्लुत इस भूमि को देखकर विचार किया कि क्या मैं अपना महान् रूप बनाकर इस भूमि का उद्धार करूँ ? ॥१०॥ जल की क्रीडाओं में अत्यन्त सुन्दर वाराह के रूप का स्मरण किया जो कि समस्त प्राणियों के द्वारा धर्षित न करने के योग्य होता है तथा वाङ्मय और धर्म की संज्ञा वाला है ॥११॥ अब उस वाराह के रूप का विस्तृत वर्णन किया जाता है—वह वाराह जो कि भगवान् ने उस समय अपना रूप बनाया था दश योजन विस्तीर्ण अर्थात् लम्बा था एक सौ योजन ऊँचा था नीले मेघ के समान कान्ति वाला था और मेघ की घोर गर्जना के सदृश शब्द करने वाला था ॥१२॥ एक बहुत ही विशाल पर्वत के समान आकार वाला श्वेत था और उसके अत्यन्त तीक्ष्ण तथा बहुत ही उग्र दाढ़ें । बिजली एवं अग्नि के तुल्य प्रकाश (चमक) वाले उसके नेत्र थे और सूर्य के समान तेज वाला था ॥१३॥ मोटे और गोल कन्धों वाला था सिंह के विक्रम से युक्त गमन के समान गमन करने वाला था । मोटे और ऊँचे बहुत ही सुन्दर एवं शुभ लक्षण वाले कटि देश से युक्त था ॥१४॥ ऐसे आकार

प्रकार वाला अत्यन्त विशाल अपना अभिमत वाराह का रूप हरि भगवान् ने धारण कर पृथिवी के उद्धार करने के लिये रसातल में प्रवेश किया था । १५ ।।

स वेदवाद्युपद्रष्टा क्रतुवक्षाश्चितीमुख ।
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपा ।।१६
अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषण ।
आज्यनास स्रुवतुण्ड सामघोषस्वनो महान् ।।१७
सत्यधर्ममय श्रीमान् धर्मविक्रमसस्थित ।
प्रायश्चित्तरतो घोर पशुजानुर्महाकृति ।।१८
ऊर्द्धगात्रो होमलिङ्ग स्थानबीजो महौषधि ।
वेद्यान्तरात्मा मन्त्रस्फिगाज्यसृक् सोमशोणित ।।१९
वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् ।
प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वित ।।२०
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो विभु ।
उपाकर्मेष्टिरुचिर प्रवर्ग्यावर्त्तभूषण ।।२१
नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासन ।
छायापत्नीसहायो वै मणिश्रृङ्ग इवोच्छ्रित ।
भूत्वा यज्ञवाराहो वै अप स प्राविशत् प्रभु ।।२२

अब उस वाराह के स्वरूप में प्रभु के प्रवेश करने का विस्तृत शोभा समन्वित वर्णन किया जाता है—वह हरि का वाराह स्वरूप वेदनादियों का उपद्रष्टा था, क्रतु ही जिसका वक्ष स्थल था और चिति के मुख वाला था । उस वाराह की जिह्वा साक्षात् अग्निदेव थे, दर्भ रोम रूप थे, ब्रह्म जिसका शीर्ष (मस्तक) था, महान् तप वाला था ।।१६।। दिन और रात्रि रूपी नेत्रों को धारण करने वाला, वेद और षट् वेदों के अंगों के आभरण वाला, घृत ही जिसकी नासिका थी और स्रुवा जिसका मुख था तथा सामवेद का गान ही उसकी महान् ध्वनि थी ।।१७।। सत्य और धर्म से परिपूर्ण श्री से युक्त तथा धर्म रूपी विक्रम में सस्थिति करने वाला था । प्रायश्चित्त में अनुराग रखने

ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां कल्पादिषु यथा पुरा ॥३३

तस्याभिध्यायतः सर्गं तदा वै बुद्धिपूर्वकम् ।
प्रधानसमकालं वै प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥३४

तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः ।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥३५

उच्च और अचल होने से ये अचल कहे गये तथा पर्वों से पर्वत कहे गये हैं। अन्तर्निलीन होने से इनका नाम गिरि पड़ गया है। इनकी शिलाओं का चयन किये जाने से इनका नाम शिलोच्चय हुआ है।३०॥ इसके अनन्तर जब लोक समुद्र और पर्वतों के विलीन हो जाने पर विश्वकर्मा बारम्बार कल्पादि में निर्माण करते हैं ॥३१॥ समुद्रों के सहित इस पृथ्वी को सात द्वीपों को समस्त पर्वतों को और भूमण्डल से आदि चार लोकों को उसने पुनः प्रकल्पित किया था। इस तरह लोकों का प्रकल्पन करके फिर प्रजा के सर्ग की रचना की ॥३२॥ स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी ने अनेक प्रकार की प्रजा के सृजन की इच्छा करते ध्याता होकर जिस प्रकार पहिले कल्पादि में भी उसी रूप वाली सृष्टि की रचना की थी।३३॥ सर्ग को करने की भावना से अभिध्यान करते हुए उनके ध्यान में उस समय बुद्धिपूर्वक एक ही समय में प्रधान तथा तमोमय प्रादुर्भूत हुआ।३४॥ तम मोह महामोह तामिस्र और अन्धसंज्ञा वाला तथा महात्मा से पाँच पर्वों वाली यह अविद्या प्रादुर्भूत हुई ॥३५॥

पञ्चधावस्थितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः ।
स निस्तमसा चैव दीपः कुम्भवदावृतः ।
बहिरन्तःप्रकाशश्च स्तब्धो निःसंज्ञ एव च ॥३६

यस्मात्तेषां वृता बुद्धिर्मुखानि करणानि च ।
तस्मात्ते संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिताः ॥३७

मुख्यसर्गं तमायुक्तं ब्रह्मा दृष्ट्वा ह्यसाधकम् ।
अप्रसन्नमनाः सोऽथ ततो ध्यातोऽभ्यमन्यत ॥३८

तस्याभिध्यायतस्तत्र तिर्यक्स्रोतोऽभ्यवर्तत ।
यस्मात्तिर्यक् प्रवर्तेत तिर्यक्स्रोतस्ततः स्मृतम् ॥३९

तमोबहुत्वात्ते सर्गे ह्यज्ञानबहुला स्मृताः ।
उत्पथग्राहिणश्चापि ध्यानाद्ध्यानमानिन ॥४०
तिर्य्यक्स्रोतस्तु दृष्ट्वा वै द्वितीय विश्वमीश्वर ।
अहङ्कृता अहमना अष्टाविंशद्विधात्मका ॥४१
एकादशेन्द्रियविधा नवधा चोदयस्तथा ।
अष्टौ च तारकाद्याश्च तेषा शक्तिविधा स्मृता ॥४२

ध्यान करते हुए अभिमानी का वह सर्ग पाँच प्रकार से आश्रित हुआ । वह सर्ग कुम्भ में दीप की भाँति सब ओर से तम से आवृत था । बाहिर और अन्दर शुद्ध प्रकाश था, जिसकी कोई संज्ञा नहीं थी ॥३६॥ जिससे उनके द्वारा बुद्धि संवृत थी और मुख्य कारण संवृत थे, उससे वे संवृत आत्मा वाले नग मुख्य कहे गये हैं ॥३७॥ मुख्य सर्ग में ब्रह्माजी ने उस प्रकार के असाधक को देखकर अपने मन में बहुत ही अप्रसन्नता की और इसके अनन्तर उसने फिर न्यास करने को मन में माना ॥३८॥ इस प्रकार सर्ग करने के लिये उसके ध्यान करते हुए वहाँ पर तिर्यक् स्रोत हुआ । क्योंकि यह तिर्यक् व्यवहार करता है, इसीलिये यह 'तिर्यक् स्रोत' इस नाम से कहा गया है ॥३९॥ उन सब में तमोगुण की अधिकता होने से वे सब अधिक अज्ञान वाले कहे गये हैं । ध्यान के मानी के ध्यान से वे सभी उत्पथ के ग्रहण करने वाले भी थे ॥४०॥ तिर्यक् स्रोत वाले ईश्वर ने इस द्वितीय विश्व को देखा, क्योंकि कर्म में और मन में अहं भाव वाला तथा अट्ठाईस प्रकार के स्वरूप वाला है ॥४१॥ एकादश इन्द्रियों के प्रकार हैं तथा नौ उदय के प्रकार हैं, आठ तारक आदि के तथा उनकी शक्ति के प्रकार कहे गये हैं ॥४२॥

अन्त प्रकाशास्ते सर्वे आवृताश्च बहि पुन ।
यस्मात्तिर्यक् प्रवर्तेत तिर्य्यक्स्रोता स उच्यते ॥४३
तिर्यक्स्रोतांश्च दृष्ट्वा वै द्वितीय विश्वमीश्वर ।
अभिप्रायमथोद्भूत दृष्ट्वा सर्वन्तथाविधम् ।
तस्याभिध्यायतो नित्य सात्त्विक समवर्तत ॥४४
ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु स चैवोर्द्ध्वमवस्थित ।

यस्माद्व्यवर्ततोर्द्ध्वन्तु ऊर्द्धस्रोतास्ततः स्मृतः ॥५५
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तश्च संवृताः ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्द्धस्रोतोद्भवाः स्मृताः ॥५६
तेन ये तादृशो ज्ञेया सृष्टात्मानो व्यवस्थिताः ।
ऊर्द्धस्रोतास्तृतीयो यः तेन सर्गस्तु सः स्मृतः ॥५७
ऊर्द्ध स्रोतःसु सृष्टेषु देवेषु स तदा प्रभुः ।
प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा ततोऽन्यं सोऽभ्यमन्यत ।
ससर्ज सर्गमन्यं स साधकं प्रभुरीश्वरः ॥५८
अथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ।
प्रादुर्बभूव चाव्यक्तादर्वाक्स्रोतः सुसाधकम् ।
यस्मादर्वाक्व्यवर्तन्त ततोऽर्वाक्स्रोत उच्यते ॥५९
ते च प्रकाशबहुलास्तमःसंस्पृष्टा रजोऽधिकाः ।
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयो भूयश्च कारिणः ॥६०

इसलिये वे सब प्रकाश हैं और फिर बाहिर में सब आवृत हैं। जिस कारण से उनकी तिर्यक प्रवृत्ति होती है इसीलिये यह सर्ग तिर्यक स्रोत वाला कहा जाता है ।।५३। ईश्वर ने जो कि तिर्यक स्रोत वाला है इस द्वितीय विभाग को देखा और उस प्रकार वाले समस्त वस्तुओं अभिप्राय को देखा। इस तरह नित्य ही उस रचना के ध्यान करने वाले का तृतीय सात्त्विक हुआ ।।५४।। यह तृतीय सर्ग ऊर्ध्व स्रोत वाला था और ऊर्ध्व की ओर ही व्यवस्थित था। यह ऊर्ध्व की ओर प्रवृत था, इसी कारण से इसका नाम ऊर्ध्व स्रोता कहा गया है ।।५५।। वे सब सुख और प्रीति की बहुलता वाले थे बाहर और अन्दर संवृत थे बाहिर और अन्तर्भाग में प्रकाशमय थे। वे सब ऊर्ध्व स्रोतों द्वारा कहे गये हैं ।।५६।। इससे यह जानना चाहिए कि इस स्वरूप वाले व्यवस्थित हैं। यह तृतीय सर्ग ऊर्ध्व स्रोत वाला है अतः यह इसी नाम से कहा भी गया है ।।५७।। इन ऊर्ध्व स्रोतों में देवों के सृष्ट होने पर वह प्रभु ब्रह्मा उस समय प्रवृत्त ही प्रीति वाले हुए अर्थात् ब्रह्माजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इसके अनन्तर उन्होंने अन्य सर्ग करने का मन में विचार किया और

ईश्वर प्रभु ने अन्य साधक सर्गों की सृष्टि की ॥४८॥ इसके अनन्तर अभिध्यान करते हुए अर्थ सत्य का अभिध्यायी वे हुए तब उसका अव्यक्त से सुसाधक अर्वाक् स्रोत का प्रादुर्भाव हुआ। वह अर्वाक् की ओर परसाया करता है, इसी कारण से वह अर्वाक् स्रोत इस नाम से कहा जाता है ॥४९॥ और बहुल प्रकाश वाले वे होते हैं, जिनमें तम, सत्व और रजोगुण अधिक होता है। इससे वे पुनः पुनः करने वाले तथा अधिक दुःख वाले होते हैं ॥५०॥

प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते।
लक्षणैस्तारकाद्यैस्ते अष्टधा च व्यवस्थिताः ॥५१
सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते गन्धर्वसहधर्मिणः।
इत्येष तैजसः सर्गो ह्यर्वाक्स्रोताः प्रकीर्तितः ॥५२
पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गश्चतुर्द्धा स व्यवस्थितः।
विपर्य्ययेण शक्त्या च तुष्ट्या सिद्ध्या तथैव च।
विवृत्तं वर्तमानञ्च तेऽर्थं जानन्ति तत्वतः ॥५३
भूतादिकानां सत्त्वानां षष्ठः सर्गः स उच्यते।
विपर्य्ययेण भूतादिरशक्त्या च व्यवस्थितः ॥५४
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो महतस्तु सः।
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ॥५५
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः।
इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः ॥५६
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः।
तिर्य्यक्स्रोतास्तु यः सर्गस्तिर्य्यग्योनिः स पञ्चमः ॥५७

बाहिर और अन्दर प्रकाशयुक्त हैं। वे मनुष्य और साधक हैं। तारकाद्य लक्षणों से वे आठ प्रकार से व्यवस्थित होते हैं ॥५१॥ सिद्धात्मा वे मनुष्य, जो गन्धर्वों के सहधर्मी होते हैं। यह तैजस सर्ग होता है और अर्वाक् स्रोता कहा गया है ॥५२॥ पाँचवाँ अनुग्रह सर्ग होता है और वह चार प्रकार से व्यवस्थित होता है। विपर्यय से शक्ति से, तुष्टि से और चतुर्थ प्रकार में सिद्धि से व्यवस्थित है। वे विवृत्त और वर्तमान अर्थ को तत्वतः अर्थात् तात्त्विक रूप से

सबसे आगे अर्थात् पहिले ब्रह्माजी ने अपने ही समस्त मानसों का सृजन किया अर्थात् मन से समुत्पन्न होने वालों की रचना की। उन मानसों में सनन्दन सनक और विद्वान् सनातन हैं। वे महान् ओज वाले सबर्ज विशेष ज्ञान होने से निवृत्त हो गये अर्थात् निवृत्ति मार्ग के अनुगामी बन गये। वे प्रबुद्ध होते हुए तीनों ही इस नानात्व स्वरूप सृजन से अपविद्ध हो गये। प्रजा की सृष्टि को न करके ही वे फिर प्रतिसर्ग को चल गये ॥६६॥ उस समय उन सनकादि के चले जाने पर ब्रह्माजी ने तब फिर स्थानाभिमानी अन्य मानस साधकों का सृजन किया। अब मूल से लेकर सम्प्लवावस्था वालों के नामों को जान लो ॥६७॥ जल अग्नि पृथिवी वायु अन्तरिक्ष दिशा स्वर्ग दिक समुद्र नद शैल वनस्पति औषधियों की आत्मा तथा वीरुध और वृक्षों की आत्मा लव काष्ठा कला मुहूर्त सन्धि रात्रि दिवस पक्ष मास मास अयन वर्ष युग ये सब स्थानाभिमानी हैं अतः वे स्थान के नाम वाले कहे गये हैं ॥६८ ६६ ७० ॥ जिसके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए उसके वक्ष स्थल से क्षत्रिय उद्भूत हुए ऊरुओं से वैश्यों की उत्पत्ति हुई और पदों से शूद्र वर्ण वाले उत्पन्न हुए। इस तरह ये सभी वर्ण ब्रह्माजी के शरीर के विभिन्न भागों से ही उत्पन्न हुए हैं ॥७१॥ नारायण अव्यक्त से परे हैं और अण्ड अव्यक्त से उत्पन्न हुआ है। उस अण्ड से ब्रह्माजी ने जन्म ग्रहण किया और फिर उन ब्रह्माजी ने स्वयं इन समस्त लोकों की रचना की है ॥७२॥ यह पाद संक्षेप से कह दिया गया है। इसमें विस्तार नहीं किया है। यह आद्य पाद पुराण का भली भाँति कीर्तन किया गया है ॥७३॥

॥ वर्तमान कल्प में मानुषी सृष्टि ॥

एषोप प्रथम पाद संक्षिप्तार्थे प्रकीर्तित ।
श्रुत्वा तु संहृष्टमना काश्यपेय सनातन ॥१
सम्त्वोऽप्य सूत वचसा अपच्छद्योत्तरा कथाम् ।
अत प्रभृति कल्पस्य प्रतिसर्गं च प्रचक्ष्व न ॥२
समतीतस्य कल्पस्य वर्तमानस्य चोभयो ।
कल्पयोरन्तर चैव प्रतिसन्धिर्यतस्तयो ।

एतद्वेदितुमिच्छाम अत्यन्तकुशलो ह्यसि ॥३
अत्र वोऽहं प्रवक्ष्यामि प्रतिसन्धिं च यत्तयोः ।
समतीतस्य कल्पस्य वर्तमानस्य चोभयोः ॥४
मन्वन्तराणि कल्पेषु येषु यानि च सुव्रता ।
यश्चायं वर्तते कल्पो वाराहः साम्प्रतः शुभः ॥५
अस्मात् कल्पाच्च यः कल्पः पूर्वोऽतीतः सनातनः ।
तस्य चास्य च कल्पस्य मध्यावस्थां निबोधत ॥६
प्रत्याहृते पूर्वकल्पे प्रतिसन्धिं च तत्र वै ।
अन्यः प्रवर्तते कल्पो जनाल्लोकात् पुनः पुनः ॥७

इस प्रकार यह प्रथम पाद प्रक्रिया के लिये ही कहा गया है। इसका श्रवण करके सनातन काश्यपेय बहुत ही मन में प्रसन्न हुए ॥१॥ इसके अनन्तर वाणी से सूतजी का सम्बोधन करके उन्होंने इससे आगे की कथा पूछी—उन्होंने कहा—हे वक्ता! इससे आगे आप हमको प्रति-सन्धि का वर्णन कर समझावें ॥२॥ जो कल्प व्यतीत हो गया और इस समय वर्तमान है इन दोनों कल्पों की जो प्रति-सन्धि है उसे हम जानना चाहते हैं क्योंकि आप अत्यन्त कुशल हैं और सभी कुछ जानते हैं। यह हमें सुनाइये ॥ ३ ॥ लोमहर्षणजी ने कहा—मैं अब आपको समतीत कल्प और वर्तमान कल्प इन दोनों की जो प्रति-सन्धि होती है उसे बतलाता हूँ ॥४॥ हे सुव्रत वालो! जिन कल्पों में जो मन्वन्तर होते हैं और जो यह कल्प होता है वही बतलाता हूँ। वर्तमान समय के कल्प का शुभ नाम वाराह है ॥५॥ इस कल्प से पहिले जो सनातन कल्प व्यतीत हुआ है उस कल्प की और इस कल्प की मध्यावस्था को जान लो ॥६॥ पूर्व कल्प के प्रत्याहृत हो जाने पर वहाँ प्रति-सन्धि होती है और बार-बार जन-लोक से अन्य कल्प हुआ करता होता है ॥७॥

व्युच्छिन्नाः प्रतिसन्धेस्तु कल्पात् कल्पः परस्परम् ।
व्युच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वाः कल्पान्ते सर्वशस्तदा ।
तस्मात् कल्पात्तु कल्पस्य प्रतिसन्धिर्निगद्यते ॥८
मन्वन्तरयुगाख्यानामव्युच्छिन्नाश्च सन्धयः ।

परस्परा प्रवर्तन्ते मन्वन्तरयुगैः सह ॥८
उक्ता ये प्रक्रियार्थेन पूर्वकल्पाः समासतः ।
तेषां परार्द्धकल्पानां पूर्वो ह्यस्मात्तु यः परः ।
आसीत् कल्पो ह्यतीतो य परार्द्धेन परस्तु सः ॥१०
अन्ये भविष्या ये कल्पा अपरार्द्धगुणीकृताः ।
प्रथमं साम्प्रतस्तेषां कल्पोऽयं वर्तते द्विजाः ॥११
यस्मिन् पूर्वे परार्द्धे तु द्वितीये पर उच्यते ।
एतावान् स्थितिकालश्च प्रत्याहारस्तथैव च ॥१२
अस्मात् कल्पात्तु यः पूर्वं कल्पोऽतीतः सनातनः ।
चतुर्युगसहस्रान्तं सह मन्वन्तरैः पुरा ॥१३
क्षीणे कल्पे तदा तस्मिन् दाहकाले ह्युपस्थिते ।
तस्मिन् कल्पे तदा देवा आसन्वैमानिकास्तु ये ॥१४

प्रति सन्धि के व्युच्छिन्न होने से परस्पर में कल्प से कल्प के अन्त में समस्त क्रियायें उस समय सभी ओर से व्युच्छिन्न हो जाया करती हैं। इसी से कल्प से कल्प की प्रति-सन्धि कही जाती है ॥७-॥ कल्प की भाँति ही मन्वन्तर और युगों के नाम वालों की सन्धियाँ भी उच्छिन्न हुआ करती हैं और वे सब परस्पर में मन्वन्तर और युगों के साथ प्रवृत्त होते हैं ॥ ८ ॥ जो संक्षेप से प्रक्रियार्थ के द्वारा पूर्व कल्प कहे गये हैं अब उन कल्पों के परार्द्ध स्वरूपों में इससे जो पहिला था और जो पर था इससे परार्द्ध से जो कल्प व्यतीत हो गया वह पर था ॥९ ॥ हे द्विजो ! अपरार्द्ध से गुणीकृत अन्य जो कल्प भविष्य में होंगे उनमें इस समय रहने वाला यह प्रथम कल्प है जो अब वर्तमान में चल रहा है ॥११॥ जिस द्वितीय परार्द्ध में पूर्व पर कहा जाता है इतना ही स्थिति का काल प्रत्याहार कहा गया है ॥१२॥ इस वर्तमान कल्प से जो पहिला सनातन कल्प व्यतीत हो गया है वह पहिले मन्वन्तरों के साथ कृतयुग त्रेता द्वापर कलियुग इन चारों युगों के एक सहस्र बार हो जाने के अन्त में समाप्त हुआ है ॥१३॥ उस समय कल्प के क्षीण हो जाने पर दाह का काल उपस्थित हुआ और उससे अगले कल्प में उस समय देवता लोग जो थे वे विमानों में संस्थित हो गये थे ॥१४॥

नक्षत्रग्रहताराश्च चन्द्रसूर्यग्रहाश्च ये ।
अष्टाविंशतिरेवैता कोट्यस्तु सुकृतात्मनाम् ॥१५
मन्वन्तरे ह्येकस्मिन् चतुर्दशसु वै तथा ।
त्रीणि कोटिशतान्यासन् कोट्यो द्विनवतिस्तथा ।
अष्टाधिका सप्तशता सहस्राणां स्मृता पुरा ॥१६
वैमानिकानां देवानां कल्पेऽतीते तु येऽभवन् ।
एकैकस्मिंस्तु कल्पे वै देवा वैमानिकाः स्मृताः ॥१७
अथ मन्वन्तरेष्वासंश्चतुर्दशसु वै दिवि ।
देवाश्च पितरश्चैव मुनयो मनवस्तथा ॥१८
तेषामनुचरा ये च मनुपुत्रास्तथैव च ।
वर्णाश्रमिभिरीड्यास्ते तस्मिन् काले तु ये सुराः ।
मन्वन्तरेषु ये ह्यासन् देवलोके दिवौकसः ॥१९
ते वै सायोजकं सार्द्धं प्राप्ते सङ्कलने तथा ।
तुल्यनिष्ठास्तु ते सर्वे प्राप्ते त्वाभूतसम्प्लवे ॥२०
ततस्तेऽन्यस्य भावित्वाद्बुद्ध्वा पर्यायमात्मनः
त्रैलोक्यवासिनो देवास्तस्मिन् प्राप्ते ह्युपप्लवे ॥२१
तेऽनौत्सुक्यविषादेन त्यक्त्वा स्थानानि भावतः ।
महर्लोकाय संविग्नास्ततस्ते दधिरे मतिम् ॥२२

और जो नक्षत्र, ग्रह और तारा थे तथा चन्द्र, सूर्य आदि ग्रह थे वे सब सुकृतात्माओं की अट्ठाईस करोड़ ही संख्या थी ॥ १५ ॥ इसी प्रकार एक मन्वन्तर में तथा चौदह मन्वन्तरों में तीन सौ करोड़ थे और पहिले अट्ठानवें करोड़ सात सौ सहस्र कहे गये हैं ॥ १६ ॥ कल्प के व्यतीत हो जाने पर विमानों में संस्थित देवताओं में जो हुये वे एक एक कल्प में विमानों में बैठने वाले देवता कहे गये हैं ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर दिव में चौदह मन्वन्तरों में इसी भाँति देवता, पितर, मुनि लोग और मनुगण थे ॥ १८ ॥ और इनके अनुगामी जो मनु पुत्र थे और इसी प्रकार वर्णों तथा आश्रमों से रहने वालों के द्वारा वन्दित हुये जो उस समय में सुरगण थे और मन्वन्तरों में भी दिव में रहने

वाले देवलोक में थे वे सब सङ्कलन के प्राप्त होने पर उन सबोंकों के साथ भूतं सम्प्लव के प्राप्त होने के समय में तुल्यनिष्ठा वाले थे ॥ १८-१९ ॥ इसके पश्चात् उन महेश्वर के नित्य ही देवों ने अवश्यम्भावी होने से अपनी पारी को जानकर उस उपप्लव के प्राप्त होने पर उत्सुकता और विषाद न रखते हुये भाव से स्थानों का त्याग करके फिर महर्लोक के लिये उन्मुख होते हुये उद्योग अपनी बुद्धि धारण की ॥ १—२२ ॥

ते युक्ता उपपद्यन्ते महर्षिस्थ शरीरक ।
विशुद्धिबहुला सर्व मानसी सिद्धिमास्थिता ॥२३
स कल्प वासिभि सार्द्ध महानासादितस्तु य ।
ब्राह्मणै क्षत्रियैर्वैश्यैस्तद्भक्तैरथापरजनै ॥२४
गत्वा तु ते महर्लोकं देवसङ्घाश्चतुर्दश ।
ततस्ते जनलोकाय सोद्वेगा दधिरे मतिम् ॥२५
विशुद्धिबहुला सर्वे मानसी सिद्धिमास्थिता ।
तैं कल्पवासिभि सार्द्धं महानासादितस्तु यै ॥२६
दशकल्प इवावस्था तस्मादुगच्छन्ति स्वस्तप ।
तप कल्पान् दश स्थित्वा सत्य गच्छन्ति वै पुन ।
एतेन क्रमयोगेन यान्ति कल्पनिवासिन ॥२७
एव देवयुगानान्तु सहस्राणि परस्परात् ।
गतानि ब्रह्मलोकं वै अपरावर्तिनी गतिम् ॥२८

वे सब अधिक विशुद्धि वाले और मानसी सिद्धि में समास्थित होते हुए महर्लोक में स्थित शरीर वे युक्त होकर उपपन्न होते हैं ॥ २३ ॥ जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और उनके भक्त दूसरे लोग हैं उन कल्पवासियों के साथ उन्होंने महान् को प्राप्त कर लिया था ॥ २४ ॥ वे चौदह देव सङ्घ महर्लोक को जाकर फिर उन्होंने जन लोक के लिये उद्वेग के साथ अपना विचार किया ॥२५॥ विशुद्धि की बहुलता वाले वे सब मानसी सिद्धि में समास्थित हो गये और उन कल्पवासियों के साथ जिन्होंने महान् को प्राप्त किया था ॥ २६ ॥ वहाँ पर वे दस बार की उपस्थिति स्वर्लोक और तपलोक को जाते हैं वहाँ दस कल्प पर्यन्त

रहकर फिर वे सत्य लोक को जाते हैं। इसी क्रम के योग्य से कल्प निवासी जाते हैं ॥ २७ ॥ इस प्रकार से देव युगों के सहस्र अर्थात् सहस्रों देवयुग परस्पर से व्यतीत हुये फिर ब्रह्मलोक को अपरावर्तिनी गति को प्राप्त हुये ॥ २८ ॥

आधिपत्यं विना ते वै ऐश्वर्येण तु तत्समा ।
भवन्ति ब्रह्मणस्तुल्या रूपेण विषयेण च ॥२९
तत्र ते ह्यवतिष्ठन्ति प्रीतियुक्ता प्रसङ्गमात् ।
आनन्दं ब्रह्मण प्राप्य मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह ॥३०
अवश्यम्भाविनार्थेन प्राकृतेनैव ते स्वयम् ।
नाना त्वेनाभिसम्बद्धास्तदा तत्कालभाविनः ॥३१
स्वरूपतो बुद्धिपूर्वं यथा भवति जाग्रत. ।
तत्कालभावि तेषां तु तथा ज्ञानं प्रवर्तते ॥३२
प्रत्याहारे तु भेदाना येषां भिन्नाभिसूक्ष्मणाम् ।
तं सार्द्धं प्रतिसृज्यन्ते कार्याणि करणानि च ॥३३
नानात्वदर्शनात्तेषां ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ।
विनष्टस्वाधिकाराणां स्वेन धर्मेण तिष्ठताम् ॥३४
ते तुल्यलक्षणा सिद्धा शुद्धात्मानो निरञ्जना ।
प्रकृतौ कारणातीता स्वात्मन्येव व्यवस्थिता ॥३५

वहाँ वे आधिपत्य के बिना वैभव में उन्हीं के समान रूप और विषय में ब्रह्मा के ही तुल्य होते हैं ॥ २९ ॥ वहाँ पर सुन्दर सङ्गम होने से बड़ी ही प्रीति से युक्त होकर वे रहते हैं। ब्रह्मा के आनन्द को प्राप्त कर ब्रह्मा के साथ ही मुक्त किये जाते हैं ॥ ३० ॥ वे स्वयं अवश्यम्भावी प्राकृत अर्थ से ही नानात्व से अभिसम्बद्ध होते हुये उस समय उस काल में होने वाले होते हैं ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार जाग्रत स्वरूप से बुद्धिपूर्वक होता है उस काल में होने वाला उनका वैसा ही ज्ञान प्रवृत्त होता है ॥ ३२ ॥ भिन्न अभिमुख जिनके भेदों के प्रत्याहार में ही उनके साथ कार्य और करण प्रतिसृष्टि किये जाते हैं ॥ ३३ ॥ अपने अधिकारों के विनाश हो जाने वाले, अपने धर्म से स्थित रहने वाले और ब्रह्मलोक के निवास करने वाले उनके नानात्व के दर्शन से वे तुल्य

में चले जाते हैं और जन्म तथा पाप के अनुबन्ध वाली जन्म योनि से निर्मुक्त नहीं होते हैं ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर वे मनुष्य जन लोक में शुद्ध रूप वाले होते हैं। उस समय वे सब प्रचुर विशुद्धि वाले होते हुए मानसी सिद्धि में व्यवस्थित हुआ करते हैं ॥ ४५ ॥ वहाँ पर अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा की एक रात निवास कर फिर वहीं सर्ग में ब्रह्मा की मानसी अर्थात् मन से समुद्भव वाली प्रजा होते हैं ॥ ४६ ॥ इसके पश्चात् उन सत्यलोक-वासियों की ही जन-लोक के प्रपन्न होने पर और सात महत्तर धर्मों के द्वारा उन लोकों के ... हो जाने पर उन परम निर्माण यानी में वृष्टि से समाप्त भूमण्डल के प्लावित हो जाने पर सब समुद्र मेघ और पार्थिव जल तदाश्रित होते हुए सलिल नाम वाले एकार्णवता को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४७–४८ ॥ आया हुआ और बिना गति वाला वह सलिल जब अत्यधिक मात्रा में हो जाता है तब वह इस सम्पूर्ण भूमि को ढककर यह अर्णव नाम वाला हो जाता है ॥ ४९ ॥

आभाति यस्मादाभाति भासन्तो व्याप्तिदीप्तिषु ।
सर्वतः समनुप्राप्य तासामम्भो विभाव्यते ॥५०
तदम्भस्तनुते यस्मात् सर्वां पृथ्वीं समन्ततः ।
धातुस्तनोति विस्तारे तेनाम्भस्तनवः स्मृताः ॥५१
अरमित्येष शीघ्रस्तु निपातः कविभिः स्मृतः ।
एकार्णवे भवन्त्यापो न शीघ्रास्तेन ता नराः ॥५२
तस्मिन् युगसहस्रान्ते संस्थिते ब्रह्मणोऽहनि ।
रजन्यां वर्तमानायां तावत्तत् सलिलात्मना ॥५३
ततस्तु सलिले तस्मिन्नष्टेऽग्नौ पृथिवीतले ।
प्रशान्तवातेऽन्धकारे निरालोके समन्ततः ॥५४
येनैवाधिष्ठितं हीदं ब्रह्मा स पुरुषः प्रभुः ।
विभागमस्य लोकस्य पुनर्वै कर्तुमिच्छति ॥५५
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥५६

जिसके कारण से व्याप्त दीप्तियों से भी भासमान होते हैं वे भी सब

समय भासित नहीं होती है । गय ओर से भली भांति प्लावन कर अर्थात् निमग्न करके उस समय केवल उनके जल ही विभावित होता था ॥५०॥ क्योंकि यह जल पूर्णतया विस्तार वाला होता है और इस समस्त पृथ्वी को सब ओर से घेर लेता है। विधाता के विस्तार के फैलाने पर वे इसमें जल के सत्व पड़े गये हैं ॥५१॥ अत - यह कवियों के द्वारा शीघ्र निपात कहा गया है। एकार्णव में जल ही होते हैं और इसमें वे नर शीघ्र नहीं होते हैं। ५२। ब्रह्माजी के दिन के सदृश्य होने पर उस एक सहस्र युग के अन्त में तब तक केवल जल के स्वरूप से ही इस पृथ्वी के वर्त्तमान रहने पर इसके पश्चात् उस जल के पृथ्वी तल में रहने वाली अग्नि से नष्ट हो जाने पर पानी और निरालोक अर्थात् प्रकाश से हीन अन्धकार छाया हुआ था और वात प्रशान्त हो गया था ऐसे समय में जिसके द्वारा यह अधिष्ठित था वह ब्रह्मा पर पुरुष प्रभु था और उसने फिर इस लोक के विभाग करने की इच्छा की अथवा इच्छा करता है ॥५३-५४-५५॥ उस एक अर्णव अर्थात् समुद्र में समस्त स्थावर और जङ्गम के नष्ट हो जाने पर उस समय वह ब्रह्मा सहस्र नेत्र और सहस्र चरण वाला हो जाता है ॥५६॥

सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥५७
सत्त्वोद्रेकात् प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमवेक्ष्य च ।
इमञ्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ॥५८
आपो नारा वै तनव इत्येवं शुश्रुम ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥५९
सहस्रशीर्षा सुमना सहस्रपात् सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रभुक् ।
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीपथे यः पुरुषो निरुच्यते ॥६०
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता एको ह्यपूर्वः प्रथमं तुराषाट् ।
हिरण्यगर्भः पुरुषो महात्मा स पठ्यते वै तमसः परस्तात् ॥६१
कल्पादौ रजसोद्रिक्तो ब्रह्मा भूत्वाऽसृजत् प्रजाः ।
कल्पान्ते तमसोद्रिक्तो कालो भूत्वाऽग्रसत् पुनः ॥६२

स च नारायणस्त्वेवं सत्त्वोद्रिक्तोऽर्णवे स्वपन् ।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये सम्प्रवर्त्तते ॥६३

सहस्र शीर्षों वाला हेम के तुल्य देदीप्यमान वर्ण वाला समस्त इन्द्रियों से अगोचर अर्थात् परे वह पुरुष ब्रह्मा नारायण—इस नाम वाला उस समय में जल में शयन करता था ॥५७॥ सत्त्व की अधिकता के होने से वह प्रबुद्ध अर्थात् जाग्रत हुआ और उसने पहला युक्त होकर इस लोक को शून्य देखा। यहाँ पर अब नारायण के प्रति इस निम्न श्लोक को उदाहृत करते हैं ॥५८॥ आप अर्थात् जल नार इस नाम वाले हैं यही नरों के नाम को सुनते हैं। यहाँ पर शरीर को आपूरित कर वह होता है इसलिये नारायण यह कहा गया है ॥५९॥ सहस्र शीर्ष (मस्तक) वाला सहस्र नयन वाला सहस्र चरणों वाला सहस्र नेत्रों वाला सहस्र मुख वाला सहस्र को भोग करने वाला सहस्र बाहुओं वाला प्रथम प्रजापति है जो यज्ञों में पुरुष कहा जाता है ॥६०॥ सूर्य के तुल्य वर्ण वाला भुवन की रक्षा करने वाला एक ही प्रथम पुरुष है हिरण्यगर्भ महात्मा और पुरुष है जो तम से पर कहा जाता है ॥६१॥ यही कल्प के आदि में रजोगुण के उद्रेक से युक्त होकर ब्रह्मा बनकर प्रजाओं का सृजन करता था और जब कल्प का अन्त होता तो उस समय में काल होकर फिर उस सृष्टि का ग्रसन कर लेता था ॥६२॥ वही नारायण नाम वाला सत्त्वगुण से उद्रिक्त होता हुआ समुद्र में शयन करता है तथा वह इस प्रकार अपने स्वरूप को तीन रूपों में विभक्त करके त्रैलोक्य में वर्तमान किया करता है ॥६३॥

सृजते ग्रसते चैव वीक्षन्ते च त्रिभिस्तु ताः ।
एकार्णवे तदा लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥६४
चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः सलिलाप्लुते ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु अप्रकाशार्णवे स्वपन् ॥६५
चतुर्विधाः प्रजा ग्रस्त्वा ब्राह्मया रात्र्या महार्णवे ।
पश्यन्ति तं महर्लोकात् सुप्तं कालं महर्षयः ॥६६
भृग्वादयो यथा सात्म कल्पे ह्यस्मिन् महर्षयः ।
ततो विवर्तमानैस्तैर्महान् परिमितः परः ॥६७

गत्यर्थाद् ऋषतो धातोर्नामनिर्वृत्तिरादित ।
तस्मादृषिपरत्वेन महांस्तस्मान्महर्षय ॥६८
महर्लोकस्थितैर्दृष्ट काल सुप्तस्तदा च तैं ।
सत्याद्या सप्त ये ह्यासन् कल्पेऽतीते महर्षय ॥६९
एव ब्राह्मीषु रात्रीषु ह्यतीतासु सहस्रश ।
दृष्टवन्तस्तथा ह्यन्ये सुप्त काल महर्षय ॥७०

इन तीन रूपों से उन लोकों का सृजन करता है, ग्रसन करता है और इनका वीक्षण करता है। अब एकार्णव में स्थावर और जङ्गम लोक के नष्ट हो जाने पर इस लोक ग्रसन का कार्य भी नहीं किया करता है किन्तु प्रत्येक कार्य के स्वरूप भिन्न हैं ॥६४॥ सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन चारों युगों की चौकड़ी के एक सहस्र संख्या समाप्त हो जाती हैं तब उसके अन्त में सब ओर जल से आवृत होने पर प्रकाश रहित अर्थात् अन्धकारमय सागर में नारायण नाम वाले ब्रह्मा शयन करते हुए चारों प्रकार की प्रजा का ग्रास करके ब्राह्मी रात्रि में महार्णव में स्थित रहते हैं और महर्षिगण महर्लोक से उस सुप्तकाल को देखते हैं ॥६५-६६॥ इस कल्प में भृगु आदि सात महर्षि कहे गये हैं। उनके द्वारा विशेष रूप से वहाँ उपस्थित होकर वह पर महान् चारों ओर से परिगत होगया ॥६७॥ गति के अर्थ वाली धातु से 'ऋषि'—इस नाम की निर्वृत्ति होती है। उससे महान् वह भी ऋषि परत्व है अतएव महर्षय, ऐसा कहा गया है ॥६८॥ महर्लोक में स्थित उनके द्वारा उस समय काल सुप्त होता हुआ देखा गया। अतीत कल्प में सत्य आद्य ये सात महर्षि थे ॥६९॥ इस प्रकार से सहस्रों ही ब्राह्मी अर्थात् ब्रह्मा से सम्बन्ध रखने वाली रात्रियाँ व्यतीत हो जाने पर उसी प्रकार से उस समय अन्य महर्षियों ने भी काल को सोया हुआ देखा ॥७०॥

कल्पस्यादौ तु बहुशो यस्मात् सत्यश्चतुर्दश ।
कल्पयामास वै ब्रह्मा तस्मात् कालो निरुच्यते ॥७१
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुन पुन ।
अव्यक्ताव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिद जगत् ॥७२
इत्येष प्रतिसन्धिर्वं कीर्त्तित कल्पयोर्द्वयो ।

साम्प्रतातीतयोर्मध्ये प्रागवस्था बभूव या ॥७३
कीर्तिता तु समासेन कल्पे कल्पे यथा तथा ।
साम्प्रतं ते प्रवक्ष्यामि कल्पमेतं निबोधत ॥७४

कल्प के आदि में ब्रह्मा ने बहुत सी चौदह व्यवस्थाओं की कल्पना की थी इसीलिये वह काल ऐसा कहा जाता है ॥७१॥ कल्पों के आदि कालों में समस्त प्राणियों का सृजन करने वाला वह महादेव बार-बार व्यक्त और अव्यक्त होता है और उसी का यह समस्त जगत् है ॥७२॥ यही दोनों कल्पों की प्रतिसन्धि होती है जो आपके समक्ष में वर्णित करदी गई है । अब के समय वाले और व्यतीत हुए इन दोनों के मध्य में जो प्रागवस्था हुई थी वह संक्षेप से वर्णन करदी गई है जो जैसी कल्प कल्प में थी । अब आपके सामने इस कल्प का वर्णन करता हूँ उसे आप लोग श्रवण करें या समझ लेवें ॥७३ ७४॥

॥ मानव सभ्यता का आरम्भ ॥

तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य स ।
शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥१
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुर्भूत्वा तदाचरत् ।
अन्धकारे तदा तस्मिन् नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥२
जलेन समनुव्याप्ते सर्वतः पृथिवीतले ।
अविभागेन भूतेषु समन्तात्सुस्थितेषु च ॥३
निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्ततः ।
तदाकाशे चरन् सोऽथ वीक्ष्यमाणः स्वयम्भुवः ॥४
प्रतिष्ठार्था ह्युपायन्तु मार्गमाणस्तदा प्रभुः ।
ततस्तु सलिले तस्मिन् ज्ञात्वा ह्यन्तर्गतां महीम् ॥५
अनुमानात्तु सम्बुद्धो भूमेरुद्धरणं प्रति ।
अकरोत्स तनुं चान्यां पूर्वकल्पादिषु स्मृताम् ॥६
स तु रूपं वराहस्य कृत्वाऽपः प्राविशत् प्रभुः ।
अद्भिः सञ्छादितामुर्वीं समीक्ष्याथ प्रजापतिः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब एक सहस्र युगों के तुल्य रात्रि के समय को

उपासना कर फिर रात्रि के अन्त में सर्ग करने के कारण से ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है ॥१॥ उस जल में वायु के स्वरूप से इधर-उधर विचरण करता था क्योंकि उस समय स्थावर और जङ्गम सब के नष्ट हो जाने पर यहाँ केवल अन्धकार ही अन्धकार था ॥२॥ समस्त यह पृथ्वीतल चारों ओर से जल में ही समनुव्याप्त हो रहा था और वहाँ समस्त प्राणी विभाग रहित होते हुए सुस्थित थे ॥३॥ जिस तरह वर्षा ऋतु में रात्रि के समय में खद्योत इधर से उधर विचरण करता हुआ दिखाई दे जाता है इस तरह यह भी उस समय आकाश में इधर-उधर घूमता हुआ दिखाई देता था ॥४॥ उस समय प्रभु ने पुनः प्रतिष्ठा के उपाय की खोज करते हुए उस जल के अन्दर गई हुई भूमि का ज्ञान प्राप्त किया ॥५॥ उस समय अनुमान से भली-भाँति ज्ञान प्राप्त करने से भूमण्डल के उद्धार करने के कार्य की ओर पूर्ण चेतना प्राप्त की और पहिले कल्प आदि में धारण किया हुआ शरीर का स्मरण किया ॥६॥ उस समय प्रजापति ने जल द्वारा सम्यक् प्रकार से आच्छादित इस भूमि को देखकर उन्होंने तब वाराह का स्वरूप धारण कर जल के अन्दर प्रवेश किया था ॥७॥

उद्धृत्योर्वीमथाद्भ्यस्तु अपस्तास्तु स विन्यसत् ।
सामुद्रीस्तु समुद्रेषु नादेयीर्निम्नगास्वपि ।
पार्थिवीस्तु स विन्यस्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन् ॥८
प्राक्सर्गे दह्यमाने तु तदा संवर्तकाग्निना ।
तेनाग्निना प्रलीनास्ते पर्वता भुवि सर्वशः ॥९
शैत्यादेकार्णवे तस्मिन् वायुनापस्तु संहताः ।
निषक्ता यत्र यत्रासंस्तत्र तत्राऽचलोऽभवत् ॥१०
स्कन्नाचलत्वादचला पर्वभिः पर्वताः स्मृताः ।
गिरयोऽद्भिर्निगीर्णत्वाच्चयनाच्च शिलोच्चयाः ॥११
ततस्तु तां समुद्धृत्य क्षितिमन्तर्जलात् प्रभुः ।
स्वस्थाने स्थापयित्वा च विभागमकरोत् पुनः ॥१२
सप्त सप्त तु वर्षाणि तस्या द्वीपेषु सप्तसु ।
विषमाणि समीकृत्य शिलाभिरचिनोद्गिरीन् ॥१३

द्वीपेषु तेषु वर्षाणि चत्वारिंशत्तथैव च ।
तावन्तः पर्वताश्चैव वर्षान्ते समवस्थिताः ।
सर्गादौ सन्निविष्टास्ते स्वभावेनैव नान्यथा ॥१४

इसके अनन्तर जल में निमग्न भूमण्डल का उद्धार किया और उस जल का वहीं विन्यास किया था। जो समुद्र से सम्बन्ध रखने वाला जल था उसको समुद्रों में और जो नदियों से सम्बद्ध था उसका नदियों में विन्यास किया। जो पृथ्वी से सम्बन्धित था उसे पृथ्वी में ही विन्यास किया तथा उसने पृथ्वी में पर्वतों को चुन दिया था ॥८॥ पहिले युग में उस समय संवर्ताग्नि के द्वारा चारों ओर से दाह के होने से भूमि में उस अग्नि से समस्त पर्वत प्रलीन हो गये थे ॥९॥ शैत्य के कारण से उस एकार्णव में वायु के द्वारा संहृत जल जहाँ-जहाँ पर निषिक्त हुए वहाँ वहीं वह अचल हो गये थे ॥१०॥ वे स्कन्न होकर अचल होने से अचल और इसमें पर्वों के होने के कारण से वे पर्वत कहलाये गये हैं। जल के द्वारा पूर्णतया निगीर्ण हो जाने से गिरि और शिलाओं के चय में स्थित होने के कारण से इन्हें शिलोच्चय कहा जाता है ॥११॥ इसके अनन्तर प्रभु ने उस भूमि को जलतल से उद्धृत करके पुनः उसे अपने ही स्थान पर स्थापित कर दिया था और फिर उसका विभाग भी किया था ॥१२॥ उस भूमि मण्डल के सात सात द्वीपों में सात-सात वर्षों की रचना की और जो विषम स्थल थे उनको समान बनाकर पर्वतों को शिलाओं से चुन दिया था ॥१३॥ उन द्वीपों में चालीस वर्ष और उतने ही पर्वत वर्ष के अन्त में समवस्थित थे। सर्ग के आदि में वे स्वभाव से ही सन्निविष्ट हो गये थे अन्यथा कुछ भी नहीं किया गया था ॥१४॥

सप्तद्वीपाः समुद्राश्च अन्योन्यस्य तु मण्डलम् ।
सन्निकृष्टाः स्वभावेन समावृत्य परस्परम् ॥१५
भूराद्याश्चतुरो लोकाश्चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ।
पूर्वं तु निर्ममे ब्रह्मा स्थानानीमानि सर्वशः ॥१६
कल्पस्य चास्य ब्रह्मा च ह्यसृजत् स्थानिनः पुरा ।
आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिवं तथा ॥१७

स्वर्गं दिशः समुद्रांश्च नदी सर्वांश्च पर्वतान् ।
ओषधीनां तथात्मानमात्मानं वृक्षवीरुधाम् ॥१८
लवाः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्तं सन्धिरात्र्यहम् ।
अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगानि च ॥१९
स्थानाभिमानिनश्चैव स्थानानि च पृथक् पृथक् ।
स्थानात्मानं स सृष्ट्वा वै युगावस्था विनिर्ममे ॥२०
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिं चैव तथा युगम् ।
कल्पस्यादौ कृतयुगे प्रथमे सोऽसृजत् प्रजाः ॥२१

सात द्वीप और समुद्र अन्योन्य के मण्डल से सन्निकृष्ट होगये और वे परस्पर में अपने ही आप स्वभाव से समावृत हो गये थे ॥१५॥ सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने सूर्य और चन्द्रादि ग्रहों के साथ भू-इस नाम वाले चार लोकों का निर्माण किया और इनके सब ओर से स्वामी की रचना की थी ॥१६॥ इस कल्प के ब्रह्माजी ने पहिले स्थानियों का सृजन किया। जैसे—जल, अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष और इसी प्रकार से दिव-इन सब का सृजन किया जो कि स्थानी होते हैं ॥१७॥ इसी तरह स्वर्ग, दिशा, समुद्र, नदी, पर्वत समस्त ओषधियों के स्वरूप तथा सम्पूर्ण वृक्ष और वीरुधों के रूप की रचना की थी ॥१८॥ लव, काष्ठा, कला, मुहूर्त, सन्धि, रात्रि और दिन, पक्ष, मास, अयन, युग और वर्ष ये सब स्थान और इनके पृथक् पृथक् स्थानों के अभिमानी अर्थात् उनमें रहने वाले उन्होंने स्थानों के स्वरूपों का सृजन कर फिर युगों की अवस्था का निर्माण किया था ॥१९-२०॥ कृत युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चारों युगों का सृजन कर कल्प के आदि काल में उनने सर्वप्रथम कृत युग में प्रजाओं की सृष्टि की थी ॥२१॥

प्रागुक्ता या मया तुभ्यं पूर्वकालं प्रजास्तु ताः ।
तस्मिन् संवर्त्तमाने तु कल्पे दग्धास्तदाऽग्निना ॥२२
अप्राप्ता यास्तपोलोकं जनलोकं समाश्रिताः ।
प्रवर्त्तन्ति पुनः सर्गे बीजार्थं ता भवन्ति हि ॥२३
बीजार्थेन स्थितास्तत्र पुनः सर्गस्य कारणात् ।

द्वीपेषु तेषु सर्वाणि सत्वादिरात्स्थव च ।
तावन्त पर्वताश्च व वर्षान्ते समवस्थिता ।
सर्गादौ सन्निविष्टास्ते स्वभावेनैव नान्यथा ॥१४

इसके अनन्तर जल में निमग्न भूमण्डल का उद्धार किया और उस जल का वहीं विभाग किया था । जो समुद्र से सम्बन्ध रखने वाला जल था उसको समुद्रों में और जो नदियों से सम्बद्ध था उसका नदियों में विन्यास किया । जो पृथ्वी में संगत था उसे पृथ्वी में ही विन्यास किया तथा उसने पृथ्वी में पर्वतों को पूर्ण किया था ॥८॥ पहिले सर्ग में उस समय संवर्ताग्नि के द्वारा चारों ओर से दाह के होने से भूमि में उस अग्नि से समस्त पर्वत प्रलीन हो गये थे ॥९॥ शैत्य के कारण से उस एकार्णव में वायु के द्वारा संहृत जल जहाँ-जहाँ पर निषिक्त हुए वहीं वहीं सब अचल हो गये थे ॥१०॥ वे इकट्ठे होकर अचल होने से अचल और इनमें पर्वों के होने के कारण से ये पर्वत कहलाये गये हैं । जल के द्वारा पूर्णतया निगीर्ण हो जाने से गिरि और शिलाओं के बहुत से संचय होने के कारण से इन्हें शिलोच्चय कहा जाता है ॥११॥ इसके अनन्तर प्रभु ने उस भूमि को रसातल से उद्धृत करके पुनः उसे अपने ही स्थान पर स्थापित कर दिया था और फिर उसका विभाग भी किया था ॥१२॥ उस भूमि मण्डल के सात सात द्वीपों में सात-सात वर्षों की रचना की और जो विषम स्वरूप में थे उनको समान करके पर्वतों की शिलाओं से पूर्ण किया था ॥१३॥ उन द्वीपों में जितने वर्ष और उतने ही पर्वत वर्ष के अन्त में समवस्थित थे । सर्ग के आदि में वे स्वभाव से ही सन्निविष्ट हो गये थे अन्यथा कुछ भी नहीं किया गया था ॥१४॥

सप्तद्वीपाः समुद्राश्च अन्योन्यस्य तु मण्डलम् ।
सन्निकृष्टा स्वभावेन समावृत्य परस्परम् ॥१५
भूराद्यांश्चतुरो लोकांश्च द्वादित्यो ग्रहैः सह ।
पूर्वं तु निर्ममे ब्रह्मा स्थानानीमानि सर्वशः ॥१६
कल्पस्य चास्य ब्रह्मा वै ह्यसृजत् स्थानिन पुरा ।
आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिवं तथा ॥१७

स्वर्गं दिश: समुद्रांश्च नदी: सर्वांश्च पर्वतान् ।
ओषधीनां तथात्मानमात्मानं वृक्षवीरुधाम् ।।१८
लवाः काष्ठा: कलाश्चैव मुहूर्तं सन्धिराश्यहम् ।
अर्द्धमासांश्च मासांश्च अयनाब्दयुगानि च ।।१६
स्थानाभिमानिनश्चैव स्थानानि च पृथक् पृथक् ।
स्थानात्मानः स सृष्ट्वा वै युगावस्था विनिर्ममे ।।२०
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिं चैव तथा युगम् ।
कल्पस्यादौ कृतयुगे प्रथमे सोऽसृजत् प्रजाः ।।२१

सात द्वीप और समुद्र अन्योन्य के मण्डल के सन्निकृष्ट होगये और वे परस्पर में अपने ही आप स्वभाव से समावृत हो गये थे ।।१५।। सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने सूर्य और चन्द्रादि ग्रहों के साथ भूः इस नाम वाले चार लोकों का निर्माण किया और इनके सब ओर से स्थलों की रचना की थी ।।१६।। इस कल्प के ब्रह्माजी ने पहिले स्थानियों का सृजन किया । जैसे—जल, अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष और इसी प्रकार से दिव इन सब का सृजन किया जो कि स्थानी होते हैं ।।१७।। इसी तरह स्वर्ग, दिशाएं, समुद्र, नदी, पर्वत समस्त ओषधियों के स्वरूप तथा सम्पूर्ण वृक्ष और वीरुधों के रूप की रचना की थी ।।१८।। लव, काष्ठा, कला, मुहूर्त, सन्धि, रात्रि और दिन, पक्ष, मास, अयन, युग और वर्ष ये सब स्थान और इनके पृथक् पृथक् स्थानों के अभिमानी अर्थात् उनमें रहने वाले उन्होंने स्थानों के स्वरूपों का सृजन कर फिर युगों की अवस्था का निर्माण किया था ।।१९-२०।। कृत युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चारों युगों का सृजन कर कल्प के आदि काल में उनने सर्वप्रथम कृत युग में प्रजाओं की सृष्टि की थी ।।२१।

प्रागुक्ता या मया तुभ्यं पूर्वकाले प्रजास्तु ताः ।
तस्मिन् संवर्त्तमाने तु कल्पे दग्धास्तदाऽग्निना ।।२२
अप्राप्ता यास्तपोलोकं जनलोकं समाश्रिताः ।
प्रवर्त्तन्ति पुनः सर्गं बीजार्थं ता भवन्ति हि ।।२३
बीजार्थेन स्थितास्तत्र पुनः सर्गस्य कारणात् ।

ते सर्वे रजसोद्रिक्ता शुष्मिणश्चाप्यशुष्मिण ॥ ३७
सृष्ट्वा सहस्रमन्यत्तु द्वन्द्वानामूरुत पुन ।
रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ता ईहाशीलास्तु ते स्मृता ॥३८
पद्भ्यां सहस्रमन्यत्तु मिथुनानां ससर्ज ह ।
उद्रिक्तास्तमसा सर्वे निश्रीका ह्यल्पतेजस ॥ ३९
ततो वै हृष्यमाणास्ते द्वन्द्वोत्पन्नास्तु प्राणिन ।
अन्योन्यं हृच्छयाविष्टा मैथुनायोपचक्रमु ॥४०
ततः प्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनोत्पत्तिरुच्यते ।
मासि मास्यार्तवं यद्वत्तदासीन्न हि योषिताम् ॥४१
तस्मात्तदा न सुषुवु सेवितैरपि मैथुन ।
आयुषोऽन्ते प्रसूयन्ते मिथुनान्येव ते सकृत् ॥४२

इसके अनन्तर सृष्टि के अवरुद्ध हो जाने पर सृजन की पूर्ण इच्छा रखने वाले ब्रह्माजी के जो सत्व के अभिध्यान करने वाले थे तब सबसे उन्होंने मुख से सहस्रों प्रकार के मिथुन उत्पन्न किये वे मनुष्य सत्व के उद्रेक से अच्छे चित्त वाले होते हैं ॥३५-३६॥ उन्होंने सहस्रों मिथुनों को अपने वक्ष स्थल से उत्पन्न किया थे सभी रजोगुण के उद्रेक वाले थे जो शुष्मी होते हुए भी अशुष्मी थे ॥३७॥ अन्य सहस्रों द्वन्द्वों को ब्रह्माजी ने अपने उरुओं से उत्पन्न किया था जो कि रजोगुण और तमोगुण के उद्रेक वाले थे और वे ईहा के स्वभाव वाले कहे गये हैं ॥३८॥ इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने सहस्रों जोड़ों को अपने चरणों से उत्पन्न किया था जो कि सभी तमोगुण के उद्रेक वाले थे और श्रीरहित एवं अल्प तेज से युक्त थे ॥३९॥ इसके अनन्तर अपने अपने द्वन्द्वों के रूप में उत्पन्न होने वाले वे सभी प्राणी परम प्रसन्न हुए और अन्योन्य काम-वासना से लिप्त होकर मैथुन में प्रवृत्त हो गये ॥ ४० ॥ तभी से लेकर इस कल्प में मिथुन उत्पत्ति कही जाती है। प्रत्येक मास में स्त्रियों को जो ऋतु धर्म होता था वह उस समय उसी ब्रह्मा की आज्ञा थी ॥४१॥ इस लिये उस समय में मैथुन के सेवन करने वालों ने भी स्त्रियों के साथ प्रसव नहीं किया। आयु के अन्त में ही वे एकबार मिथुनों का प्रसव करते हैं ॥४२॥

कुटका कुविकाश्चैव उत्पद्यन्ते मुमूर्षिता ।
तत प्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनाना हि सम्भव ॥४३
ध्याते तु मनसा तासा प्रजाना जायते सकृत् ।
शब्दादि विषय शुद्ध प्रत्येक पञ्चलक्षण ॥४४
इत्येव मनसा पूर्वं प्राक्सृष्टिर्या प्रजापते ।
तस्यान्ववाये सम्भूतायैरिद पूरित जगत् ॥४५
सरित्सर समुद्राश्च सेवन्ते पर्वतानपि ।
तदा नात्यम्बुशीतोष्णा युगे तस्मिन् चरन्ति वै ॥४६
पृथ्वीरसोद्भव नाम आहार स्माहरन्ति वै ।
ता प्रजा कामचारिण्यो मानसी सिद्धिमास्थिता ॥४७
धर्माधर्मौ न तास्वास्ता निर्विशेषा प्रजास्तु ता ।
तुल्यमायु सुख रूप तासा तस्मिन् कृते युगे ॥४८
धर्माधर्मौ न तास्वास्ता कल्पादौ तु कृते युगे ।
स्वेन स्वेनाधिकारेण जज्ञिरे ते कृते युगे ॥४९

कुटक और कुविक मरने की इच्छा वाले उत्पन्न होते हैं । तभी से लेकर इस कल्प मे मिथुनो का जन्म हुआ था ॥४३॥ मन से ध्यान करने पर उन प्रजाओ का एकबार पाँच लक्षणो वाला शुद्ध शब्दादि का विषय उत्पन्न होता है ॥४४॥ इसी प्रकार से प्रजापति की जो पूर्व सृष्टि पहिले हुई उसी अन्वाय मे उसकी यह समस्त प्रजा हुई है जिनसे यह समस्त जगत् परिपूरित हो रहा है ॥४५॥ वह प्रजापति की प्रजा सरित् सरोवर, समुद्र और पर्वतो का सेवन करती है । उस समय युग में वे सब अत्यन्त जल, शीत और उष्णता से रहित होते हुए सवत्र विचरण किया करते है ॥४६॥ वह समस्त प्रजा अपनी इच्छा के अनुरूप आचरण करने वाली मानसी सिद्धि मे अवस्थित होती हुई पृथ्वी के रस से उत्पन्न आहार को ग्रहण करती है ॥४७॥ उस कृत युग मे उन प्रजाओ में धर्म तथा अधर्म कुछ भी नही थे । उस समय की यह प्रजा विशेषता रहित थी । उन सब की तुल्य आयु सुख और रूप था । कही भी कुछ भी आपस मे अन्तर नही था ऐसी सतयुग की समस्त प्रजा थी ॥४८॥ कल्प के आदि मे कृत

था न उन प्रजाओं में धर्म और अधर्म कुछ भी नहीं था। कृत युग में वे सब अपने-अपने अधिकार के अनुसार वर्तन करते थे ॥४९॥

चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां दिव्यसंख्यया ।
आद्यं कृतयुगं प्राहुः सन्ध्यानान्तु चतुःशतम् ॥५०
ततः सहस्रशस्तासु प्रजासु प्रथितास्वपि ।
न तासां प्रतिघातोऽस्ति न द्वन्द्वं नापि च क्लमः ॥५१
पर्वतोदधिसेविन्यो ह्यनिकेताश्रयास्तु ताः ।
विशोकाः सत्त्वबहुला एकान्तसुखितप्रजाः ॥५२
ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः ।
पशवः पक्षिणश्चैव न तदासन् सरीसृपाः ॥५३
नोद्भिज्जा नारकाश्चैव ते ह्यधर्मप्रसूतयः ।
न मूलफलपुष्पञ्च नार्तवं ह्यृतवो न च ॥५४
सर्वकामसुखः कालो नात्यर्थं ह्युष्णशीतता ।
मनोभिलषिताः कामास्तासां सर्वत्र सर्वदा ॥५५
उत्तिष्ठन्ति पृथिव्यां वै ताभिर्ध्याता रसोल्बणाः ।
बलवर्णकरी तासां सिद्धिः सा रोगनाशिनी ॥५६

दिव्य संख्या से चार हजार वर्ष का आद्य कृत-युग कहा गया है और चार ही सौ वर्ष सन्ध्याओं के कहे गये हैं ॥५०॥ उन सहस्रों प्रथित प्रजाओं में उनका कोई प्रतिघात नहीं होता है न कोई द्वन्द्व होता है और न कोई क्लम होता है ॥५१॥ इस युग में प्रजा पर्वत और समुद्र के सेवन करने वाली थीं तथा बिना निकेत और आश्रय वाली थीं। उस समय उन प्रजाओं के शोक का अभाव था सत्त्व की प्रचुरता थी और एकान्त सुख से युक्त थीं ॥५२॥ कृत युग में समस्त प्रजा स्वेच्छानुकूल आचरण करने वाली और नित्य ही परम प्रसन्न चित्त वाली थी। उस समय पशु पक्षी और सरीसृप नहीं थे ॥५३॥ अधर्म से जिनकी उत्पत्ति होती है ऐसे नारकीय पुरुष और उद्भिज्ज भी नहीं थे। न मूल था न पुष्प थे और न फल ही थे तथा ऋतु का धर्म और ऋतु भी नहीं थे ॥५४॥ इस युग में उस समय समस्त कामों में सुख देने वाला

काल था। उस समय न अधिक उष्णता थी और न शीतलता ही थी। उस समय उन कृतयुग की प्रजाओं के सभी काम मन के अभिलाषित ही सर्वत्र और सदा होते थे ॥५५॥ पृथिवी में उनके द्वारा ध्यान की हुई इससे उत्थित बल और वर्ण की करने वाली उनकी सिद्धि उठती थी जो समस्त रोगों के नाश करने वाली थी ॥५६॥

असंस्कार्यैः शरीरैश्च प्रजास्ताः स्थिरयौवनाः ।
तासां विशुद्धात् सङ्कल्पाज्जायन्ते मिथुनाः प्रजाः ॥५७
समं जन्म च रूपञ्च म्रियन्ते चैव ताः समम् ।
तदा सत्यमलोभश्च क्षमा तुष्टिः सुखं दमः ॥५८
निर्विशेषाः कृताः सर्वा रूपायुःशीलचेष्टितैः ।
अबुद्धिपूर्वकं वृत्तं प्रजानां जायते स्वयम् ॥५६
अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयोः ।
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च न तदासन्न सङ्करः ॥६०
अनिच्छाद्वेषयुक्तास्ते वर्त्तयन्ति परस्परम् ।
तुल्यरूपायुषः सर्वा अधमोत्तमवर्जिताः ॥६१
सुखप्राया ह्यशोकाश्च उत्पद्यन्ते कृते युगे ।
नित्यप्रहृष्टमनसो महासत्त्वा महाबलाः ॥६२
लाभालाभौ न तान्यास्तां मित्रामित्रे प्रियाप्रिये ।
मनसा विषयस्तासान्निरीहाणां प्रवर्त्तते ।
न लिप्सन्ति हि ताऽन्योन्यन्नानुगृह्णन्ति चैव हि ॥६३

न संस्कार करने के योग्य शरीरों के द्वारा वह समस्त प्रजा स्थिर यौवन वाली थी। उनके विशुद्ध सङ्कल्प से मिथुन प्रजा उत्पन्न हुई ॥५७॥ उन सब का जन्म और रूप समान ही था और वे साथ ही मरते भी थे। उस समय सब में सत्य—लोभ का अभाव—क्षमा—तुष्टि—सुख और दम वर्तमान था। रूप, आयु, शील और चेष्टितों के द्वारा सब विशेषता से रहित कर दिये थे। प्रजाओं का वृत्त अबुद्धि के साथ स्वयं होता है ॥५६॥ कृतयुग में पाप और शुभयुक्त कर्मों में प्रवृत्ति का अभाव रहता था। उस समय सतयुग में चारों वर्णों और चारों

आश्रमों की कोई भी व्यवस्था ही नहीं थी और न कृतयुग में वर्ण सङ्करता होती थी ॥६ ॥ उस समय के लोग काम इच्छा और द्वेष से युक्त न होते हुए ही परस्पर में बरताव किया करते थे। उस समय न तो कोई किसी से उत्तम था और न कोई अधम ही अर्थात् उत्तमाधम के होने का कोई अवसर ही नहीं था और सब समान वय और रूप वाले थे।६१॥ कृतयुग में प्रायः सभी सुख से युक्त और शोक से रहित थे और इसी प्रकार का जीवन लेकर उत्पन्न होते हैं। वे नित्य ही प्रहृष्ट चित्त वाले महान् सत्त्व से समन्वित और महान् बल वाले थे॥६२॥ उस समय के व्यक्तियों के विचार में कोई लाभ या कुछ अलाभ अर्थात् हानि है ऐसा होता ही नहीं था। उनमें न कोई किसी का मित्र था और न कोई शत्रु अर्थात् मित्रामित्र का भेद भाव उनका था ही नहीं। किसी का प्रिय और किसी का अप्रिय होने की भावना भी बिल्कुल नहीं थी। जिन इच्छा वाले उनका विषय मन से प्रवृत्त होता है। वे मनोरथ की कोई लिप्सा नहीं करते हैं और न किसी पर कोई अनुग्रह किया करते हैं॥६३॥

ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
प्रवृत्तं द्वापरे यज्ञं दानं कलियुगे वरम् ॥६४
सत्त्वं कृतं रजस्त्रेता द्वापरस्तु रजस्तमौ।
कलौ तमस्तु विज्ञेयं युगवृत्तवशेन तु ॥६५
कालः कृते युगे त्वेष तस्य संख्यां निबोधत।
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां तत् कृतं युगम् ॥६६
सन्ध्यांशौ तस्य दिव्यानि शतान्यष्टौ च संख्यया।
तदा तासां बभूवायुर्न च क्लेशविपत्तयः ॥६७
ततः कृतयुगे तस्मिन् सन्ध्यांशे हि गते तु वै।
पादावशिष्टो भवति युगधर्मस्तु सर्वशः ॥६८
सन्ध्यायामप्यतीतायामन्तकाले युगस्य तु।
एवं कृते तु निःशेषे सिद्धिस्त्वन्तर्दधे तदा ॥६९
तस्यां च सिद्धौ भ्रष्टायां मानस्यामभवत्ततः।
सिद्धिरन्या युगे तस्मिंस्त्रेतायामन्तरे कृता ॥७०

कृतयुग में सबसे प्रधान ध्यान माना गया है और त्रेतायुग में ज्ञान का सबसे अधिक महत्व होता है। द्वापर युग में यज्ञ यागादि का सबसे अधिक गौरव माना जाता था और इस कलियुग में दान की सर्वश्रेष्ठता मानी गई है ॥६४॥ युगवृत्त की यथता के कारण से कृतयुग में सत्वगुण—त्रेता में रजोगुण—द्वापर में रजोगुण और तमोगुण तथा कलियुग में केवल तमोगुण का आधिपत्य रहता है।६५॥ कृतयुग में जो काल होता है उसकी संख्या समझ लो। चार सहस्र वर्ष का वह कृतयुग होता है ॥६६॥ उसके सन्ध्या-सन्ध्यांश दिव्य आठ सौ वर्ष संख्या में होते हैं। उस समय उनकी आयु ऐसी ही होती थी कि उसमें कोई भी क्लेश तथा विपत्तियाँ नहीं होती थी ॥६ ॥ इसके अनन्तर उस कृतयुग के सन्ध्यांश के चले जाने पर एक पाद से अवशिष्ट युग-धर्म सभी ओर से होता है ॥६८॥ अन्तकाल में युग की सन्ध्या के भी व्यतीत हो जाने पर युग का एक पाद से सन्ध्या-धर्म अवस्थित रहता है। इस प्रकार से कृतयुग के निःशेष हो जाने पर उस समय सिद्धि अन्तर्हित हो जाती है ॥६९॥ जब उस मानसी सिद्धि के नष्ट हो जाने पर उस युग में त्रेता में अन्तर में की हुई अन्य सिद्धि होती है ॥७१॥

सर्गादौ या मयाष्टौ तु मानस्यो वै प्रकीर्तिता ।
अष्टौ ता क्रमयोगेन सिद्धयो यान्ति सम्भवम् ॥७१
कल्पादौ मानसी ह्येषा सिद्धिर्भवति सा कृते ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु चतुर्युगविभागशः ।
वर्णाश्रमाचारकृत कर्मसिद्धोद्भवं स्मृत ॥७२
सन्ध्याकृतस्य पादेन सन्ध्यापादेन चांशत ।
कृतसन्ध्यांशका ह्येते त्रींस्त्रीन् पादान् परस्परात् ।
ह्रसन्ति युगधर्मैस्ते त। श्रुतबलायुषै ॥७३
तत कृतांशे क्षीणे तु बभूव तदनन्तरम् ।
त्रेताया युगमध्यन्तु ह्यासमृषिसत्तमा ॥७४
तस्मिन् क्षीणे कृतांशे तु तच्छिष्टासु प्रजास्विह ।
कल्पादौ सम्प्रवृत्तायास्त्रेताया प्रमुखे तदा ॥७५

पुनः कालान्तरेणैव पुनर्लोभावृतास्तु ताः ।
वृक्षांस्तान् पर्यगृह्णन्त मधु चा माक्षिकं बलात् ॥८९
तासां तेना पचारेण पुनर्लोभकृतेन वै ।
प्रणष्टा मधुना सार्द्ध कल्पवृक्षाः क्वचित् क्वचित् ॥९०

तब उस समय उन वृक्षों के नष्ट हो जाने पर वे बहुत ही भ्रान्त हुए उनकी समस्त इन्द्रियाँ व्याकुलित हो गईं तब सत्य के अभिध्यायी उन्होंने उस सिद्धि का ध्यान किया ॥८५॥ फिर सिद्धि के ध्यान से वे सब गृह में रहने वाले वृक्ष प्रादुर्भूत हो गये थे। और वे वस्त्र फल तथा अनेक आभरणों का प्रसव किया करते हैं ॥८६॥ उन प्रजाओं के उन्हीं वृक्षों में गन्ध वर्ण और रस से युक्त महान् वीर्य युक्त पुट पुट में अमाक्षिक मधु उत्पन्न होता है ॥८७॥ त्रेतायुग के आरम्भ काल में सभी प्रजा उन्हीं का उपयोग करते थे। इसी से वे सब परम हृष्ट पुष्ट और उस सिद्धि से विगत ज्वर अर्थात् दुःख रहित हो गये ॥८८॥ फिर कुछ काल के पश्चात् ही लोभ से आवृत हुए उन प्रजा का परिग्रहण करते हैं और बलपूर्वक उनका मधु अथवा माक्षिक को ग्रहण करते हैं ॥ ८९ ॥ उनके उस लोभ कृत अपचार से फिर कहीं-कहीं वे कल्प वृक्ष मधु के साथ ही साथ नष्ट हो गये थे ॥९० ॥

तस्यामेवाल्पशिष्टायां सन्ध्याकालवशात्तदा ।
प्रावर्तन्त तदा तासां द्वन्द्वान्यभ्युत्थितानि तु ॥९१
शीतवातातपैस्तीव्रैस्ततस्ता दुःखिता भृशम् ॥
द्वन्द्वैस्ताः पीड्यमानास्तु चक्रुरावरणानि च ॥९२
कृत्वा द्वन्द्वप्रतीकारं निकेतानि हि भेजिरे ।
पुरा निकामचारास्ता अनिकेताश्रया भृशम् ॥९३
यथायोग्य यथाप्रीति निकेतेष्ववसन् पुनः ।
मरुधन्वसु निम्नेषु पर्वतेषु नदीषु च ।
संश्रयन्ति च दुर्गाणि धन्वानं शाश्वतोदकम् ॥९४
यथायोगं यथाकाम समेषु विषमेषु च ।
आरब्धास्तु निकेता वै कर्तुं शीतोष्णवारणम् ॥९५

ततः संस्थापयामास खेटानि च पुराणि च ।
ग्रामांश्चैव यथाभाग तथैवान्त पुराणि च ॥९६

तासामायामविष्कम्भान् सन्निवेशान्तराणि च ।
चक्रुस्तदा यथाप्राज्ञ प्रदेश संज्ञितस्तु तैः ॥९७

अगुष्ठस्य प्रदेशिन्या व्यास प्रादेश उच्यते ।
ताल स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामया ॥९८

कनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वादशागुल उच्यते ।
रत्निरगुलपर्वाणि सख्यया त्वेकविंशति ॥९९

उस समय सन्ध्या काल के कारण से जोकि सन्ध्या का थोड़ासा भाग ही शेष रह गया था उन प्रजाओ मे द्वन्द्वो की उत्पत्ति हुई अर्थात् 'सुख दुःख' आदि के जोड़े उत्पन्न हो गये ॥९१॥ तब तो वे अति तीव्र शीत, वात, आतप के द्वन्द्वो से बहुत उत्पीड़ित हुए और वे परम पीड़ा मान होकर उन द्वन्द्वो से बचाव करने के लिये अपने आवरण करने लगे । ९२॥ सुख-दुःखादि द्वन्द्वो का प्रतीकार करके वे सब घरो मे निवास करने लगे जिससे शीतलता, उष्णतादि से पूर्ण बचाव हो जावे । इनके पूर्व वे सभी स्वेच्छाचारी थे और किसी भी घर का आश्रय लेकर नहीं रहते थे ॥९३॥ योग्यता और प्रीति के अनुसार फिर घरो में निवास करते हुए रहने लगे । मरुधन्वाओं मे, नीचे स्थानो मे, पर्वतो मे और नदियो मे जहाँ कि निरन्तर जल विद्यमान रहता है वे ऐसे दुर्गो को अर्थात् पूर्ण सुरक्षित स्थानों का आश्रय लेते थे ॥ ९४ ॥ जैसा भी योग हो और जैसी भी इच्छा हो उसी के अनुसार समतल और विषमतल में उन्होने शीत और उष्णता का वारण करने के लिये अपने घरो का निर्माण करना आरम्भ कर दिया था ॥९५॥ इसके पश्चात् खेटो तथा पुरो की स्थापना की थी और भाग के अनुसार ग्रामो की और अन्तःपुरो की स्थापना की गई थी ॥९६॥ उनके आयाम और विष्कम्भो की तथा अन्तर के सन्निवेशो का बुद्धि के अनुसार निर्माण किया और उस समय उन्ही के द्वारा 'प्रदेश' यह सज्ञा रखी गई थी ॥९७॥ प्रदेशिनी से अगुष्ठ का व्यास 'प्रादेश' कहा जाता है । मध्यमा से 'ताल' और अनामिका से 'गोकर्ण' कहा गया है ॥ ९८ ॥ कनिष्ठिका से 'वितस्ति' जोकि द्वादशागुल कहा

जाता है स दन्तियों के पत्र भी मण्डा से सकीर्ण होने हैं रक्षित करने वाले है ॥९९॥

चतुर्विंशतिमिश्च हस्त स्यादङ्गुलानि तु ।
किष्कु स्मृतो द्विरत्निस्तु द्विचत्वारिंशदङ्गुलम् ॥१००
चतुर्हस्त धनुर्दण्डो नालिकायुगमेव च ।
धनु सहस्र द्वे तत्र गव्यूतिस्तद्विभाव्यते ॥१०१
अष्टौ धनु सहस्राणि योजन परिकल्पितम् ।
एतेन योजनेनैव सन्निवेशस्तत कृत ॥१०२
चतुर्णामेव दुर्गाणा स्वसमुत्थानि त्रीणि तु ।
चतुर्थं कृत्रिम दुर्ग तस्य वक्ष्याम्यह विधिम् ॥१०३
सौधोच्चवप्रप्राकार सर्वतश्चातकावृतम् ।
तदेक स्वस्तिकद्वार कुमारीपुरमेव च ॥१०४
स्रोतसीसह तद्द्वार निखात पुनरेव च ।
हस्ताष्टौ च दश श्रेष्ठा नवाष्टौ वापरे मता ॥१०५
खेटाना नगराणाञ्च ग्रामाणाञ्चैव सर्वश ।
त्रिविधानाञ्च दुर्गाणा पर्वतोदकधन्वनाम् ॥१०६

चौबीस अंगुल का हस्त होता है। दो रत्नियों का किष्कु होता है जोकि बयालीस अंगुल का होता है ॥१००॥ चार हस्त का धनु होता है और दो नालिका का युग होता है। दो सहस्र धनुओं का गव्यूति होता है ॥१०१॥ आठ सहस्र धनुओं का एक योजन कहा जाता है। इस योजन से ही सन्निवेश किया गया था ॥१०२॥ चार दुर्गों में तीन तो अपने से उत्थित थे और चौथा दुर्ग कृत्रिम था जिसकी विधि को मैं कहता हूँ ॥१०३॥ सब ओर से चातकों से आवृत ऊँचे प्राकार वाला सौध होता है। उसमें एक स्वस्तिक द्वार होता है और कुमारी पुर होता है ॥१०४॥ स्रोतसी के साथ वह द्वार निखात (खुदा हुआ) होता है। वह आठ हाथ दस हाथ अथवा नौ हाथ का दूसरे मानते हैं ॥१०५॥ खेटों के नगरों के और ग्रामों के सब ओर से और तीन प्रकार के दुर्गों के पर्वतोदक धन्वन होता है ॥१०६॥

त्रिविधानाञ्च दुर्गाणां विष्कम्भायाममेव च ।
योजनानाञ्च विष्कम्भमष्टभागार्द्धमायतम् ॥१०७
परमार्द्धार्द्धमायाम प्रागुदक्प्रवर पुरम् ।
छिन्नकर्णं विकर्णन्तु व्यञ्जन कृशसंस्थितम् ॥१०८
वृत्त हीनञ्च दीर्घञ्च नगरं न प्रशस्यते ।
चतुरस्रार्जव दिक्स्थ प्रशस्त वै पुर परम् ॥१०९
चतुर्विंशतिरंश्चन्तु हस्तानष्टशत परम ।
अत्र मध्य प्रशसन्ति ह्रस्वोत्कृष्टविवर्जितम् ॥११०
अथ किष्कुशतान्यष्टौ प्राहुर्मुख्यनिवेशनम् ।
नगरादर्धविष्कम्भ खेट ग्राम ततो बहि ॥१११॥
नगराद्योजन खेट खेटाद्ग्रामोऽर्द्धयोजनम् ।
द्विक्रोश परमा सीमा क्षेत्रसीमा चतुर्द्धनु ॥११२

तीनो प्रकार के दुर्गों का विष्कम्भ जितना आयाम होता है। योजनो के अष्ट भाग और अर्ध भाग आयत विष्कम्भ होता है ॥१०७॥ परमार्ध के अर्ध आयाम वाला पहिले उदक से प्रवर पुर, छिन्न कर्ण, विकर्ण, व्यञ्जन, कृश-संस्थित, वृत्त, हीन और दीर्घ नगर प्रशस्त नही कहा जाता है। चारो ओर से सिधाई वाला दिशाओ मे स्थित पुर परम प्रशस्त होता है ॥१०८-१०९॥ जिसका अंश चौबीस हाथ और पर आठ सौ तथा ह्रस्व और उत्कृष्ट से रहित मध्य भाग हो उसकी प्रशसा करते है ॥११०॥ इसके अनन्तर आठ सौ किष्कु का मुख्य निवेशन कहा गया है। नगर से आधा विष्कम्भ खेट होता है और उससे बाहिर ग्राम होता है ॥१११॥ नगर से एक योजन खेट और खेट से आधा योजन ग्राम होता है। दो कोश परम सीमा होती है और चार धनुष क्षेत्र की सीमा होती है ॥११२॥

त्रिंशद्धनूंषि विस्तीर्णो दिशा मार्गस्तु तै कृत ।
विंशद्धनुर्ग्राममार्ग सीमामार्गो दशैव तु ॥११३
धनूंषि दश विस्तीर्ण श्रीमान् राजपथ स्मृत ।
नृवाजिरथनागानामसम्बाध सुसचर ॥११४

धनूंषि षष्ठ चत्वारि शाखारथ्यास्तु ताः कृताः ।
गृहरथ्योपरथ्याश्च द्विकास्त्वाप्युपरथ्यकाः ॥११५
घण्टापथश्चतुष्पादस्त्रिपदश्च गृहान्तरम् ।
वृत्तिमार्गस्त्वर्द्धपदः प्राग्वंशः पदिकः स्मृतः ॥११६
अवस्करः परीवाहः पदमात्रः समन्ततः ।
कृतेषु तेषु स्थानेषु पुनश्चक्रुर्गृहाणि तैः ॥११७
यथा ते पूर्वमासन्वै वृक्षास्तु गृहसंस्थिताः ।
तथा कर्तुं समारब्धाश्चिन्तयित्वा पुनः पुनः ॥११८
वृक्षाश्चैव गताः शाखा न ताश्चैव परागताः ।
अतः ऊर्द्धगताश्चान्या एवं तिर्यग्गताः पुरा ॥११९

छीस धनुष विस्तार वाला उन्होंने शिखाओं का माग बनाया और धनुष का विस्तेष प्रान था माग और चार धनुष विस्तार वाला सीमा का मार्ग बनाया था ॥११ ॥ दस धनुष विस्तार वाला सोमायुक्त राजपथ कहा गया है क्योंकि मनुष्य अश्व एवं हस्ती आदि का बाधा रहित संचार वाला होता है ॥११४॥ चार धनुष के विस्तार वाली ही शाखा रथ्या (गली) उन्होंने बनाई इसी प्रकार से गृहरथ्या उपरथ्या द्विक और उपरथ्यका घण्टापथ चतुष्पाद त्रिपद गृहान्तर वृत्तिमार्ग अर्द्ध पद प्राग्वंश और पदिक कहा गया है ॥११५-११६॥ पद मात्र चारों ओर अवस्कर परीवाह उन स्थानों पर करने पर फिर घर किये ॥११७॥ जिस तरह से पहिले गृह संस्थित वृक्ष थे पुनः-पुनः चिन्तन कर वैसे ही करना आरम्भ कर दिया ॥११ ॥ शाखायें और वृक्ष गये वैसे ही परागत नहीं हुए । इसलिये ऊपर की ओर गये हुए दूसरे थे इसी प्रकार से पहिले तिरछे जाने वाले थे ॥११९॥

बुद्ध्याऽन्विष्यस्तथा न्यायो वृक्षशाखा यथा गताः ।
तथा कृतास्तु वै शाखास्तस्माच्छाखास्तु ताः स्मृताः ॥१२०
एवं प्रसिद्धाः शाखाभ्यः शालाश्चैव गृहाणि च ।
तस्मात्ता वै स्मृताः शालाः शालात्वं चैव तासु तत् ॥१२१
प्रसीदन्ति मनस्तासु मनः प्रसादयन्ति ताः ।

तस्माद्गृहाणि शालाश्च प्रासादाश्चैव संज्ञिता ॥१२२
कृत्वा द्वन्द्वोपघातांस्तान् वार्त्तोपायमचिन्तयन् ।
नष्टेषु मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा ।
विषादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधात्मिका ॥१२३
ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः ।
वार्त्तार्थसाधिकाप्यन्या वृत्तिस्तासां हि कामतः ॥१२४
तासां वृष्ट्युदकानीह यानि निम्नैर्गतानि तु ।
वृष्ट्या तदभवत्स्रोत खातानि निम्नगाः स्मृताः ॥१२५
एवं नद्यः प्रवृत्तास्तु द्वितीये वृष्टिसर्ज्जने ।
ये पुरस्तादपां स्तोका आपन्नाः पृथिवीतले ॥१२६
अपां भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तासु चाभवन् ।
पुष्पमूलफलिन्यस्तु ओषध्यस्ताः प्रजज्ञिरे ॥१२७
अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।
ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षा गुल्माश्च जज्ञिरे ॥ १२८

खूब समझ कर सोच करते हुए का वैसा ही न्याय है जैसा कि वृक्ष में रहने वाली शाखायें होती हैं। उनके द्वारा की हुई शाखायें हैं इसये वे शालायें कहलाई गई हैं ॥१२०॥ इस प्रकार से शाखाओं से शालाएं और गृह प्रसिद्ध हुए। इसी से वे शालाएं कहलाईं और उनमें यह प्रासत्व था ॥१२१॥ उनमें मन प्रसन्न होता है और वे मन को प्रसाद युक्त करती भी हैं। इसी से गृह और शालाएं प्रसाद संज्ञा से युक्त हुए हैं ॥१२२॥ उन द्वन्द्वों के उपघातों को करके अर्थात् सुख-दुःखादि स्वरूप जो बहुत से संसार में द्वन्द्व (जोड़े) हैं उनका निवारण करके अर्थात् गृहादि का निर्माण करके बचाव करके अब जीविका के उपाय के विषय में चिन्तन किया अर्थात् रोजी कैसे चले, यह विचार किया। उस समय मधु के साथ कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर भूखी-प्यासी प्रजा विषाद से व्याकुल हो उठी ॥१२३॥ इसके अनन्तर उन प्रजाजनों को फिर त्रेता युग में वृत्ति की सिद्धि का प्रादुर्भाव हुआ। उनकी इच्छा से जीविका और अर्थ के साधन करने वाली अन्य वृत्ति भी प्रादुर्भूत हुई ॥१२४॥ तब वृष्टि का जो जल था जो कि यहाँ पर निम्न स्थानों में चला गया था, वृष्टि से वह स्रोत हो

गया और वो अन्न अर्थात् गहराई वाले खुदे हुए थे वे नदियाँ कहलाईं ॥ ॥१२५। इस तरह विलोम वृष्टि के सर्जन से नदियाँ प्रवृत्त हुईं। जो जलों के पर्व छोटी थी और पृथ्वी तल में प्राप्त हुई थी ॥१२६। भूमि और जल के संयोग से उनमें औषधियाँ सम्पन्न हुईं वे औषधियाँ फूल मूल और फलों वाली उत्पन्न हुई थी ॥१२७॥ जो हल से नहीं जोते गये हैं और बोये गये हैं ऐसे ग्राम के चौदह अरण्य थे जो कि ऋतु के पुष्प और फलों से युक्त वृक्षों को और गुल्मों को उत्पन्न करते थे ॥१२८॥

प्रादुर्भावश्च त्रेतायां वार्त्तायामौषधस्य तु ।
तेनौषधेन वर्तन्ते प्रजास्त्रेतायुगे तदा ॥१२८
ततः पुनरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वशः ।
अवश्यम्भाविनार्थेन त्रेतायुगवशेन तु ॥१२
ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान् ।
वृक्षान् गुल्मौषधीश्चैव प्रसह्य तु यथाबलम् ॥१३१
सिद्धात्मानस्तु ये पूर्वं व्याख्याताः प्राकृते मया ।
ब्रह्मणो मानसास्ते वै उत्पन्ना ये जनादिह ॥१३२
शान्ताश्च शुष्मिणश्चैव कर्मिणो दुःखिनस्तथा ।
ततः प्रवर्तमानास्ते वै त्रेतायां जज्ञिरे पुनः ॥१३३

त्रेता युग में जीविका के काम में औषध का प्रादुर्भाव हुआ। उस समय त्रेता युग में प्रजा उस औषध से अन्न की रोजी चलाती थी ॥१२८॥ त्रेता युग में होने वाले अवश्यम्भावी अर्थ से फिर उन प्रजा जनों में सभी ओर से राग और लोभ पुनः हो गया था ॥१३ ॥ इसके अनन्तर उन्होंने नदी के क्षेत्रों को और पर्वतों का परिग्रहण किया और बल के अनुसार वृक्षों और गुल्मौषधियों को ग्रहण किया। शाखी है रूप में रहने वाली औषधि गुल्मौषधि कही जाती हैं ॥१३१॥ जो सिद्ध आत्मा वाले थे वे सब मैंने पहिले प्राकृत में बता दिये अर्थात् उनकी भली भाँति व्याख्या कर दी थी। यहाँ पर जीवन से ब्रह्मा के द्वारा जो उत्पन्न हुए हैं मानस थे ॥१३२॥ उस समय शान्त-शुष्मी कर्म करने वाले और दुःख से युक्त इसके पश्चात् पुनः प्रवर्तमान होते हुए त्रेता युग में उत्पन्न हुए ॥१३३॥

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्रा द्रोहिजनास्तथा ।
भाविता पूर्वजातीषु कर्मभिश्च शुभाशुभैः ॥१३४
ततस्तेभ्यो बला ये तु सत्यशीला ह्यहिंसकाः ।
वीतलोभा जितात्मानो निवसन्ति स्म तेषु वै ॥१३५
प्रतिगृह्णन्ति कुर्वन्ति तेभ्यश्चान्येऽल्पतेजसः ।
एवं विप्रतिपन्नेषु प्रपन्नेषु परस्परम् ॥१३६
तेन दोषेण तेषां ता ओषध्यो मिषतां तदा ।
प्रणष्टा ह्रियमाणा वै मुष्टिभ्यां सिकता यथा ॥१३७
अग्रसद्भूमिर्युगबलाद्ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।
फलं गृह्णन्ति पुष्पैश्च पुष्पं पत्रैश्च या पुनः ॥१३८
ततस्तासु प्रणष्टासु विभ्रान्तास्ता प्रजास्तदा ।
स्वयम्भुवं प्रभुं जग्मुः क्षुधाविष्टाः प्रजापतिम् ॥१३९
वृत्त्यर्थमभि लिप्सन्त आदौ त्रेतायुगस्य तु ।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् ज्ञात्वा तासां मनीषितम् ॥१४०

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र और द्रोह करने वाले मनुष्य शुभ और अशुभ कर्मों से पूर्व जातियों में भावित होते हुए उत्पन्न हुए ॥१३४॥ यहाँ से जो उनमें बलवान् थे—सत्य के स्वभाव वाले थे—हिंसा का कर्म न करने वाले थे—अपनी आत्मा जीत लेने वाले और वीत लोभ अर्थात् लोभ से रहित थे, वे उनमें निवास करते थे ॥१३५॥ उनसे अन्य अल्प तेज वाले प्रतिग्रहण करते हैं। इस प्रकार से आपस में विप्रतिपन्न और प्रपन्नों में रहते हैं ॥१३६॥ उन सबके उस दोष से वे सब ओषधियाँ उस समय मुट्ठियों से सिकता की भाँति ह्रियमाण और प्रनष्ट हो गईं ॥१३७॥ भूमि ने सबको ग्रास कर लिया। युग के बल से चौदह जो ग्राम्य अरण्य थे वे पुष्पों से फल को और पत्रों से पुष्प को ग्रहण करते हैं ॥ ॥१३८॥ इसके पश्चात् उन सभी के प्रनष्ट हो जाने पर उस समय सब प्रजा-जन विभ्रान्त होते हुए, भूख से आविष्ट होते हुए प्रजापति प्रभु स्वयम्भू के पास आये ॥१३९॥ त्रेता युग के आदि में जीविका के लिये इच्छा करते हुए उनको देखकर स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा ने उनके बुद्धि स्थित विचार को जान लिया था ॥१४०॥

युक्त प्रत्यक्षदृष्टेन दर्शनेन विचार्य च ।
ग्रस्ता पृथिव्या ओषध्यो ज्ञात्वा प्रत्यदुहत्पुन ॥१५१
कृत्वा वत्सं सुमेरुं तु दुदोह पृथिवीमिमाम् ।
दुग्धेयं गौस्तदा तेन बीजानि पृथिवीतले ॥१५२
जज्ञिरे तानि बीजानि ग्राम्यारण्यास्तु ता पुन ।
ओषध्य फलपाकान्ता सप्तसप्तदशास्तु ता ॥१५३
व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिला ।
प्रियङ्गवो ह्युदाराश्च कोरदूषाश्च सतीनका ॥१५४
माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावा सकुलत्थका ।
आढक्यश्चणकाश्चैव शणा सप्तदशा स्मृता ॥१५५
इत्येता ओषधीनां तु ग्राम्याणां जातय स्मृता ।
ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥१५६

प्रत्यक्ष दृष्ट दर्शन से युक्त बात का विचार कर ब्रह्मा जी ने यह ज्ञात किया कि पृथिवी ने समस्त ओषधियों को ग्रस लिया है और उन्होंने पुन मही दोहन किया ॥१५१॥ ब्रह्माजी ने सुमेरु पर्वत को बछड़ा बनाकर इस पृथ्वी का दोहन किया था। इसके उस समय दोहन की हुई यह गौ ने पृथ्वी तल में बीजों को उत्पन्न किया और उन बीजों ने पुन वे ग्राम्यारण्य उत्पन्न किये और सात सात दश वाली ओषधियाँ जिनके फलों का अन्त तक पाक होता था उत्पन्न हुई । व्रीहि-यव-गोधूम-अणु-तिल-उदार प्रियङ्गु-कारव-सतीनक-माष (उड़)-मुद्ग (मूंग)-मसूर और कुलत्थ के सहित निष्पाव-आढकी-चणक के साथ सात दश वाले कहे गये हैं ये सब उत्पन्न हुए ॥१५२॥१५३॥१५४॥ ॥१५५॥ ये सब ग्राम्य ओषधियों की जातियाँ बतलाई गई हैं। और जो याज्ञिक ओषधियाँ हैं वे ग्राम्यारण्य चौदह हैं ॥१५६॥

व्रीहय सयवा माषा गोधूमा अणवस्तिला ।
प्रियङ्गुसप्तमा ह्येते अष्टमी तु कुलत्थिका ॥१५७
श्यामाकास्त्वथ नीवारा जर्तिला सगवेधुका ।
कुरुविन्दा वेणुयवास्तथा मर्कटकाश्च ये ॥१५८

ग्राम्यारण्या स्मृता ह्येता ओषध्यस्तु चतुर्दश ।
उत्पन्ना प्रथमा ह्येता आदौ त्रेतायुगस्य तु ॥१४९
अफालकृष्टा ओषध्यो ग्राम्यारण्यास्तु सर्वश ।
वृक्षा गुल्मलतावल्लीवीरुधस्तृणजातय ॥१५०
मूलै फलैश्च रोहिण्यो गृह्णन् पुष्पैश्च जायते ।
पृथ्वी दुग्धा तु बीजानि यानि पूर्वं स्वयम्भुवा ॥१५१
ऋतुपुष्पफलास्ता वै ओषध्यो जज्ञिरे त्विह ।
यदा प्रसृष्टा ओषध्यो न प्ररोहन्ति ता पुन ॥१५२
तत स तासा वृत्त्यर्थं वार्तोपाय चकार ह ।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् दृष्ट्वा सिद्धि तु कर्मजाम् ॥१५३
तत प्रभृत्यथौषध्य कृष्टपच्या स्तु जज्ञिरे ।
संसिद्धायान्तु वार्त्तायान्ततस्तासा स्वयम्भुव ।
मर्यादा स्थापयामास यथारब्धा परस्परम् ॥१५४

व्रीहि, यव, माष, गोधूम अणु, तिल, सावी प्रियङ्गु और आठवीं कुलत्थिका—श्यामाक, नीवार, जर्तिला, गवेधुका, कुरुविन्द, वेणुयव और मर्कट ये चौदह ओषधियाँ ग्राम्यारण्य नाम से कही गई है ॥ त्रेता युग के आदि मे पहिले ये ही उत्पन्न हुई थी ॥१४७॥१४८॥१४९॥ हल की फाल से जो भूमि नही जुती हुई है, उसमे होने वाली ये ओषधियाँ हैं और सब ओर ग्राम्यारण्य हैं जिनमे वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली, विरुध और तृण की जाति वाली ओषधियाँ होती हैं ॥१५०॥ स्वयम्भू के द्वारा दुही हुई पृथ्वी ने जो बीज दिये उन सबके अङ्कुर उत्पन्न हुए और मूल फल और पुष्पो से युक्त हुए उत्पन्न होते हैं ॥१५१॥ अपनी ऋतु में फल और पुष्प प्रदान करने वाली ओषधियाँ यहाँ उत्पन्न हुई । जब ओषधियाँ प्रसृष्ट हो गई तो फिर नही उगती है ॥१५२॥ इसके अनन्तर उन्होंने उन प्रजाजनो की वृत्ति के लिये उपाय किये और भगवान् स्वयम्भू ब्रह्मा ने उनके कर्मो से उत्पन्न होने वाली सिद्धि को देखा ॥१५३॥ तब से लेकर कृष्ट पच्या ओषधियाँ उत्पन्न हुई । इसके अनन्तर उन प्रजा के जनो की जीविका के भली-भाँति सिद्ध हो जाने पर भगवान् स्वयम्भू के द्वारा परस्पर मे जैसे आरम्भ की गई थी वह मर्यादा स्थापित हो गई ॥१५४॥

ये च परिगृहीतारस्तासामा सन्निधात्मका ।
क्षतत्राणात् क्षत्रियाणां स्थापयामास क्षत्रियान् ।।१५४
उपतिष्ठन्ति ये तान्वै यावन्तो निर्भयास्तथा ।
सत्यं ब्रह्म यथा भूतं ब्रुवन्तो ब्राह्मणाश्च ते ।।१५६
ये चान्येऽप्यबलास्तेषां वैश्यसंकर्मसंस्थिता ।
कीनाशा नाशयन्ति स्म पृथिव्यां प्रागतन्द्रिता ।
वैश्यानेव तु तानाह कीनाशान् वृत्तिसाधकान् ।।१५७
शोचन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासु ये रताः ।
निस्तेजसोऽल्पवीर्याश्च शूद्रास्तानब्रवीत्तु सः ।।१५८
तेषां कर्माणि धर्मांश्च ब्रह्मा तु व्यदधात् प्रभुः ।
संस्थितौ प्राकृतायां तु चातुर्वर्ण्यस्य सर्वशः ।।१५९
पुनः प्रजास्तु ता मोहात् तान् धर्मान्नानुपालयन् ।
वर्णधर्मैरजीवन्त्यो व्यरुध्यन्त परस्परम् ।।१६०
ब्रह्मा तमर्थं बुद्ध्वा तु याथातथ्येन वै प्रभुः ।
क्षत्रियाणां बलं दण्डं युद्धमाजीवमादिशत् ।।१६१
याजनाध्यापनं चैव तृतीयं च परिग्रहम् ।
ब्राह्मणानां विभुस्तेषां कर्माण्येतान्यथादिशत् ।।१६२

उनके परिगृहीता विनाशक थे । दूसरों के त्राण करने वाले क्षत्रियों की स्थापना की । उनका जो उपस्थान करते हैं वे यथाभूत सत्य ब्रह्म को बोलने वाले ब्राह्मण थे जो कि निर्भय रहा करते थे अर्थात् क्षत्रियों के संरक्षण में रह हैं किसी को डर आदि का भय नहीं रहता था ।।१५६।। उनमें जो भी अन्य बल रहित थे और वैश्य कर्मों के संस्थित थे पहिले पृथ्वी में अनालस्य का नाश कर देते थे । उन वृत्ति के साधक वैश्यों का कीनाश ही कहते हैं ।।१५७।। शोक करते हुए-द्रव होते हुए जो परिचर्याओं में निरत रहते हैं और जो तेज से हीन और अल्प वीर्य वाले हैं उन्हें वह शूद्र इस नाम से बोलता था ।।१५८।। प्रभु ब्रह्माजी ने प्राकृत संस्थिति में सब ओर से चातुर्वर्ण्य के अनुसार उनके कर्मों की ओर धर्मों की व्यवस्था कर दी थी ।।१५९।। फिर उन प्रजा के जनों ने मोह से उन धर्मों का पालन न करते हुए वे वर्णों के धर्मों से प्राप्त जीविका

चलाते हुए परस्पर मे विरोध करने वाले हो गये ।।१६०।। प्रभु ब्रह्माजी ने इस अर्थ को भली भाँति ठीक ठीक समझ कर क्षत्रियो की जीविका बल, दण्ड और युद्ध करना बतलाया था ।।१६१।। यज्ञादि का यजन कराना, वेद और शास्त्रो का पढाना तथा दान ग्रहण करना ये तीन कर्म सब ब्राह्मणो के विभु श्री ब्रह्मा जी ने बताये थे ।।१६२।।

पाशुपाल्य च वाणिज्य कृषि चैव विशा ददौ ।
शिल्पाजीव भृतिञ्चैव शूद्राणा व्यदधात् प्रभु ।।१६३
सामान्यानि तु कर्माणि ब्रह्मक्षत्रविशा पुन ।
यजनाध्ययन दान सामान्यानि तु तेषु च ।।१६४
कर्माजीव ततो दत्वा तेभ्यश्चैव परस्परम् ।
लोकान्तरेषु स्थानानि तेषा सिद्धयाऽददन् प्रभु ।।१६५
प्राजापत्य ब्राह्मणाना स्मृत स्थान क्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्र क्षत्रियाणा सग्रामेष्वपलायिनाम् ।।१६६
वैश्याना मारुत स्थान स्वधर्ममुपजीविनाम् ।
गान्धर्व शूद्रजातीना प्रतिचारेण तिष्ठताम् ।।१६७
स्थानान्येतानि वर्णाना व्यस्थाचारवता स्वयम् ।
तत स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाश्रमान् ।।१६८
गृहस्थो ब्रह्मचारित्व वानप्रस्थ सभिक्षुकम् ।
आश्रमाश्चतुरो ह्येतान् पूर्वमास्थापयत् प्रभु ।।१६९

पशुओ का पालन करना व्यापार करना और कृषि का काम करना ये तीन कर्मो के करने की व्यवस्था ब्रह्माजी ने वैश्यो के लिये की और यही आदेश दिया । प्रभु ने दस्तकारी के द्वारा रोजी कमाना, नौकरी करना ये कर्म शूद्रो के करने के लिए बताये थे ।।१६३।। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यो के सामान्य कर्म स्वय यजन करना, स्वय अध्ययन करना और स्वय दान देना था । ये तीनो कर्म उन तीनो मे समान रूप से होते थे ।।१६४।। इस प्रकार से इन सबके कर्म और आजीविका की व्यवस्था करके और उन्हे परस्पर मे पद देकर फिर प्रभु ने दूसरे लोको मे सिद्धि से उनके स्थानो को भी दिया था ।।१६५।। जो परम

क्रियावान् ब्राह्मण के उनके लिये प्राजापत्य कहा गया है। जो संग्रामों में कभी पीठ दिखाकर शत्रु के समक्ष से पराङ्मुख होकर पलायन नहीं किया करते थे उन क्षत्रियों को इन्द्र सम्बन्धी स्थान दिया गया था ।।१६६।। अपने धर्म के अनुसार उपजीवन करने वाले वैश्यों के लिए दूसरे लोक में वायु का स्थान दिया था। शूद्र प्रतिचार से सेवावृत्ति करते हुए यहाँ लोक में रहते थे उन शूद्रों की जाति वाले पुरुषों के लिए दूसरे लोक में गन्धर्वों का स्थान दिया था ।।१६७। विशेष रूप से व्रत व आचार के पालन करने वाले उन वर्णों के लिये ये स्थान देकर फिर उन वर्णों के स्थित लोगों में चार आश्रमों की स्थापना की थी ।।१६८।। प्रभु ब्रह्माजी ने गार्हस्थ्य, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों की पहिले ही स्थापना की थी ।१६९।।

वर्णकर्माणि ये केचित्तेषामिह न कुर्वते ।
कृत कर्मा क्षितिप्रतिष्ठाश्रमस्थानवासिनः ।।१७०
ब्रह्मा तान् स्थापयामास आश्रमान्नामनामतः ।
निर्देशार्थं ततस्तेषां ब्रह्मा धर्मान् प्रभाषत ।
प्रस्थानानि च तेषां वै यमांश्च नियमांश्च ह ।।१७१
चातुर्वर्ण्यात्मकः पूर्वं गृहस्थश्चाश्रमः स्मृतः ।
त्रयाणामाश्रमाणाञ्च प्रतिष्ठायोनिरेव च ।
यथाक्रमं प्रवक्ष्यामि यमैश्च नियमैश्च ह ।।१७२
दाराग्नयोऽथ्यातिथय इज्याश्राद्धक्रिया प्रजाः ।
इत्येष वै गृहस्थस्य समासाद्धर्मसंग्रहः ।।१७३
दण्डी च मेखली चैव ह्यधः शायी तथा जटी ।
गुरुशुश्रूषणं भैक्ष्यं विद्यार्थं ब्रह्मचारिणः ।।१७४
चीरपत्राजिनानि स्युर्धान्यमूलफलौषधम् ।
उभे सन्ध्येऽवगाहश्च होमश्चारण्यवासिनाम् ।।१७५

जो भी कोई इस प्रकार से वर्णों के कर्मों को नहीं करता है उसे आश्रम स्थान के निवास करने वाले कर्माक्षिति क्यों कहते हैं ।। १७० ।। ब्रह्माजी ने उन आश्रमों का नाम से स्थापन किया था । इसके पश्चात् उनके निर्देश के

लिये ब्रह्माजी ने स्वयं उन धर्मों का बतलाया था, और स्थान तथा उनके नियम और यम भी ब्रह्मा जी ने बताये थे ।। १७१ ।। यह एक ही गृहस्थ का आश्रम ऐसा है जो चारों वर्णों के स्वरूप वाला पहिले कहा गया है । यह गृहस्थाश्रम अन्य तीनों आश्रमों की प्रतिष्ठा का उद्‌भव स्थान ही होता है । अब यहाँ क्रम के अनुसार ही उनका यम तथा नियमों के साथ वर्णन करता हूँ ।। १७२ ।। पत्नी का वैदिक विधि से ग्रहण करना अग्नियों को आहित रखना, घर में समागत अतिथियों के लिये श्रद्धाभाव से अतिथि सत्कार करना, यजन करना, श्राद्धादि की क्रिया का करना और प्रजा को जन्म देना अर्थात् सन्तान उत्पन्न करना, ये ही संक्षेप से गृहस्थों के धर्मों का संग्रह किया है ।। १७३ ।। अथ ब्रह्मचर्य आश्रम का धर्म बतलाया जाता है—दण्ड का धारण करना, मौञ्जी मेखला का पहिनना, भूमि में शयन करना, शिर पर जटा धारण करना, गुरु की सेवा करना और भिक्षा करना, ये सब ब्रह्मचारी के धर्म होते हैं ।। १७४ ।। अरण्य में निवास करने वालों के चीरपत्र और अजिन अर्थात् मृगचर्म वस्त्र होते हैं । धान्य, मूल, फल और औषध, आहार दोनों समय सन्ध्योपासना करना और स्नान करना आदि धर्म होते हैं ।। १७५ ।।

आसन्नमुसले भैक्षमस्तेयं शौचमेव च ।
अप्रमादोऽव्यवायश्च दया भूतेषु च क्षमा ।।१७६
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा सत्यञ्च दशमं स्मृतम् ।
दशलक्षणिको ह्येष धर्मः प्रोक्तः स्वयम्भुवा ।।१७७
भिक्षोर्व्रतानि पञ्चात्र पञ्चैवोपव्रतानि च ।
आचारशुद्धिर्नियमः शौचञ्च प्रतिकर्म च ।
सम्यग्दर्शनमित्येव पञ्चैवोपव्रतान्यपि ।।१७८
ध्यानं समाधिर्मनसेन्द्रियाणां सदागरैभैक्षमथोपगम्य ।
मौनं पवित्रोपचितं विमुक्तिं परिव्रजो धर्ममिमं वदन्ति ।।१७९
सर्वे ते श्रेयसे प्रोक्ता आश्रमा ब्रह्मणा स्वयम् ।
सत्यार्जवं तपः क्षान्तिर्योगेज्या दमपूर्विका ।।१८०
वेदाः साङ्गाश्च यज्ञाश्च व्रतानि नियमाश्च ये ।
न सिद्ध्यन्ति प्रदुष्टस्य भावदोष उपागते ।।१८१

यद्यप्येतानि सर्वाणि प्रसिद्ध्यन्ति कदाचन ।
अन्तर्भावप्रदुष्टस्य कुर्वतोऽपि पराक्रमान् ॥१८२

आत्मसंयम से भिक्षा करना चोरी न करना शौच रखना प्रमाद न करना तथा स्त्री-गमन न करना प्राणियों में दया करना तथा क्षमा रखना, क्रोध न करना गुरु की सेवा करना और सत्य में रत ये दश नियम एक धर्म होते हैं। स्वयम्भु भगवान् ने यह दश लक्षण वाला धर्म बताया है ॥ १७५-१७७ ॥ भिक्षु अर्थात् संन्यासी के पाँच तो व्रत होते हैं और पाँच ही उपव्रत होते हैं। आचार्यों की शुद्धि नियम है और क्रोध का होना अधिकर्म होता है और सम्यक् दर्शन इस प्रकार से पाँच ही उपव्रत भी होते हैं ॥ १७८ ॥ मन से इन्द्रियों का ध्यान समाधि धारण के सहित भिक्षा प्राप्त करके शील पवित्र द्वार चित्तों से विमुक्ति प्राप्त करना यही पारिव्राज धर्म कहते हैं ॥ १७९ ॥ ये सब आश्रम ब्रह्माजी ने स्वयं ही कल्याण के लिये कहे हैं। सत्य आर्जव तप क्षान्ति ध्यान इज्या और दम अङ्गों के सहित वेद यज्ञ व्रत और नियम ये सब भाव दोष के उपागत होने पर अशुद्ध के कभी सिद्ध नहीं होते हैं ॥ १८१ ॥ जिसका अन्तर्भाव अशुद्ध दोष से युक्त होता है उसके पराक्रम करते हुये भी बाहिर से समस्त कर्म कभी सिद्ध नहीं होते हैं अर्थात् केवल दिखावे के कर्मों से कोई अभीष्ट सिद्धि नहीं होता है ॥ १८२ ॥

सर्वस्वमपि यो दद्यात् कलुषेणान्तरात्मना ।
न तेन धर्मभाक् स स्याद्भाव एवात्र कारणम् ॥१८३
एवं देवाः सपितर ऋषयो मनवस्तथा ।
तेषां स्थानमभूम्यस्तु सस्थितानां प्रशस्यते ॥१८४
अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम् ।
स्मृतं तु तेषां तत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ॥१८५
सप्तर्षीणां तु यत्स्थानं स्मृतं तद्वै दिवौकसाम् ।
प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मणः क्षयः ।
योगिनाममृतं स्थानं नानाधीनः न विद्यते ॥१ ६
स्थानान्येतानि भिन्नानि ये स्वधर्मे व्यवस्थिताः ।
चत्वार एते पन्थानो देवयाना विनिर्मिताः ॥१८७

ब्रह्मणा लोकतन्त्रेण आद्ये मन्वन्तरे भुवि ।
पन्थानो देवयानाय तेषां द्वारं रविः स्मृतः ॥१८८
तथैव पितृयाणानां चन्द्रमा द्वारमुच्यते ।
एवं वर्णाश्रमाणां वै प्रविभागे कृते तदा ।
यदास्य न व्यवर्त्तन्त प्रजा वर्णाश्रमात्मिका ॥१८९

चाहे कोई अधर्मी कलुषित आत्मा से अपना सर्वस्व भी क्यों न दे देवे, उस दिये दान से वह कभी भी धर्म का भागी नहीं हो सकता है क्योंकि इस दान आदि के कर्म में भाव ही मुख्य कारण होता है ॥ १८३ ॥ इस प्रकार से पितर-ऋषिगण और मनुवृन्द इस लोक में संस्थित होने वाले उनका स्थान बतलाया जाता है ॥ १८४ ॥ ऊर्द्ध्वरेतस ऋषियों की संख्या अठ्ठासी हजार है उनका वह स्थान है, वही गुरुवासी सप्तर्षियों का स्थान है और यही दिवौकस अर्थात् देवताओं का स्थान कहा गया है। गृहस्थों का प्राजापत्य न्यास करने वालों का ब्रह्मा का क्षय और योगियों का अमृत स्थान है और जो नाना भी वाले हैं उनका कोई गति है ॥ १८५-१८६ ॥ जो अपने-अपने धर्म में व्यवस्थित रहते हैं उन्हीं आश्रमों में रहने वालों के स्थान होते हैं। ये चार मार्ग देवयान बनाये गये हैं ॥ १८७ ॥ भूमण्डल पर आद्य मन्वन्तर में लोकतन्त्र ब्रह्माजी के द्वारा देवयान के लिये मार्ग बनाये गये हैं और उनका द्वार रवि कहा गया है ॥१८८॥ उसी प्रकार से पितृयान वालों का द्वार चन्द्रमा कहा जाता है। इस प्रकार से उस समय में वर्णों और आश्रमों का प्रविभाग करने पर जब इसकी प्रजा वर्णाश्रम व स्वभाव वाली व्यवहार नहीं करती है ॥ १८९ ॥

ततोऽन्या मानसी सोऽथ त्रेतामध्ये ह्यसृजत् प्रजा ।
आत्मनः स्वशरीराच्च तुल्याश्चैवात्मना तु वै ॥१९०
तस्मिंस्त्रेतायुगे त्वाद्ये मध्यं प्राप्ते क्रमेण तु ।
ततोऽन्या मानसीस्तत्र प्रजा स्रष्टुं प्रचक्रमे ॥१९१
ततः सत्त्वरजोद्रिक्ताः प्रजाः सोऽथासृजत् प्रभुः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां वार्त्तायाश्चैव साधिकाः ॥१९२
देवाश्च पितरश्चैव ऋषयो मनवस्तथा ।
युगानुरूपा धर्मेण यैरिमा विचिता प्रजा ॥१९३

उपस्थिते तदा तस्मिन् प्रजाधर्मे स्वयम्भुवः ।
अथ सृष्टवान् प्रजाः सर्वा नानारूपास्तु मानसीः ॥१५४
पूर्वोक्ता या मया तुभ्यं जनलोक समाश्रिताः ।
कल्पेऽतीते तु ता ह्यासन् देवाद्यास्तु प्रजा इह ॥१५५
ध्यायतस्तस्य ताः सर्वाः सम्भूत्यर्थमुपस्थिताः ।
मन्वन्तरक्रमेणेह कनिष्ठे प्रथमे मताः ॥१५६
ख्यात्यानुबन्धैस्तैस्तैस्तु सर्वार्थैरिह भाविताः ।
कुशलाकुशलप्रायैः कर्मभिस्तैः सदा प्रजाः ।
तत्कर्मफलशेषेण उपष्टब्धाः प्रजज्ञिरे ॥१५७
देवासुरपितृत्वैश्च पशुपक्षिसरीसृपैः ।
वृक्षनारकिकीटत्वैस्तैस्तैर्भावैरुपस्थिताः ।
आधीनार्थं प्रजानां च आत्मनो वै विनिर्ममे ॥१५८

इसके बाद फिर उन्होंने यज्ञ के मध्य में अन्य मानसी प्रजा की सृष्टि की थी। जो अपने ही अपने शरीर से और अपनी आत्मा से तुल्य ही थे ॥१५०॥ जब साध्य तथा युग में क्रम से मध्य को प्राप्त होने पर इसके अनन्तर अब यहाँ पर मानसी प्रजा के सृजन का उपक्रम किया था ॥१५१॥ इसके पश्चात् उस प्रभु ने सत्व और रजोगुण के द्वारा वाली प्रजा का सृजन किया जो कि धर्म अर्थ काम और मोक्ष की तथा आजीविका की साधिका थी ॥१५२॥ देव गण पितृगण, ऋषि समुदाय और मनुगण थे उस कल्प के युग के अनुरूप ही थे जिन्होंने इस सम्पूर्ण प्रजा को विभाजित किया है ॥१५३॥ उस समय में स्वयम्भू के उस प्रजा धर्म में उपस्थित होने पर बहु नाना रूप वाली मानसी समस्त प्रजा ने अभिध्यान किया ॥१५४॥ मैंने पहिले तुम से जो जनलोक में आश्रित रहने वाली बताई थी कल्प के व्यतीत हो जाने पर वह देवादि प्रजा यहाँ थी ॥१५५॥ सम्भूति के लिये उपस्थित उस समस्त प्रजा का ध्यान करते हुये उसके यहाँ मन्वन्तर के क्रम से प्रथम कनिष्ठ में माने गये ॥१५६॥ ख्याति से और सब अर्थों वाले उन उन अनुबन्धों से भावित प्रजा सर्वदा उन कुशल और अकुशल कर्मों के तथा उन कर्मों के शेष फल से उपलब्ध होती हुई उत्पन्न

हुई ॥ १८७ ॥ देव, असुर, पितृगण, पशु, पक्षी, सरीसृप, वृक्ष, नार्दकीटत्व आदि गणों के द्वारा उपस्थित अपने आजीविका के लिये प्रजाओं का निर्माण किया ॥ १८८ ॥

॥ देव-सृष्टि वर्णन ॥

ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसीप्रजाः ।
तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्यैस्तैः कारणैः सह ।
क्षेत्रज्ञाः समवर्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः ॥१
ततो देवासुरपितॄन् मानवांश्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वात्मना समयूयुजत् ॥२
युक्तात्मनस्ततस्तस्य ततो मात्रा स्वयम्भुवः ।
तमभिध्यायतः सर्गं प्रयत्नोऽभूत् प्रजापतेः ॥३
ततोऽस्य जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुताः ।
असुः प्राणः स्मृतो विप्रास्तज्जन्मानस्ततोऽसुराः ॥४
यया सृष्टाः सुरास्तन्वा तां तनुं स व्यपोहत ।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत ॥५
सा तमोबहुला यस्मात्ततो रात्रिस्त्रियामिका ।
आवृतास्तमसा रात्रौ प्रजास्तस्मात् स्वयम्भुवः ॥६
दृष्ट्वा सुरांस्तु देवेशस्तनुमन्यामपद्यत ।
अव्यक्तां सत्त्वबहुलां ततस्तां सोऽभ्ययुञ्जत ।
ततस्तां युञ्जतस्तस्य प्रियमासीत् प्रभोः किल ॥७

श्री सूत जी ने कहा—इसके अनन्तर अभिध्यान करने वाले उनके उन कारणों के साथ उनके शरीर से समुत्पन्न कार्यों से मानसी प्रजा को उत्पन्न किया। उस धीमान के गात्रों से क्षेत्रज्ञ हुए ॥ १ ॥ इसके पश्चात् देव, असुर, पितर और मानव नाम की सृष्टि करने की इच्छा वाले ने अपनी आत्मा से इनको और जलों को संयोजित कर दिया था ॥ २ ॥ इसके बाद स्वयम्भू के जन्म वाला युक्तात्मा उनके उस सर्ग का अभिध्यान करते हुये प्रजापति का प्रयत्न हुआ ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर इसकी जाँघ से पहिले असुर पुत्र उत्पन्न हुये। असु—यह प्राण

कहा जाता है। उसके जन्म देने वाले पितृ हैं। इससे असुर हुये ॥ ४ ॥ जिस शरीर से असुरों का सृजन किया था वह उन उसने अपोहित कर दिया। इससे वह तन अर्थात् शरीर अपवित्र हो गया इससे शुरन्त ही रात्रि उत्पन्न हुई ॥ ५ ॥ यह विशेष तम वाली थी इससे वह तीन याम वाली रात्रि हुई। इससे स्वयम्भू की समस्त प्रजा रात्रि में अन्धकार से एकदम आवृत्त हो गई थी ॥ ६ ॥ देवेश ने असुरों को देखकर अन्य तनु को ग्रहण किया थी कि अव्यक्त और सत्व की प्रचुरता वाली थी। इसके पश्चात् उसने उसको योजित कर दिया था। उसको योजित करने वाले प्रभु का वह बहुत ही प्रिय था ॥ ७ ॥

ततो मुखे समुत्पन्ना दीव्यतस्तस्य देवता ।
यतोऽस्य दीव्यतो जातास्तेन देवाः प्रकीर्तिताः ॥८
धातुर्दिवीति च प्रोक्तः क्रीडायां स विभाव्यते ।
तस्यान्तन्वान्तु दिव्यायां जज्ञिरे तेन देवता ॥९
देवान् सृष्ट्वाथ देवेशस्तनुमन्यां प्रपद्यत ।
सत्वमात्रात्मिकां देवस्ततोऽन्यां सोऽभ्यपद्यत ॥१०
पितृवन्मन्यमानस्तान् पुत्रान् प्राध्यायत प्रभुः ।
पितरो ह्युपपक्षाभ्यां रात्र्यह्नोरन्तरासृजत ।
तस्मात्ते पितरो देवाः पुत्रत्वन्तेन तेषु तत् ॥११
यया सृष्टास्तु पितरस्तान्तनुं स व्यपोहत ।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यः सन्ध्या प्रजायत ॥१२
तस्मादहस्तु देवानां रात्रिर्या साऽसुरी स्मृता ।
तयोर्मध्ये तु वै पैत्री या तनुः सा गरीयसी ॥१३
तस्माद् वासुराः सर्वे ऋषयो मनवस्तथा ।
ते युक्तास्तामुपासन्त ब्रह्मणो मध्यमान्तनुम् ॥१४

दीव्यमान उसके मुख से फिर देवगण उत्पन्न हुये क्योंकि वे दीव्यमान होते हुये ही उत्पन्न हुये थे इसीलिये वे देवता कहे गये थे ॥ ८ ॥ दिवु—यह धातु जो कहा गया है वह क्रीडा के अर्थ में होता है। उस दीव्यमान तनु से देवता उत्पन्न हुये थे ॥ ९ ॥ फिर देवेश ने देवों का सृजन करके उसके पश्चात्

उसने अन्य शरीर धारण किया। उस देव ने सत्वमात्र के स्वरूप वाले अन्य शरीर को प्राप्त किया था ॥ १० ॥ उस प्रभु ने उन पुत्रों को पिता की भाँति मानते हुये पढ़ाया। वे उन पुत्रों से पितर थे फिर प्रभु ने रात्रि और दिन के अन्तर काल का सृजन किया था। इसी से वे देव पितर हुये क्योंकि उनमें उनका पितृत्व भाव था ॥ ११ ॥ जिस तनु से पितरों की सृष्टि की थी उस शरीर का उसने त्याग कर दिया। वह शरीर उससे अपविद्ध हो गया था फिर उससे तुरन्त ही सन्ध्या उत्पन्न हो गई थी ॥ १२ ॥ इससे देवों का दिन हुआ क्योंकि असुरों की रात्रि कही गई है। उन दोनों के मध्य में जो ऐसी तनु था वह बहुत ही गौरव से पूर्ण था ॥ १३ ॥ इससे सब देव, असुर ऋषि और मनु युक्त होते हुए ब्रह्मा के उस मध्यम शरीर की उपासना करते हैं ॥ १४ ॥

ततोऽन्यां स पुनर्ब्रह्मा तनुं वै प्रत्यपद्यत।
रजोमात्रात्मिकायां तु मनसा सोऽसृजत् प्रभुः ॥१५
रजः प्रायान् ततः सोऽथ मानसानसृजत् सुतान्।
मनसस्तु ततस्तस्य मानसा जज्ञिरे प्रजाः ॥१६
दृष्ट्वा पुनः प्रजाश्चापि स्वान्तनुं तां ह्यपोहत।
साऽपविद्धा तनुस्तेन ज्योत्स्ना सद्यस्त्वजायत ॥१७
तस्माद्भवन्ति संहृष्टा ज्योत्स्नायां उद्भवे प्रजाः।
इत्येतास्तनवस्तेन ह्यपविद्धा महात्मनः ॥१८
सद्यो रात्र्यहनी चैव सन्ध्या ज्योत्स्ना च जज्ञिरे।
ज्योत्स्ना सन्ध्या तथाहश्च सत्त्वमात्रात्मकं त्रयम्।
तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मात्त्रियामिका ॥१९
तस्माद्देवा दिव्यतन्वा दृष्टा सृष्टा मुखात्तु वै।
यस्मात्तेषां दिवा जन्म बलिनस्तेन वै दिवा ॥२०
तन्वा यदसुरान् रात्रौ जघनादसृजत् प्रभुः।
प्राणेभ्यो रात्रिजन्मानो ह्यसह्या निशि तेन ते ॥२१

इसके अनन्तर उस ब्रह्मा ने फिर एक अन्य शरीर प्राप्त किया था। वह शरीर रजोगुण के स्वरूप वाला था और उसे उस प्रभु ने मन से सृजन किया

था ॥१५॥ इसके अनन्तर उस रजोगुण की बहुलता वाले उस शरीर से मानस पुत्रों का सृजन किया था। फिर इसके मन से मानस प्रजा उत्पन्न हुई ॥ १६ ॥ जब अपनी मानस प्रजा देखकर उसने अपने शरीर का त्याग कर दिया क्योंकि वह तनु उससे अपविद्ध होगया था फिर इससे तुरन्त ही ज्योत्स्ना उत्पन्न हो गई थी ॥१७॥ उससे ज्योत्स्ना के जन्म होने पर समस्त प्रजा अत्यन्त ही प्रसन्न हुई। उस महापुरुष ने इस तरह इतने ये शरीर विशेष रूप से अपविद्ध किये थे ॥१८॥ फिर तुरन्त ही रात्रि दिन सन्ध्या ज्योत्स्ना (चाँदनी) उत्पन्न हुए। ज्योत्स्ना सन्ध्या और दिन सत्त्व मात्र स्वरूप वाले स्वयं ही थे। रात्रि तमो मात्र स्वरूप वाली थी और वह तीन याम (प्रहर) के स्वरूप वाली थी ॥ १९ ॥ इनसे दिव्य तनु वाले देव परम शुभ और मुख से सृष्ट हुए थे। क्योंकि उनका दिवा मे जन्म हुआ इसलिये वे दिवा के ही बलि ग्रहण करने वाले हैं ॥२० ॥ जो असुर रात्रि मे शरीर की जाँघ से प्रभु ने उत्पन्न किये थे वे प्राणों से रात्रि के जन्म ग्रहण करने वाले हैं इसी से वे रात्रि मे असह्य होते हैं ॥ २१ ॥

एतान्येव भविष्याणां देवानामसुरैः सह ।
पितृणां मानवानाञ्च अतीतानागतेषु च ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषां निमित्तानि भवन्ति हि ॥२२
ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या चत्वार्याभासितानि वै ।
भान्ति यस्मात्ततो भासि भाशब्दोऽयं मनीषिभिः ।
व्याप्तिदीप्त्यां निगदितः पुनश्चाह प्रजापतिः ॥२३
सोऽम्भांस्येतानि दृष्ट्वा तु देवदानवमानवान् ।
पितॄंश्च वासृजत्सोऽप्यानात्मनो विविधान् पुनः ॥२४
तामुत्सृज्य तनुं कृत्स्नां ततोऽन्यामसृजत् प्रभुः ।
मूर्तिं रजस्तमः प्रायां पुनरेवाभ्ययुञ्जत ॥२५
अन्धकारे क्षुधाविष्टस्ततोऽन्यां सृजते पुनः ।
तेन सृष्टाः क्षुधात्मानस्तेऽम्भांस्यादातुमुद्यताः ॥२६
अम्भांस्येतानि रक्षाम उक्तवन्तश्च तेषु च ।

राक्षसास्ते स्मृता लोके क्रोधात्मानो निशाचराः ॥२७
येऽब्रुवन् क्षिणुमोऽम्भांसि तेषां हृष्टाः परस्परम् ।
तेन ते कर्मणा यक्षा गुह्यकाः क्रूरकर्मिणः ॥२८

ये ही भविष्य में होने वाले देवों के असुरों के साथ, पितरों के और अतीत तथा अनागत मानवों के सबवों के मन्वन्तरों में निमित्त होते हैं ॥ २२ ॥ ज्योत्स्ना, रात्रि, दिन और सन्ध्या ये चार आभासित हैं। जिस कारण से ये भा-युक्त होते हैं इसी से इनका 'भा' यह शब्द मनीषियों ने व्याप्ति और दीप्ति इन दोनों के कारण से कहा है और फिर प्रजापति ने भी कहा है ॥२३॥ उसने इन जलों को देखकर तथा देव, दानव, मानव और पितरों को देखकर उसने आत्मा से फिर अन्य देवों को सृजित किया ॥ २४ ॥ प्रभु ने उस अपने सम्पूर्ण शरीर को उत्सृजन करके फिर अन्य शरीर का सृजन किया और फिर रजोगुण और तमोगुण की बहुलता वाले शरीर को अभियोजित किया था ॥ २५ ॥ उस अन्धकार में क्षुधा से आविष्ट होते हुए उसने फिर अन्य तनु का सृजन किया। उससे सृजित हुए क्षुधात्मा के अम्भों को लेने के लिये उद्यत हो गये थे ॥२६॥ हम इन जलों की रक्षा करते हैं इस प्रकार से कहे गये वे उनमें राक्षस कहलाये थे जोकि लोक में क्रोधात्मा निशाचर थे ॥२७। जिन्होंने उनमें परस्पर में परम प्रसन्न होते हुए यह कहा कि हम इन जलों को क्षीण करते हैं। इस कर्म से यक्ष और क्रूर कर्म करने वाले गुह्यक हुए ॥ २८ ॥

रक्षणे पालने चापि धातुरेष विभाव्यते ।
य एष क्षिधातुर्वै क्षयणे सन्निरुच्यते ॥२९
तान्दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशाः शीर्यन्त धीमतः ।
शीतोष्णाच्चोच्छ्रिता ह्यूर्द्ध्वं ततारोहन्त तं प्रभुम् ॥३०
हीना मच्छिरसो व्याला यस्माच्चैवापसर्पिताः ।
व्यालात्मानः स्मृता व्यालाद्धीनत्वादहयः स्मृताः ॥३१
पन्नत्वात्पन्नगाश्चैव सर्पाश्चैवापसर्पिणः ।
तेषां पृथिव्यां निलयाः सूर्याचन्द्रमसोरधः ॥३२
तस्य क्रोधोद्भवो योऽसावग्निगर्भस्सुदारुणः ।

स तु सर्पसहोत्पन्नानाविवेश विषात्मिकाम् ॥२३
सर्पान् दृष्ट्वा ततः क्रोधात् क्रोधात्मानो विनिर्ममे ।
वर्णेन कपिशेनोग्रास्ते भूता पिशिताशना ॥ २४
भूतत्वात्ते स्मृता भूताः पिशाचाः पिशिताशनात् ।
धयतो गां प्रजज्ञाते गन्धर्वा जज्ञिरे तदा ॥२५
ध्यायतीत्येष धातुर्वै धात्वर्थे परिकल्पते ।
पिबतो जज्ञिरे गांस्तु गन्धर्वास्तेन ते स्मृताः ॥३६

यह धातु रक्षण और पालन के अर्थ में विभाषित होता है। जो यह क्षिति धातु है वह क्षपण में कही जाती है ॥२९॥ अप्रिय उसने उनको देखा कि धीमान् उसके केश विशीर्ण हो गये थे और शीत और उष्णता से ऊर्ध्व की ओर उच्छ्रित होते हुए उस प्रभु का आरोहण किया ॥ ३० ॥ मेरे शिर से हीन व्याल अपसर्पित हो गये इससे व्याल कहे गये और व्याल से हीनता होने के कारण से अहि कहलाये गये हैं ॥३१॥ पन्नत होने से वे पन्नग कहे गये और सर्पण करने वाले होने के कारण सर्प कहलाये गये हैं। उनका सूर्य और चन्द्रमा के अधोभाग में पृथिवी में निलय है ॥३२॥ उसके क्रोध से उत्पन्न होने वाला जो यह अग्नि गर्भ है वह बहुत ही दुराधर्ष है और वह सर्पों के साथ उनमें विषात्मकों में आविष्ट हो गया ॥३३॥ इसके अनन्तर सर्पों को देखकर क्रोध से क्रोधात्माओं का निर्माण किया वे कपिश वर्ण से उग्र मांस को खाने वाले भूत हुए ॥३४॥ भूतत्व होने से वे भूत कहे गये और पिशित (मांस) का अशन (भोजन) करने से पिशाच कहलाये गये हैं। धय से गा और उसके पश्चात् उस समय उनके गन्धर्व उत्पन्न हुए ॥३५॥ ध्यायति—यह धातु धात्वर्थ के अर्थ में परिकल्पित की जाती है। पीते हुए गा के उत्पन्न हुए थे इसलिये वे गन्धर्व कहे गये हैं ॥३६॥

अष्टास्वेतासु सृष्टासु देवयोनिषु स प्रभुः ।
ततः स्वच्छन्दतोऽन्यानि वयांसि वयसोऽसृजत ॥३७
छन्दतस्तानि छन्दांसि वयसोऽपि वयांस्यपि ।
पृथग्जग्म दृष्ट्वा तु देवो वक्षसस्तृणांस्तथा ॥३८

मुखतोऽजान् ससर्जाथ वक्षसश्च वयोऽसृजत् ।
गावश्चैवोदराद्ब्रह्मा पार्श्वाभ्याञ्च विनिर्ममे ॥३९
पद्भ्याञ्चाश्वान् समातङ्गान् रासभान् गवयान् मृगान् ।
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव न्यङ्कूनन्याश्च जातयः ॥४०
ओषध्यः फलमूलानि रोमतस्तस्य जज्ञिरे ।
एवं पश्वोषधीः सृष्ट्वा न्ययुञ्जत्सोऽध्वरे प्रभुः ॥४१
तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा ।
गौरजः पुरुषो मेषो ह्यश्वोऽश्वतरगर्दभौ ।
एतान् ग्राम्यान् पशूनाहुरारण्यांश्च निबोधत ॥४२
श्वापदा द्विखुरो हस्ती वानरः पक्षिपञ्चमाः ।
उन्दकाः पशवः षष्ठाः सप्तमास्तु सरीसृपाः ॥४३

इन आठ देव-योनियों की सृष्टि कर लेने पर उस प्रभु ने इसके अनन्तर स्वच्छन्दता से वय से अन्य पशु-पक्षियों का सृजन किया ।।३७।। छाग से छन्दों को वय से भी वयों को सृजा तथा देव ने भूतों को देखकर पक्षियों के समुदाय का भी सृजन किया था ।।३८।। मुख से अजों का उत्पन्न किया, वक्षःस्थल से वय का सृजन किया तथा ब्रह्माजी ने उदर से और पार्श्वों से गाय का सृजन किया था ।।३९।। पैरों से घोड़ों को, मातङ्गों को, रासभों को, गवयों को मृगों को, ऊँटों को और अश्वतरों को तथा इनकी अन्य जाति वालों का निर्माण किया ।।४०।। औषधियाँ, फल और मूल उसके रोम से उत्पन्न हुए। इस तरह से पशु-औषधियों का सृजन करके उस प्रभु ने अध्वर में नियोजन किया था ।।४१।। इससे आदि में कल्प के त्रेतायुग में मुख गौ, अज, पुरुष, मेष, अश्व, अश्वतर और गर्दभ—इनको ग्राम्य पशु कहते हैं। अब आगे आरण्य पशुओं को समझ लो ।।४२।। श्वापद, द्विखुर, हाथी, बन्दर, पक्षी पञ्चम, उन्दक, पशु और सप्तम सरीसृपों सृजन किया ।।४३।।

गायत्रं वरुणञ्चैव त्रिवृत्सौम्यं रथन्तरम् ।
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् ॥४४
छन्दांसि त्रैष्टुभङ्कर्म स्तोमं पञ्चदशन्तथा ।

बृहत्साममथोक्थञ्च दक्षिणात्सोऽसृजन्मुखात् ॥४५
सामानि जगतीछन्दस्तोमं पञ्चदशन्तथा ।
वैरूप्यमतिरात्रञ्च पश्चिमादसृजन्मुखात् ॥४६
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ।
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥४७
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।
वयांसि च ससर्जादौ कल्पस्य भगवान् प्रभु ॥४८
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
ब्रह्मणस्तु प्रजासर्ग सृजतो हि प्रजापते ॥४९
सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्वं देवासुरपितॄन् प्रजाः ।
ततः सृजति भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥५०

गायत्र ऋच त्रिवृत् सौम्य रथन्तर और अग्निष्टोम यज्ञों को प्रथम मुख से निर्माण किया था। ब्रह्माजी के चार मुखों में जो प्रथम था उससे इनकी आदियों की उत्पत्ति की थी ॥ ४४ ॥ त्रिष्टुप् छन्द स्तोम पन्द्रह च बृहत्साम उक्थ को दक्षिण मुख से सृजन किया था ॥४५॥ साम जगती छन्दोस्तोम पञ्च दश वैरूप्य अतिरात्र को पश्चिम मुख से सृजा था ॥ ४६ ॥ एकविंश अथर्वाण आप्तोर्यामाण अनुष्टुभ और सवैराज को ब्रह्माजी ने अपने उत्तर के मुख से सृष्ट किया था ॥ ४७ ॥ विद्युत् अशनि (वज्र) मेघ रोहित इन्द्र धनुष और पक्षी की अवस्था को भगवान् प्रभु ने आदि में सृजा था ॥ ४८ ॥ उच्चावच भूत उनके गात्रों अर्थात् शरीराङ्गों से उत्पन्न हुए क्योंकि प्रजापति ब्रह्माजी प्रजा के सर्ग का सृजन कार्य कर रहे थे ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर पहिले देव असुर पितर आदि चार प्रकार की प्रजा की सृष्टि करके इसके पश्चात् भूत स्थावर और चरों का सृजन करते हैं ॥५० ॥

यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वान् तथैवाप्सरसाङ्गणान् ।
नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् ॥५१
अव्ययञ्च व्ययं चैव यदिदं स्थाणु जङ्गमम् ।
तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे ।

तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥५२
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥५३
महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु ।
विनियोगञ्च भूतानां धातैव व्यदधात् स्वयम् ॥५४
केचित् पुरुषकारन्तु प्राहुः कर्म च मानवाः ।
दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं दैवचिन्तकाः ॥५५
पौरुषं कर्म दैवञ्च फलवृत्तिस्वभावतः ।
न चैकं न पृथग्भावमधिकं न तयोर्विदुः ।
एतदेवञ्च नैकञ्च न चोभे न च वाप्युभे ॥५६
कर्मस्थान् विषयान् ब्रूयुः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः ।
नामरूपञ्च भूतानां कृत्यानाञ्च प्रपञ्चनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ॥५७

यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराओं का समुदाय, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, मृग, उरग, अव्यय, व्यय, स्थाणु और जङ्गम का सृजन किया । इनमें जिन्होंने जो कर्म पहिले सृष्टि में प्राप्त किये थे वे पुनः-पुनः सृज्यमान होते हुए भी उन्हीं को प्राप्त होते हैं ॥५१-५२॥ हिंसा की वृत्ति वाले तथा अहिंसक, कोमल स्वभाव वाले तथा कठोर, धर्म और अधर्म, सत्य और अनृत आदि सबकी भावनाओं से भावित होकर वहाँ जन्म ग्रहण करते हैं और इसीलिये वही उनको अच्छा भी लगता है ॥५३॥ महाभूतों में अनेक प्रकारता और इन्द्रियों के अर्थों की मूर्तियों में भूतों का विनियोग करना विधाता ने ही स्वयं किया था ॥५४॥ कुछ मनुष्य तो पुरुषार्थ को ही कर्म कहते हैं और दैव (भाग्य या प्रारब्ध) का चिन्तन करने वाले अर्थात् भाग्यवादी दूसरे ब्राह्मण दैव ही को कहा करते हैं ॥ ५५ ॥ पौरुष कर्म और दैव इसके फल की वृत्ति स्वभाव से ही हुआ करती है । न तो ये दोनों एक ही है न ये दोनों पृथक् ही होते है और न उन दोनों में कोई अधिक ही है । इस प्रकार से यह दोनों न एक ही है और न दो अलग-अलग ही होते हैं ॥५६॥ सत्त्व गुण में स्थित रहने वाले समान भाव से देखने वाले समदर्शी

बृहत्सामरथन्तरञ्च दक्षिणात्सोऽसृजन्मुखात् ॥५५
सामानि जगतीच्छन्दस्तोमं पञ्चदशं तथा ।
वैरूप्यमतिरात्रञ्च पश्चिमादसृजन्मुखात् ॥५६
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ।
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥५७
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।
वयांसि च ससर्जादौ कल्पस्य भगवान् प्रभुः ॥५८
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
ब्रह्मणस्तु प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः ॥५९
सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्वं देवासुरपितॄन् प्रजाः ।
ततः सृजति भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥६०

गायत्र छन्द त्रिवृत्स्तोम रथन्तर और अग्निष्टोम यज्ञों को प्रथम मुख से निर्माण किया था । ब्रह्माजी के चार मुखों में जो प्रथम था उससे इनकी सृष्टियों की उत्पत्ति की थी ॥ ५४ ॥ त्रिष्टुभ छन्द स्तोम पञ्चदश बृहत्साम उक्थ्य इन दोनों को दक्षिण मुख से रचन किया था ॥५५॥ साम जगती छन्दस्तोम पञ्चदश वैरूप्य अतिरात्र को पश्चिम मुख से सृजा था ॥ ५६ ॥ एकविंश अथर्वाण आप्तोर्यामाण अनुष्टुभ और वैराज को ब्रह्माजी ने अपने उत्तर के मुख से सृष्ट किया था ॥ ५७ ॥ विद्युत् अशनि (वज्र) मेघ रोहित इन्द्र धनुष और पक्षी की अवस्था को भगवान् प्रभु ने आदि में रचा था ॥ ५८ ॥ उच्चावच भूत इनके गात्रों अर्थात् शरीराङ्गों से उत्पन्न हुए क्योंकि प्रजापति ब्रह्माजी प्रजा के सर्ग का सृजन कार्य कर रहे थे ॥ ५९ ॥ इसके अनन्तर पहिले देव असुर पितर आदि चार प्रकार की प्रजा की सृष्टि करके इसके पश्चात् भूत स्थावर और चरों का सृजन करते हैं ॥६० ॥

यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसां गणान् ।
नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् ॥६१
अव्ययञ्च व्ययं चैव यदिदं स्थाणुजङ्गमम् ।
तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे ।

तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमाना पुनः पुनः ॥५२
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविता प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥५३
महाभूतेषु नानात्वं मिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु ।
विनियोगञ्च भूतानां धातैव व्यदधात् स्वयम् ॥५४
केचित् पुरुषकारन्तु प्राहुः कर्म च मानवाः ।
दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं दैवचिन्तकाः ॥५५
पौरुषं कर्म दैवञ्च फलवृत्तिस्वभावतः ।
न चैकं न पृथग्भावमधिकं न तयोर्विदुः ।
एतदेवञ्च नैकञ्च न चोभे न च वाप्युभे ॥५६
कर्मस्थान् विषयान् ब्रूयुः सत्त्वस्था समदर्शिनः ।
नामरूपञ्च भूतानां कृतानाञ्च प्रपञ्चनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ॥५७

यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराओं का समुदाय, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, मृग, उरग, अव्यय, व्यय, स्थाणु और जङ्गम का सृजन किया। इनमें जिन्होंने जो कर्म पहिले सृष्टि में प्राप्त किये थे वे पुनः पुनः सृज्यमान होते हुए भी उन्हीं को प्राप्त होते हैं ॥५१-५२॥ हिंसा की वृत्ति वाले तथा अहिंसा, कोमल स्वभाव वाले तथा कठोर, धर्म और अधर्म, ऋत और अनृत आदि तत्तद् भावनाओं से भावित होकर यहाँ जन्म ग्रहण करते हैं और इसीलिये यही उनको अच्छा भी लगता है ॥५३॥ महाभूतों में अनेक प्रकारता और इन्द्रियों के अर्थों की मूर्तियों में भूतों का विनियोग करना विधाता ने ही स्वयं किया था ॥५४। कुछ मनुष्य तो पुरुषार्थ को ही कर्म कहते हैं और दैव (भाग्य या प्रारब्ध) का चिन्तन करने वाले अर्थात् भाग्यवादी दूसरे ब्राह्मण दैव ही को कहा करते हैं ॥ ५५ ॥ पौरुष कर्म और दैव इनके फल की वृत्ति स्वभाव से ही हुआ करती है। न तो ये दोनों एक ही हैं न ये दोनों पृथक् ही होते हैं और न इन दोनों में कोई अधिक ही है। इस प्रकार से यह दोनों न एक ही हैं और न दो अलग-अलग ही होते हैं ॥५६॥ सत्त्व गुण में स्थित रहने वाले समान भाव से देखने वाले समदर्शि

मुख्य कर्मों में स्थित रहने वाले विषयों को नीला करते हैं। महेश्वर उन भगवान् ने आदि में विभिन्न भूतों के नाम और रूप का समस्त प्रपञ्च वेदों से ही प्रकट किये हैं ॥५७॥

ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः ।
शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवास्य ददाति सः ॥५८
यथर्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥५९
एवंविधासु सृष्टासु ब्रह्मणाऽव्यक्तजन्मना ।
शर्वर्यन्ते प्रदृश्यन्ते सिद्धिमाश्रित्य मानसीम् ॥६०
एवं भूतानि सृष्टानि चराणि स्थावराणि च ।
यदाऽस्य ताः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्धन्त धीमतः ॥६१
अथान्यान्मानसान् पुत्रान् सदृशानात्मनोऽसृजत् ।
भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसन्तथा ॥६२
मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसम् ।
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ।
तेषां ब्रह्मात्मकानां वै सर्वेषां ब्रह्मवादिनाम् ॥६३

ऋषियों के नामधेय अर्थात् नाम और वेदों में जो दृष्टियाँ हैं वे सब रात्रि के अन्त में उत्पन्न होने वालों के वही उनको देता है ॥५८॥ ऋतुओं के अनुसार जो ऋतुओं के चिह्न होते हैं और अनेक प्रकार के स्वरूप होते हैं जबकि उनका परिवर्तन हुआ करता है वे सब युगादिकों में उस तरह के भाव से वे ही दिखाई दिया करते हैं ॥५९॥ इस प्रकार के अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा के द्वारा इस रीति से की हुई सृष्टियों में रात्रि के अन्त में मानसी सिद्धि का आश्रय करके दिखलाई दिया करते हैं ॥ ६० ॥ इस तरह से ब्रह्माजी ने चर और स्थावर भूतों की सृष्टि की किन्तु उनकी यह सृजन की हुई समस्त प्रजा जब वृद्धि प्राप्त करती हुई नहीं हुई तो धीमान् ब्रह्मा ने अपनी ही आत्मा के सदृश अन्य मानस पुत्रों का सृजन किया था जिनके नाम भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरस, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ ये होते हैं। ये सभी ब्रह्मवादी

और महात्मक अर्थात् ब्रह्मा के स्वरूप वाले ही थे जिनको कि पुराण में निश्चित रूप से 'नव ब्रह्मा' ऐसा ही कहा गया है ॥६१–६२–६३॥

ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसम्भवम् ।
संकल्पं चैव धर्मं च पूर्वेषामपि पूर्वजः ॥६४
अग्रे ससर्ज्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ।
सनन्दनं ससनकं विद्वांसं च सनातनम् ॥६५
सनत्कुमारं च विभुं सनकं च सनन्दनम् ।
न ते लोकेषु सज्जन्ते निरपेक्षाः सनातनाः ॥६६
सर्वे ते ह्यागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः ।
तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकवृत्तानुकारणात् ॥६७
हिरण्यगर्भो भगवान् परमेष्ठी ह्यचिन्तयत् ।
तस्य रोषात्समुत्पन्नः पुरुषोऽर्कसमद्युतिः ।
अर्द्धनारीनरवपुस्तेजसा ज्वलनोपमः ॥६८
सर्वं तेजोमयं जातमादित्यसमतेजसम् ।
विभजात्मानमित्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥६९
एवमुक्त्वा द्विधाभूतः पृथक् स्त्री पुरुषः पृथक् ।
स चैकादशधा जज्ञे अर्द्धमात्मानमीश्वरः ॥७०

इसके उपरान्त पूर्व में होने वालों में भी सबसे पहिले जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा ने रोषात्म सम्भव रुद्र का सृजन किया और संकल्प तथा धर्म का सृजन किया था ॥६४॥ पहिले ब्रह्माजी ने अपने ही तुल्य मानस सनक के सहित सनन्दन परम विद्वान् सनातन और विभु सनत्कुमार का सृजन किया था किन्तु वे लोकों के सृजन कर्म में निरपेक्ष होने के कारण प्रवृत्त ही नहीं हुए थे ॥ ६५–६६ ॥ वे सबके सब ज्ञानोदय हो जाने वाले, वीतराग अर्थात् परम वैराग्य से परिपूर्ण रहने वाले और मत्सरता से रहित थे । इस प्रकार से लोक वृत्त के अनुकरण में बिल्कुल ही अपेक्षा न रखने वाले उनके होने पर ब्रह्माजी चिन्तित हुए ॥ ६७ ॥ उस समय लोक सृजन एवं बराबर उसके वर्धन के अपने कार्य में असफल रहते हुए हिरण्यगर्भ परमेष्ठी भगवान् ने मन में बहुत ही चिन्ता की

थी। उस चिन्तन काल में उनके रोष से समुद्भव सूर्य के समान छवि वाला अर्धनारीश्वर पुरुष सामने हुआ जो इतना तेज युक्त था जैसे कि साक्षात् अग्नि ही हो ॥६८॥ यह आदित्य के समान तेज वाला समस्त तेज से पूर्ण उत्पन्न हुआ और अपने आपका विभाजन करो यह कहकर वहीं पर ही अन्तर्हित हो गया ॥ ६९॥ इस प्रकार कहकर पुरुष और स्त्री पृथक्-पृथक् होकर दो रूपों में ईश्वर ने अपने आपके अर्ध भाग को एकादश प्रकार से जन्म दिया अर्थात् उत्पन्न किया था ॥७०॥

तेनोक्तास्ते महात्मानं सर्व एव महात्मना ।
जगतो बहुलीभावमधिकृत्य हितैषिणा ॥७१
लोकवृत्तान्तहेतोर्हि प्रयत्नपरमन्विता ।
विश्वं विश्वस्य लोकस्य स्थापनाय हिताय च ॥ ७२
एवमुक्तास्तु रुद्रास्तु द्रवुश्च समन्ततः ।
रोदनाद्द्रावणाच्चैव ते रुद्रा नाम्नेति विश्रुता ॥७३
यैर्हि व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तेषामनुचरा लोके सर्वलोकपरायणाः ॥७४
पतन्नागा युगबलाः विक्रान्ताश्च गणेश्वराः ।
यश्च सा सा महाभागा शङ्करस्यार्धकायिनी ॥७५
प्रागुक्ता तु मया तुभ्यं स्त्री स्वयम्भोर्मुखोद्गता ।
कायार्धं दक्षिणं तस्याः शुक्लं वामं तथाऽसितम् ॥ ७६
आत्मानं विभजस्वेति प्रोक्ता देवी स्वयम्भुवा ।
सा तु प्रोक्ता द्विधाभूता शुक्ला कृष्णा च वै द्विजा ।
तस्या नामानि वक्ष्यामि शृणुध्वं सुसमाहिता ॥७७

उन महान् आत्मा के द्वारा इस प्रकार से कहे गये वे सभी महात्मा लौकिक हित के चाहने वाले थे जगत् की बहुलता को करने की भावना से अधिकार वाले हुए॥ ७१॥ आप सब अभिलग्न होते हुए लोक के वृत्तान्त के लिये पूर्ण प्रयत्न करो अर्थात् विश्व की रचना करने में आलस्य का त्याग कर पूरा-पूरा यत्न करो। लोक की स्थापना और विश्व का हित करना ही तुम्हारा पूर्ण

पर्यन्त है ॥ ७२ ॥ जब ब्रह्माजी ने लोक की रचना एवं स्थापना तथा विश्व के हित के कार्यों की निमित्ति के लिये उनसे कहा तो वे गल और से रुदन करने लगे और एकदम द्रवीभूत हो गये । अतएव रोदन करने से तथा उनके द्रावण होने से उनका नाम संसार में "रुद्र"—यह प्रसिद्ध हो गया था ॥७३॥ जिनके द्वारा यह समस्त चर और अचर स्वरूप वाला त्रैलोक्य व्याप्त हो गया था वे भगवान् रुद्र थे । उनके अनुचर लोक में समस्त लोक कार्यों में पराक्रम हुए ॥ ७४ ॥ वे गणेश्वर अनेक नागों के बल के तुल्य बल वाले और परम विक्रम से युक्त थे । और वहीं पर भगवान् शङ्कर के अर्ध शरीर वाली जो वह परम महान् भाग वाली थी ॥७५॥ पहिले मैंने तुमको स्वयम्भू के मुख से उत्पन्न हुई स्त्री के विषय में बतलाया था । उसका दक्षिण काया का अर्द्ध भाग शुक्ल तथा वाम अर्द्ध भाग असित था ॥ ७६ ॥ हे द्विज वृन्द ! आत्मा का विभाजन करती इस प्रकार से भगवान् स्वयम्भू के द्वारा कही गई वह शुक्ल और कृष्ण दो प्रकार की हो गई थी । अब उनके नाम मैं बतलाता हूँ उन्हें तुम लोग सावधान होकर श्रवण करो ॥ ७७ ॥

स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती ।
अपर्णा चैकपर्णा च तथा स्यादेकपाटला ॥७८
उमा हैमवती षष्ठी कल्याणी चैव नामतः ।
ख्यातिः प्रज्ञा महाभागा लोके गौरीति विश्रुता ॥७९
विश्वरूपमथार्याया पृथग्देहविभावनात् ।
शृणु सङ्क्षेपतस्तस्याः यथावदनुपूर्वशः ॥८०
प्रकृतिर्नियता रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी ।
कालरात्रिर्महामाया रेवती भूतनायिका ॥८१

द्वापरान्तविकारेषु देव्या नामानि मे शृणु ।
गौतमी कौशिकी आर्या चण्डी कात्यायनी सती ॥८२
कुमारी यादवी देवी वरदा कृष्णपिङ्गला ।
बर्हिर्ध्वजा शूलधरा परमब्रह्मचारिणी ॥८३
माहेन्द्री चेन्द्रभगिनी वृषकन्यैकवाससी ।

ब्रह्मा का मानस पुत्र दक्ष–इस नाम वाला जानना चाहिए। अपने प्राण से ब्रह्मा ने दक्ष को उत्पन्न किया और चक्षुओं से मरीचि को जन्म दिया था ।।९२।। भृगु हृदय से उत्पन्न हुए अर्थात् प्रजित से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा के हृदय से भृगु महर्षि की उत्पत्ति हुई थी। शिर से अङ्गिरस की तथा श्रोत्र से अत्रि ऋषि का जन्म हुआ था ।।९३।। उदान से पुलस्त्य को व्यान से पुलह को समान से वसिष्ठ को अपान से क्रतु को और अभिमान के स्वरूप वाले नील लोहित रुद्र को निर्मित किया था। ये बारह प्राण से जन्म लेने वाले ब्रह्मा के पुत्र कहलाये थे ।।९४।। ये ब्रह्मा के पुत्र मानस जानने चाहिए और जो भृगु आदि का सर्जन किया था ये ब्रह्मवादी नहीं थे ।।९६।। ये सब पुराण गृहमेधी अर्थात् पुराने गृहस्थ थे जिन्होंने प्रथम धर्म को प्रवृत्त किया था। ये बारह वंश के साथ प्रजा के सर्जन में प्रवृत्त होते हैं ।।९७।। ऋभु और सनत्कुमार ये दोनों ऊर्ध्वरेता थे। ये उनसे पहिले भागीय उत्पन्न हुए थे और ये दोनों सभी के पूर्वज थे ।।९८।।

व्यतीते प्रथमे कल्पे पुराणे लोकसाक्षिणौ ।
वैराजे तावुभौ लोके तेजः संक्षिप्य चास्थितौ ।।९९
तावुभौ योगधर्माणावारोप्यात्मानमात्मनि ।
प्रजाधर्मञ्च कामञ्च वर्तयेते महौजसौ ।।१००
यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमार इति चोच्यते ।
तस्मात्सनत्कुमारोऽयमिति नामास्य कीर्तितम् ।।१०१
तेषां द्वादश ते वंशा दिव्या देवगुणान्विताः ।
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृताः ।।१०२
इत्येष करणोद्भूतो लोकान् सृष्ट्वा स्वयम्भुवः ।
महदादिर्विशेषान्तो विकारः प्रकृतेः स्वयम् ।।१०३
चन्द्रसूर्यप्रभालोको ग्रहनक्षत्रमण्डितः ।
नदीभिश्च समुद्रैश्च पर्वतैश्च समावृतः ।।१०४
पुरैश्च विविधाकारैः स्फीतैर्जनपदैस्तथा ।
तस्मिन् ब्रह्मवनेऽव्यक्ते ब्रह्मा चरति शर्वरीम् ।।१०५

वैराज नामक प्रथम कल्प के व्यतीत होने पर लोकों के साधक ये दोनों लोक में तेज का संक्षेप करके आश्रित रहे थे ॥ ९९ ॥ योग के धर्म वाले वे दोनों आत्मा में आत्मा को आरोप करके महान् ओज से प्रजा धर्म और काम को बरतते थे ॥ १०० ॥ ज्यों ही यहाँ उत्पन्न हुये वैसे ही कुमार यह कहे जाते हैं । इसी कारण से यह सनत्कुमार हैं—इस प्रकार से इनका नाम कीर्तित हुआ है ॥ १०१ ॥ उनके ये देव गुणों से युक्त दिव्य द्वादश गण हुए जो महर्षियों से अलङ्कृत क्रिया वाले और प्रजा वाले थे ॥ १०२ ॥ यह करण में उद्भूत स्वयम्भू के लोकों का सृजन करने के लिये महत् से आदि लेकर विशेष के अन्त तक स्वयं प्रकृति का विकार है ॥ १०३ ॥ चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा से आलोक (प्रकाश) वाला, ग्रहों और नक्षत्रों से विभूषित तथा नदियों, समुद्रों और पर्वतों से समावृत—अनेक प्रकार के आकार वाले, पुरों से एवं प्रीतियुक्त जनपदों से आवृत ऐसे उस अव्यक्त ब्रह्म-वन में ब्रह्मा शर्वरी (रात्रि) को बिताते हैं ॥१०४-१०५ ॥

अव्यक्तबीजप्रभवस्तस्यैवानुग्रहोत्थितः ।
बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियाङ्कुरकोटरः ॥१०६
महाभूतप्रशाखश्च विशेषैः पत्रवांस्तथा ।
धर्माधर्मसुपुष्पस्तु सुखदुःखफलोदयः ॥१०७
आजीवः सर्वभूतानामयं वृक्षः सनातनः ।
एतद्ब्रह्मवनं चैव ब्रह्मवृक्षस्य तस्य ह ॥१०८
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।
इत्येषोऽनुग्रहः सर्गो ब्रह्मणः प्राकृतस्तु यः ॥१०९
मुख्यादयस्तु षट् सर्गा वैकृता बुद्धिपूर्वकाः ।
त्रैकाले सम्प्रवर्तन्ते ब्रह्मणस्तेऽभिमानिनः ॥११०
सर्गाः परस्परस्यात्र कारणं ते बुधैः स्मृताः ।
दिव्यौ सुपर्णौ सयुजौ सशाखौ पटविङ्गौ ।
एकस्तु यो द्रुमं वेत्ति नान्यः सर्वात्मनस्ततः ॥१११

द्यौर्मूर्धानं यस्य विप्राः स्तुवन्ति खं नाभिं च चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे।
दिशः श्रोत्रे चरणौ चास्य भूमिः
सोऽचिन्त्यात्मा सर्वभूतप्रसूतिः ॥११२

वक्त्राद्यस्य ब्राह्मणाः सम्प्रसूता वक्षसस्तु क्षत्रियाः पूर्वभागे।
वैश्याश्चोरोर्यस्य पद्भ्यां च शूद्राः
सर्वे वर्णा गात्रतः सम्प्रसूताः ॥११३

महेश्वरः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम्।
अण्डाज्जज्ञे पुनर्ब्रह्मा येन लोकाः कृतास्त्विमे ॥११४

उसी के अनुग्रह से उत्पन्न हुआ—अव्यक्त बीज से प्रभव (जन्म) वाला, बुद्धि के स्कन्ध से परिपूर्ण, इन्द्रियों के अंकुर कोटर वाला, महाभूतों की प्रशाखाओं वाला, विशेषों के से पत्तों वाला, धर्म तथा अधर्म रूपी पुष्पों से अन्वित सुख और दुःख रूपी फलों के उदय वाला और समस्त प्राणियों की आजीविका वाला यह सनातन वृक्ष है। वह ब्रह्म वृक्ष का यह ब्रह्म ही बीज होता है ॥ १६—१७—१८ ॥ जो अव्यक्त कारण है वह नित्य और सत् तथा असत् स्वरूप वाला होता है। जो प्राकृतिक सर्ग है वह ब्रह्मा का अनुग्रह है ॥ १९ ॥ मुख्य आदि छः सर्ग अबुद्ध और बुद्धिपूर्वक होते हैं। ये अभिमान वाले ब्रह्मा के प्रत्यक्ष में होते थे ॥ ११ ॥ विद्वानों ने इन सर्गों को ही परमेश्वर के कारण कहा है। सुन्दर पत्र वाले, मधुर और शाखाओं से युक्त दिव्य विटप हैं। जो एक रूप का ज्ञान रखता है वह सर्वात्मा से अन्य नहीं है ॥ ११२ ॥ जिसकी द्यौ को मूर्धा विप्रगण स्तवन किया करते हैं आकाश जिसकी नाभि है और चन्द्रमा तथा सूर्य दो नेत्र हैं दिशा श्रोत्र हैं और भूमि उसके चरण हैं वह समस्त प्राणियों की उत्पत्ति करने वाला अचिन्त्य आत्मा है ॥ ११२ ॥ जिसके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए वक्षःस्थल से क्षत्रिय ऊरुओं के पूर्व भाग से वैश्य और जिसके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार सभी वर्ण उसके शरीर से ही समुत्पन्न हुए हैं ॥ ११३ ॥ अव्यक्त से पर महेश्वर है और अव्यक्त से उत्पन्न अण्ड है। अण्ड से फिर ब्रह्मा ने जन्म ग्रहण किया जिस ब्रह्मा ने ये सभी लोक बनाये हैं ॥ ११४ ॥

॥ मन्वन्तरादि वर्णन ॥

एवंभूतेषु लोकेषु ब्रह्मणा लोककर्तृणा ।
यदा ता न प्रवर्त्तन्ते प्रजा केनापि हेतुना ॥१
तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदाप्रभृति दुःखित ।
तत स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम् ॥२
अथात्मनि समस्राक्षीत्तमोमात्रां नियामिकाम् ।
राजसत्त्वं पराजित्य वर्त्तमानं स धर्मत ॥३
तप्यते तेन दुःखेन शोकञ्चक्रे जगत्पति ।
तमश्च व्यनुदत्तस्माद्रजस्तमसमावृणोत् ॥४
ततम प्रतिनुत्तं वै मिथुनं स व्यजायत ।
अधर्माच्चरणाज्जज्ञे हिंसा शोकादजायत ॥५
ततस्तस्मिन् समुद्भूते मिथुने चरणात्मनि ।
ततश्च भगवानासीत् प्रीतिश्चैनमशिश्रियत् ।।६
स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोहदभास्वराम् ।
द्विधाकरोत्स तं देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥७
अर्द्धेन नारी सा तस्य शतरूपा व्यजायत ।
प्राकृतां भूतधात्रीं तां कामान्वै सृष्टवान् विभुः ॥८

श्री सूत जी ने कहा—इस प्रकार से होने वाले लोकों में उन लोकों की रचना करने वाले ब्रह्मा के द्वारा किसी भी हेतु से वह प्रजा प्रवृत्त न हुई तब तमोमात्र से आवृत ब्रह्मा जी तभी से लेकर अत्यन्त दुःखित हुये। इसके अनन्तर उन्होंने अर्थ के निश्चय करने वाली बुद्धि बनाई ॥ १—२ ॥ इसके अनन्तर उनसे धर्म से वर्त्तमान राजसत्व को पराजित करके तमोमात्रा को नियामक बुद्धि का आत्मा में सृजन किया था ॥ ३ ॥ उस दुःख से वह तप्यमान होते हैं और जगत्पति ने बड़ा शोक किया था। उससे तम का विनोदन किया और रजोगुण ने तमोगुण आवृत कर लिया था ॥ ४ ॥ प्रतिनुत्त हुए उस तम से मिथुन की उत्पत्ति हुई। अधर्म के चरण से हिंसा शोक से उत्पन्न हुई ॥ ५ ॥ इसके पश्चात् चरणात्मा मिथुन के समुत्पन्न होने पर इसके अनन्तर भगवान् प्रसन्न हुए

और इस प्रकार से सेवन किया ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् ब्रह्मा ने अपने उस कमलाम्बर शरीर का अपोह कर दिया और उसने उस देह के दो भाग कर दिए। आधे भाग से वह पुरुष हुए और आधे शरीर के भाग से उसकी नारी शतरूपा उत्पन्न हुई। विभु ने भूतों की आकृति वाली उसको मानकर कामनाओं की सृष्टि की थी ॥ ७—८ ॥

सा दिवं पृथिवीञ्चैव महिम्ना व्याप्य धिष्ठिता।
ब्रह्मणः सा तनुः पूर्वा दिवमावृत्य तिष्ठति ॥९
या त्वर्द्धात् सृजते नारी शतरूपा व्यजायत।
सा देवी नियुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥१०
भर्त्तारं दीप्तयशसं पुरुषं प्रत्यपद्यत।
स वै स्वायम्भुवः पूर्वं पुरुषो मनुरुच्यते ॥११
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते।
लब्ध्वा तु पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥१२
तया स रमते सार्द्धं तस्मात्सा रतिरुच्यते।
प्रथमः सम्प्रयोगः स कल्पादौ समवर्त्तत ॥१३
विराजमसृजद् ब्रह्मा सोऽभवत् पुरुषो विराट्।
सम्राडिमानसरूपात्तु स राजस्तु मनुः स्मृतः ॥१४

वह अपनी महिमा से दिव और पृथिवी में व्याप्त होकर अधिष्ठित हुई। ब्रह्मा का वह पूर्व तनु दिव को आवृत करके अधिष्ठित होता है ॥ ९ ॥ जिस शरीर ने अपने अर्द्धभाग से नारी का सृजन किया और शतरूपा समुत्पन्न हुई। उस देवी ने दश हजार वर्ष पर्यन्त परम दुश्चर तप किया था ॥ १० ॥ ऐसी तप तपश्चर्या करके उसने दीप्त यश वाले अपना स्वामी पुरुष प्राप्त किया था और वह पुरुष प्रथम स्वायम्भुव मनु इस नाम से कहा जाता है ॥ ११ ॥ यहाँ पर उसका एक सप्तति अर्थात् इकहत्तर युगपर्यन्त मन्वन्तर कहा जाता है। पुरुष ने अयोनिजा अर्थात् योनि से उत्पन्न न होने वाली शतरूपा को पत्नी के रूप में प्राप्त किया ॥ १२ ॥ वह उनके साथ रमण करते हैं इसीलिये वह रति कही जाती है। कल्प के आदि में यह प्रथम सम्प्रयोग हुआ ॥ १३ ॥ ब्रह्मा जी ने

विराट् का सृजन किया सो वह पुरुष विराट् हो गया था। मानस रूप मे सम्राट् वैराज मनु कहा गया है ॥ १४ ॥

स वैराज प्रजासर्गं स सर्गं पुरुषो मनु ।
वैराजात्पुरुषाद्वीराच्छतरूपा व्यजायत ॥१५
प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ।
कन्ये द्वे च महाभागे याभ्यां जाता प्रजास्त्विमाः ॥१६
देवी नाम्ना तथाकूति प्रसूतिश्चैव ते शुभे ।
स्वायम्भुव प्रसूतिन्तु दक्षाय व्यसृजन् प्रभु ॥१७
प्राणो दक्षस्तु विज्ञेय सङ्कल्पो मनुरुच्यते ।
रुचे प्रजापतेश्चैव आकूतिं प्रत्यपादयत् ॥१८
आकूत्यां मिथुनं यज्ञे मानसस्य रुचे शुभम् ।
यज्ञश्च दक्षिणा चैव यमकौ सम्बभूवतु ॥१९
यज्ञस्य दक्षिणायाञ्च पुत्रा द्वादश जज्ञिरे ।
यामा इति समाख्याता देवा स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥२०
यमस्य पुत्रा यतश्च तस्माद्यामास्तु ते स्मृता ।
अजिताश्चैव शुक्राश्च गणौ द्वौ ब्रह्मण स्मृतौ ॥२१

वह वैराज प्रजासर्ग है और वह सर्ग मे पुरुष मनु है। वीर वैराज पुरुष से शतरूपा उत्पन्न हुई ॥ १५ ॥ पुत्रवालों में परम श्रेष्ठ प्रियव्रत और उत्तान पाद दो पुत्र और दो महान् भाग्यशालिनी कन्याएं हुई जिन दोनो से ये समस्त प्रजा उत्पन्न हुई ॥ १६ ॥ नाम से वे देवी आकूति और प्रसूति थी जो कि अत्यन्त शुभ थी। स्वायम्भुव प्रभु ने प्रसूति को दक्ष के लिये दान करके दिया था ॥ १७ ॥ प्राण को दक्ष समझ लेना चाहिये और सङ्कल्प मनु कहा जाता है। प्रजापति रुचि के लिए आकूति को दे दिया ॥ १८ ॥ आकूति मे मानस के यज्ञ में शुभ मिथुन हुआ। यज्ञ और दक्षिणा यह यमल (जोड़ली सन्तति) पैदा हुआ ॥ १९ ॥ यज्ञ के दक्षिणा मे बारह पुत्र उत्पन्न हुए। वे स्वायम्भुव के अन्तर में 'यामा' इस नाम से प्रख्यात हुए थे ॥ २० ॥ यम के पुत्र थे इससे यम के याम कहे गये हैं। अजित और शुक्र ये दो गण ब्राह्मण कहे गये हैं ॥२१॥

यामा पूर्वं परिक्रान्ता यत्र संज्ञा दिवौकसः ।
स्वायम्भुवसुतायान्तु प्रसूत्यां लोकमातरः ॥२२
तस्यां कन्याश्चतुर्विंशद्दक्षस्त्वजनयत् प्रभुः ।
सर्वास्ताश्च महाभागाः सर्वाः कमललोचनाः ॥२३

योगपत्न्यश्च ताः सर्वाः सर्वास्ता योगमातरः ।
श्रद्धा लक्ष्मी धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी ॥२४
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः ।
द्वाराण्येतानि चैवास्य विहितानि स्वयम्भुवा ॥२५

ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः ।
ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ॥२६
सन्नतिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा ।
तास्तथा प्रत्यपद्यन्त पुनरन्ये महर्षयः ॥२७
रुद्रो भृगुर्मरीचिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः ।
पुलस्त्योऽत्रिर्वसिष्ठश्च पितरोऽग्निस्तथैव च ॥२८

याम पहिले परिक्रान्त हुए इसलिए दिवौकस संज्ञा हुई। स्वायम्भुव सुता प्रसूति में दक्ष ने लोकमातर चौबीस कन्याओं को उत्पन्न किया था। वे सभी महान् भाग वाली और सभी कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली परम सुन्दरी थी ॥ २२—२३ ॥ वे सभी योग पत्नियाँ थीं और सब योगमाताएँ थीं। श्रद्धा लक्ष्मी धृति तुष्टि पुष्टि मेधा क्रिया बुद्धि लज्जा, वपु शान्ति सिद्धि कीर्ति इन तेरहों को दाक्षायणी प्रभु धर्म ने पत्नी के रूप में ग्रहण कर लिया था। इसके ये द्वार स्वयम्भू ने किए थे ॥ २४—२५ ॥ उनसे शेष यवीयान की एकादश सुलोचनाएँ थीं जिनके नाम ये हैं—ख्याति सती सम्भूति स्मृति प्रीति तथा क्षमा सन्नति अनसूया ऊर्जा स्वाहा और स्वधा ये ग्यारह हैं। इनको फिर अन्य महर्षियों ने ग्रहण किया था। उन महर्षियों के नाम ये हैं—रुद्र भृगु मरीचि अङ्गिरा पुलह क्रतु पुलस्त्य अत्रि वसिष्ठ पितर और अग्नि ये महर्षियों के नाम थे ॥ २६—२७—२८ ॥

सती भवाय प्रायच्छत् ख्यातिञ्च भृगवे तथा।
मरीचये च सम्भूति स्मृतिमाङ्गिरसे ददौ ॥२९
प्रीतिं चैव पुलस्त्याय क्षमां वै पुलहाय च।
क्रतवे सन्नतिं नाम अनसूयास्तथात्रये ॥३०
ऊर्जां ददौ वसिष्ठाय स्वाहां वै ह्यग्नये ददौ।
स्वधां चैव पितृभ्यस्तु तास्वपत्यानि वक्ष्यते ॥३१
एते सर्वे महाभागाः प्रजाः स्वानुष्ठिताः स्थिताः।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३२
श्रद्धा कामं विजज्ञे वै दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः।
धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्या सन्तोष उच्यते ॥३३
पुष्ट्या लाभः सुतश्चापि मेधापुत्रः श्रुतस्तथा।
क्रियायास्तु नयः प्रोक्तो दण्डः समय एव च ॥३४
बुद्धेर्बोधसुतश्चापि अप्रमादश्च तावुभौ।
लज्जाया विनयः पुत्रो व्यवसायो वपुः सुतः ॥३५

दक्ष ने सती को महेश्वर के लिए दिया, भृगु को ख्याति, मरीचि को सम्भूति और अङ्गिरा के लिये स्मृति नाम वाली कन्या का दान किया था ॥ २९ ॥ पुलस्त्य को प्रीति, पुलह को क्षमा, क्रतु को सन्नति तथा अत्रि के लिये अनसूया नाम वाली कन्या का दान दक्ष ने दिया था ॥ ३० ॥ वसिष्ठ को ऊर्जा, अग्नि को स्वाहा और पितृगण को स्वधा दी। अब उनमें जो सन्तति समुत्पन्न हुई उसे बतलाया जाता है ॥ ३१ ॥ ये सब महान् भाग्य से युक्त, परम पण्डित और अपने कर्त्तव्य कर्म में स्थित होकर स्थिर रहे जब तक कि समस्त मन्वन्तरों में आभूत सम्प्लव हुआ था ॥ ३२ ॥ श्रद्धा ने काम को समुत्पन्न किया और लक्ष्मी का पुत्र 'दर्प' इस नाम से कहा जाने वाला पैदा हुआ। धृति का पुत्र नियम था और तुष्टि ने सन्तोष नामक पुत्र को जन्म दिया था ॥ ३३ ॥ पुष्टि से लाभ नामक पुत्र का प्रसव हुआ तथा मेधा का पुत्र श्रुत हुआ था। क्रिया के पुत्र का नाम 'नय' था और दण्ड एवं समय भी उसी के पुत्र हुए थे ॥ ३४ ॥ बुद्धि के बोध और अप्रमाद ये दो पुत्र पैदा हुए थे एवं लज्जा

से विनय नामक पुत्र प्रकट हुआ तथा व्यवसाय का बालक पुत्र क्षेम का हुआ था ॥ ३५ ॥

क्षेमं शान्तिसुतश्चापि सुखं सिद्धिरजायत ।
यशः कीर्तेः सुतश्चापि इत्येते धर्मसूनवः ॥३६
कामस्य हर्षः पुत्रो वै देव्या रत्या व्यजायत ।
इत्येष वै सुखोदर्कः सर्गो धर्मस्य कीर्तितः ॥३७
जज्ञे हिंसात्वधर्माद्वै निकृतिश्चानृतावुभौ ।
निकृत्यानृतयोर्जज्ञे भयं नरक एव च ॥३८
माया च वेदना चापि मिथुनं त्विदमेतयोः ।
भयाज्जज्ञेऽथ सा माया मृत्युं भूतापहारिणम् ॥३९
वेदनायास्ततश्चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् ।
मृत्योर्व्याधिजराशोकाः क्रोधोऽसूया च जज्ञिरे ।
दुःखोत्तराः स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः ॥४०
नैषां भार्यास्ति पुत्रो वा ते सर्वे निधनाः स्मृताः ।
इत्येव तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः ॥४१
प्रजाः सृजेति व्यादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहितः ।
सोऽभिध्याय सतीं भार्यां निर्ममे ह्यात्मसम्भवान् ॥४२

शान्ति के क्षेम और सिद्धि का सुख पुत्र हुआ। कीर्ति का यश हुआ। इतने ये धर्म पुत्र हुए थे ॥ ३६ ॥ काम का हर्ष नामक पुत्र देवी रति से उत्पन्न हुआ। यह धर्म का सुखोदर्क अर्थात् सुखप्रदान करने वाला सर्ग हुआ जो कि बताया गया है ॥ ३७ ॥ हिंसा से अधर्म से निकृति और अनृत ये दो पुत्र उत्पन्न किये थे। निकृति और अनृत के भय तथा नरक समुत्पन्न हुए ॥३८॥ इन दोनों के माया और वेदना इनका जोड़ा पैदा हुआ था। भय से जन्म ग्रहण किया था। उस माया ने समस्त भूतों के अपहरण करने वाली मृत्यु को जन्म दिया था ॥ ३९ ॥ वेदना ने रौरव से दुःख को जन्म दिया था। मृत्यु ने व्याधि जरा शोक और असूया व क्रोध को उत्पन्न किया है। सब दुःखोत्तर अधर्म के लक्षण वाले हुए हैं ॥ ४० ॥ इनकी भार्या अथवा पुत्र ये सभी निधन कहे गये

है। यह इतना तामस सर्ग था जो यम का नियामक हुआ है ॥ ४१ ॥ 'प्रजा का सृजन करो'—इस प्रकार से ब्रह्मा के द्वारा नीललोहित जब आदेश प्राप्त करने वाला हुआ तो अपने आत्मा से सम्भूत होने वाली सती का अभिध्यान करके उसे अपनी भार्या बनाया था ॥ ४२ ॥

नाधिकांश्च न हीनांस्तान्मानसानात्मनः समान् ।
सहस्रं हि सहस्राणामसृजत् कृत्तिवाससः ।
तुल्यांश्चैवात्मनः सर्वान् रूपतेजोबलश्रुतैः ॥४३
पिङ्गलान् सनिषङ्गांश्च सकपर्दान् विलोहितान् ।
विवासान् हरिकेशांश्च दृष्टिघ्नांश्च कपालिनः ॥४४
बहुरूपान् विरूपांश्च विश्वरूपांश्च रूपिणः ।
रथिनो वर्मिणश्चैव धर्मिणश्च वरूथिनः ॥४५
सहस्रशतबाहूंश्च दिव्यान् भौमान्तरिक्षगान् ।
स्थूलशीर्षानष्टदंष्ट्रान् द्विजिह्वांस्त्रिलोचनान् ॥४६
अन्नादान् पिशितादांश्च आज्यपान् सोमपांस्तथा ।
मेढ्रपान्वातिकायांश्च शितिकण्ठोग्रमन्यवः ॥४७
सोपासङ्गतलत्राणान् धन्विनो ह्यथ वर्मिणः ।
आसीनान् धावतश्चैव जृम्भतश्चैव स्थितान् ॥४८
अध्यापिनोऽथ जपतो युञ्जतोऽभ्यायतस्तथा ।
ज्वलतो वर्षतश्चैव द्योतमानान् प्रधूपितान् ॥४९

इन कृत्तिवासा ने न ज्यादा अधिक और न ज्यादा हीन ऐसे अपने ही समान मानस पुत्र को सहस्रों के सहस्र में उत्पन्न किये जो कि रूप, तेज और बल से सब अपनी आत्मा के ही बिल्कुल तुल्य थे ॥ ४३ ॥ अब यहाँ उनके ही रूप, गुण तथा आचारादि का वर्णन किया जाता है कि वे किस प्रकार के थे—पिङ्गल, सनिषङ्ग, सकपर्द, विलोहित, विवास, हरिकेश, दृष्टिघ्न और कपाली थे ॥ ४४ ॥ फिर वे विरूप, बहुरूप, विश्वरूप, रूपी, रथी, वर्मी, धर्मी और वरूथ वाले थे जिनको कि उत्पन्न किया था ॥ ४५ ॥ सहस्र शत बाहु वाले, दिव्य, भूमि और अन्तरिक्ष में गमन करने वाले, स्थूल शीर्ष वाले,

योगं तपश्च सत्यञ्च धर्मञ्चापि महामुने ।
माहेश्वरस्य ज्ञानस्य शोधनञ्च प्रचक्ष्व नः ॥६३
येन येन च धर्मेण गतिं प्राप्स्यन्ति वै द्विजाः ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि योगं माहेश्वरं प्रभो ॥६४

उस समय पर धीमान महादेव के द्वारा इस प्रकार से कहे गये ब्रह्मा ने उत्तर दिया और प्रजापति हर्षित होते हुए भीम से बोले—इस प्रकार से आपका कल्याण हो—हे प्रभो ! जैसा भी आपने कहा है। ब्रह्मा के द्वारा समनुज्ञात होने पर सभी सब ठीक हुआ ॥ ५४—५८ ॥ तब से लेकर फिर देवों में रुद्र जी ने आगे प्रजा का सृजन नहीं किया था। जब तक आभूत सम्प्लव अर्थात् महाप्रलय नहीं हुआ तब तक ऊर्ध्व रेता होकर स्थाणु के रूप में स्थित हो गये मैं स्थित हूँ यह कहने के कारण से ही स्थाणु इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं ॥५९॥ ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य तप सत्य क्षमा धृति स्रष्टृत्व, आत्म सम्बोध अधिष्ठातृत्व ये दश शङ्कर में नित्य ही विद्यमान रहा करते हैं ॥ ६० ॥ समस्त देवता ऋषिगण और उनके अनुचर इन सबको अपने तेज से ये अतिक्रान्त कर देते हैं अतएव यह महादेव कहे गये हैं ॥ ६१ ॥ ऐश्वर्य से देवों का तथा बल से महान् असुरों का ज्ञान से समस्त मुनिगण का एवं योग से सम्पूर्ण प्राणिमात्र का सब ओर से अतिक्रमण महादेव शम्भु कर दिया करते हैं ॥ ६२ ॥ ऋषियों ने कहा—हे महामुने ! महेश्वर भगवान का योग तप सत्य धर्म तथा ज्ञान का शोधन हमारे सामने वर्णन कीजिये हम उसे श्रवण करना चाहते हैं ॥ ६३ ॥ हे प्रभो ! जिस जिस धर्म से द्विज गति को प्राप्त किया करते हैं वह सभी माहेश्वर योग को सुनना चाहते हैं ॥ ६४ ॥

पञ्च धर्माः पुराणे तु रुद्रेण समुदाहृताः ।
माहेश्वर्यं यथा प्रोक्तं रुद्रैरक्लिष्टकर्मभिः ॥६५
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैरश्विभ्याञ्च च सर्वशः ।
मरुद्भिर्भृगुभिश्चैव ये चान्ये विबुधालयाः ॥६६
यमशुक्रपुरोगैश्च पितृभिः कालान्तकस्तथा ।
एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्ये धर्माः पशुपालिना ॥६७

ते वै प्रक्षीणकर्माणि शारदाम्बरनिर्मलाः ।
उपासते मुनिगणा सन्ध्यायात्मानमात्मनि ॥६८
गुरुप्रियहिते युक्ता गुरूणां वै प्रियेप्सवः ।
विमुच्य मानुषं जन्म विहरन्ति च देववत् ॥६९
महेश्वरेण ये प्रोक्ता पञ्च धर्माः सनातनाः ।
तान् सर्वान् क्रमयोगेन उच्यमानान्निबोधत ॥७०

मार्कण्डेय ने कहा—पुराण में रुद्र ने पाँच धर्म बतलाये हैं । अविनष्ट कर्म करने वाले रुद्रों ने जिस प्रकार से माहेश्वर्य ज्ञान को बतलाया है उन समस्त धर्मों की जिन्होंने उपासना की है वह मैं बतलाता हूँ ॥ ६५ ॥ आदित्य, वसु, साध्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण भृगु और जो अन्य देवगण हैं उन्होंने तथा यम, शुक्र जिन के पुरोगामी हैं उनके द्वारा तथा पितृ पर्यन्तक इन सबके द्वारा एवं अन्य ऋषियों के द्वारा ये समस्त धर्म उपासित किये गये हैं ॥ ६६–६७ ॥ प्रक्षीण कर्म वाले और शरत्काल के अम्बर के समान निर्मल चित्त वाले वे मुनियों के समूह सन्ध्या में आत्मा में आत्मा की उपासना करते हैं ॥ ६८ ॥ अपने गुरु के प्रिय और हित के कार्य में सदा युक्त रहने वाले और गुरु के प्रिय की इच्छा रखने वाले मनुष्य का जन्म त्याग कर देवताओं की तरह विहार किया करते हैं ॥ ६९ ॥ भगवान महेश्वर ने जो सनातन पाँच धर्म बतलाये हैं उन सबको क्रम के योग से मैं कहता हूँ मेरे द्वारा कहे जाने वाले उन सबको आप लोग भली-भाँति समझ लो ॥ ७० ॥

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा ।
स्मरणञ्चैव योगेऽस्मिन् पञ्च धर्माः प्रकीर्तिताः ॥७१
तेषां क्रमविशेषेण लक्षणं कारणं तथा ।
प्रवक्ष्यामि तथा तत्त्वं यथा रुद्रेण भाषितम् ॥७२
प्राणायामगतिश्चापि प्राणस्यायाम उच्यते ।
स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मन्दो मध्योत्तमस्तथा ॥७३
प्राणानां च निरोधस्तु स प्राणायामसंज्ञितः ।
प्राणायामप्रमाणन्तु मात्रा वै द्वादश स्मृता ॥७४

योग तपश्च सत्यञ्च धर्मश्चापि महामुने ।
माहेश्वरस्य ज्ञानस्य साधनञ्च प्रचक्ष्व नः ॥६३
येन येन च धर्मेण गतिं प्राप्स्यन्ति वै द्विजा ।
तत्तत् श्रोतुमिच्छामि योगं माहेश्वरं प्रभो ६४

उस समय पर धीमान महादेव के द्वारा इस प्रकार से कहे गये ब्रह्माजी ने उत्तर दिया और प्रजापति हर्षित होते हुए मौन में बोले—इस प्रकार से आपका य शाप हो—हे प्रभो ! जैसा भी आपने कहा है । ब्रह्मा के द्वारा समर्थ शाप होने पर सब सब जीत हुआ ॥ ५ —५८ ॥ तब से लेकर फिर देवों के कभी भी आगे प्रजा का सृजन नहीं किया था । जब तक आभूत सम्प्लव अर्थात् महाप्रलय नहीं हुआ तब तक ऊर्ध्व रेता होकर स्थाणु के रूप में स्थित हो गये । मैं स्थित हूँ यह कहने के कारण से ही स्थाणु इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं ॥५९॥ ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य तप सत्य क्षमा धृति सृष्टत्व, आत्म सम्बोध अधिष्ठातृत्व ये दश शङ्कर में नित्य ही विद्यमान रहा करते हैं ॥ ६० ॥ समस्त देवता ऋषिवृन्द और इनके अनुचर इन सबको अपने तेज से ये अतिक्रान्त कर देते हैं अतएव यह महादेव कहल ये गये हैं ॥ ६१ ॥ ऐश्वर्य से देवों का तथा बल से महान् असुरों का ज्ञान से समस्त मुनिगण का एवं योग से सम्पूर्ण प्राणियों का सब ओर से अतिक्रमण महादेव सम्भु कर लिया करते हैं । ६२ ॥ ऋषियों ने कहा—हे महामुने ! महेश्वर भगवान का योग तप सत्य धर्म तथा ज्ञान का साधन हमारे सामने बतला दीजिए हम उसे श्रवण करना चाहते हैं ॥ ६३ ॥ हे प्रभो ! जिस जिस धर्म से द्विज गति को प्राप्त किया करते हैं वह सभी माहेश्वर योग को सुनना चाहते हैं ॥ ६४ ॥

पञ्च धर्माः पुराणे तु यत्र च समुदाहृता ।
माहेश्वर्यं यथा प्रोक्तं रुद्र रनिलङ्गनर्मि ॥६५
आदित्यैर्वसुभि साध्यैरश्विभ्याञ्च मरुद्गणैः ।
मरुद्भिभृगुभिश्चैव ये चान्ये विबुधात्मजा ॥६६
यमशुक्रपुरोगैश्च पितृभिः कालसंयुतैः ।
एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्यो धर्मो ह्युपासिता ॥६७

ते वै प्रक्षीणकर्माणः शारदाम्बरनिर्मलाः ।
उपासते मुनिगणाः सन्ध्यायामात्मनात्मनि ॥६८
गुरुप्रियहिते युक्ता गुरूणां वै प्रियेप्सवः ।
विमुच्य मानुषं जन्म विहरन्ति च देववत् ॥६९
महेश्वरेण ये प्रोक्ताः पञ्च धर्माः सनातनाः ।
तान् सर्वान् क्रमयोगेन उच्यमानान्निबोधत ॥७०

वायुदेव ने कहा—पुराण में रुद्र ने पाँच धर्म बतलाये हैं। अक्लिष्ट कर्म करने वाले रुद्रों ने जिस प्रकार से माहेश्वर ज्ञान को बतलाया है उन सम्पूर्ण धर्मों की जिन्होंने उपासना की है वह मैं बतलाता हूँ ॥ ६५ ॥ आदित्य, वसु, साध्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण भृगु और जो अन्य देवगण हैं उन्होंने तथा यम, शुक्र जिन के पुरोगामी हैं उनके द्वारा तथा पितृ भागात्मक रूप सबके द्वारा एवं चन्द्र ग्रहों के द्वारा ये सम्पूर्ण धर्म उपासित किये गये हैं ॥ ६६-६७ ॥ प्रक्षीण कर्म वाले और शरत्काल के अम्बर के सदृश निर्मल चित्त वाले वे मुनियों के समूह सन्ध्या में आत्मा में आत्मा की उपासना करते हैं ॥ ६८ ॥ अपने गुरु के प्रिय और हित के कार्यों में सदा युक्त रहने वाले और गुरु के प्रिय की इच्छा रखने वाले मनुष्य का जन्म त्याग कर देवताओं की तरह विहार किया करते हैं ॥ ६९ ॥ भगवान महेश्वर ने जो सनातन पाँच धर्म बतलाये हैं उन सबको क्रम के योग से मैं कहता हूँ मेरे द्वारा कहे जाने वाले उन सबको आप लोग भली-भाँति समझ लो ॥ ७० ॥

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा ।
स्मरणञ्चैव योगेऽस्मिन् पञ्च धर्माः प्रकीर्त्तिताः ॥७१
तेषां क्रमविशेषेण लक्षणं कारणं तथा ।
प्रवक्ष्यामि तथा तत्त्वं यथा रुद्रेण भाषितम् ॥७२
प्राणायामगतिश्चापि प्राणस्यायाम उच्यते ।
स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मन्दो मध्योत्तमस्तथा ॥७३
प्राणानां च निरोधस्तु स प्राणायामसंज्ञितः ।
प्राणायामप्रमाणन्तु मात्रा वै द्वादश स्मृता ॥७४

मन्दो द्वादशमात्रस्तु उद्घाता द्वादश स्मृताः ।
मध्यमश्च द्विरुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रिकः ॥७५
उत्तमस्त्रिरुद्घातो मात्राः षट्त्रिंशदुच्यते ।
स्वेदकम्पविषादानां जननो ह्युत्तमः स्मृतः ॥७६
इत्येतत् त्रिविधं प्रोक्तं प्राणायामस्य लक्षणम् ।
प्रमाणञ्च समासेन लक्षणञ्च निबोधत ॥७७

प्राणायाम ध्यान प्रत्याहार, धारणा और स्मरण ये पाँच बातें इस योग में धर्म के नाम से कही गयी हैं ॥ ७१ ॥ इन पाँचों का क्रम विशेष से लक्षण कारण तथा लक्षण जैसा कि भगवान रुद्र ने कहा है उसे मैं बताता हूँ ॥ ७२ ॥ प्राणायाम की गति भी प्राण का आयाम कहा जाता है और यह भी तीन प्रकार का होता है। एक मन्द होता है दूसरा मध्यम और तृतीय उत्तम होता है ॥ ७३ ॥ प्राणों का निरोध जो किया जाता है वही प्राणायाम इस वर्ग वाला होता है। प्राणायाम का प्रमाण द्वादश मात्रा बताई गई है ॥७४॥ मन्द प्रथम प्राणायाम द्वादश मात्रा वाला ही होता है। इसमें द्वादश उद्घात मात्रा बताई गई है। प्राणायाम का दूसरा मध्यम नाम वाला जो भेद है उसमें दो बार बढ़ाना होता है और चौबीस मात्राएं हो जाती हैं। तीसरे उत्तम नामक भेद में तीन बार बढ़ाव होकर छत्तीस मात्रायें होती हैं। स्वेद कम्प और विषाद का जनन करने वाला उत्तम कहा गया है ॥ ७५—७६ ॥ ये तीन प्रकार वाले प्राणायाम का लक्षण बतला दिया है। संक्षेप में इसका प्रमाण और लक्षण समझ लो ॥ ७७ ॥

सिंहो वा कुञ्जरो वापि तथान्यो वा मृगो वने ।
गृहीतः सेव्यमानस्तु मृदुः संमुपजायते ॥७८
तथा प्राणो दुराधर्षः सर्वपामकृतात्मनाम् ।
योगतः सेव्यमानस्तु स एवाभ्यासतो व्रजेत् ॥७९
स एव हि यथा सिंहः कुञ्जरो वापि दुर्बलः ।
कालान्तरवशाद्योगाद्दम्यते परिमद्दनात् ॥८०
परिश्रमे मनो मन्दं यत्परं नाधिगच्छति ।
परिश्रमात् मनश्चैव तथा क्षीयति मारुतः ॥८१

वश्यत्व हि तथा वायुर्गच्छते योगमास्थित ।
तदा स्वच्छन्दत प्राण नयते यत्र चेच्छति ।।८२

यथा सिंहो गजो वापि वश्यत्वादवतिष्ठते ।
अभयाय मनुष्याणा मृगेभ्य सप्रवर्त्तते ।।८३

यथा परिचितश्चाय वायुर्व विश्वतो मुख ।
परिध्यायमान सशुद्ध शरीरे किल्विष दहत् ।।८४

सिंह हो अथवा हाथी हो तथा वन मे अन्य कोई मृग हो, उसे ग्रहण कर लिया जावे और सेव्यमान बनाया जावे तो वह मृदु हो जाता है अर्थात् उस हिंस्र पशु की नैसर्गिक क्रूरता का ह्रास होकर उसमे कोमल भाव आ जाता है ।।७८।। इसी भांति अकृतात्मा समस्त मानवो का प्राण बहुत ही दुराधर्ष होता है अर्थात् आत्म-बल से हीन मनुष्यो का प्राण धर्षण के अयोग्य होता है । यदि योग के अभ्यास से वही प्राण सेव्यमान होकर वही जाता है ।। ७९ ।। जिस प्रकार कोई दुर्बल चोर या हाथी कालान्तर मे योग के वश से परिमर्दन होने से गम्य होता है उसी भांति प्राण भी होता है ।। ८० ।। मन मन्त्र को परिधान करके वश्यत्व को प्राप्त होता है । मारुत मनोदेव का परिधान करके जीवित रहता है ।।८१।। योग मे आस्थित होता हुआ वायु जिस प्रकार से वश्यत्व को प्राप्त होता है उसी तरह उस समय वह जहां भी चाहता है वही स्वच्छन्दता के साथ प्राण को ले जाता है ।। ८२ ।। जिस प्रकार से सिंह अथवा हाथी वश्यत्व हो जाने से अव-स्थित हो जाता है और मनुष्यों को पशुओ से भय रहित कर देता है ।। ८३ ।। उसी तरह यह विश्वतोमुख वायु अर्थात् सभी ओर सर्वत्र गमनशील वायु परि-चित होता हुआ परिध्यायमान होकर जब सशुद्ध होता है तो वह शरीर मे जो किल्विष होता है उसका दाह कर दिया करता है ।। ८४ ।।

प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मन ।
सर्वे दोषा प्रणश्यन्ति सत्त्वस्थश्चैव जायते ।।८५

तपासि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च ये ।
सर्वयज्ञफलश्चैव प्राणायामश्च तत्सम ।।८६

मन्दो द्वादशमात्रस्तु उद्घाता द्वादश स्मृताः ।
मध्यमश्च द्विरुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रिकः ॥७५
उत्तमस्त्रिरुद्घातो मात्राः षट्त्रिंशदुच्यते ।
स्वेदकम्पविषादानां जननो ह्युत्तमः स्मृतः ॥७६
एषोऽतत् त्रिविधः प्रोक्तः प्राणायामस्य लक्षणम् ।
प्रमाणञ्च समासेन लक्षणञ्च निबोधत ॥७७

प्राणायाम ध्यान प्रत्याहार धारणा और स्मरण ये पाँच बातें इस योग में मन के साथ से कही गयी हैं ॥ ७१ ॥ इन पाँचों का क्रम विशेष से लक्षण कारण तथा जैसा कि भगवान् ने कहा है वैसे मैं बताता हूँ ॥ ७२ ॥ प्राणायाम की गति भी प्राण का आयाम कहा जाता है और वह भी तीन प्रकार का होता है । एक मन्द होता है दूसरा मध्यम और तृतीय उत्तम होता है ॥ ७३ ॥ प्राणों का निरोध जो किया जाता है वही प्राणायाम इस प्रकार का होता है । प्राणायाम का प्रमाण द्वादश मात्रा बताई गई है ॥७४॥ मन्द प्राणायाम द्वादश मात्रा वाला ही होता है । इसमें बारह उद्घात मात्रा बताई गई है । प्राणायाम का दूसरा मध्यम नाम वाला जो भेद है उसमें दो बार उद्घात होता है और चौबीस मात्राएं हो जाती हैं । तीसरे उत्तम नामक भेद में तीन बार उद्घात होकर छत्तीस मात्राएं होती हैं । स्वेद कम्प और विषाद का जनन करने वाला उत्तम कहा गया है ॥ ७५—७६ ॥ ये तीन प्रकार वाला प्राणायाम का लक्षण बताया गया है । संक्षेप से इसका प्रमाण और लक्षण समझ लो ॥ ७७ ॥

सिंहो वा कुञ्जरो वापि यथाऽन्यो वा मृगो वने ।
गृहीतः सेव्यमानस्तु मृदुः समुपजायते ॥७८
तथा प्राणो दुराधर्षः सर्व पापकृतात्मनाम् ।
योगतः सेव्यमानस्तु स एवाभ्यासतो व्रजेत् ॥७९
स चैव हि यथा सिंहः कुञ्जरो वापि दुर्बलः ।
कालान्तरवशाद्योगाद्गम्यते परिमर्दनात् ॥८०
परिणामं मनो भेद यथावच्चाधिगच्छति ।
परित्राणं मनस्येव यथा जीवति मानवः ॥८१

वश्यत्व हि तथा वायुर्गच्छते योगमास्थित ।
तदा स्वच्छन्दत प्राण नयते यत्र चेच्छति ॥८२

यथा सिंहो गजो वापि वश्यत्वादवतिष्ठते ।
अभयाय मनुष्याणा मृगेभ्य सप्रवर्त्तते ॥८३

यथा परिचितश्चाय वायुर्वै विश्वतो मुख ।
परिध्यायमान सरुद्ध शरीरे किल्विष दहत् ॥८४

सिंह हो अथवा हाथी हो तथा वन में अन्य कोई मृग हो, उसे ग्रहण कर लिया जावे और सेव्यमान बनाया जावे तो वह मृदु हो जाता है अर्थात् वह हिंस्र पशु की नैसर्गिक क्रूरता का ह्रास होकर उसमे कोमल भाव आ जाता है ॥७८॥ इसी भांति अकृतात्मा समस्त मानवों का प्राण बहुत ही दुराधर्ष होता है अर्थात् आत्म-बल से हीन मनुष्यों का प्राण धर्षण के अयोग्य होता है । यदि योग के अभ्यास से यही प्राण सेव्यमान होकर रहा जाता है ॥ ७९ ॥ जिस प्रकार कोई दुर्बल शेर या हाथी कालान्तर मे योग के वश से परिमर्दन होने से गम्य होता है उसी भांति प्राण भी होता है । ८० ॥ मल मन्द को परिधान करके वश्यत्व को प्राप्त होता है । ममेव मतोदेव का परिधान करके जीवित रहता है ॥८१॥ योग में आस्थित होता हुआ वायु जिस प्रकार से वश्यत्व को प्राप्त होता है उसी तरह उस समय वह जहाँ भी चाहता है वहीं स्वच्छन्दता के साथ प्राण को ले जाता है ॥ ८२ ॥ जिस प्रकार से सिंह अथवा हाथी वश्यत्व हो जाने से अवस्थित हो जाता है और मनुष्यों को पशुओं से भय रहित कर देता है ॥ ८३ ॥ उसी तरह यह विश्वतोमुख वायु अर्थात् सभी ओर सर्वत्र गमनशील वायु परिचित होता हुआ परिध्यायमान होकर जब सरुद्ध होता है तो वह शरीर मे जो किल्विष होता है उसको दाह कर दिया करता है ॥ ८४ ॥

प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मन ।
सर्वे दोषा प्रणश्यन्ति सत्त्वस्थश्चैव जायते ॥८५

तपासि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च ये ।
सर्वयज्ञफलञ्चैव प्राणायामश्च तत्सम ॥८६

अब्बिन्दुं यः कुशाग्रेण मासि मासि समश्नुते ।
संवत्सरशतं साग्रं प्राणायामश्च तत्समम् ॥८७
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण विषयान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥८८
तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायामपरो भवेत् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥८९

प्राणायाम से युक्त निर्मल आत्मा वाले विप्र के समस्त दोष नष्ट हो जाया करते हैं और फिर वह केवल सत्त्वगुण में ही स्थित रहा करता है ॥ ८५ ॥ जो भी तपश्चर्या तपी जाती हैं, व्रत लिये जाते हैं और नियम ग्रहण किये जाते हैं तथा समस्त यज्ञों के करने का जो भी कुछ फल होता है वह सब प्राणायाम के समान होता है ॥ ८६ ॥ जो कोई मास मास में कुशा के अग्रभाग से जल के बिन्दु को ग्रहण करता है और सौ वर्ष तक करता रहता है वह सब प्राणायाम के तुल्य ही होता है ॥ ८७ ॥ प्राणायामों के द्वारा मनुष्य अपने समस्त दोषों को दग्ध कर दिया करता है, धारणाओं के द्वारा किल्बिष का नाश कर देता है, प्रत्याहार से विषयों का संहार कर देता है और ध्यान के द्वारा अनीश्वर गुणों का क्षय करता है ॥ ८८ ॥ इसलिये योगी को सर्वदा युक्त होकर प्राणायाम में परायण होना चाहिये । वह फिर समस्त पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर परब्रह्म को प्राप्त कर लिया करता है ॥ ८९ ॥

॥ पाशुपत-योग ॥

एकाह्नं तु दिवसमहोरात्रमथापि वा ।
अर्धमासं तथा मासमयनाब्दयुगानि च ॥१
महायुगसहस्राणि ऋषयस्तपसि स्थिताः ।
उपासते महात्मानः प्राणं दिव्येन चक्षुषा ॥२
अतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्राणायामप्रयोजनम् ।
फलञ्च च विशेषेण यथाह भगवान् प्रभुः ॥३
प्रयोजनानि चत्वारि प्राणायामस्य विद्धि वै ।
शान्तिः प्रशान्तिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च चतुष्टयम् ॥४

घोराकारशिवानान्तु कर्मणां फलसम्भवम् ।
स्वयकृतानि कालेन इहामुत्र च देहिनाम् ॥५
पितृमातृ प्रदुष्टाना ज्ञातिसम्बन्धिसङ्करे ।
क्षपण हि कषायाणां पापानां शान्तिरुच्यते ॥६
लोभमानात्मकानां हि पापानामपि सयम ।
इहामुत्र हितार्थाय प्रशान्तिस्तप उच्यते ॥७

श्री वायु ने कहा—एक महान् दिन अथवा एक अहोरात्र अर्थात् पूरा दिन और पूरी रात्रि, अवमास अर्थात् पन्द्रह दिन, मास, अयन, अब्द अर्थात् वर्ष, युग और सहस्रों महायुग तक महान् आत्मा वाले ऋषिगण तपश्चर्या में स्थित होते हुये दिव्य चक्षु के द्वारा प्राणायाम की उपासना किया करते हैं ॥ १—२ ॥ इससे आगे प्राणायाम का प्रयोजन बतलाया जाता है और जैसा कि भगवान प्रभु ने कहा है उसका विशेष रूप से फल भी बतलाते हैं ॥ ३ ॥ प्राणायाम के चार प्रयोजन जान लो—शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और चौथा प्रसाद—ये प्रयोजन चतुष्टय होता है ॥ ४ ॥ देहधारियों के घोर आकार वाले तथा शिव कर्मों की फल की उत्पत्ति स्वयकृत इस लोक में अथवा परलोक में कुछ काल मे होती है ॥ ५ ॥ पिता माता के द्वारा प्रदुष्ट रूप से हुए एव ज्ञाति सम्बन्धी सङ्करों से दोषयुक्त कषाय पापों का क्षपण शान्ति कही जाती है ॥ ६ ॥ लोभ और मानस्वरूप वाले पापों का सयम इस लोक मे और परलोक में हित के लिये जो तप होता है "प्रशान्ति" कही जाती है ॥ ७ ॥

सूर्येन्दुग्रहताराणां तुल्यस्तु विषयो भवेत् ।
ऋषीणाञ्च प्रसिद्धानां ज्ञानविज्ञानसम्पदाम् ॥८
अतीतानागतानाञ्च दर्शन साम्प्रतस्य च ।
बुद्धस्य समता यान्ति दीप्ति स्यात्तप उच्यते ॥९
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च मन पञ्च च मारुतान् ।
प्रसादयति येनासौ प्रसाद इति सज्ञित ॥१०
इत्येष धर्म प्रथम प्राणायामश्चतुर्विध ।
सद्यस्कृष्टफलो ज्ञेय सद्य काम प्रसादज ॥११

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य लक्षणम् ।
आसनं च यथातत्वं युञ्जतो योगमव च ॥१२
ओङ्कारं प्रथमं कृत्वा चन्द्रसूर्यौ प्रणम्य च ।
आसनं स्वस्तिकं कृत्वा पद्ममर्द्धासनन्तथा ॥१३
समजानुरेकजानुरुत्तानं सुस्थितोऽपि च ।
समो दृढासनो भूत्वा संहृत्य चरणावुभौ ॥१४

सूर्य चन्द्र ग्रह और तारको के तुल्य विषय होता है। ज्ञान और विज्ञान की सम्पत्ति स्वरूप प्रसिद्ध ऋषियो के तथा जो पहिले हो चुके हैं उनके एवं भविष्य मे होने वालो के और क्रोध से युक्त इस समय मे होने वाले के समान समानता को प्राप्त होते हैं और वह दीप्ति होती है यह तप कहा जाता है ॥ ८-९ ॥ इन्द्रियों और इन्द्रियों के अर्थ अर्थात् विषय मन और पाँच मारुतों को जिससे प्रसाद होता है इसलिए वह प्रसाद इस दशा से युक्त हुआ है ॥१० ॥ यह प्रथम शम है और प्राणायाम चार प्रकार का होता है। उस काल मे प्रसाद से उत्पन्न होने वाला सन्तुष्ट फल वाला जानना चाहिए ॥ ११ ॥ इसके आगे प्राणायाम का लक्षण बताते हैं और योग को ही करने वाले के यथातथ्य आसन को भी बताया जाता है ॥ १२ ॥ सब प्रथम ओङ्कार का उच्चारण करे फिर चन्द्र और सूर्य देव को प्रणाम करे इसके पश्चात् स्वस्तिक आसन करे तथा पद्म या अर्धासन करे ॥ १३ ॥ समान जानुओं वाला एक जानु उत्तान और सुस्थित सम और दृढ आसन वाला होकर दोनो चरणों को संहृत करे ॥१४॥

संवृतास्योऽबद्धाक्ष उरो विष्टभ्य चाग्रतः ।
पार्ष्णिभ्यां वृषणौ छाद्य तथा प्रजननं ततः ॥१५
किञ्चिदुन्नामितशिरा शिरो ग्रीवां तथैव च ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥१६
तमः प्रच्छाद्य रजसा रजः सत्त्वेन च्छादयेत् ।
ततः सत्त्वस्थितो भूत्वा योगं युञ्जन् समाहितः ॥१७
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च मनः पञ्च स मारुतान् ।
निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥१८

यस्तु प्रत्याहरेत् कामान् कूर्मोऽङ्गानीव सर्वत ।
तथात्मरतिरेकस्थ. पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥१९
पूरयित्वा शरीरन्तु स बाह्याभ्यन्तर शुचि ।
आकण्ठनाभियोगेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥२०
कलामात्रस्तु विज्ञेयो निमेषोन्मेष एव च ।
तथा द्वादशमात्रस्तु प्राणायामो विधीयते ॥२१

अपने मुख को बन्द करके—आँखो को बन्द करके और उरस्थल को आगे की ओर निकालकर—पाणियो से वृषणो को तथा प्रजनेन्द्रिय को छादित करे ॥१५॥ कुछ ऊँचा सिर करने वाला सिर और ग्रीवा (गरदन) को ऊँचे की ओर करे और अपनी नासिका के अग्र भाग को देखे तथा इधर-उधर किसी भी ओर दिशाओ मे नही देखे ॥१६॥ रजोगुण से तमोगुण का प्रच्छादन करे और फिर सत्व के द्वारा रजोगुण का छादन करना चाहिए। इसके अनन्तर सत्वगुण मे स्थित होकर बहुत समाहित भाव से योग का अभ्यास करे ॥१७॥ इन्द्रियो को और समस्त इन्द्रियो के अर्थों को—मन को तथा पाँच मारुतो को समवाय से विगृहीत करके प्रत्याहार करने का उपक्रम करना चाहिए ॥१८॥ जो कूर्म के द्वारा अपने अङ्गो की भाँति सभी ओर से अपनी कामनाओ का प्रत्याहरण करता है और आत्मरति वाला होता हुआ एकस्थ अर्थात् एकाग्र होकर अपने मे ही आत्मा को देखता है ॥१९॥ बाहर और भीतर से शुचि होकर शरीर को पूरित करे और आकण्ठ नाभि के योग से प्रत्याहार का उपक्रम करना चाहिए ॥२०॥ एक कला मात्र निमेष और उन्मेष मानना चाहिए फिर द्वादश मात्रा वाला प्राणायाम किया जाता है ॥२१॥

धारणा द्वादशायामो योगो वै धारणाद्वयम् ।
तथा वै योगयुक्तश्च ऐश्वर्यं प्रतिपद्यते ।
ईक्षते परमात्मान दीप्यमान स्वतेजसा ॥२२
प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मन ।
सर्वे दोषा प्रणश्यन्ति सत्वस्थश्च व जायते ॥२३
एव वै नियताहार प्राणायामपरायण ।

जित्वा जित्वा सदा भूमिमारोहेत्तु तथा मुनि ॥२४
अजिता हि महाभूमिर्दोषानुत्पादयेद्बहून् ।
विवर्द्धयति सम्मोहं न रोहेदजितां ततः ॥२५
नालेन तु यथा तोयं यन्त्रेणेव बलान्वितः ।
आपिबेत प्रयत्नेन तथा वायुं जितश्रम ॥२६
नाभ्यां च हृदये चैव कण्ठे उरसि चानने ।
नासाग्रे तु तथा नेत्रे भ्रुवोर्मध्येऽथ मूर्द्धनि ॥२७
किञ्चिद्दूर्ध्वं परस्मिंश्च धारणा परमा स्मृता ।
प्राणापानसमारोधात् प्राणायाम स कथ्यते ॥२८

प्राणायाम धारणा होती है और दो धारणाओं का योग होता है और इस प्रकार से योग से युक्त होकर ऐश्वर्य को प्राप्त हो जाता है फिर अपने तेज से दीप्यमान परमात्मा को देख लेता है ॥२३॥ प्राणायाम से युक्त नियत धारणा वाले मिथ के समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं और फिर वह केवल सत्त्व में ही स्थित रहने वाला होता है ॥२३॥ इस प्रकार से नियत आहार वाला और सबका जीतनेवाला करने तत्पर रहने वाला सदा मुनि जीत-जीत कर भूमि का आरोहण करे ॥२४॥ न जीती हुई महाभूमि बहुत से दोषों को उत्पन्न कर देती है और सम्मोह को बढ़ा देती है इसलिये अजिता का कभी आरोहण नहीं करना चाहिए ॥२५॥ नाल यन्त्र से बल से अन्वित होता हुआ जिस प्रकार से जल को पीता है उसी प्रकार से प्रयत्न से वायु को श्रम से जीते ॥२६॥ नाभि में हृदय में कण्ठ में उरस्थल में मुख में नासा के अग्रभाग में नेत्र में भ्रूओं के मध्य में और मूर्धा में कुछ ऊर्ध्व में और पर में धारणा परम कही गई है । प्राण और अपान के समारोध करने से यह प्राणायाम कहा जाता है ॥२७ २८॥

मनसो धारणा चैव धारणेति प्रकीर्तिता ।
निवृत्ति विषयाणान्तु प्रत्याहारस्तु संज्ञित ॥२९
सर्वेषां समवाये तु सिद्धिः स्याद्योगलक्षणा ।
तथोत्पन्नस्य योगस्य ध्यानं च सिद्धिलक्षणम् ।
ध्यानयुक्तः सदा पश्येदात्मानं सूर्यवद्दवत् ॥३०

सत्त्वस्यानुपपत्तौ तु दर्शनन्तु न विद्यते ।
अदेशकालयोगस्य दर्शनन्तु न विद्यते ॥३१
अग्न्यभ्याशे वने चापि शुष्कपर्णचये तथा ।
जन्तुव्याप्ते श्मशाने वा जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ॥३२
सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसञ्चये ।
उदपाने तथा नद्याम बाधासु कदाचन ॥३३
क्षुधाविष्टस्तथाऽप्रीतो न च व्याकुलचेतन ।
युञ्जीत परम ध्यान योगी ध्यानपर सदा ॥३४
एतान् दोषान् विनिश्चित्य प्रमादाद्यो युनक्ति वै ।
तस्य दोषा प्रकुप्यन्ति शरीरे विघ्नकारका ॥३५

मन की धारणा ही धारणा इस नाम से कीर्तित हुई है । विषयों की निवृत्ति प्रत्याहार इस सज्ञा से युक्त हुआ है ॥२९॥ प्राणायामादि समस्तो के समवाय मे ही योग के लक्षण वाली सिद्धि होती है । उससे उत्पन्न योग का ध्यान सिद्धि का लक्षण है । ध्यान से युक्त सदा आत्मा को सूर्यचन्द्र की भाँति देखता है ॥३०॥ सत्व की उपपत्ति न होने पर दर्शन नही होता है । देश और काल के योग से रहित को दर्शन नही होता है ॥३१॥ अग्नि के समीप मे—वन में—शुष्क पत्रो के ढेर मे—जन्तुओ से व्याप्त स्थान मे—श्मशान मे—पुराने टूटे-फूटे गोष्ठ मे—चतुष्पथ मे—शब्दो से अर्थात् कोलाहल पूर्ण स्थान मे—भय से पूर्ण प्रदेश मे—चैत्य और वल्मीको के सचय वाले स्थान मे—उदपान में—अन्नादि बाधा से युक्त—क्षुधा से आविष्ट—अप्रसन्न और व्याकुल चित्त वाला पुरुष सदा ध्यान में परायण योगी परम ध्यान कभी न करे । तात्पर्य यह है कि ऐसी परिस्थिति मे ध्यानादि कभी नही करना चाहिए ॥३२ ३३-३४॥ इन उक्त दोषो का विशेष रूप से निश्चय करके प्रमाद से जो योग का अभ्यास करता है उसके दोष प्रकुपित हो जाते हैं और शरीर मे विघ्नो के करने वाले हो जाते हैं ॥३५॥

जडत्व बधिरत्व च मूकत्व चाधिगच्छति ।
अन्धत्व स्मृतिलोपश्च जरा रोगस्तथैव च ॥३६

तस्य दोषा प्रकुप्यन्ति अज्ञानाद्यो युनक्ति वै ।
तस्माज्ज्ञानेन शुद्ध न योगी युक्तस्समाहित ॥३७
अप्रमत्त सदा यश्च न दोषान् प्राप्नुयात् क्वचित् ।
तेषां चिकित्सां वक्ष्यामि दोषाणां च यथाक्रमम् ।
यथा गच्छन्ति ते दोषा प्राणायामसमुत्थिता ॥ ३८
स्निग्धां यवागूमत्युष्णां भुक्त्वा तत्रावधारयेत् ।
एतेन क्रमयोगेन वातगुल्म प्रशाम्यति ॥ ३९
गुदावर्त्तप्रतीकारमिदं कुर्य्याच्चिकित्सितम् ।
भुक्त्वा दधियवागूर्वा वायुरूर्ध्व ततो व्रजेत् ॥४०
वायुग्रंथि ततो भित्त्वा वायुर्वेश प्रयोजयेत् ।
तथापि न विशेष स्याद्धारणा मूर्ध्नि धारयन् ॥४१
युञ्जानस्य तनु यस्य सर्वतस्यस्यैव देहिन ।
गुदावर्त्तप्रतीघाते एतत् कुर्य्याच्चिकित्सितम् ॥४२

समय—स्थिति—देश आदि की कुछ भी परवाह न करके जो योग का अभ्यास किया करते हैं उनको जड़ता—बहरापन—मूकता हो जाते हैं । अ शापत— स्मृति का लुप्त हो जाना—बुढ़ापा और रोग आदि हो जाते हैं ॥३६॥ उस व्यक्ति के दोष प्रकुपित हो जाया करते हैं जो अज्ञान से योग का अभ्यास किया करते हैं । इसलिये शुद्ध ज्ञान से योगी को युक्ततया समाहित होकर ही योगाभ्यास करना चाहिए ॥३७॥ जो अप्रमत्त अर्थात् प्रमाद से रहित होता है वह सर्वदा ही दोषों को प्राप्त नहीं किया करता है । उन दोषों की क्रम के अनुसार चिकित्सा बतलाते हैं जिससे कि प्राणायाम से उत्पन्न हुए दोष चले जाया करते हैं ॥३८॥ स्निग्ध अर्थात् घृत के स्नेह वाली अत्युष्ण उष्ण यवागू को खाकर वहाँ अवधारण करना चाहिए । इस क्रम के योग से वात गुल्म प्रशान्त हो जाता है । ३६॥ गुदावर्त का प्रतीकार चिकित्सा को करते हुए यही करे कि दही अथवा यवागू खाकर रहे इससे वायु ऊर्ध्व को चली जाती है ।४० ॥ वायु की ग्रन्थि का भेदन कर उसे वायु के वेग में प्रयोजित करना चाहिए । तो भी विशेष न हो तो धारणा को मूर्धा में धारण करे ।४१॥ जो युञ्जान व्यक्ति है

इसकी स्थिति सत्त्व में होती है उस देही के गुणदर्शन के प्रतिघात से यह चिकित्सा करनी चाहिए ।।४२।।

सर्वगात्रप्रकम्पेन समारब्धस्य योगिनः ।
इमां चिकित्सां कुर्वीत तथा सम्पद्यते सुखी ।।४३
मनसा यद्गतं किञ्चिद्विष्टम्भीकृत्य धारयेत् ।
उरोद्घाते उरःस्थानं कण्ठदेशे च धारयेत् ।।४४
त्वचोऽपघाते तां वाचि बाधिर्ये श्रोत्र योस्तथा ।
जिह्वास्थाने तृषार्त्तस्तु अग्रे स्नेहादच तन्तुभिः ।
फलं वै चिन्तयेद्योगी तेन सम्पद्यते सुखी ।।४५
क्षये कुष्ठे सकीलासे धारयेत्सर्वसात्त्विकीम् ।
यस्मिन् यस्मिन् रुजोद्देशे तस्मिन् युक्तो विनिर्दिशेत् ।।४६
योगोत्पन्नस्य विप्रस्य इदं कुर्याच्चिकित्सितम् ।
वंशकीलेन मूर्द्धनि धार्यमाणस्य ताडयेत् ।
मूर्ध्नि कीलं प्रतिष्ठाप्य काष्ठं काष्ठेन ताडयेत् ।।४७
भयभीतस्य सा संज्ञा ततः प्रत्यागमिष्यति ।
अथ वा लुप्तसंज्ञस्य हस्ताभ्यां तत्र धारयेत् ।।४८
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ।
स्निग्धमल्पं च भुञ्जीत ततः सम्पद्यते सुखी ।।४९

शरीर के समस्त अङ्गों के प्रकम्प होने से समारब्ध योगी को इस चिकित्सा को करे इससे वह सुखी हो जाता है ।।४३।। जो कोई भी गत हो उसे मन से विष्टम्भी कृत बनाकर धारण करना चाहिए अर्थात् मन में पूर्ण दृढ़ता करके ही धारण करे । उर के उद्घात होने पर उर स्थान को कण्ठ देश में धारण करना चाहिए ।।४४।। त्वक् का अपघात हो जाने पर उसको वाणी में धारण करे, श्रोत्रों के बधिरत्व में इसी प्रकार करे । तृषा से आर्त्त को जिह्वा के स्थान में आगे तन्तुओं से स्नेहों को धारण करे । योगी को फल का चिन्तन करना चाहिए इससे वह सुख वाला होता है ।।४५।। क्षय में—कुष्ठ में और सकीलास में सब सात्त्विकी को धारण करे । जिस-जिस में रुजोद्देश में युक्त

होते हुए उसका विनियोग करना चाहिए ॥४६॥ योकोत्तम विष की यह चिकित्सा करे कि बांस की कील को मूर्धा मे धारण करते हुए ताडित करना चाहिए। मूर्धा मे कील प्रतिष्ठित करके काष्ठ को काष्ठ से ताडन करे ॥४७॥ भयभीत को तब यह ममता आ जायगी। अथवा सूत लगा वाले की छाती मे वहाँ धारण करे ॥४८॥ फिर संज्ञा को प्राप्त कर धारणा को मूर्धा मे धारण करे। थोड़ा स्निग्ध पदार्थ खाना चाहिए तब वह सुखी हो जाता है ॥४९॥

अथानुदेण सुदवेन यदा बुध्यति योगवित् ।
विष च पृथिवीञ्चैव वायुमग्नि च धारयेत् ॥५०
प्राणायामेन तत्सर्व वह्यमान वशीभवेत् ।
अथापि प्रविशेद्देह तवस्त प्रतिपद्येत् ॥५१
तत संस्तम्भ्य योगेन धारयानस्य मूर्द्धनि ।
प्राणायामाग्निना दग्ध तत्सर्व विलय व्रजेत् ॥५२
कृष्णसर्पापराध तु धारयेद्ध्रदयोदरे ।
महजनस्तप सत्य हृदि कृत्वा तु धारयेत् ॥५३
विषस्य तु फल पीत्वा विशल्या धारयेत्तत ।
सचर सनगा पृथ्वी कृत्वा मनसि धारयेत् ॥५४
हृदि कृत्वा समुद्रांश्च तथा सर्वाश्च देवता ।
सहस्र ण घटानाञ्च युक्त स्नायीत योगवित् ॥५५

जिस समय योग का वेत्ता यथानुष सत्व से धाकृत हो जाता है और विष तथा पृथिवी को—वायु को और अग्नि को धारण करे ॥५०॥ प्राणायाम से यह सब वह्यमान होकर वशीभूत हो जाते हैं और भी देह मे प्रवेश करे तो उसका प्रतिपेध कर देना चाहिए ॥५१॥ इसके अनन्तर योग से स्तम्भित कर मूर्धा मे धारण करने वाले के प्राणायाम की अग्नि से दग्ध हुआ वह सब विलीन हो जाता है ॥५२॥ कृष्ण सर्प के अपराध को हृदय के उदर मे धारण करे और महः—जन—तप और सत्य को हृदय मे करके धारण करना चाहिए ॥५३॥ विष के फल को पीकर फिर विशल्या को धारण करे। सब ओर से पृथ्वी को नगों से युक्त करके मन मे धारण करे। हृदय मे समस्त समुद्रों को तथा सम्पूर्ण

देवी को करके योग के ज्ञाता पुरुष को एक सहस्र घटों से स्नान करना चाहिए ॥५४-५५॥

उदके कण्ठमात्रे तु धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ।
प्रतिस्रोतोविषाविष्टो धारयेत् सर्वगात्रिकीम् ॥५६
शीर्णोऽर्कपत्रपुटके पिबेद्वल्मीकमृत्तिकाम् ।
चिकित्सितविधिर्ह्येष विश्रुतो योगनिर्मित ॥५७
व्याख्यातस्तु समासेन योगदृष्टेन हेतुना ।
ब्रुवता लक्षणं विद्धि विप्रस्य कथयेत् क्वचित् ॥५८
अथापि कथयेन्मोहात्तद्विज्ञानं प्रलीयते ।
तस्मात प्रवृत्तिर्योगस्य न वक्तव्या कथञ्चन ॥५९
सत्त्व तथारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रभा सुस्वरसौम्यता च ।
गन्ध शुभो मूत्रपुरीषमल्प योगप्रवृत्ति प्रथमा शरीरे ॥६०
आत्मानं पृथिवीञ्चैव ज्वलन्ती यदि पश्यति ।
कृष्णान्ध विशते चैव विद्यात् सिद्धिमुपस्थिताम् ॥६१

कण्ठ मात्र जल में धारणा को मूर्धा में धारण करे। प्रति स्रोत के विष से आविष्ट होता हुआ सर्वगात्रिकी को धारण करना चाहिए ॥५६॥ शीर्ण होता हुआ आक के पत्तों के दोनों में वल्मीक की मृत्तिका को पीना चाहिए यह योग में निमित चिकित्सा की विधि बतलाई गई है ॥५७॥ योग में दृष्ट हेतु से इसकी संक्षेप में व्याख्या भी कर दी गई है। बोलने वाले से इसका लक्षण जानलो। किसी भी योग्य विप्र को इसे कह देना चाहिए ॥५८॥ और भी मोह के कारण यदि कहेगा तो यह विज्ञान प्रलीन हो जायगा। अतएव योग की प्रवृत्ति को किसी भी प्रकार से कहना नहीं चाहिए ॥५९॥ यह शरीर में प्रथम योग की प्रवृत्ति है। इसमें सत्त्वगुण की पूर्ण वृद्धि होती है—आरोग्य, अलोलुपता, वर्ण की कान्ति, सुन्दर स्वर और सौम्यता, अच्छा गन्ध और अल्प मूत्र तथा मल ये सब इसमें हो जाते हैं ॥६०॥ यदि अपने आपको और जलती हुई पृथिवी को देखे तो अन्ध को करके प्रवेश करे और सिद्धि को उपस्थित होने वाली समझ लेना चाहिए ॥६१॥

।। योगमार्ग के विघ्न ।।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपसर्गा यथा तथा ।
प्रादुर्भवन्ति ये दोषा दृष्टतत्त्वस्य देहिनः ॥१
मानुष्यान् विविधान् कामान् कामयेत स्त्रियः ।
विद्यादानफलञ्चैव उपसृष्टस्तु योगवित् ॥२
अग्निहोत्रं हविर्यज्ञमेतत् प्रायतनं तथा ।
मायाकर्म धनं स्वर्गमुपसृष्टश्च काङ्क्षति ॥३
एवं कर्मसु युक्तस्तु सोऽविद्यावशमागतः ।
उपसृष्टं तु जानीयाद्बुद्ध्या चैव विसर्जयेत् ।
नित्यं ब्रह्मपरो युक्त उपसर्गात् प्रमुच्यते ॥४
जितप्रत्युपसर्गस्य जितश्वासस्य देहिनः ।
उपसर्गाः प्रवर्त्तन्ते सात्त्विकराजसतामसाः ॥५
प्रतिभाश्रवणे चैव देवानाञ्चैव दर्शनम् ।
भ्रमावर्तश्च इत्येते सिद्धिलक्षणवर्जिताः ॥६
विद्या काव्यं तथा शिल्पं सर्वं वाचाङ्कृतानि तु ।
विद्यार्थाश्चोपतिष्ठन्ति प्रतिभस्य लक्षणम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब इसके आगे जैसे-तैसे उपसर्गों को बतलाते हैं। तत्त्व को देख लेने वाले देहधारी को जो दोष प्रादुर्भूत हो जाते हैं ॥१॥ मनुष्य से सम्बन्ध रखने वाले अनेक प्रकार के कामों की और स्त्री की बहुत की कामना करनी चाहिए और उपसृष्ट और योग का वेत्ता पुरुष विद्या दान के फल की इच्छा करे ॥२। जो उपसृष्ट अर्थात् उपसर्ग से युक्त होता है वह पुरुष अग्निहोत्र हवि यज्ञ तथा यह प्रायतन माया कर्म धन और स्वर्ग की इच्छा करता है ।३। कर्मों में युक्त वह अविद्या के वश में आया हुआ होकर किया करता है उसे उपसृष्ट अर्थात् उपसर्ग से युक्त ही जान लेना चाहिए और बुद्धि से इन सब का त्याग कर देना चाहिए। जो नित्य ही ब्रह्म परायण युक्त होता है वह उपसर्ग से प्रमुक्त हो जाता है ।।४। प्रत्युपसर्ग को जीत लेने वाले और श्वास को जीत लेने वाले देही को उपसर्ग प्रवृत्त हुआ करते हैं और वे सत्त्व से

...क, राजस तथा तामस होते हैं ।।५।। प्रतिभा के श्रवण में और देवों के दर्शन तथा भ्रमावर्त इतने ये सिद्धि के लक्षण की सज्ञा वाले कहे गये हैं ।।६।। विद्या, काव्य, शिल्प और सर्व आचातून तथा विद्या के अर्थ में ये सब उपस्थित होते हैं और यह सब प्रमाद का ही लक्षण कहा जाता है ।।७।।

शृणोति शब्दान् श्रोतव्यान् योजनाना शतादपि ।
सर्वज्ञश्च विधिज्ञश्च योगी चोन्मत्तवद्भवेत् ।।८
यक्षराक्षसगन्धर्वान् वीक्षते दिव्यमानुषान् ।
वेत्ति तांश्च महायोगी उपसर्गस्य लक्षणम् ।।९
देवदानवगन्धर्वान् ऋषींश्चापि तथा पितॄन् ।
प्रेक्षते सर्वतश्चैव उन्मत्तं त विनिर्दिशेत् ।।१०
भ्रमेण भ्राम्यते योगी चोद्यमानोऽन्तरात्मना ।
भ्रमेण भ्रान्तबुद्धेस्तु ज्ञानं सर्वं प्रणश्यति ।।११
वार्ता नाशयते चित्तं चोद्यमानोऽन्तरात्मना ।
वर्त्तनाक्रान्तबुद्धेस्तु सर्वं ज्ञानं प्रणश्यति ।।१२
आवृत्य मनसा शुक्लं पटं वा कम्बलं तथा ।
ततस्तु परमं ब्रह्म क्षिप्रमेवानुचिन्तयेत् ।।१३
तस्माच्चैवात्मनो दोषांस्तूपसर्गानुपस्थितान् ।
परित्यजेत मेधावी यदीच्छेत सिद्धिमात्मन ।।१४।।

एकसौ योजन से भी सुनने के योग्य शब्दों को सुनलेता है, सब कुछ का ज्ञाता तथा विधियों का जानने वाला योगी एक उन्मत्त की भाँति हो जाता है ।।८।। यक्ष, राक्षस और गन्धर्वों को तथा दिव्य मनुष्यों को वह देखता है और महान् योग वाला उनको जानता है, यह सब उपसर्ग का ही लक्षण होता है ।।९।। देव, दानव, गन्धर्वों को ऋषियों, को तथा पितृगणों को सब ओर वह देखा करता है। उसे एक उन्माद से युक्त उन्मत्त व्यक्ति निर्दिष्ट करना चाहिए ।।१०।। अन्तरात्मा के द्वारा प्रेरित होता हुआ योगी भ्रम से भ्राम्यमाण होता है और जो भ्रम से भ्रान्त बुद्धि वाला हो जाता है उसका सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो जाया करता है ।।११।। अन्तरात्मा के द्वारा प्रेरित होने वाला वार्त्ता का नाश कर देता है

और जो मनोत्व से आकाशस्थ बुद्धि वाला होता है उसका समस्त बल स्थूल रूप से नष्ट हो जाता है ।।१३।। उस स्थिति में मन से युक्त रहकर या कल्याण से संयुक्त होकर इसके अनन्तर शीघ्र ही ब्रह्म का अनुचिन्तन करना चाहिए ।।१३।। उस से ही भावना के दोषों को तथा इस प्रकार के उपस्थित उपसर्गों की सेवा वाले पुरुष को परित्याग कर देना चाहिए यदि वह अपनी आत्मा की सिद्धि की इच्छा करता है। तो उनको सिद्धि के लिये ऐसे त्याग करने की परमावश्यकता होती है ।।१४।।

ऋषयो देवगन्धर्वा यक्षोरगमहासुराः ।
उपसर्गेषु संयुक्ता आवर्तन्ते पुनः पुनः ।।१५
तस्माद्युक्तः सदा योगी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
तथा सूक्ष्मेषु सूक्ष्मेषु धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ।।१६
ततस्तु योगयुक्तस्य जितनिद्रस्य योगिनः ।
उपसर्गाः पुनश्चान्ये जायन्ते पाप्मसम्भवाः ।।१७
पृथिवीं धारयेत्सर्वां तमश्चापो ह्यनन्तरम् ।
तेजोऽग्निश्च न सर्वेषामाकाशं मन एव च ।।१८
देहं परं पुनर्बुद्धिं धारयेच्चात्मनो यती ।
सिद्धीनामथ चिह्नानि दृष्ट्वा दृष्ट्वा परित्यजेत् ।।१९
पृथ्वीं धारयमाणस्य मही सूक्ष्मा प्रवर्तते ।
अपो धारयमाणस्य आपः सूक्ष्मा भवन्ति हि ।
भोक्ता रसा भवन्त्येते सूक्ष्मा ह्यमृतसन्निभाः ।।२०
तेजो धारयमाणस्य तेजः सूक्ष्मं प्रवर्तते ।
आत्मानं मन्यते तैश्च तत्स्वभावमनुपश्यति ।।२१

ऋषिगण देवता गन्धर्व यक्ष उरग और महान् असुर गण भी सब उपसर्गों से संयुक्त होकर बार बार आवर्तित हुआ करते हैं ।।१५।। इसलिये जो युक्त योगी होता है उसे सर्वदा अल्प और हल्का आहार करने वाला इन्द्रियों को जीत लेने वाला होना चाहिए तथा सूक्ष्मों में युक्त रहने वाला होकर उसे मूर्धा में धारणा को धारण करना चाहिए ।।१६।। इस प्रकार से रहने वाले निद्रा

का जीत लेने वाले योग से युक्त योगी को अन्त में फिर वे इस सर्ग प्राणमय। वाले ही जाया करते हैं ॥१७॥ समस्त पृथिवी को धारण करे इसके अनन्तर जलों को, फिर अग्नि को और उसके बाद आकाश को धारण करे ॥१८॥ इसके अनन्तर यती को मनसे भी परा बुद्धि को यत्न पूर्वक धारण करनी चाहिए। और इस बीच में जो भी सिद्धियों के चिह्न उपस्थित हों उन्हें देख कर त्याग देना चाहिए ॥१९॥ पृथ्वी को धारण करने वाले के लिये यह मही अति सूक्ष्म प्रवृत्त होती है। जलों को धारण करने वाले के लिये जल सूक्ष्म हो जाते हैं और समस्त रस शीत तथा अमृत के तुल्य प्रवर्त्तमान हुआ करते हैं ॥२०॥ जब तेज को धारण किया जाता है तो वह तेज भी सूक्ष्म हो जाता है और आत्मा को तेज मानता है और तेज तद्भाव का ही अनुदर्शन किया करता है ॥२१॥

आत्मानं मन्यते वायुं वायुवन्मण्डलं प्रभो।
आकाशं धारयाणस्य व्योमं सूक्ष्मं प्रवर्त्तते ॥२२
पश्यते मण्डलं सूक्ष्मं घोषश्चास्य प्रवर्त्तते।
आत्मानं मन्यते नित्यं वायुं सूक्ष्मं प्रवर्त्तते ॥२३
तथा मनो धारयतो मनः सूक्ष्मं प्रवर्त्तते।
मनसा सर्वभूतानां मनस्तु विशते हि सः।
बुद्ध्या बुद्धिं यदा युङ्क्ते तदा विज्ञाय बुद्ध्यते ॥२४॥
एतानि सप्त सूक्ष्माणि विदित्वा यस्तु योगवित्।
परित्यजति मेधावी स बुद्ध्या परमं व्रजेत् ॥२५॥
यस्मिन् यस्मिंश्च संयुक्तो भूत ऐश्वर्यलक्षणे।
तत्रैव सङ्गं भजते तेनैव प्रविनश्यति ॥२६॥
तस्माद्विदित्वा सूक्ष्माणि ससक्तानि परस्परम्।
परित्यजति यो बुद्ध्या स परं प्राप्नुयाद्द्विज ॥२७
दृश्यन्ते हि महात्मानः ऋषयो दिव्यचक्षुषः।
ससक्ताः सूक्ष्मभावेषु वै दोषास्तेषु संज्ञिताः ॥२८

हे प्रभो! आत्मा को वायु मानता है और समस्त मण्डल को वायु की भाँति देखता है। आकाश को धारयमाण का व्योम सूक्ष्म हो जाता है ॥२२॥

नित्यं ब्रह्मपरो युक्तः स्थानान्येतानि वर्जयेत् ।
असज्यमानः स्थानेषु द्विजः सर्वगतो भवेत् ॥४०

ऐश्वर्य के गुण से सम्प्राप्त सहस्रभुज वह प्रभु को इन और समस्त देव स्थानों में निःशेष रूप से करता है ॥ ३६ ॥ पिशाचों को पैशाच से राक्षसों को राक्षस से गन्धर्वों को गान्धर्व से तथा कुबेर को भी कौबेर से अर्थात् कुबेर के स्थान से साधन करना चाहिये ॥ ३७ ॥ इन्द्र को ऐन्द्र स्थान से सौम्य को सौम्य स्थान से तथा प्रजापति को प्राजापत्य स्थान से साधन करना चाहिये ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार से ब्राह्म से ब्राह्म प्रभु का अभिषेचन करता है। यहाँ पर सक्त होने वाला उन्मत्त हो जाता है। वहीं से सब प्रवृत्त होता है ॥ ३९ ॥ नित्य ही ब्रह्म में परायण रहने वाले युक्त पुरुष को ये स्थान त्याग देने चाहिये। स्थानों में आसक्त न होकर द्विज सर्वगत हो जाता है ॥ ४० ॥

॥ योग मार्ग के ऐश्वर्य ॥

अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि ऐश्वर्यगुणविस्तरम् ।
येन योगविशेषेण सर्वलोकानतिक्रमेत् ॥१
तत्राष्टगुणमैश्वर्यं योगिनां समुदाहृतम् ।
तत्सर्वं क्रमयोगेन उच्यमानं निबोधत ॥२
अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च ।
प्राकाम्यं चैव सर्वत्र ईशित्वं चैव सर्वतः ॥३
वशित्वमथ सर्वत्र यत्र कामावसायिता ।
तच्चापि त्रिविधं ज्ञेयमैश्वर्यं सार्वकामिकम् ॥४
सावद्यं निरवद्यं च सूक्ष्मं चैव प्रवर्तते ।
सावद्यं नाम तत्तत्त्वं पञ्चभूतात्मकं स्मृतम् ॥५
निरवद्यं तथा नाम पञ्चभूतात्मकं स्मृतम् ।
इन्द्रियाणि मनश्चैव अहङ्कारश्च वै स्मृतम् ॥६
तत्र सूक्ष्मप्रवृत्तं तु पञ्चभूतात्मकं पुनः ।
इन्द्रियाणि मनश्चैव बुद्ध्यहङ्कारसंश्रितम् ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—इससे आगे ऐश्वर्य गुणों का विस्तार से वर्णन

किया जाता है जिस योग विशेष के द्वारा समस्त लोकों का अतिक्रमण किया करता है ॥ १ ॥ यहाँ पर आठ गुणों वाला योगियों का ऐश्वर्य कहा गया है। वह सब क्रम के योग से कहा जाने वाला है उसे आप लोग भली-भाँति समझ लेवें ॥ २ ॥ अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, सर्वत्र प्राकाम्य और सब और ईशत्व तथा सर्वत्र वशित्व जहाँ कि कामावसायिता होवे। यह भी सर्वकामिक ऐश्वर्य अनेक प्रकार वाला जानना चाहिये ॥ ३—४ ॥ यह ऐश्वर्य सावद्य, निरवद्य और सूक्ष्म प्रवर्तमान हुआ करता है। इसमें जो सावद्य होता है वह तत्व होता है जो कि पञ्चभूतात्मक होता है ॥ ५ ॥ निरवद्य यह नाम भी पञ्च-भूतात्मक कहा गया है। इन्द्रियों का समूह, मन और अहङ्कार कहा गया है ॥ ६ ॥ वहाँ पर पुन सूक्ष्म प्रवृत्त पञ्चभूतात्मक इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अह-ङ्कार सज्ञा वाला होता है ॥ ७ ॥

तथा सर्वमयं चैव आत्मस्था ख्यातिरेव च।
सयोग एव त्रिविध सूक्ष्मेष्वेव प्रवर्तते ॥८
पुनरष्टगुणस्यापि तेष्वेवाथ प्रवर्तते।
तस्य रूप प्रवक्ष्यामि यथाह भगवान् प्रभु ॥९
त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु जीवस्यानियत स्मृत।
अणिमा च यथाव्यक्त सर्वं तत्र प्रतिष्ठितम् ॥१०
त्रैलोक्ये सर्वभूताना दुष्प्राप्य समुदाहृतम्।
तच्चापि भवति प्राप्य प्रथम योगिना बलात् ॥११
लङ्घन प्लवन योगी रूपमस्य सदा भवेत्।
शीघ्रग सर्वभूतेषु द्वितीय तत्पद स्मृतम् ॥१२
त्रैलोक्ये सर्वभूताना प्राप्ति प्राकाम्यमेव च।
महिमा चापि यो यस्मिस्तृतीयो योग उच्यते ॥१३
त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु त्रैलोक्यगम स्मृतम्।
प्रकामान् विषयान् भुङ्क्ते न च प्रतिहत क्वचित्।
त्रैलोक्ये सर्वभूताना सुख-दुख प्रवर्तते ॥१४

इसी प्रकार से सर्वमय और आत्मा में रहने वाली ख्याति ही तीन प्रकार

का संयोग सूक्ष्मों में ही प्रवृत्त होता है ॥ ८ ॥ पुनः अष्ट गुणों वालों को भी उनमें जो प्रवृत्ति होती है उसके रूप को बतलाते हैं जो कि भगवान् प्रभु ने बताया है ॥ ९ ॥ त्रैलोक्य में समस्त भूतों में जीव की अणियता कही गई है। अणिमा जिस प्रकार से अव्यक्त है उसमें सभी कुछ अधिष्ठित होता है ॥१०॥ तीनों लोकों में जो परम दुष्प्राप्य बताया गया है वह भी योगियों को पहिले व्रत पूर्वक प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ योग में इसका रूप सर्वदा सम्पन्न एवं प्लवन होता है। शीघ्र गमन करने वाला समस्त भूतों में उसका द्वितीय पद कहा गया है ॥ १२ ॥ त्रैलोक्य के समस्त भूतों को प्राप्ति और प्राकाम्य तथा जो जिसमें महिमा होती है वह भी तृतीय योग कहा जाता है ॥ १३ ॥ त्रैलोक्य में समस्त भूतों में त्रैलोक्य अगम कहा गया है। वह विषयों को प्रकृष्ट कामना के अनुसार भोग करता है और कोई कहीं भी प्रतिहति करने वाला नहीं होता है। त्रैलोक्य में सब भूतों का सुख और दुःख प्रवृत्त होता है ॥ १४ ॥

ईशो भवति सर्वत्र प्रविभागेन योगवित् ।
वश्यानि चैव भूतानि त्रैलोक्ये सचराचरे ।
भवन्ति सर्वकार्येषु इच्छतो न भवन्ति च ॥१५
यत्र कामावसायित्वं त्रैलोक्ये सचराचरे ।
इच्छया चेन्द्रियाणि स्युर्भवन्ति न भवन्ति च ॥१६
शब्दः स्पर्शो रसो गन्धो रूपं चैव मनस्तथा ।
प्रवर्त्तन्तेऽस्य चेच्छातो न भवन्ति ह्यपेच्छया ॥१७
न जायते न म्रियते भिद्यते न च छिद्यते ।
न दह्यते न मुह्यते ह्रीयते न च क्लिद्यते ॥१८
न क्षीयते न क्षरति न खिद्यति कदाचन ।
क्रियते चैव सर्वत्र तथा विक्रियते न च ॥१९
अगन्धरसरूपस्तु स्पर्शशब्दविवर्जितः ।
अवर्णो ह्यवर्णश्च तथा वर्णस्य कर्हिचित् ॥२०
भुङ्क्ते च विषयांश्चैव विषयैर्न च युज्यते ।
ज्ञात्वा तु परमं सूक्ष्मं सूक्ष्मत्वाच्चापवर्गकः ॥२१

व्यापकस्त्वपवर्गाच्च व्यापित्वात्पुरुष स्मृत ।
पुरुष. सूक्ष्मभावात्तु ऐश्वर्ये परत स्थित ॥२२
गुणान्तरन्तु ऐश्वर्यं सर्वत सूक्ष्म उच्यते ।
ऐश्वर्य्यमप्रतीघाति प्राप्य योगमनुत्तमम् ।
अपवर्गं ततो गच्छेत् सुसूक्ष्म परम पदम् ॥२३

योग के ज्ञान को रखने वाला प्रविभाग से सर्वत्र ईश होता है। इस चराचरात्मक त्रैलोक्य मे समस्त भूत वश्य होते हैं। समस्त कार्यों मे इच्छा करते हुये नही होते हैं ॥ १५ ॥ इस चराचर त्रैलोक्य मे जहाँ पर कामावसायित्व होता है वहाँ इच्छा से इन्द्रियाँ होती हैं और नही होती हैं ॥ १६ ॥ शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप तथा मन इसकी इच्छा से प्रवृत्त होते हैं तथा इच्छा से नही होते हैं ॥ १७ ॥ यह न उत्पन्न होता है, न मरता है, न भिन्न होता है, न छेदन किया जाता है, न जलाया जाता है, न मोह को प्राप्त होता है, न दीयमान होता है, न लिप्त ही होता है, न यह क्षीण होता है, न क्षर होने वाला होता है और न कभी खिन्न होता है। यह सर्वत्र किया जाता है और विकार युक्त नही होता है ॥ १८–१९ ॥ बिना गन्ध, रस और रूप वाला तथा स्पर्श और शब्द से विवर्जित, बिना वर्ण वाला तथा वर्ण का अचर, स्वरूप वाला यह होता है ॥ २० ॥ और विषयो का भोग करता है तथा विषयो से युक्त नहीं होता है। परम सूक्ष्म का ज्ञान प्राप्त करके सूक्ष्मत्व होने से अपवर्ग से व्यापक है और व्यापित्व होने से पुरुष कहा गया है। सूक्ष्मभाव से यह पुरुष ऐश्वर्य मे परे स्थित होता है ॥ २१ ॥ ऐश्वर्य मे दूसरा गुण सब और सूक्ष्म कहा जाता है। ऐश्वर्य का अप्रतिघाती परम श्रेष्ठ योग को प्राप्त करके अति सूक्ष्म परम पद अपवर्ग को जाता है ॥ २३ ॥

॥ पाशुपत योग का स्वरूप ॥

न चैवमागतो ज्ञानाद्रागात् कर्म्म समाचरेत् ।
राजस तामस वापि भुक्त्वा तत्रैव युज्यते ॥१
तथा सुकृतकर्म्मा तु फल स्वर्गे समश्नुते ।
तस्मात् स्थानात् पुनर्भ्रष्टो मानुष्यमनुपद्यते ॥२

तस्माद्ब्रह्म परं सूक्ष्मं ब्रह्म शाश्वतमुच्यते ।
ब्रह्म एव हि सेवेत ब्रह्मैव परमं सुखम् ॥३
परिश्रमस्तु यज्ञानां महतार्थेन वर्तते ।
भूयो मृत्युवशं याति तस्मान्मोक्षः परं सुखम् ॥४
अथ स ध्यानसंयुक्तो ब्रह्मयज्ञपरायणः ।
न स स्याद् व्यापितुं शक्यो मन्वन्तरशतैरपि ॥५
दृष्ट्वा तु पुरुषं दिव्यं विश्वाख्यं विश्वरूपिणम् ।
विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशं विश्वभावनम् ।
विश्वगन्धं विश्वमाल्यं विश्वाम्बरधरं प्रभुम् ॥६
गोभिर्मही संयतनं पतत्रिणं महात्मानं परमर्षिं वरेण्यम् ।
कविं पुराणमनुशासितारं सूक्ष्माच्च सूक्ष्मं महतो महान्तम् ।
योगेन पश्यन्ति न चक्षुषा तं निरिन्द्रियं पुरुषं रुक्मवर्णम् ॥७

श्री वायु देव ने कहा—इस प्रकार से माया युक्त ज्ञान से अथवा राग से काम का आचरण न करे। राजस हो अथवा तामस हो उसका भोग करके वहीं पर वह मुक्त होता है ॥ १ ॥ यदि कोई सुकृत कर्मों के करने वाला है तो वह अपने सुकृत कर्मों के प्रभाव से उनका फल स्वर्ग में भोगता है। जब पुण्य कर्मों के फल का भोग समाप्त हो जाता है तो उस स्थान से भ्रष्ट होकर पुन मनुष्य योनि को प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥ इससे ब्रह्म परम सूक्ष्म है और ब्रह्म शाश्वत कहा गया है अर्थात् ब्रह्म सर्वदा रहने वाला कहा जाता है। ब्रह्म का ही सेवन करना चाहिये क्योंकि ब्रह्म ही परम सुख होता है ॥ ३ ॥ यज्ञों के करने में महान् परिश्रम करना पड़ता है और वह भी बहुत अधिक धन से सम्पन्न किया जाता है। यज्ञादि के करने वाला भी फिर मृत्यु के वश में हो जाता है। इसलिये मोक्ष का प्राप्त करना ही परम सुख होता है ॥ ४ ॥ ध्यान से संयुक्त होता हुआ जो ब्रह्म यज्ञ में परायण होता है वह सौ मन्वन्तरों में भी मारा नहीं जा सकता है ॥ ५ ॥ विश्व नाम वाले विश्व के रूप वाले विश्व के पाद शिर और ग्रीवा वाले विश्व के स्वामी विश्व का पालन करने वाले दिव्य पुरुष विश्व की गन्ध वाले विश्व की माल्य विश्व के अम्बर को धारण करने वाले

प्रभु का योग से दर्शन करते हैं ॥ ६ ॥ नहीं इन्द्रियों से पवित्र, महान् आत्म वाले, परम मति, श्रेष्ठ, कवि, पुराण, अनुशासन करने वाले, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, महान् से भी महान् को समत करती है उस इन्द्रियों से रहित सुवर्ण के समान वर्ण वाले पुरुष को योग से देखते हैं, चक्षु से नहीं देखते हैं ॥ ७ ॥

अलिङ्गिन पुरुष रुक्मवर्णं सलिङ्गिन निर्गुण चेतन च ।
नित्य सदा सर्वगतन्तु शौच पश्यन्ति युक्त्या ह्यचल प्रकाशम् ॥८
तद्भावितस्तेजसा दीप्यमान अपाणि पादोदरपार्श्वजिह्व ।
अतीन्द्रियोऽप्यापि सुसूक्ष्म एक पश्यत्यचक्षु स शृणोत्यकर्ण ॥९
नास्यास्त्यबुद्ध न च बुद्धिरस्ति स वेद सर्व न च वेदवेद्य ।
तमाहुरग्र्य पुरुष महान्त सचेतन सर्वगत सुसूक्ष्मम् ॥१०
तामाहुर्मुनय सर्वे लोके प्रसवधर्मिणीम् ।
प्रकृति सर्वभूताना युक्ता पश्यन्ति चेतसा ॥११
सर्वत पाणिपादान्त सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वत श्रुति (म) माल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१२
युक्ता योगेन चेशान सर्वतश्च सनातनम् ।
पुरुष सर्वभूताना तस्माद्ध्याता न मुह्यते ॥१३
भूतात्मान महात्मान परमात्मानमव्ययम् ।
सर्वात्मान पर ब्रह्म तद्ध्यात्वा न मुह्यति ॥१४

बिना लिङ्ग (चिह्न) वाले, हेम के सदृश वर्ण से युक्त, सलिङ्गी, निर्गुण, चेतन, नित्य, सदा सब मे रहने वाले, शौच, अचल और प्रकाश स्वरूप पुरुष को युक्ति से देखते हैं ॥८। उसकी भावना से युक्त तेज से दीप्यमान, पाणि, पाद, उदर, पार्श्व और जिह्वा से रहित, इन्द्रियो की पहुँच से परे, बिना नेत्रों वाला और बिना कानो वाला अब भी सुसूक्ष्म एक वह देखता है और सुनता भी है ॥९॥ इसको कुछ भी अबुद्ध नही है इसके बुद्धि भी नही है, वह सब को जानता है और वह वेदो के द्वारा भी जानने के योग्य नही हैं अर्थात् वेद भी उसके यथार्थ स्वरूप को नही बता सकते हैं। उसको सब से प्रथम पुरुष महान्, सचेतन सर्वगत और सुसूक्ष्म कहते हैं ॥१०॥ लोक

मे सब मुनिगण उस को समस्त प्राणियों के प्रसव के धर्म वाली प्रकृति कहते हैं । जो दोष से मुक्त होते हैं वे ध्यान से चित्त से उसे देखते हैं ॥ ११ ॥ अब उसके स्वरूप का वर्णन करते हैं कि वह सभी ओर पाणि तथा पादों वाला है सब ओर नेत्र शिर और मुख वाला है सब तरफ श्रुतिमान् है और लोक में सब को आवृत करके स्थित रहता है ॥ १२ ॥ जो मुक्त होते हैं वे योग से उस ईशान और सर्वत्र स्थित सनातन को एवं समस्त भूतों के पुरुष को देखते हैं । इसलिए जो ध्याता अर्थात् ध्यान योगी हैं वे कभी मोह को प्राप्त नहीं होते हैं ॥ १३ ॥ समस्त भूतों की आत्मा महान् आत्मा प्राण अव्यय सब की आत्मा परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करके मोहित नहीं होते हैं ॥ १४ ॥

पवनो हि यथा ग्राह्यो विचरन् सर्वमूर्तिषु ।
पुरि शेते तथाप्य च तस्मात् पुरुष उच्यते ।
अथ चेल्लुप्तधर्मासि संश्लिष्टश्च कर्मभिः ॥१५
ततस्तु सह्यो वा च शुक्लशोणितसम्भृतम् ।
स्त्रीपुंसयोस्तयोर्देहे जायते हि पुनः पुनः ॥१६
ततस्तु गर्भकाले तु कललं नाम जायते ।
कालेन कललश्चापि बुद्बुदत्वं प्रजायते ॥१७
मृत्पिण्डस्तु यथा चक्रे चक्रवातेन पीडितः ।
हस्ताभ्यां क्रियमाणस्तु विश्वरूपमुपगच्छति ॥१८
एवमात्मास्थिसंयुक्तो वायुना समुदीरितः ।
जायते मानुषस्तत्र यथा रूपं तथा मनः ॥१९
वायुः सम्भवते देहे वातात् सञ्जायते जलम् ।
जलात्सम्भवः स प्राणः प्राणाच्छुक्रं विवर्द्धते ॥२०
रक्तभागास्त्रयस्त्रिंशत्पञ्चदशभागाः पश्चतुर्दश च ।
भागतोऽर्द्धपलं कृत्वा ततो गर्भे निषिच्यते ॥२१

जिस तरह पवन समस्त मूर्तियों में विचरता हुआ ग्राह्य हुआ करता है उसी भाँति यह पुर में शयन करता है तथा गर्भ में भी स्थित रहता है इसी लिये 'पुरुष'—यह कहा जाता है । इसके अनन्तर अविशेष धर्मों से लुप्त

प्रथम बाना होता है ॥१५॥ इसके पश्चात् वह ब्रह्म शुक्र और शोणित से संयुत होकर योनि में स्त्री और पुमान् के प्रयोग से बार-बार उत्पन्न होता है ॥१६॥ सर्वप्रथम योनि में पुरुष के शुक्र और स्त्री के शोणित के संयोग से गर्भ की स्थिति होती है तो वह उस गर्भ के समय में पहिले कलल नाम वाला होता है। कुछ समय में वही कलल बुद्बुद हो जाता है ॥१७॥ जिस तरह मिट्टी का एक पिण्ड चक्र वात के द्वारा पीडित किया जाता है और हाथों से बनाया हुआ चिरत्व को प्राप्त हो जाता है ॥१८॥ इसी प्रकार से वायु के द्वारा समुदीरित यह आत्मा और अस्थि से संयुक्त मनुष्य उत्पन्न होता है। उसमें फिर जैसा रूप होता है वैसा मन होता है ॥१९॥ वायु उत्पन्न होता है, उस वात से जल होता है, जल से प्राण उत्पन्न होता है और प्राण से शुक्र की वृद्धि होती है ॥२०॥ तैंतीस रक्त के भाग होते हैं और शुक्र के चौदह भाग होते हैं। भाग से आधा पल करके फिर गर्भ में निषेचित होता है ॥२१

ततस्तु गर्भसंयुक्तः पञ्चभिर्वायुभिर्वृतः ।
पितुः शरीरात् प्रत्यङ्गरूपमस्योपजायते ॥२२
ततोऽस्य मातुराहारात् पीतनीडप्रवेशितम् ।
नाभि स्रोत प्रवेशेन प्राणाधारो हि देहिनाम् ॥२३
नवमासान् परिक्लिष्टः संवेष्टितशिरोधरः ।
वेष्टितः सर्वगात्रैश्च अपर्याप्तक्रमागतः ।
नवमासोषितश्चैव योनिच्छिद्रादवाङ्मुखः ॥२४
ततस्तु कर्मभिः पापैर्निरयं प्रतिपद्यते ।
असिपत्रवनञ्चैव शाल्मलीच्छेदभेदयोः ॥२५
तत्र निर्भर्त्सनञ्चैव तथा शोणितभोजनम् ।
एतास्तु यातना घोराः कुम्भीपाकसुदुःसहाः ॥२६
यथा ह्यापस्तु विच्छिन्नाः स्वरूपमुपयान्ति वै ।
तस्माच्छिन्नाश्च भिन्नाश्च यातनास्थानमागतः ॥२७
एवं जीवस्तु तैः पापैस्तप्यमानः स्वकर्मकृतैः ।
प्राप्नुयात् कर्मभिर्दुःखं शेषं वा यदि चेतरम् ॥२८

इसके पश्चात् प्राण वायु से पूर्ण और नस से संयुक्त उसके पिता के शरीर से प्रत्येक अङ्ग का रूप उत्पन्न होता है ॥२१॥ इसके अनन्तर माता जो कुछ भी खाया करती है उस उसके आहार से पीया हुआ खाया हुआ अन्दर प्रवेशित होता है यह नाभि के छेद के द्वारा गर्भ तक प्रवेश करता है उससे देह धारियों के प्राणों का आधार होता है ॥२३॥ इस तरह वो गर्भ पयन्त तबेष्टित शिरोधर परिक्लेश से युक्त होता हुआ समस्त गात्रों से पीड़ित होकर अपर्याय क्रम से आया हुआ रहता है गोदान तक वहीं गर्भ मे रहकर फिर योनि के छिद्र से अवाङ्मुख होता हुआ जन्म ग्रहण किया करता है ॥२४॥ फिर यहाँ पर आकर अनेक पाप कर्म करता है और उन दुष्कर्मों के कारण नरक को प्राप्त किया करता है। असिपत्र वन शाल्मली छेद भेदों के नाम वाले नरक होते हैं उनमें पाप कर्मो से यातना भोगता है ॥२५॥ वहाँ नरक स्थानों में बहुत बुरी तरह फटकार खाता है तथा शोणित का भोजन करना पड़ता है। ये समस्त अत्यन्त घोर यातनाऐं हैं और कुम्भीपाक नरक की बहुत असह्य यातना होती है ॥२६॥ जिस तरह छिन्न किये हुए मल अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं उसी प्रकार छिन्न और भिन्न हुए यातना के स्थान में आते हैं ॥२७॥ इस तरह जीवात्मा अपने ही किये हुए पाप कर्मों से दह्यमान होता हुआ कर्मों के द्वारा दुःख प्राप्त किया करता है। प्राणि का जो भी शेष कर्म होता है। उसे भी भोगता है ॥२८॥

एकेनैव तु गन्तव्यं सर्वमृत्युनिवेशनम्।
एकेनव च भोक्तव्यं तस्मात् सुकृतमाचरेत् ॥२९
न ह्येनं प्रस्थितं कश्चिद्गच्छन्तमनुगच्छति।
यदनेन कृतं कर्म तदेनमनुगच्छति ॥३०
ते नित्यं यमविषये विभिन्नदेहाः क्रोशन्तः सततमनिष्टसम्प्रयोगैः।
शुष्यन्ते परिगतवेदनाशरीरा बह्वीभिः सुभृशमधर्मयातनाभिः ॥ ३१
कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेव्यते।
तत् प्रसह्य हरेत् पापं तस्मात् सुकृतमाचरेत् ॥३२
यादृग् जातानि पापानि पूर्व कर्माणि देहिनः।

संसारं तामसं तादृक् षड्विधं प्रतिपद्यते ॥२३

मानुष्यं पशुभावश्च पशुभावान्मृगो भवेत् ।
मृगत्वात् पक्षिभावन्तु तस्माच्चैव सरीसृपः ॥२४

सरीसृपत्वाद्गच्छेद्धि । स्थावरत्वन्न संशयः ।
स्थावरत्वं पुनः प्राप्तो यावदुन्मिषते नरः ।
कुलालचक्रवद्भ्रान्तस्तत्रैव परिकीर्तितः ॥२५

समस्त प्राणियों के मृत्यु के स्थान में एक ही को अकेले जाना पड़ता है अर्थात् अन्य वहाँ कोई भी सहायक नहीं हो सकता है। और स्वयं एक ही को वहाँ नरक स्थान में कर्मों का फल भोगना पड़ता है इसलिये सर्वदा सुकृत ही करना चाहिए ॥१६॥ जब अन्त समय उपस्थित होता है तो मृत्यु के मुख में प्रस्थान करने वाले इसको कोई भी साथी नहीं मिलता है और न जाते हुए के पीछे ही कोई आया करता है। इसने यहाँ लोक में जो भी भला-बुरा कर्म किया है वही इसके पीछे साथ जाया करता है ॥२०॥ वे वहाँ यमराज के स्थान में विभिन्न देह वाले नित्य ही न अवर बुरे-बुरे सम्प्रयोगों से रुदन करते हुए शुष्क हो जाते हैं और बहुत-सी अधम यातनाओं से जो कि अत्यन्त ही घोर रूप में प्राप्त होती है सब तरह वेदना से पूर्ण शरीर वाले होते हैं ॥२१॥ कर्म से मन से और वाणी से जो अभीष्ट का सेवन किया जाता है उस पाप को बलपूर्वक दूर कर देना चाहिए। इससे सुकृत कर्म का ही आचरण करना चाहिए ॥२२॥ इस देहधारी पुरुष के जैसे भी पहिले कर्म तथा पाप हुए हैं उनको वह तामस संसार वैसा ही छः प्रकार वाला प्राप्त हुआ करता है ॥२३॥ मानुष्य से पशुभाव, पशुभाव से मृग होता है। मृगत्व से पक्षिभाव को प्राप्त होता है और फिर उससे सरीसृप होता है ॥२४॥ सरीसृप से स्थावरता को प्राप्त किया करता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जब तक नर के उन्मेष को प्राप्त नहीं होता है बराबर पुनः स्थावरत्व को प्राप्त किया करता है। कुम्हार के चाक की भाँति भ्रमण करता हुआ वहाँ ही पर रहा करता है ॥२५॥

इत्येवं हि मनुष्यादि संसारे स्थावरान्तके ।

विज्ञेयस्तामसो नाम तत्रैव परिवर्तते ॥३६
सात्त्विकश्चापि संसारो ब्रह्मादि परिकीर्तितः ।
पिशाचान्तः स विज्ञेयः स्वर्गस्थानेषु देहिनाम् ॥३७
ब्राह्मे तु केवलं सत्त्वं स्थावरे केवलं तमः ।
चतुर्दशानां स्थानानां मध्ये विष्टम्भकं रजः ।
मर्मसु छिद्यमानेषु वेदनार्त्तस्य देहिनः ॥३८
ततस्तु परमं ब्रह्म कथं विप्र स्मरिष्यति ।
संस्कारात् पूर्वधर्मस्य भावनाया प्रणोदितः ।
मानुष्यं भजते नित्यं तस्मान्नित्यं समाहितः ॥३९

इस प्रकार से संसार में मनुष्य से आदि लेकर स्थावर के अन्त तक तामस भाव जानना चाहिए । यह वहाँ ही परिवर्त्तित होता रहा करता है ॥३६॥ सात्त्विक भी संसार ब्रह्मा से आदि लेकर कहा गया है जो कि पिशाच के अन्त तक स्वर्ग स्थानों में देहधारियों का जानना चाहिए ॥३७॥ ब्राह्म में तो केवल सत्त्व ही होता है और स्थावर में केवल तमोगुण ही होता है । चौदह स्थानों के मध्य में रजोगुण विष्टम्भक होता है जो कि मर्म स्थानों के छिद्यमान होने पर वेदना से आर्त्त देहधारी को दुःखी करता है ॥३८॥ इसके पश्चात् विप्र परम ब्रह्म का कैसे स्मरण करेगा ? पूर्व धर्म के संस्कार से भावना से प्रेरित होता हुआ मानुष्य का सेवन किया करता है । इसलिये नित्य ही समाहित होना चाहिए ॥३९॥

॥ पाशुपत योग–महिमा ॥

चतुर्दशविधं ह्येतद् बुद्ध्वा संसारमण्डलम् ।
तथा समारभेत कर्म संसारभयपीडितः ॥१
स एव स्मरति संसारचक्रेण परिवर्तितः ।
तस्मात् सततयुक्तो ध्यानतत्परयुञ्जकः ।
तथा समारभेद्योगं यथात्मानं स पश्यति ॥२
एष आद्यं परं ज्योतिरेष सेतुरनुत्तमः ।
विवृद्धो ह्येष भूतानां न सम्भेदश्च शाश्वत ॥३

तदेनं सेतुमात्मानं अग्निं वै विश्वतोमुखम् ।
हृदिस्थं सर्वभूतानामुपासीत विधानवित् ॥४
हुत्वाष्टावाहुती सम्यक् शुचिस्तद्गतमानसः ।
वैश्वानरं हृदि यन्तु यथावदनुपूर्वशः ।
अपः पूर्वं सकृत् प्राश्य तुष्णीं भूत्वा उपासते । ५
प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुतिः स्मृता ।
अपानाय द्वितीया तु समानायेति चापरा ॥६
उदानाय चतुर्थीति व्यानायेति च पञ्चमी ।
स्वाहाकारं परं हुत्वा शेषं भुञ्जीत कामतः ।
अपः पुनः सकृत् प्राश्य त्वाचम्य हृदयं स्पृशेत् ॥७

श्रीवासुदेव ने कहा—इस प्रकार से चौदह प्रकार वाले इस संसार के मण्डल को समझ कर संसार के भय से पीड़ित होते हुए वैसे कर्मों के करने का आरम्भ करना चाहिए ॥१॥ इस संसार के चक्र से परिवर्तित होते रहने वाला फिर स्मरण किया करता है। इसलिये निरन्तर योग में युक्त होकर ध्यान में परायण युञ्जान होवे और इस तरह से योग का आरम्भ करना चाहिए कि फिर आत्मा का दर्शन प्राप्त कर लेवे ॥२॥ यही आद्य परम ज्योति है, यही सर्वोत्तम सेतु है, यह प्राणियों का विशेष रूप से वर्धक होता है और सम्भेद शाश्वत नहीं है ॥ ३ ॥ इसलिये आत्मा स्वरूप सेतु को, विश्वतोमुख अग्नि को जो कि समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित होता है विधान के ज्ञाता को उसकी उपासना करनी चाहिए ॥४॥ पवित्र होकर उसी में अपने मन को सन्निविष्ट करने वाले को भली-भाँति आठ आहुतियों से हवन करना चाहिए। जो वैश्वानर हृदय में स्थित है उसी के लिये यथावत् क्रम से आहुतियाँ देनी चाहिए। पूर्व में एकबार जल का पान कर फिर मौन होकर उपासना करे ॥५॥ प्रथम आहुति 'प्राणाय स्वाहा'— इससे बताई गई है। दूसरी आहुति 'अपानाय स्वाहा'—इससे देवे और तीसरी आहुति 'समानाय स्वाहा'—इससे देनी चाहिए ॥६॥ 'उदानाय स्वाहा'—इससे चौथी 'व्यानाय स्वाहा'—इससे पाँचवी आहुति देवे। स्वाहाकारों से पर को हवन कर शेष का इच्छा पूर्वक

भोजन करे । फिर एकबार जल का पान कर तीन बार आचमन करे और हृदय का स्पर्श करना चाहिए ॥७॥

प्राणानां ग्रन्थिरस्यात्मा रुद्रो ह्यात्मा विशान्तक ।
स रुद्रो ह्यात्मन प्राणा एवमाप्यायधेन स्वयम् ॥८
त्वं देवानामपि ज्येष्ठ उग्रस्त्वं चतुरः वृषा ।
मृत्युघ्नोऽसि त्वमस्माकं मद्गमेतद्धुत हुवि ॥६
एवं हृन्यमालभ्य पादांगुष्ठे तु दक्षिणे ।
विश्राव्य दक्षिणं पाणि नाभि च पाणिना स्पृशेत् ।
ततः पुनरुपस्पृश्य आत्मानमभिसंस्पृशेत् ॥१०
अक्षिणी नासिके श्रोत्रे हृदयं शिर एव च ।
द्वावाप्यामावुमावेतौ प्राणापानावुदाहृतौ ॥११
तयो प्राणोऽन्तरात्मास्य धाम्नोऽपानोऽन्न उच्यते ।
अन्न प्राणस्तथापान मृत्युर्जीवितमेव च ॥१२
अन्नं ब्रह्म च विज्ञेयं प्रजाना प्रसवस्तथा ।
अन्नाद्भूतानि जायन्ते स्थितिरन्नेन चेष्यते ।
वर्द्धन्ते तेन भूतानि तस्मादन्नमिहुच्यते ॥१३
तदेवाग्नौ हुत ह्यन्नं भुञ्जते देवदानवाः ।
गन्धर्वयक्षरक्षांसि पिशाचाश्चान्नमेव हि ॥१४

इसके अनन्तर जो प्राणानां ग्रन्थिरस्यात्मा रुद्रो ह्यात्मा विशान्तक । स रुद्रो ह्यात्मन प्राणा एवमाप्यायस्वयम्—अर्थात् प्राणों की जो ग्रन्थि है उसकी आत्मा विशान्तक रुद्र है । वही रुद्र आत्मा के प्राण हैं । इस प्रकार से स्वयं आप्यायित होना चाहिए ॥८॥ आप देवों में भी सबसे बड़े हैं आप उग्र हैं आप चतुर वृष हैं । आप हमारी मृत्यु के नाशक हैं । यह हुत हवि हमारे लिये कल्याणप्रद होवे ॥६॥ इस प्रकार हृदय का आलभन कर दक्षिण पाद के अंगूठे में विश्रावित कर फिर दक्षिण पाणि और नाभि का पाणि से स्पर्श करना चाहिए । इसके पश्चात् पुन आचमन कर अपने आपको स्पर्श करे ॥१०॥ तथा दोनों नेत्रों को नासिका दोनों कानों को हृदय को और शिर को स्पर्श करे ।

प्राण और अपान ये दोनों दो आत्माएँ कही गई हैं ॥११॥ उन दोनों का अन्तरात्मा प्राण होता है। इसका बाह्य आत्मा अपान है यह कहा जाता है। अन्न प्राण तथा अपान है, मृत्यु और जीवन है ॥१२॥ अन्न को ब्रह्म जानना चाहिए तथा अन्न को प्रजाओं का प्रभव समझना चाहिए। अन्न से प्राणी होते हैं और उनकी स्थिति भी अन्न से कही जाती है तथा भूतों की वृद्धि भी अन्न से ही होती है, इसी लिये अन्न को ऐसा कहा जाता है ॥१३॥ वही अन्न जब अग्नि में हुत होता है तो उस अन्न को देव और दानव खाते हैं। गन्धर्व, यक्ष और राक्षस तथा पिशाच भी अन्न का ही भोग करते हैं ॥१४॥

॥ शौचाचार लक्षण ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि शौचाचारस्य लक्षणम् ।
यदनुष्ठाय शुद्धात्मा प्रेत्य स्वर्गं हि चाप्नुयात् ॥१
उदकार्थी तु शौचानां मुनीनामुत्तमं पदम् ।
यस्तु तेष्वप्रमत्तः स्यात् स मुनिर्नावसीदति ॥२
मानावमानौ द्वावेतौ तावेवाहुर्विषामृते ।
अवमानं विषं तत्र मानन्त्वमृतमुच्यते ॥३
यस्तु तेष्वप्रमत्तः स्यात् स मुनिर्नावसीदति ।
गुरौ प्रियहिते युक्तः स तु सम्वत्सरं वसेत् ॥४
नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदा भवेत् ।
प्राप्यानुज्ञान्ततश्चैव ज्ञानागमनमुत्तमम् ।
अविरोधेन धर्मस्य विचरेत् पृथिवीमिमाम् ॥५
चक्षुःपूतं व्रजेन्मार्गं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाणीमिति धर्मानुशासनम् ॥६
आतिथ्यं श्राद्धयज्ञेषु न गच्छेद्योगवित् क्वचित् ।
एवं ह्यहिंसको योगी भवेदिति विचारणा ॥७

श्रीवायुदेव कहते हैं—इसके आगे शौचाचार का लक्षण बतलाया जाता है जिसको अनुष्ठित करने पर शुद्ध आत्मा वाला होकर मृत्यु के पश्चात् स्वर्गलोक की प्राप्ति किया करता है ॥१॥ उदक को चाहने वाला शुद्ध मुनियों का उत्तम

युक्त होता है। जो उत्तम प्रमाद से रहित होता है वह मुनि कभी भी अवसन्न नहीं होता है ॥२॥ मान और अपमान ये दोनों हैं और इन्हीं दोनों को अमृत तथा विष कहते हैं। उनमें जो अपमान है वही विष होता है और मान को अमृत कहा जाता है ॥३॥ जो उनमें अप्रमत्त होता है वह मुनि दुःखित नहीं होता है। जो गुरु के प्रिय काम और हितप्रद कर्म में युक्त होता है वह एक सम्वत्सर तक वास करता है ॥४॥ जो नियम निर्धारित हैं उनमें अप्रमत्त होता हुआ सर्वदा इन्हीं का पूर्ण पालक होना चाहिए। अनुज्ञा को प्राप्त करके इसके अनन्तर ज्ञान का आगमन उत्तम होता है। सदा धर्म का विरोध न करते हुए ही इस भूमण्डल पर विचरण करना चाहिए ॥५॥ नेत्रों से पवित्र करके अर्थात् आँखों से अच्छी तरह देख भाल के मार्ग में आगे चलना चाहिए तथा वस्त्र से पवित्र करके अर्थात् सर्वदा कपड़े से छानकर ही जल पीना चाहिए। सत्य से पूत करके अर्थात् सच्चाई से परिपूत की हुई वाणी को बोलना चाहिए यह धर्म [illegible] का अनुशासन अर्थात् आदेश है ॥६॥ योग का वेत्ता पुरुष श्राद्ध कर्मों में कहीं भी आतिथ्य ग्रहण न करे। इस प्रकार से योगी अहिंसक होता है यह विचारणा है ॥७॥

वह्नौ विधूमे व्यङ्गारे सर्वस्मिन् भुक्तवज्जने।
विचरेन्मतिमान् योगी न तु तेष्वेव नित्यशः ॥८
यथैवमवमन्यन्ते यथा परिभवन्ति च।
युक्तस्तथा चरेद्भैक्षं सतां धर्ममदूषयन् ॥९
भैक्षं चरेद्गृहस्थेषु यायावरगृहेषु च।
श्रेष्ठा तु प्रथमा चेयं वृत्तिरस्योपदिश्यते ॥१०
अत ऊर्ध्वं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्द्विजः।
श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु ॥११
अत ऊर्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टपतितेषु च।
भैक्षचर्या विवर्णेषु जघन्या वृत्तिरुच्यते ॥१२
भैक्षं यवागूं तक्रं वा पयो यावकमेव च।
फलमूलं विपक्वं वा पिण्याकं सक्तवोऽपि वा ॥१३

इत्येते वै मया प्रोक्ता योगिनां सिद्धिवर्धनाः ।
आहारास्तेषु सिद्धेषु श्रेष्ठं भैक्षमिति स्मृतम् ॥१४

वह्नि के धूम रहित तथा अङ्गार हीन होने पर तथा सब जनों के भुक्तवान् होने पर मतिमान् योगी को विचरण करना चाहिए किन्तु उन्हीं घरों में नित्य नहीं करे ॥८॥ जिस प्रकार से एवं अवमानित होते हैं और जिस तरह परिभूत होते हैं युक्त होकर इस प्रकार से सत्पुरुषों के धर्म को दूषित न करते हुए भिक्षा करनी चाहिए ॥९॥ योगी पुरुष को गृहस्थों में तथा यायावर गृहों में भिक्षाचरण करना चाहिए। इसके लिए यही वृत्ति परम श्रेष्ठ शास्त्र में उपदिष्ट की जाती है ॥१०॥ इसके आगे द्विज वो जो शालीन गृहस्थ हों उनमें, श्रद्धालुओं में दान्तों में, श्रोत्रियों में और महान् आत्माओं में भिक्षाचरण करना चाहिए ॥११॥ इसके बाद में आगे फिर जो दुष्ट तथा पतित न हों उनमें एवं विप्रों में भैक्षचर्या करे किन्तु यह जघन्य वृत्ति कही जाती है ॥१२॥ भिक्षा में यवागू, तक्र, पय, यावक फल मूल अथवा विपक्व पिण्याक अथवा जो भी शक्तिपूर्वक दिया गया हो ग्रहण करे ॥१३॥ इतने जो मैंने बताये हैं वे सब योगियों की सिद्धि के बढ़ाने वाले आहार होते हैं। उनके सिद्ध हो जाने पर परम श्रेष्ठ भैक्ष कहा गया है ॥१४॥

अब्बिन्दुं यः कुशाग्रेण मासे मासे समश्नुते ।
न्यायतो यस्तु भिक्षेत स पूर्वोक्ताद्विशिष्यते ॥१५
योगिनां चैव सर्वेषां श्रेष्ठं चान्द्रायणं स्मृतम् ।
एकं द्वे त्रीणि चत्वारि शक्तितो वा समाचरेत् ॥१६
अस्तेयं ब्रह्मचर्यञ्च अलोभस्त्याग एव च ।
व्रतानि चैव भिक्षूणामहिंसा परमार्थिता ॥१७
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम् ।
नित्यं स्वाध्याय इत्येते नियमाः परिकीर्तिताः ॥१८
बीजयोनिगुणवस्तुबन्धः कर्मभिरेव च ।
यथा द्विप इवारण्ये मनुष्याणां विधीयते ॥१९
प्राप्यते बाधितो देवाङ्कुशेनैव निवारितः ।

एवं ज्ञानेन शङ्कर दग्धबीजो ह्यकल्मषः ।
विमलत्वञ्च शान्तोऽसौ मुक्त इत्यभिधीयते ॥२०
वेदस्तुत्या सर्वयज्ञक्रियास्तु यज्ञं जप्यं ज्ञानिनामाहुरग्र्यम् ।
ज्ञानाद्ध्यानं सङ्गरागव्यपेतं तस्मिन् प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः ॥२१
दमः शमः सत्यमकल्मषत्वं मौनं च भूतेष्वखिलेष्वथार्जवम् ।
अतीन्द्रियज्ञानमिदं तथार्जवं प्राहुस्तथा ज्ञानविशुद्धसत्त्वाः ॥२२
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैकान्तरतिर्जितेन्द्रियः ।
समाप्नुयाद्योगमिमं महाधियो महर्षयश्चैवमनिन्दितामलाः ॥२३

जो कुशा के अग्रभाग से माह मास में जल की बूंदों का अशन किया करता है और जो न्याय से भिक्षा किया करता है यह पहिले कहे हुए से भी विशेषता से युक्त होता है ॥१५॥ और योगियों के लिये चान्द्रायण सबसे श्रेष्ठ कहा गया है। एक दो तीन और चार चान्द्रायण व्रतों को भक्तिपूर्वक आचरण करना चाहिए ॥१६॥ चोरी न करना ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करना लोभ न करना त्याग अहिंसा और परमार्थिता ये व्रत भिक्षुओं के लिये सर्वोत्तम होते हैं ॥१७॥ क्रोध न करना गुरु की सेवा शौच आहार का हल्कापन नित्य वेद का अध्ययन ये नियम कहे गये हैं ॥१८॥ बीज योनि वाला तथा गुणों के शरीर वाला कर्मों से बँधा हुआ है। वरुण हाथी की तरह मनुष्यों के लिये विधान किया जाता है ॥१९॥ अग्नि से जैसे निर्वापित होकर शीघ्र ही नाश किया जाता है इसी प्रकार से शुद्ध ज्ञान के द्वारा दग्ध बीज वाला कल्मष हीन विशुद्ध बन्धन वाला शान्त यह मुक्त कहा जाता है ॥२०॥ वेदों से स्तुति से समस्त यज्ञों की क्रिया यज्ञ में जप ज्ञानियों को सबसे श्रेष्ठ कहा गया है। ज्ञान से सङ्ग और राग से विरहित ध्यान कहा गया है। उसके पाने पर शाश्वत पद की प्राप्ति हो जाती है ॥२१॥ दम शम सत्य अकल्मषता मौन समस्त प्राणियों में शौचार्जव तथा आर्जव इनको ज्ञान से विशुद्ध सत्व वाले लोग अतीन्द्रिय ज्ञान कहते हैं ॥२२॥ समाहित अर्थात् पूर्ण सावधान ब्रह्म में तत्पर रहने वाले अप्रमादी पवित्र आत्मा में रति रखने वाले और इन्द्रियों को जीत लेने वाले महान् बुद्धि वाले अनिन्दित एवं अमल महर्षिगण इस योग को समाप्त करें ॥२३॥

॥ परमाश्रम प्राप्ति ॥

आश्रमत्रयमुत्सृज्य प्राप्तस्तु परमाश्रमम् ।
अतः संवत्सरस्यान्ते प्राप्य ज्ञानमनुत्तमम् ॥१
अनुज्ञाप्य गुरूंश्चैव विचरेत् पृथिवीमिमाम् ।
सारभूतमुपासीत ज्ञानं यज्ज्ञेयसाधकम् ॥२
इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयमिति यस्तु विचरेत् ।
अपि कल्पसहस्रायुर्नैव ज्ञेयमवाप्नुयात् ॥३
त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
पिधाय बुद्ध्या द्वाराणि ध्याने ह्येव मनो दधेत् ॥४
शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वने तथा ।
नदीनां पुलिने चैव नित्ययुक्तः सदा भवेत् ॥५
वाग्दण्डः कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः ।
यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी व्यवस्थितः ॥६
व्यवस्थितो ध्यानरतिर्जितेन्द्रियः शुभाशुभे हित्वा च कर्मणी उभे ।
इदं शरीरं प्रविमुच्य शाश्वतो न जायते म्रियते वा कदाचित् ॥७

श्रीवासुदेव ने कहा—तीन आश्रमों का त्याग कर परमाश्रम को प्राप्त करे और एक सम्वत्सर के अन्त में सर्वोत्तम ज्ञान की प्राप्ति कर लेवे ॥ १ ॥ श्री गुरुचरण की आज्ञा को प्राप्त करके इस भूमण्डल में विचरण करे और जो जानने के योग्य एवं साधक ज्ञान हो उसी ज्ञान की उपासना करनी चाहिए क्योंकि इस समय परम सार स्वरूप ज्ञान ही अत्यावश्यक होता है ॥२॥ यह ज्ञान है और यही जानने के योग्य है—इस प्रकार से युत होकर विचरण करना चाहिए। सहस्र कल्पों की आयु वाला होकर भी जो जानने के योग्य होता है उसे प्राप्त नहीं किया करता है ॥३। सब प्रकार के सङ्गों को त्याग देने वाला, क्रोध को जीत लेने वाला, हल्का तथा स्वल्प आहार करने वाला, अपनी इन्द्रियों को काबू में रखने वाला बुद्धि से द्वारों को ढाँककर इस प्रकार से मन को ध्यान में लगावे ॥४॥ जो बिल्कुल शून्य स्थान हों उनमें, अवकाशों में, गुफाओं में तथा वन में एवं नदियों के पुलिन में नित्य युक्त होते हुए सदा रहना चाहिए

॥५॥ वाणी का दण्ड कर्म का दण्ड और मन रूपी दण्ड ये तीन प्रकार के दण्ड कहे गये हैं। जिसके पास ये तीन दण्ड होते हैं वही त्रिदण्डी व्यवस्थित होता है ॥६॥ ध्यान में रति रखने वाला व्यवस्थित होकर तथा अपनी समस्त इन्द्रियों को जीत कर शुभ एवं अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों को त्याग कर इस शरीर को भी त्याग देता है वह आत्म की प्रकृति से चलने वाला फिर न उत्पन्न होता है और न कभी मृत्यु को ही प्राप्त होता है अर्थात् आवागमन से मुक्त होकर वह मोक्ष प को प्राप्त कर लेता है ॥७॥

॥ प्रायश्चित्त विधि ॥

अत ऊर्द्ध प्रवक्ष्यामि यतीनामिह निश्चयम् ।
प्रायश्चित्तानि तत्त्वेन या न्यकामकृतानि तु ।
अथ कामकृतेऽप्याहु सूक्ष्मधर्मविदोजना ॥१
पापञ्च त्रिविधं प्रोक्त वाङ् मनः कायसम्भवम् ।
सतत हि त्रिधा रात्रौ येनेदं बध्यते जगत् ॥२
न कर्माणि न चाप्येव त्रिपुरीतिपरा श्रुति ।
क्षणमेव प्रयोज्यन्तु आयुषस्तु विधारणात् ॥३
भवेद्धीरोऽप्रमत्तास्तु योगो हि परम बलम् ।
न हि योगात्परं किञ्चिन्नराणामिह दृश्यते ।
तस्माद्योग प्रशसन्ति धर्मयुक्ता मनीषिण ।४
अविद्या विद्यया तीर्त्वा प्राप्यैश्वर्यमनुत्तमम् ।
दृष्ट्वा परापर धीरा पर गच्छन्ति तत्पदम् ॥५
व्रतानि यानि भिक्षूणा तथैवोपव्रतानि च ।
एकैकापक्रमे तथा प्रायश्चित्त विधीयते ॥६
उपेत्य तु स्त्रिय कामात प्रायश्चित्त विनिर्दिशेत् ।
प्राणायामसमायुक्त कुर्यात्सान्तपन तथा ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—अब इसके आगे यतियों के निश्चय को बतलाते हैं और प्रायश्चित्तों की व्यवस्था बतलाते हैं जो कि तात्त्विक रूप से बिना इच्छा के किये गये हैं। इसके अब उन सूक्ष्म धर्म के ज्ञाता मनुष्य कामकृत ~ भी कहते

है ॥ १ ॥ इस लोक मे पाप तीन प्रकार का बतलाया गया है जो कि वाणी, मन और शरीर से उत्पन्न होता है । सर्वत्र रात-दिन जिस पाप से यह समस्त संसार बाधित होता रहता है ॥ २ ॥ न तो यहाँ जगत् मे यह और न कर्म ही कोई भी नहीं रहता है, यह पर-श्रुति है । आयु के विशेष रूप से धारण करने से एक क्षणमात्र ही का प्रयोग करे ॥ ३ ॥ धीर एवं अप्रमत्त होना चाहिए । योग सबमे प्रबल बल होता है । इस संसार मे योग से अधिक मनुष्यो का हित साधक अन्य कुछ भी दिखाई नही देता है । इसी लिये धर्म के तत्व के जानने मनीषीगण योग की ही अत्यधिक प्रशंसा किया करते हैं ॥ ४ ॥ विद्या से अर्थात् ज्ञान से अविद्या के अन्धकार को पार करके तथा सर्वोत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करके धीर पुरुष परात्पर को देखकर उस परम पद को प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥ जो यतियो के लिये व्रत तथा उपव्रत बताये गये है उनमे एक एक के अतिक्रम करने मे प्रायश्चित्त का विधान होता है ॥ ६ ॥ स्वेच्छया स्त्री का उपगमन करे तो प्रायश्चित्त करना चाहिए । प्राणायाम से समायुक्त होते हुए सान्तपन व्रत करना चाहिए ॥ ७ ॥

तत्श्चरति निर्द्देश कृच्छस्यान्ते समाहित ।
पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रित ।
न नर्मयुक्त वचन हिनस्तीति मनीषिण ॥८
तथापि च न कर्त्तव्य प्रसङ्गो ह्येष दारुण ।
अहोरात्राधिक कश्चिन्नास्त्यधर्म इति श्रुति ॥९
हिंसा ह्येषा परा सृष्टा दैवतैर्मुनिभिस्तथा ।
यदेतद्द्रविण नाम प्राणा ह्येते बहिश्चरा ।
स तस्य हरति प्राणान् यो यस्य हरते धनम् ॥१०
एव कृत्वा स दुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताच्च्युत ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायण व्रतम् ॥११॥
विधिना शास्त्रदृष्टेन सवत्सरमिति श्रुति ।
तत सवत्सरस्यान्ते भूय प्रक्षीणकल्मष ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रित ॥१२

अहिंसा सर्वभूतानां कर्मणा मनसा गिरा ।
अकामादपि हिंसेत यदि भिक्षुः पशून् मृगान् ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत चान्द्रायणमथापि वा ॥१३
स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि ।
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश ॥१४

इसके अनन्तर कृच्छ्र के अन्त में निर्देश से चरण करना चाहिए और पुनः समाहित होकर रहना चाहिए। भिक्षु को पुनः अपने आश्रम में आकर सर्वदा स्थिर होते हुए रहना चाहिए। मनीषी लोग कहते हैं कि कभी मनयुक्त वर्णन के द्वारा हिंसा न करे ॥८॥ लोभी यह पावन प्रसङ्ग कभी नहीं करना चाहिए। अहो स्तेय से अधिक कोई अधर्म नहीं है—ऐसी श्रुति है। ९॥ देवताओं तथा मुनियों ने यह सबसे बड़ा हिंसा बताई है। जो यह द्रविण है वह भी प्राण के ही समान है क्योंकि प्राण बहिश्चर हो जाया करते हैं। वह उसके प्राणों का ही हरण किया करता है जो कि उसका धन हरण करता है अर्थात् यहाँ प्राण और धन में कुछ भी अन्तर नहीं होता है ॥१०॥ जो कोई भी ऐसा करता है वह परम दुष्ट होता है आचरण से भ्रष्ट तथा व्रत से च्युत हो जाया करता है। उसे फिर निर्वेद प्राप्त करते हुए चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥११॥ शास्त्र में बताई हुई विधि से एक वर्ष पर्यन्त ऐसा करे ऐसी श्रुति है। फिर संवत्सर के अन्त में प्रक्षीण कल्मष वाला होता है। इसके बाद में फिर निर्वेद को प्राप्त कर भिक्षु को अतन्द्रित होते हुए चरण करना चाहिए ॥१२॥ समस्त प्राणियों की हिंसा न कर और यह कर्म मन तथा वाणी किसी के भी द्वारा नहीं करनी चाहिए। यदि बिना इच्छा के भी भिक्षु पशु तथा मृग की हिंसा कर दे तो उसे उस पाप की निवृत्ति के लिये प्रायश्चित्त करना ही चाहिए और वह कृच्छ्र अतिकृच्छ्र तथा चान्द्रायण व्रत है ॥१३॥ यदि कोई यति किसी स्त्री को देख कर इन्द्रियों की दुर्बलता के कारण स्कन्दन करे तो उसे उस पाप की विशुद्धि के लिये सोलह प्राणायाम अवश्य ही करने चाहिए ॥१४॥

दिवा स्कन्नस्य विप्रस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ।
त्रिरात्रमुपवासश्च प्राणायामशतं तथा ॥१५

रात्रौ स्कन्न शुचि स्नातोऽथैव तु धारणा ।
प्राणायामेन शुद्धात्मा विरजा जायते द्विज ॥१६
एकान्न मधु मांस वा ह्यामश्राद्ध तथैव च ।
अभोज्यानि यतीनाञ्च प्रत्यक्षलवणानि च ॥१७
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्त विधीयते ।
प्राजापत्येन कृच्छ्रेण तत पापात् प्रमुच्यते ॥१८
व्यतिक्रमाच्च ये केचिद्वाङ्मन कायसम्भवम् ।
सद्भि सह विनिश्चित्य यद्‌युक्तस्तत्समाचरेत् ॥१९
विशुद्धबुद्धि समलोष्टकाञ्चन समस्त भूतेषु चरन् स माहित. ।
स्थान ध्रुव शाश्वतमव्यय सता पर स गत्वा न पुनर्हि जायते २०

दिन मे जो यति स्कन्न होता है उसके प्रायश्चित्त का विधान किया जाता है कि उसे तीन रात्रि तक उपवास करना चाहिए ॥१५॥ जो रात्रि मे स्कन्न हो अर्थात् स्खलित हो तो उसे शुद्धि स्नान करके केवल बारह ही प्राणायाम कर लेने चाहिए । इन द्वादश प्राणायामो से वह द्विज निष्पाप हो जाता है ॥१६॥ एक ही अन्न, मधु, मांस, आमश्राद्ध, प्रत्यक्ष लवण मे यतियो के अभोज्य बताये गये हैं इनमे किसी भी एक का अतिक्रमण करने मे प्रायश्चित्त का विधान होता है । प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत करने से इस पाप से प्रमुक्त होता है ॥१७–१८॥ जो कोई वाणी, मन और शरीर से उत्पन्न होने वाले पाप का व्यतिक्रम करे तो सत्पुरुषो के साथ विशेष रूप से निश्चय करके उसका प्रायश्चित्त जैसा भी वे बतावें करना चाहिए ॥१९॥ यति को सर्वदा विशुद्ध बुद्धि वाला और सुवर्ण तथा मिट्टी के ढेले को एक समान दृष्टि से देखते हुए परम समाहित होकर समस्त प्राणियों मे विचरण करना चाहिए । ऐसा यति शाश्वत ध्रुव और अव्यय और सत्पुरुषो का परम स्थान प्राप्त करता है और फिर इस जगत् मे जन्म ग्रहण नही करता है ॥२०॥

॥ अरिष्ट वर्णन ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि अरिष्टानि निबोधत ।
येन ज्ञानविशेषेण मृत्यु पश्यति चात्मन ॥१

अरुन्धतीं ध्रुवं चैव सोमच्छायां महापथम् ।
यो न पश्येत्स नो जीवेन्नरः संवत्सरात्परम् ॥२
अरश्मिबिम्बमादित्यं रश्मिवन्तं च पावकम्
यः पश्येन्न च जीवेत मासादेकादशात्परम् ॥३॥
वमेन्मूत्रं करीषं वा सुवर्णं रजतं तथा ।
प्रत्यक्षमथ वा स्वप्ने दशमासान् स जीवति ॥४
अग्रतः पृष्ठतो वापि खण्डं यस्य पदम्भवेत् ।
पांशुले कर्दमे वापि सप्तमासान् स जीवति ॥५
काकः कपोतो गृध्रो वा निलीयेद्यस्य मूर्द्धनि ।
क्रव्यादो वा खगः कश्चित् षण्मासान्नातिवर्तते ॥६
हन्येत वायसपङ्क्तीभिः पांशुवर्षेण वा पुनः ।
छायां वा विकृतां पश्येच्चतुः पञ्च स जीवति ॥७

श्रीवायुदेव ने कहा—अब आगे अरिष्टों को बताते हैं उन्हें जान लो जिस ज्ञान विशेष से अपनी मृत्यु का ज्ञान समझता है ॥१॥ जो अरुन्धती ध्रुव सोम की छाया और महापथ को नहीं देखता है वह मनुष्य एक वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहा करता है ॥२॥ जो मनुष्य बिना रश्मियों वाले सूर्य को तथा रश्मियों से युक्त पावक को देखता है वह ग्यारह मास से अधिक जीवित नहीं रहा करता है ॥३॥ जो मनुष्य मूत्र करीष सुवर्ण अथवा रजत का वमन प्रत्यक्ष या स्वप्न में करता है वह दस मास तक जीवित रहता है ॥४॥ रतीले स्थान में अथवा कीच में आगे या पीछे से जिसके पद खण्डित हों सात मास तक जीवन धारण किया करता है ॥५॥ काक कपोत अथवा गृध्र जिसके मस्तक पर निलीन हो जावे अथवा क्रव्याद या पक्षी बैठ जावे वह मनुष्य छः मास से अधिक जीवित नहीं रहता है ॥६॥ कौओं की पंक्तियों से अथवा धूलि की वर्षा से वध्य हो जावे अथवा विकृत छाया को देखे वह मनुष्य चार या पाँच मास तक ही जीवित रहता है ॥७॥

अनभ्रे विद्युतं पश्येद्दक्षिणां दिशमाश्रिताम् ।
उदकेऽन्द्रधनुर्वापि त्रयो द्वौ वा स जीवति ॥८

अप्सु वा यदि वाऽऽदर्शे आत्मानं यो न पश्यति ।
अशिरस्कं तथात्मानं मासादूर्ध्वं न जीवति ॥९
शवगन्धि भवेद्गात्रं वसागन्धि च यस्य वा ।
मृत्युर्ह्युपस्थितस्तस्य अर्द्धमासं न जीवति ॥१०
संक्षिप्तो मारुतो यस्य मर्मस्थानानि कृन्तति ।
अद्भिः स्पृष्टो न हृष्येच्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥११
ऋक्षवानरयुक्तेन रथेनाशान्तु दक्षिणाम् ।
गायन्नथ व्रजेत् स्वप्ने विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥१२
कृष्णाम्बरधरा श्यामा गायन्ती वाथ चाङ्गना ।
यन्नयेद्दक्षिणमाशां स्वप्ने सोऽपि न जीवति ॥१३
छिद्रं वासश्च कृष्णं च स्वप्ने यो बिभृयान्नरः ।
भग्नं वा श्रवणं दृष्ट्वा विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥१४

मेघाडम्बर के बिना ही जो दक्षिण दिशा में स्थित बिजली को देखता है अथवा उदक में इन्द्र धनुष को देखा करता है वह तीन या दो मास तक ही जीवित रहा करता है ॥८॥ जल में अथवा दर्पण में जो अपने आप को नहीं देखता है अथवा बिना शिर वाला अपने आपको देखता है वह मनुष्य एक मास से अधिक जीवित नहीं रहता है ॥९॥ जिसका शरीर शव की गन्ध के समान गन्धवाला हो जाये अथवा वसा (चर्बी) की गन्ध वाला हो जावे उस की मौत उपस्थित ही समझ लेना चाहिए। वह केवल १५ दिन तक ही जीवित रहा करता है ॥१०॥ संक्षिप्त वायु जिसके मर्मस्थानों को कृन्तित किया करता है और जल से स्पर्श हो जाने पर प्रसन्नता का अनुभव नहीं करता है उस मनुष्य की मृत्यु उपस्थित ही समझ लेना चाहिए ॥११॥ जो रीछ या बन्दरों से युक्त रथ से गान करता हुआ दक्षिण दिशा में स्वप्न में जावे उसकी मौत उपस्थित ही जान लेनी चाहिए ॥१२॥ कृष्ण वर्ण के वस्त्रों को धारण करने वाली श्यामा अथवा गाती हुई अङ्गना स्वप्न में जो दक्षिण दिशा को ले जावे तो वह जीवित नहीं रहता है ॥१३॥ जो स्वप्न में छिद्र और कृष्ण वस्त्र को धारण करता है अथवा भग्न श्रवण को देखे उसकी मृत्यु उपस्थित ही जान लेनी चाहिए ॥१४॥

आमस्तकनिमग्नस्तु निमज्जेत्पङ्कसागरे ।
दृष्ट्वा तु तादृशं स्वप्नं सद्य एव न जीवति ॥१५

भस्माङ्गाराश्च केशाश्च नदी शुष्का भुजङ्गमान् ।
पश्येद्यो दशरात्रन्तु न स जीवेत तादृशः ॥१६

कृष्णैश्च विकटैश्चैव पुरुषैरुद्यतायुधैः ।
पाषाणैस्ताडयेत स्वप्ने यः सद्यो न स जीवति ॥१७

सूर्योदये प्रत्युषसि प्रत्यक्षं यस्य वै शिवा ।
क्रोशन्ती सम्मुखाभ्येति स गतायुर्भवेन्नरः ॥१८

यस्य वै स्नातमात्रस्य हृदयं पीड्यते भृशम् ।
जायते दन्तहर्षश्च स गतायुर्न संशयः ॥१९

भूयो भूयः श्वसेद्यस्तु रात्रौ वा यदि वा दिवा ।
दीपगन्धं नो वेत्ति विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥२०

रात्रौ चेन्द्रायुधं पश्येद्दिवा नक्षत्रमण्डलम् ।
परनेत्रेषु चात्मानं न पश्येन्न स जीवति ॥२१

जो नीचे से मस्तक पर्यन्त पङ्क सागर में निमग्न हो जावे अथवा इस प्रकार का स्वप्न देखे वह तुरन्त ही शेष जीवन वाला हो जाता है ॥१५॥ जो कोई भस्म, अङ्गार, केश, नदी जो सूखी हुई हो और सर्पों को दस रात्रि तक स्वप्न में बराबर देखा करता है ऐसा आदमी जीवित नहीं रहा करता है ॥१६॥ कृष्ण वर्ण वाले और विकट आकार वाले तथा उद्यत हथियारों वाले पुरुषों के द्वारा जो स्वप्न में पाषाणों से ताड़ित किया जाता हो वह मनुष्य तुरन्त ही मृत्युगत हो जाता है और जीवित नहीं रहा करता है ॥१७॥ प्रातः काल में सूर्य के उदय समय में शिवा की माया रोती हुई मुख के सामने से आती है वह मनुष्य गतायु होता है ॥१८॥ जिस पुरुष के केवल स्नान करने ही से हृदय में बहुत ही अधिक पीड़ा होती है और दन्तहर्ष होता है वह मनुष्य गतायु होता है अर्थात् यह समझ लेना चाहिए कि अब उसकी आयु समाप्त हो चुकी है ॥१९॥ जो बार-बार दिन में अथवा रात में श्वास लिया करता है और दीप गन्ध को नहीं जानता है उसकी मृत्यु उपस्थित ही समझ लेनी चाहिए ॥२०॥ जो मनुष्य

रात्रि में तो देखता हो और दिन में नक्षत्र मण्डल को देखता हो और दूसरे के नेत्रों में अपने आप को नहीं देखता है वह जीवित नहीं रहा करता है ॥२१॥

नेत्रमेकं भवेद्यस्य कर्णौ स्थानाच्च भ्रश्यतः ।
नासा च वक्रा भवति स ज्ञेयो गतजीवितः ॥२२
यस्य कृष्णा खरा जिह्वा पङ्कभासं च वै मुखम् ।
गण्डे चिपिटके रक्ते तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥२३
मुक्तकेशो हसञ्चैव गायन् नृत्यंश्च यो नरः ।
याम्याशाभिमुखो गच्छेत्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥२४
यस्य स्वेदसमुद्भूता श्वेतसर्षपसन्निभाः ।
स्वेदा भवन्ति ह्यसकृत्तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥२५
उष्ट्रा वा रासभा वापि युक्ताः स्वप्ने रथेऽशुभाः ।
यस्य सोऽपि न जीवेत दक्षिणाभिमुखो गतः ॥२६
द्वे चात्र परमेऽरिष्टे एतद्रूपं परं भवेत् ।
घोषं न शृणुयात् कर्णे ज्योतिर्नेत्रे न पश्यति ॥२७
श्वभ्रे यो निपतेत् स्वप्ने द्वारं चास्य न विद्यते ।
न चोत्तिष्ठति यः श्वभ्रात्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥२८

जिसके एक नेत्र में स्राव होता हो और कान दोनों अपने स्थान से भ्रष्ट हो गये हों तथा नाक टेढ़ी हो गई हो उस मनुष्य को गतजीवित समझ लेना चाहिये ॥ २२ ॥ जिसकी जिह्वा काली और खरखरी हो गई हो तथा मुखपङ्क की कान्ति के समान कान्ति वाला हो गया हो एवं गण्ड चिपिटक और रक्त हो गये हों उस मनुष्य की उपस्थिति नहीं समझ लेनी चाहिये ॥ २३ ॥ खुले हुये केशों वाला, हँसता हुआ, गाता हुआ और नाचता हुआ जो मनुष्य दक्षिण दिशा की ओर मुख किये हुये जाता है उसके जीवन का अन्त ही समझ लेना चाहिये ॥ २४ ॥ जिस मनुष्य के पसीने में उत्पन्न होने वाली श्वेत सरसों के सदृश श्वेत कण बार बार होते हैं उसकी मृत्यु उपस्थित ही जान लेनी चाहिये ॥२५॥ जिस मनुष्य के रथ में ऊँट अथवा गधे जुते हुये हों और स्वप्न में दक्षिण की ओर मुख किये हुये जाता हो वह मनुष्य भी जीवित नहीं रहा करता है ॥२६॥

यहाँ पर वे जो परम अरिष्ट होते हैं और यह अन्न भी पर होता है। कानों में अग्नि न सुनाई देती हो और नेत्र से ज्योति नहीं देखता हो ॥ २७ ॥ स्वप्न में जो स्वप्न में निपतित होवे और इसका द्वार न होवे और जो स्वप्न में नहीं उठता है उसके जीवन का बिल्कुल अन्त समझ लेना चाहिये ॥ २८ ॥

ऊर्ध्वा च दृष्टिर्न च सम्प्रतिष्ठा रक्ता पुनः सम्परिवर्तमाना ।
मुखस्य चोष्मा सुषिरा च नाभिरत्युष्णमूत्रो विषमस्थ एव ॥२९
दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रत्यक्षं योऽभिहन्यते ।
स पश्येदथ हन्तारं स हतस्तु न जीवति ॥३
अग्निप्रवेशं कुरुते स्वप्नान्ते यस्तु मानवः ।
स्मृतिं नोपलभेच्चापि सदन्तं तस्य जीवितम् ॥३१
यस्तु प्रावरणं शुक्लं स्वकं पश्यति मानवः ।
रक्तं कृष्णमपि स्वप्ने तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ ३२
अरिष्टसूचिते देहे तस्मिन् काल उपागते ।
त्यक्त्वा भयविषादं च उद्गच्छेद्बुद्धिमान्नरः ॥३३
प्राचीं वा यदि वोदीचीं दिशं निष्क्रम्य च शुचिः ।
समेऽतिस्थावरे देशे विविक्ते जनवर्जिते ॥३४
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा स्वस्थः स्वाचान्त एव च ।
स्वस्तिकोपनिविष्टश्च नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
समकायशिरोग्रीवं धारयेन्नावलोकयेत् ॥३५

जिसकी दृष्टि ऊर्ध्व हो तथा सम्प्रतिष्ठित रक्त एवं फिर सम्परिवर्तमान न हो मुख की ऊष्मा (गर्मी) तथा नाभि सुषिर हो एवं मूत्र अत्यधिक उष्ण हो ऐसा व्यक्ति विषम स्थिति में ही रहने वाला होता है ॥ २९ ॥ दिन में अथवा रात्रि में जो प्रत्यक्ष रूप से हन्यमान होता है उस मारने वाले को देखे जो हत हुआ है वह जीवित नहीं रहता है ॥ ३ ॥ जो मनुष्य स्वप्न के अन्त में अग्नि में प्रवेश किया करता है और स्मृति को उपलब्ध नहीं किया करता है उस मनुष्य के जीवन का अन्त ही समझ लेना चाहिये ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य अपना प्रावरण अर्थात् आच्छादन शुक्ल देखता है तथा स्वप्न में रक्त और कृष्ण

देखता है उसकी मृत्यु उपस्थित ही जाननी चाहिये ॥ ३२ ॥ अरिष्ट से सूचित देह में इस काल के उपस्थित होने पर भय और विषाद का त्याग करके बुद्धिमान मनुष्य को उद्गमन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ पूर्व या उत्तर दिशा में बाहिर निकलकर पवित्र हो जावे और अन्य स्थावर जङ्गम देश में जो कि एकान्त एवं जनों से विवर्जित हो, वहाँ पर उत्तर या पूर्व की ओर मुख वाला होकर स्वस्थता से बैठ जावे तथा आचमन करे। स्वस्तिक पर उपविष्ट होते हुये महेश्वर को प्रणाम करे। अपने पूरे शरीर को, ग्रीवा को तथा मस्तक को समस्थिति में रखे। इधर उधर किसी भी ओर नहीं देखना चाहिये ॥ ३४—३५ ॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
प्रागुदक् प्रवणे देशे तस्माद्युञ्जीत योगवित् ॥३६
प्राणे च रमते नित्यं चक्षुषो स्पर्शने तथा ।
श्रोत्रे मनसि बुद्धौ च तथा वक्षसि धारयेत् ॥३७
कालधर्मञ्च विज्ञाय समूहञ्चैव सर्वशः ।
द्वादशाध्यात्ममित्येवं योगधारणमुच्यते ॥३८
शतमष्ट शतं वापि धारणा मूर्ध्नि धारयेत् ।
न तस्य धारणायोगाद्वायुः सर्वं प्रवर्त्तते ॥३९
ततस्त्वापूरयेद्देहमोङ्कारेण समाहित ।
अथोङ्कारमयो योगी न क्षरेत्त्वक्षरी भवेत् ॥४०

जिस प्रकार निर्वात स्थान में रखा हुआ दीपक बिल्कुल भी उसकी ज्योति नहीं हिलती है यही उपमा यहाँ पर बताई गई है। प्राक्, उदक्, प्रवण देश में योग के ज्ञाता व्यक्ति को अभ्यास करना चाहिये ॥ ३६ ॥ रमण करने वाले प्राण में, नेत्रों में, स्पर्शन अर्थात् त्वगिन्द्रिय में, श्रोत्र में, मन में, बुद्धि में तथा वक्ष स्थल में धारण करे ॥ ३७ ॥ काल के धर्म को और सब ओर के समूह को जानकर द्वादश अध्यात्म है यही योग का धारण करना कहा जाता है ॥ ३८ ॥ सौ अथवा आठ सौ धारणा को मस्तक में धारण करना चाहिये। उसकी धारणायोगाद्वायु सब प्रवृत्त नहीं होती है ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर समाहित होकर ओङ्कार से देह को आपूरित करना चाहिये। इसके अनन्तर ओङ्कारमय योगी क्षरित न होते हुये अक्षरी हो जाता है ॥ ४० ॥

॥ ओङ्कार प्राप्ति लक्षण ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि ओङ्कार प्राप्ति लक्षणम् ।
एष त्रिमात्रो विज्ञेयो व्यञ्जनं चात्र सस्वरम् ॥१
प्रथमा वैद्युती मात्रा द्वितीया तामसी स्मृता ।
तृतीया निर्गुणीं विद्यान्मात्रामक्षरगामिनीम् ॥२
गान्धर्वीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसम्भवा ।
पिपीलिकासमस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते ॥३
तथा प्रयुक्तमोङ्कारं प्रतिनिर्वाति मूर्द्धनि ।
तथोङ्कारमयो योगी ह्यक्षरे त्वक्षरो भवेत् ॥४
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥५
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म गुहायां निहितं पदम् ।
ओमित्येतत्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नयः ।
विष्णुक्रमास्त्रयस्त्वेते ऋक्सामानि यजूंषि च ॥६
मात्राश्चार्द्धं च तिस्रस्तु विज्ञेयाः परमार्थतः ।
तत्र युक्तस्तु यो योगी तस्य सालोक्यतां व्रजेत् ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—इसके आगे ओङ्कार की प्राप्ति का लक्षण बतलाते हैं। यह ओङ्कार तीन मात्रा वाला समझ लेना चाहिये इसमें व्यञ्जन जो होता है वह युक्त होता है ॥ १ ॥ प्रथमा मात्रा वद्युती होती है द्वितीया मात्रा तामसी कही गई है और तृतीया मात्रा निर्गुणी होती है। इस प्रकार से अक्षरों में गमन करने वाली मात्रा को जाननी चाहिये ॥ २ ॥ गान्धार नामक स्वर से समुत्पन्न जो मात्रा है वह गान्धर्वी इस नाम से कही जाती है। पिपीलिका के समान स्पर्श करने वाली मूर्द्धा में प्रयुक्त की हुई दिखाई देती है ॥ ३ ॥ इस प्रकार से प्रयोग में लाया हुआ ओङ्कार मूर्द्धा में प्रतिनिर्वाति होता है। इस तरह से ओङ्कार से परिपूर्ण योगी अक्षर में अक्षरी हो जाता है ॥ ४ ॥ प्रणव धनुष है आत्मा शर है और ब्रह्म उसका लक्ष्य स्थान कहा होता है। यदि अप्रमत्त होते हुये वध्य हो तो शर की भाँति वह तन्मय हो जाता है ॥ ५ ॥ ओम् यह

एकाक्षर वाला मन्त्र पद गुहा में निहित है। 'ओम्'— यह तीन वेद हैं—तीन लोक हैं और तीन अग्नि हैं। ये तीनों ऋक् साम और यजु विष्णु के क्रम हैं ।। ६ ।। यहाँ चार मात्राएँ हैं जो कि परमार्थ रूप से समझ लेनी चाहिये। उनमें युक्त जो योगी है वह सालोक्यता को जाता है ।। ७ ।।

अकारस्त्वक्षरो ज्ञेय उकार स्वरित स्मृत ।
मकारस्तु प्लुतो ज्ञेयस्त्रिमात्र इति संज्ञित ।।८
अकारस्त्वथ भूर्लोक उकारो भुवरुच्यते ।
सव्यञ्जनो मकारश्च स्वर्लोकश्च विधीयते ।।९
ओङ्कारस्तु त्रयो लोका शिरस्तस्य त्रिविष्टपम् ।
भुवनान्तश्च तत्सर्वं ब्राह्म तत्पदमुच्यते ।।१०
मात्रापद रुद्रलोको ह्यमात्रस्तु शिव पदम् ।
एवन्ध्यानविशेषेण तत्पद समुपास्यते ।।११
तस्माद्ध्यानरतिर्नित्यममात्र हि तदक्षरम् ।
उपास्य हि प्रयत्नेन शाश्वत पदमिच्छता ।।१२
ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा ततो दीर्घा ह्यनन्तरम् ।
तत प्लुतवती चैव तृतीया उपदिश्यते ।।१३
एतास्तु मात्रा विज्ञेया यथावदनुपूर्वश ।
यावच्चैव तु शक्यन्ते धार्यन्ते तावदेव हि ।।१४

इस मे अकार को अक्षर समझना चाहिये और उकार स्वरित कहा गया है। मकार प्लुत जानना चाहिये। इस प्रकार से यह तीन मात्रा वाला संज्ञित होता है ।। ८ ।। इसमें जो अकार है वह भूलोक है और उकार भुवर्लोक कहा जाता है। व्यञ्जन के साथ मकार जो है वह स्वर्लोक होता है ।। ९ ।। ओङ्कार जो है वह तीन लोक हैं उसका शिर त्रिविष्टप होता है। यह सब भुवनान्त होता है। ब्राह्म उसका पद कहा जाता है ।। १० ।। मात्रा पद रुद्र लोक है और जो अमात्र है वह शिव-पद होता है। इस प्रकार से ध्यान की विशेषता से उसके पद की समुपासना करते हैं ।। ११ ।। इससे ध्यान मे रति रखने वाला होवे और नित्य मात्रारहित उस अक्षर की शाश्वत पद की इच्छा रखने वाले के द्वारा

प्रयत्न के साथ उपासना करनी चाहिये ॥ १३ ॥ प्रथमा जो मात्रा है वह ह्रस्व होती है इसके पश्चात् दीर्घ मात्रा होती है और उसके आगे फिर तृतीया जो मात्रा होती है वह प्लुता होती है अर्थात् प्लुत वाली होती है ॥ १४ ॥ ये यथा विधि अनुपूर्वी के क्रम से मात्राएँ जान लेनी चाहिये। जितनी ही हो सके उतनी ही धारण की जाती है ॥ १४ ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धि ध्यायन्नात्मनि यः सदा ।
अर्द्धमात्रमपि चेच्छृणुयात्फलमाप्नुयात् ॥१५
मासे मासेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ।
न स तत् प्राप्नुयात् पुण्यं मात्रया यदवाप्नुयात् ॥१६
बिन्दुं यः कुशाग्रेण मासे मासे पिबेन्नरः ।
संवत्सरशतं पूर्णं मात्रया तदवाप्नुयात् ॥१७
इष्टापूर्तस्य यज्ञस्य सत्यवाक्ये च यत् फलम् ।
अमावस्यां च मासस्य मात्रया तदवाप्नुयात् ॥१८
सङ्ग्रामे युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
यदश्वमेधस्य फलं दृष्टं मात्रया तदवाप्नुयात् ॥१९
न तथा तपसोग्रेण न यज्ञैर्भूरिदक्षिणैः ।
यत् फलं प्राप्नुयात् सम्यक् मात्रया तदवाप्नुयात् ॥२०
यत् ह्ययं शोऽर्द्धमात्रो प्लुतो नामोपदिश्यते ।
एषा एव भवेत् कार्या गृहस्थानान्तु योगिनाम् ॥२१
एषा चैव विशेषेण ऐश्वर्य्यं समलक्षणा ।
योगिनान्तु विशेषेण ह्यैश्वर्ये ह्यष्टलक्षणे ।
अणिमाद्यैति विज्ञेया तस्मात् युञ्जीत तां द्विज ॥२२

जो सदा आत्मा में इन्द्रियों को मन को और बुद्धि को ध्यान करते हुए यदि यहाँ पर आधा मात्रा वाले का भी श्रवण करे तो फल को प्राप्त किया करता है ॥ १५ ॥ मास मास में अर्थात् प्रत्येक मास में जो सौ वर्ष तक अश्वमेधों का यजन किया करता है वह भी उस पुण्य की प्राप्ति नहीं करता है जो मात्रा के द्वारा पुण्य प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ जो कुशा के अग्रभाग से जल की बिन्दुओं

को मास-मास में पीता है और बराबर सौ वर्ष तक पीता रहता है उसका जो पुण्य होता है वह पुण्य मात्रा के द्वारा प्राप्त किया करता है ॥ १७ ॥ इष्टापूर्त्त-यज्ञ का सत्यवाक्य में जो फल होता है तथा माँस के न खाने में जो पुण्य होता है वह पुण्य मात्रा के द्वारा हो जाता है ॥ १८ ॥ अपने स्वामी के लिये युद्ध करते हुए शूरवीरों का जो कि पुनः जगत् में अनिवर्त्ती होते हैं उनका जो पुण्य-फल होता है वही मात्रा से प्राप्त किया जाता है ॥ १९ ॥ अत्यन्त उग्र तप के द्वारा और भूरि दक्षिणा वाले यज्ञों के द्वारा जो फल प्राप्त होता है वही फल भली भाँति मात्रा के द्वारा प्राप्त किया करते हैं ॥ २० ॥ वहाँ पर जो कारी मात्रा वाला पुनः इस नाम से कहा जाता है यही गृहस्थ योगियों को करनी चाहिये ॥ २१ ॥ यही मात्रा विशेष रूप से ऐश्वर्य के समान लक्षण वाली होती है और आठ लक्षण वाले ऐश्वर्य में योगियों को विशेष रूप से होती है। अणि-मादि ये जाननी चाहिये। इनसे द्विज को उसका मुञ्जन करना चाहिये ॥२२॥

एवं हि योगी संयुक्तः शुचिर्दान्तो जितेन्द्रियः ।
आत्मानं विन्दते यस्तु स सर्वं विन्दते द्विजः ॥२३
ऋचो यजूंषि सामानि वेदोपनिषदस्तथा ।
योगज्ञानादवाप्नोति ब्राह्मणो ध्यानचिन्तकः ॥२४
सर्वभूतलयो भूत्वा अभूतः स तु जायते ।
योगी सङ्क्रमणं कृत्वा याति वै शाश्वतं पदम् ॥२५
अपि चात्र चतुर्हस्ता ध्यायमानश्चतुर्मुखीम् ।
प्रकृतिं विश्वरूपाख्यां दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥२६

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाम् ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ।
अष्टाक्षरां षोडशपाणिपादां चतुर्मुखीं त्रिशिखामेकशृङ्गाम् ।
आद्यामजां विश्वसृजां स्वरूपां ज्ञात्वा बुधास्त्वमृतत्वं व्रजन्ति ।
ये ब्राह्मणाः प्रणवं वेदयन्ति न ते पुनः संसरन्तीह भूयः ॥२७
इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम् ।
यस्तु वेदयते सम्यक् तथा ध्यायति वा पुनः ॥२८

समारब्धक्रममुत्सृज्य मुक्तश्च प्रणवं यजन् ।
अचलं निर्गुणं स्थानं शिवं प्राप्नोत्यसंशयम् ।
इत्येतद्वै मया प्रोक्तमोङ्कारप्राप्ति लक्षणम् ।।२९

जो इस प्रकार से शुचि दमनशील जितेन्द्रिय संयुक्त योगी आत्मा का लाभ किया करता है वह ब्राह्मण सभी रुद्र को प्राप्त कर लेता है ।। २३ ।। ध्यान से चिन्तन करने वाला ब्राह्मण योग के ज्ञान से ऋक यजु और सामवेद तथा उपनिषदों को प्राप्त कर लेता है अर्थात् एक मात्र योग के द्वारा सबका ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।। २४ ।। समस्त भूतों का लय होकर वह बिना भूमि वाला अभूत हो जाता है । योगी उत्क्रमण करके शाश्वत पद को प्राप्त कर लेता है । ।। २५ ।। और वहाँ पर भी चार हाथ और चार मुख वाली बिम्ब रूप माया से युक्त प्रकृति को दिव्य चक्षु के द्वारा देखता है ।। २६ ।। लोहित कृष्ण और शुक्ल वर्ण वाली इस अजा को जो बहुत सी प्रजा का सृजन करने वाली अपने रूप में स्थित है एक अज सेवन करता हुआ अनुशायन करता है और दूसरा अज भुक्त भोगों वाली इसको त्याग देता है । आठ अक्षर वाली सोलह हाथ और पैरों वाली चार मुख वाली तीन शिखा से युक्त और एक शृंग वाली माया जया और विश्व के सृजन करने वाले प्रत्यय वाली को पचिदश्रणए जान कर अमृतत्व को प्राप्त किया करते हैं । जो ब्राह्मण प्रणव का वेदन किया करते हैं वे फिर यहाँ दुबारा संसार में नहीं आया करते हैं ।। २७ ।। यहाँ ओङ्कार संज्ञा वाला अक्षर ब्रह्म है जो परम माना जाता है । जो इसे भली भाँति जानता है तथा इसका फिर ध्यान किया करता है वह इस संसार के चक्र को त्यागकर बन्धनों के बन्धन से भी मुक्त हो जाता है और अचल तथा निर्गुण शिव स्थान को निःसन्देह प्राप्त करता है । यह इतना मैंने ओङ्कार की प्राप्ति का लक्षण बता दिया है ।। २९ ।।

नमो लोकेश्वराय सङ्कल्पकल्पग्रहणाय महान्तमुपविष्टे ततो हृदि मध्यमहाणवे नमः । अचल स्थायिने निर्गुणाय सम्भवलोकेश्वराय च । पुष्करपर्णमिवाद्भिरविशुद्धमिव महत्सुपविष्टस्यविश पविश्माणां पवित्र पवित्रेण परिपूरितेन प्रणवेन ह्रस्वदीर्घप्लुतमिति

ङ्कारमशब्दमस्पर्शमरूपमरसमगन्धं पर्युपासीत अविद्येशानाय विश्वरूपो न तस्य अविद्येशानाय नमो योगीश्वरायेति च येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वस्तभितं येन नाकस्तयोरन्तरिक्षमिमे वरीयसी देवानां हृदयं विश्वरूपो न तस्य प्राणापानौपम्यं चास्ति ओङ्कारो विश्वविश्वं वै यज्ञ यज्ञो वै वेद वेदो वै नमस्कार नमस्कारो रुद्र नमो रुद्राय योगेश्वराधिपतये नमः । इति सिद्धिप्रत्युपस्थानं सायंप्रातर्मध्याह्ने नम इति । सर्वकामफलो रुद्र । यथा वृन्तात् फलं पक्वं पवनेन समीरितम् । नमस्कारेण रुद्रस्य तथा पापं प्रणश्यति ॥३०

सङ्कल्प फल्प प्रद्युम्न स्वरूप लोक के स्वामी के लिये नमस्कार है । महान् को उपस्थितवान, रुद्र जो हमारा हित है, ऐसे प्रभु के लिये नमस्कार है । सब जगह स्थान वाले, निर्गुण और सम्भक्त योगीश्वर के लिये नमस्कार है । जल से कमल पत्र की भांति विशुद्ध ब्रह्म का उपस्थान करे । परिपूरित पवित्रता से पवित्रों को भी पवित्र करने वाला है और ह्रस्वदीर्घ प्लुत स्वरूप वाला उस ओङ्कार को जो शब्द स्पर्श रूप, रस, गन्ध से हीन है उसकी उपासना करनी चाहिये । अविद्या के ईशान के लिये उसका विश्वरूप नहीं है ऐसे अविद्येशान के लिये नमस्कार है और योगीश्वर के लिये नमस्कार है जिसने द्यौ को उग्र किया, पृथिवी को दृढ बनाया जिसने स्व को विस्तृत किया, जिसने नाक (स्वर्ग) बनाया और इस अन्तरिक्ष को किया वरीयान, देवों का हृदय विश्व रूप उसका प्राणापानौपम्य नहीं है । ओङ्कार विश्व-विश्वा है, यज्ञ यज्ञ है, वेद वेद है और नमस्कार नमस्कार है ऐसे रुद्र के लिये नमस्कार है तथा योगेश्वराधिपति के लिये नमस्कार है । यह सिद्धि का प्रत्युप स्थान है । सायं, प्रातः और मध्याह्न के लिये नमस्कार है । समस्त कामों का फल रुद्र है । जिस प्रकार वृन्त से पका हुआ फल वायु के द्वारा समीरित होता है वैसे ही नमस्कार से अर्थात् रुद्र को किये हुये नमन से पाप भी नष्ट हो जाता है ॥ ० ॥

यथा रुद्रनमस्कारः सर्वधर्मफलो ध्रुव ।
अन्यदेवनमस्कारी न तत् फलमवाप्नुयात् ॥३१

तस्मात् त्रिषवणं योगी उपासीत महेश्वरम् ।
दशविस्तारकं ब्रह्म तथा च ब्रह्म विस्तरम् ॥३२

ओङ्कार सर्वत काले सव विहितवान् प्रभु ।
तेन तेन तु विष्णुत्व नमस्कार महायशा ॥३३

नमस्कारस्तथा चव प्रणवस्तुवत प्रभुम् ।
प्रणव स्तुवत यतो यस्र सस्तुवते नम ।
नमस्तुवतिव रुद्रस्तस्मात्तद्पद शिवम् ॥३४

इत्येतानि रहस्यानि यतीना वै यथाक्रमम् ।
यस्तु वेदयते ध्यान स पर प्राप्नुयात्पदम् ॥३५

जिस तरह शर्व के लिये किया हुआ नमस्कार समस्त पर्वो के फल वाला होता है और ध्रुव होता है वैसे अन्य देव के लिये किया हुआ नमस्कार यह फल प्राप्त नही कराता है ॥ ३१ ॥ इसलिये योगी का कर्त्तव्य है कि यह तीनो कालो मे महेश्वर की उपासना करे । जहा दया विस्तारक होता है और वह बड़ा विस्तार है ॥ ३२ ॥ प्रभु ने सब काल मे सबको ओङ्कार बनाया था । उस उस से विष्णुत्व होता है । नमस्कार महान् यश वाला है ॥ ३३ ॥ नमस्कार प्रणव के लिये है प्रणव प्रभु का स्तवन करता है । यह प्रणव का स्तवन करता है उस सस्तवन करने वाले के लिये नमस्कार है । नम —यह रुद्र का स्तवन करता है इसलिये वह पद ही शिव है ॥ ३४ ॥ यतियो के ये रहस्य हैं । इनको जो यथाक्रम जानता है और ध्यान करता है वह परम पद को प्राप्त किया करता है ॥ ३५ ॥

॥ कल्प निरूपण ॥

ऋषीणामग्निकल्पानां नैमिषारण्यवासिनाम् ।
ऋषि मुनिवर प्राज्ञ सावर्णिर्नाम नामत ॥१

तदा सोऽप्यग्रतो भूत्वा वायु वाक्यविशारद ।
सावित्र तम मुनीन्द्र प्रियार्थे सत्रयाजिनाम् ।
विनयेनोपसगम्य पप्रच्छ स महाद्युतिम् ॥२

विप्रो पुराणसबद्धा कथा च वेदसम्मिताम् ।
श्रोतुमिच्छामहे सम्यक प्रसादात्सर्वदर्शिन ॥३

हिरण्यगर्भो भगवान् ललाटान्नीललोहितम् ।
कथं तत्तेजसं देव लब्धवान् पुत्रमात्मनः ॥४
कथं च भगवान् जज्ञे ब्रह्मा कमलसम्भव ।
रुद्रत्वं चैव शर्वस्य स्वात्मजस्य कथं पुनः ॥५
कथं च विष्णो रुद्रेण सार्द्धं प्रीतिरनुत्तमा ।
सर्वे विष्णुमया देवा सर्वे विष्णुमया गणा ॥६
न च विष्णुसमा काचिद्गतिरन्या विधीयते ।
इत्येवं सततं देवा गायन्ते नात्र संशयः ।
भवस्य स कथं नित्यं प्रणामं कुरुते हरि ॥७

श्री सूत जी ने कहा—नैमिषारण्य में निवास करने वाले अग्नि के समान ऋषियों में से श्रुति को धारण करने वाला परम पण्डित सावर्णि नाम वाले ऋषि थे ॥ १ ॥ वचन बोलने में महापण्डित उन सब में अग्रणी होकर सबका यजन करने वालों के प्रिय के लिये सर्वदा वहीं रहने वाले वायु के समीप विनय-पूर्वक उपस्थित होकर उस महान् मुनि वाले वायु से पूछा ॥ २ ॥ सावर्णि ने कहा—हे विभो ! पुराणों से सम्बद्ध तथा वेदों से सम्मित कथा को सर्वदर्शी आप से सुनने की हम इच्छा करते हैं आपके प्रसाद से उसे भली भाँति श्रवण करेंगे ॥ ३ ॥ हिरण्यगर्भ भगवान् ने ललाट से नीललोहित अपने पुत्र उस तेजस्वरूप देव को कैसे प्राप्त किया था ? ॥ ४ ॥ कमल से जन्म ग्रहण करने वाले भगवान् ब्रह्मा जी ने अपने आत्मज शर्व का फिर रुद्रत्व कैसे उत्पन्न किया था ? ॥ ५ ॥ और भगवान् विष्णु की रुद्र के साथ किस तरह सर्वोत्तम प्रीति उत्पन्न हुई ? समस्त विष्णुमय देव हैं और सम्पूर्ण गण विष्णुमय हैं ॥ ६ ॥ विष्णु के समान कोई भी गति नहीं होती है । इस प्रकार से समस्त देवता गान किया करते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है । वह हरि नित्य ही भव को क्यों प्रणाम किया करते हैं ॥ ७ ॥

एवमुक्ते तु भगवान् वायुः सावर्णिमब्रवीत् ।
अहो साधु त्वया साधो पृष्टः प्रश्नो ह्यनुत्तमः ॥८
भवस्य पुनमस्मात्तु ब्रह्मणः सोऽभवद्यथा ।
ब्रह्मणः पद्मयोनित्वं रुद्रत्वं शंकरस्य च ॥९

द्वाभ्यामपि च सम्प्रीतिर्विष्णोस्तस्य भवस्य च।
यत्रापि कुरुत नित्यं प्रणामं शंकरस्य च।
विस्तरेणानुपूर्व्याच्च शृणुत ब्रुवतो मम ॥१०
मन्वन्तरस्य संहारे पश्चिमस्य महात्मनः।
आसीत्तु सप्तमः कल्पः पद्मो नाम द्विजोत्तमः।
वाराहः साम्प्रतस्तस्य तस्य वक्ष्यामि विस्तरम् ॥११
कियता चैव कालेन कल्पः सम्भवते कथम्।
किं च प्रमाणं कल्पस्य तन्नो ब्रूहि पृच्छताम् ॥१२
मन्वन्तराणां सर्वेषां कालसंख्या यथाक्रमम्।
प्रवक्ष्यामि समासेन ब्रुवतो मे निबोधत ॥१३
कोटीनां द्वे सहस्रे च अष्टौ कोटिशतानि च।
द्विषष्टिश्च तथा कोट्यो नियुतानि च सप्ततिः।
कल्पार्द्धस्य तु संख्यायामेतत् समुदाहृतम् ॥१४

श्री सूतजी ने कहा—सावर्णि ऋषि के इस प्रकार से कहने पर भगवान् वायुदेव ने कहा—हे सावर्णे ! आपने यह बहुत ही अच्छा अत्युत्तम प्रश्न किया है ॥ ८ ॥ जिस तरह महादेव का ब्रह्मा के पुत्र का जन्म लेना हुआ और ब्रह्मा का पद्म योनित्व जैसे हुआ तथा शंकर का स्वत्व जिस प्रकार से हुआ ॥ ९ ॥ विष्णु और शिव इन दोनों की पारस्परिक प्रीति किस तरह से हुई थी और जो नित्य ही विष्णु शंकर को प्रणाम किया करते हैं इन सब बातों को मैं तुम्हें विस्तार के साथ बतलाता हूँ और आनुपूर्वी के सहित बताता हूँ आप लोग मुझसे सब श्रवण करें ॥ १० ॥ हे द्विजोत्तम ! महात्मा पश्चिम मन्वन्तर के संहार हो जाने पर पद्म नाम वाला सप्तम कल्प था। उनमें इस समय वाराह कल्प है उसके विस्तार को बताता हूँ ॥ ११ ॥ सावर्णि ने कहा—कल्प कितने समय में होता है और यह कैसे होता है ? कल्प का क्या प्रमाण होता है यह पूछने वाले हम को बतलाइये ॥ १२ ॥ वायु ने कहा—सब मन्वन्तरों की काल की संख्या क्रम के अनुसार बतलाऊँगा। संक्षेप में बतलाते हुए मुझसे सब जान लो ॥१३॥ दो सहस्र आठ सौ करोड़ तथा सत्तर नियुत बासठ करोड़ कल्प के आधे भाग की यह संख्या कही गई है ॥ १४ ॥

पूर्वोक्तो च गुणच्छेदो वर्षाग्र लब्धमादिशेत् ।
शतं चैव तु कोटीनां कोटीनामष्टसप्ततिः ।
द्वे च शतसहस्रे तु नवतिर्नियुतानि च ॥१५
मानुषेण प्रमाणेन यावद्वैवस्वतान्तरम् ।
एष कल्पस्तु विज्ञेय कल्पार्द्धं द्विगुणीकृत ॥१६
अनागतानां सर्गाणामेवमेव यथाक्रमम् ।
प्रमाणं कालसंख्याया विज्ञेय मतमैश्वरम् ॥१७
नियुतान्यष्टपञ्चाशत्तथाऽशीतिशतानि च ।
चतुरशीतिश्चान्यानि प्रयुतानि प्रमाणतः ॥१८
सप्तर्षयो मनुश्चैव देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ।
एतत् कालस्य विज्ञेय पर्याप्तं तु प्रमाणतः ॥१९
एवं मन्वन्तरं तेषां मानुषान्तः प्रकीर्त्तित ।
प्रणवान्ताश्च ये देवा साध्या देवगणाश्च ये ।
विश्वे देवाश्च ये नित्या कल्प जीवन्ति ते गणाः ॥२०
अथ यो वर्त्तते कल्पो वाराह स तु कीर्त्यते ।
यस्मिन् स्वायम्भुवाद्याश्च मनवश्च चतुर्दश ॥२१

पूर्व में उक्त गुणच्छेद लब्ध वर्ष का अग्र बताना चाहिए । एक सौ अठहत्तर करोड दो सौ हजार नब्बे नियुत होता है ॥ १५ ॥ मानुष प्रमाण से जितना वैवस्वतान्तर है कल्प के अर्ध भाग को दुगुना करने पर वह कल्प जान लेना चाहिए ॥१६॥ अनागत सर्गों के काल की संख्या में प्रमाण भी यथाक्रम यही होता है, यह ऐश्वर मत है ॥ १७ ॥ अट्ठावन नियुत तथा अस्सी सौ और चौरासी अन्य प्रयुत प्रमाण से होते हैं ॥ १८ ॥ सप्तर्षिगण—मनु और इन्द्रादि देवगण यह काल का पर्याप्त प्रमाण जान लेना चाहिए ॥ १९ ॥ इसी प्रकार से उनका मन्वन्तर मानुषान्त कहा गया है । प्रणवान्त जो देवता हैं, साध्य और जो देवगण हैं और जो नित्य विश्वेदेवा हैं वे सब गण एक कल्प पर्यन्त जीवित रहा करते हैं । यह जो कल्प वरत रहा है वह वाराह इस नाम से कहा जाता है । जिसमें स्वायम्भुवादि चौदह मनु होते हैं ॥ २०-२१ ॥

कस्माद्वाराहकल्पोऽयं नामतः परिकीर्तितः ।
कस्माच्च कारणाद् वा वराह इति कीर्त्यते ॥२२
को वा वराहो भगवान् कस्य योनिः किमात्मकः ।
वराहः कथमुत्पन्न एतदिच्छाम वेदितुम् ॥२३
वराहस्तु यथोत्पन्नो यस्मिन्नर्थे च कल्पितः ।
वाराहश्च यथा कल्पः कल्पस्य कल्पना च या ॥२४
कल्पयोरन्तरं यच्च तस्य चास्य च कल्पितम् ।
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥२५
भवस्तु प्रथमः कल्पो लोकादौ प्रथितः पुरा ।
आद्यस्था भगवानत्र ह्यानन्दः साम्प्रतः स्वयम् ॥२६
ब्रह्मस्थानमिदं दिव्यं प्राप्तं वा दिव्यसम्भवम् ।
द्वितीयस्तु भुवः कल्पस्तृतीयस्तप उच्यते ॥२७
भवश्चतुर्थो विज्ञेयः पञ्चमो रम्भ एव च ।
ऋतुकल्पस्तथा षष्ठः सप्तमस्तु क्रतुः स्मृतः ॥२८

ऋषियों ने कहा—यह नाम से वाराह कल्प क्यों कहा गया है और किस कारण से वाराह इस नाम से पुकारे जाते हैं ॥ २२ ॥ भगवान् वाराह कौन थे ? किससे उत्पन्न हुए और क्या उनका स्वरूप था ? वाराह उत्पन्न कैसे हुए यह सभी हम जानने की इच्छा रखते हैं ॥ २३ ॥ श्री वायुदेव ने कहा—वाराह जिस तरह से उत्पन्न हुए और जिस अर्थ में कल्पित हुए तथा जिस प्रकार से यह वाराह कल्प हुआ और जो कल्पत्व और कल्पना है ॥ २४ ॥ दो कल्पों में जो अन्तर है उसका और इसका जो कल्पित है वह सभी जैसा हमने देखा है और सुना है कहेंगे ॥ २५ ॥ पहिले लोक के आदि में भव यह प्रथम कल्प प्रसिद्ध हुआ था । यहाँ भगवान् स्वयं साम्प्रत आनन्द जानने चाहिए ॥ २६ ॥ यह दिव्य ब्रह्म स्थान है अथवा दिव्य सम्भव है । दूसरा भुव कल्प है तीसरा तप कल्प कहा जाता है ॥ २७ ॥ चतुर्थ भव जानना चाहिए और पञ्चम रम्भकल्प होता है । छठा ऋतु कल्प होता है और सातवाँ क्रतु इस नाम से कहा गया है ॥ २८ ॥

अष्टमस्तु भवेद्वह्निर्नवमो हव्यवाहन ।
सावित्रो दशम कल्पो भुवस्त्वेकादश स्मृत ॥२९
उशिको द्वादशस्तत्र कुशिकस्तु त्रयोदश ।
चतुर्दशस्तु गन्धर्वो गान्धर्वो यत्र वै स्वर ।
उत्पन्नस्तु यथा नादो गन्धर्वा यत्र चोत्थिता ॥३०
ऋषभस्तु तत कल्पो ज्ञेय पञ्चदशो द्विजा ।
ऋषयो यत्र सम्भूता स्वरो लोकमनोहर ॥३१
षड्जस्तु षोडश कल्प षड् जना यत्र चर्षय ।
शिशिरश्च वसन्तश्च निदाघो वर्ष एव च ॥३२
शरद्धेमन्त इत्येते मनसा ब्रह्मण सुता ।
उत्पन्ना षड्ज संसिद्धा पुत्रा कल्पे तु षोडशे ॥३३
यस्माज्जातैश्च तै षड्भि सद्यो जातो महेश्वर ।
तस्मात् समुत्थित षड्ज स्वरस्तूदधिसन्निभ ॥३४
तत सप्तदश कल्पो मार्जालीय इति स्मृत ।
मार्ज्जालीय तु तत् कर्म यस्माद्ब्रह्माऽकल्पयत् ॥३५

आठवाँ वह्नि नाम वाला कल्प होता है और नवम कल्प हव्य वाहन नाम वाला होता है। सावित्र इस नाम वाला दशम कल्प होता है और भुव इस नाम से एकादश कल्प प्रसिद्ध होता है ॥ २९ ॥ उशिक बारहवाँ और कुशिक तेरहवाँ कल्प होता है। चौदहवाँ कल्प गन्धर्व होता है जहाँ गान्धर्व स्वर उत्पन्न हुआ जिसके नाद से यहाँ गन्धर्व उत्पन्न हुए थे। इसके पश्चात् पन्द्रहवाँ कल्प ऋषभ नाम वाला हुआ। जहाँ द्विज ऋषिवर्ग उत्पन्न हुए और लोक मनोहर स्वर उत्पन्न हुआ था ॥ ३०-३१ ॥ षड्ज सोलहवाँ कल्प है जहाँ छैः जन ऋषि हैं। शिशिर और वसन्त, निदाघ और वर्षा, शरद और हेमन्त ये ब्रह्माजी के मानस पुत्र उत्पन्न हुए और सोलहवें कल्प में षड्ज से संसिद्ध हुए थे ॥ ३२-३३ ॥ जिससे उत्पन्न उन छैः से तुरन्त ही महेश्वर उत्पन्न हुए उनसे उदधि के तुल्य षड्ज स्वर उठ खड़ा हुआ ॥ ३४ ॥ इसके पश्चात् सत्रहवाँ कल्प मार्जालीय इस नाम से कहा गया है। मार्जालीय वह कर्म है जिससे ब्राह्म की कल्पना की गई है ॥ ३५ ॥

ततस्तु मध्यमो नाम कल्पोऽष्टादश उच्यते ।
यस्मिंस्तु मध्यमो नाम स्वरो धैवतपूजितः ।
उत्पन्नः सर्वभूतेषु मध्यमो वै स्वयम्भुवः ॥३६
ततस्त्वेकोनविंशस्तु कल्पो वैराजकः स्मृतः ।
वैराजो यत्र भगवान् मनुर्वै ब्रह्मणः सुतः ॥३७
तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा दधीचिर्नाम धार्मिकः ।
प्रजापतिर्महातेजा बभूव त्रिदशेश्वरः ॥३८
अकामयत गायत्री यजमानं प्रजापतिम् ।
तस्माज्जज्ञे स्वरः स्निग्धः पुत्रस्तस्य दधीचिनः ॥३९
ततो विंशतिमः कल्पो निषाद परिकीर्तितः ।
प्रजापतिस्तु वै दृष्ट्वा स्वयम्भूप्रभवं तदा ।
विरराम प्रजाः स्रष्टुं निषादस्तु तपोऽतपत् ॥४०
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु निराहारो जितेन्द्रियः ।
तमुवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥४१
ऊर्ध्वबाहुं तपोग्लानं दुःखितं क्षुत्पिपासितम् ।
निषीदेत्यब्रवीत्तेन पुत्रं शान्तः पितामहः ।
तस्मान्निषादः सम्भूतः स्वरस्तु स निषादवान् ॥४२

इसके पश्चात् मध्यम इस नाम वाला अठारहवाँ कल्प कहा जाता है। जिसमें धैवत पूजित मध्यम इस नाम वाला स्वर उत्पन्न हुआ। समस्त प्राणियों में मध्यम स्वयम्भुव है ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर उन्नीसवाँ कल्प वैराजक कहा गया है। जहाँ भगवान् वैराज ब्रह्मा के पुत्र मनु हुए हैं ॥ ३७ ॥ उनके पुत्र महात्मा दधीचि परम धार्मिक हुए। त्रिदशेश्वर महान् तेज वाले प्रजापति हुए थे ॥ ३८ ॥ गायत्री ने यजमान प्रजापति की कामना की थी। उससे पुत्र दधीचि का पुत्र स्निग्ध स्वर उत्पन्न हुआ ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर बीसवाँ कल्प निषाद इस नाम से परिकीर्तित हुआ है। उस समय प्रजापति ने स्वयम्भू से उत्पन्न वही देखकर प्रजा के सृजन के कार्य से विराम ले लिया था। इसके अनन्तर निषाद ने तपश्चर्या आरम्भ करदी ॥ ४० ॥ निषाद ~ सहस्र

दिव्य वर्ष तक निराहार और जितेन्द्रिय होकर तपश्चर्या की थी, तब लोक के पितामह महान् तेज वाले ब्रह्माजी ने उससे कहा ।।४१।। यह निषाद उस समय में ऊर्ध्व बाहुओं वाला—तप में अत्यन्त ध्यान–परम दुःखित और भूख-प्यास से शुष्क होकर तप कर रहा था । तब पितामह ने इस शान्त अपने पुत्र से कहा—'निषीद' अर्थात् बैठ जाओ । इससे निषाद था वह निषाद स्वर उत्पन्न हुआ था ।।४२।।

एकविंशतिम कल्पो विज्ञेय पञ्चमो द्विजा ।
प्राणोऽपान समानश्च उदानो व्यान एव च ।।४३
ब्रह्मणो मानसा पुत्रा पञ्चैते ब्रह्मण समा ।
तैस्त्वर्थवादिभिर्युक्तैर्वाग्भिरिष्टो महेश्वर ।।४४
यस्मात्परिगतैर्गीतं पञ्चभिस्तैर्महात्मभि ।
स्वरस्तु पञ्चम स्निग्ध तस्मात्कल्पस्तु पञ्चम ।।४५
द्वाविंशस्तु तथा कल्पो विज्ञेयो मेघवाहन ।
यत्र विष्णुर्महाबाहुर्मेघो भूत्वा महेश्वरम् ।
दिव्य वर्षसहस्रन्तु अवहद् कृत्तिवाससम् ।।४६
तस्य निःश्वसमानस्य भाराक्रान्तस्य वै मुखात् ।
निर्जगाम महाकाय कालो लोकप्रकाशन ।
यस्त्वय पठ्यते नित्यं विष्णुर्वै काश्यपात्मज ।।४७
त्रयोविंशतिम कल्पो विज्ञेयश्चिन्तकस्तथा ।
प्रजापतिसुत श्रीमान् चितिश्च मिथुनश्च तौ ।।४८
ध्यायतो ब्रह्मणश्चैव यस्माच्चिन्ता समुत्थिता ।
तस्मात्तु चिन्तक सो वै कल्प प्रोक्त स्वयम्भुवा ।।४९

हे द्विजगणो ! इक्कीसवाँ कल्प पञ्चम जानना चाहिए । प्राण–अपान–उदान–समान और व्यान ये ब्रह्माजी के मानस पाँच पुत्र जो कि ब्रह्मा के ही तुल्य थे उत्पन्न हुए । उनके द्वारा युक्त अर्थवादियों ने वाणियों के द्वारा महेश्वर की उपासना की थी ।।४३।४४।। जिस कारण से महान् आत्मा वाले उन परिगत पाँच गीतों से गाये गये पञ्चम स्वर बहुत ही स्निग्ध हुए इसी कारण से

सम्भव बतला हुआ ।।४५।। बाईसवाँ कल्प तो मेघवाहन इस नाम वाला जानना चाहिए जहाँ पर महाबाहु विष्णु भगवान् ने मेघ होकर दिव्य वर्ष वाले महेश्वर को एक सहस्र दिव्य वर्ष पर्यन्त वहन किया था ।।४६।। श्वास से आक्रान्त निःश्वास लेते हुए उसके मुख से महान् काया वाला लोक को प्रकाश देने वाला काल निकला था जो कि वह विष्णु महात्मा के द्वारा कश्यप का पुत्र कहा जाता है ।।४७।। तेईसवाँ कल्प चिन्तक जानना चाहिए । प्रजापति का पुत्र धीमान् चित्ति है और वे दोनों का जोड़ा है ।४८।। ध्यान का ध्यान करते हुए ही चिन्ता समुत्पन्न हो गई थी यही कारण है जिससे स्वयम्भू के द्वारा यह चिन्तक कल्प कहा गया है ।४९।।

चतुर्विंशतिमश्चापि ह्याकूति कल्प उच्यते ।
आकूतिश्च तथा देवी मिथुनं सम्बभव ह ।।५०
प्रजा स्रष्टु यदाकूतिं तमप्यदाह प्रजापति ।
तस्मात स पुरुषोश्च आकूति कल्पसंज्ञित ।।५१
पञ्चविंशतिम कल्पो विज्ञाति परिकीर्तित ।
विज्ञातिश्च तथा देवी मिथुनं सम्प्रसूयत ।।५२
ध्यायत पुत्रकामस्य मनस्यध्यात्मसंज्ञितम् ।
विज्ञातं च समासेन विज्ञातिस्तु तत स्मृत ।।५३
षड्विंशस्तु ततः कल्पो मन इत्यभिधीयते ।
देवी च शाङ्करी नाम मिथुनं सम्प्रसूयते ।।५४
प्रजा वै चिन्त्यमानस्य स्रष्टुकामस्य च तदा ।
यस्मात् प्रजासम्मननात्तुल्यजस्तु स्वयम्भुवा ।
तस्मात् प्रजासम्मननात्कल्पमनासम्मतः स्मृत ।।५५
सप्तविंशतिम कल्पो भावो वै कल्पसंज्ञित ।
पौर्णमासी तथा देवी मिथुनं समपद्यत ।।५६

चौबीसवाँ कल्प आकूति कल्प कहा जाता है । आकूति और देवी दोनों का मिथुन हुआ था ।।५०।। क्योंकि प्रजापति ने आकूति से प्रजा के सृजन करने के लिए कहा था इसी से वह पुरुष आकूति कहा गया और उनके नाम

से कल्प जानना चाहिए ॥५१॥ पच्चीसवाँ कल्प विज्ञाति नाम से कहा गया है। विज्ञाति और देवी का मिथुन सम्भूत होता है ॥५२॥ मन में आत्मा ब्रह्मा वाले का ध्यान करने हुए पुत्र की कामना के होने से मनोत्र गाना गया अतएव विज्ञात होने से वह विज्ञाति कहा गया है ॥५३॥ छब्बीसवाँ कल्प मन इस नाम से कहा जाता है और शाङ्करी देवी से यह मिथुन सम्भूत किया जाता है ॥५४॥ उस समय प्रजा की चिन्ता करते हुए प्रजा की सृष्टि की कामना वाले के प्रजा के सम्भवन होने से स्वयम्भू के द्वारा उत्पन्न है इसलिये प्रजा के सम्भवन से भावना सम्भव कहा गया है ॥५५॥ सत्ताईसवाँ कल्प का नाम भाव कहा हुआ है तथा पौर्णमासी देवी से यह मिथुन उत्पन्न हुआ ॥५६॥

प्रजा वै स्रष्टुकामस्य ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
ध्यायतस्तु परं ध्यान परमात्मानमीश्वरम् ॥५७
अग्निस्तु मण्डलीभूत्वा रश्मिजालसमावृत ।
भुवन्दिवञ्च विष्टभ्य दीप्यते स महावपु ॥५८
ततो वर्षसहस्रान्ते सम्पूर्णे ज्योतिमण्डले ।
आविष्टया सहोत्पन्नमपश्यत् सूर्यमण्डलम् ॥५९
यस्माद्दृश्यो भूताना ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
दृष्टस्तु भगवान् देव सूर्य्य सम्पूर्णमण्डल ॥६०
सर्वे योगाश्च मन्त्राश्च मण्डलेन सहोत्थिता ।
यस्मात् कल्पो ह्ययं दृष्टस्तस्मात्त दर्शमुच्यते ॥६१
यस्मान्मनसि सम्पूर्णो ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
पुरा वै भगवान् सोम पौर्णमासी तत स्मृता ॥६२
तस्मात्तु पर्वदर्शे वै पौर्णमासश्च योगिभि ।
उभयो पक्षयोर्ज्येष्ठमात्मनो हितकाम्यया ॥६३

प्रजा के सृजन की कामना रखने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा द्वारा परमात्मा ईश्वर का ध्यान करते हुए रश्मि जाल से समावृत अग्नि मण्डलीभूत होकर भू और दिव दोनों को विष्टब्ध करके महान् वपु वाला वह दीप्यमान होता है ॥५७-५८॥ इसके पश्चात् एक सहस्र वर्ष के अन्त में सम्पूर्ण ज्योति मण्डल में आविष्ट होने

वालों के साथ उत्पन्न होने वाले सूर्य मण्डल को देखा ॥५९॥ परमेष्ठी ब्रह्मा के द्वारा अदृश्य ह॰ फिर भूतों को भगवान् सम्पूर्ण मण्डल वाले सूर्यदेव दृष्ट हुए अर्थात् पूर्ण रूप से दिखाई देने लगे ॥६ । समस्त योग और मन्त्र उस मण्डल के साथ ही उत्थित हो गये थे । क्योंकि यह स ा देखा गया है इसी से इसका नाम दर्शप्—यह कहा जाता है ॥६१॥ क्योंकि पहिले परमेष्ठी ब्रह्म के मन में भगवान् सोम थे इसके पश्चात् पौर्णमासी कही गई है ॥६२॥ इसके पश्चात् में योगियों के द्वारा अपने हित की कामना से दोनों पक्षों में पौर्णमास अभीष्ट होता है ॥६३॥

दर्शाच्च पौर्णमासश्च ये यजन्ति द्विजातय ।
न तेषा पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात् कदाचन ॥६४
योऽन्नाहिताग्नि पचतो वीराध्वान गतोऽपि वा ।
समाधाय मनस्त्वीश म न्त्रमुच्चारयेण्ठन ॥६५
त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्व शर्धो मारुत पृक्ष ईशिषे ।
त्व पाशग धश्चाप्य पूषा विधत्तपासिना ।
इत्येव म न मनसा सम्यगुच्चारयेद्द्विज ।
अग्नि प्रविशते यस्तु रुद्रलोक स गच्छति ॥६६
सोमश्चाग्निस्तु भगवान् कालो रुद्र इति श्रुति ।
तस्माद्य प्रविशेदग्नि स रुद्रान्न निवर्त्तते ॥६७
अष्टा विंशतिम कल्पो बृहदित्यभिसज्ञित ।
ब्रह्मण पुत्रकामस्य षट्कामस्य च प्रजा ।
ध्यायमानस्य मनसा बृहत्साम रथन्तरम् ॥६८
यस्मात्तत्र समुत्पन्नो बृहत सर्वतोमुख ।
तस्मात् बृहत कल्पो विज्ञ यस्तत्त्वचिन्त ॥६९
अष्टाशीतिसहस्राणी योजनाना प्रमाणत ।
रथन्तरन्तु विज्ञ य परम सूर्यमण्डलम् ।
तस्माद्रथन्तरन्तु विज्ञयमभेद्य सूर्यमण्डलम् ॥७
यत्सूर्यमण्डलस्यापि बृहत्साम तु विद्यते ।

भित्वा चैन द्विजायान्ति योगात्मानो ह्यन्तता ।
सद्भावमुपनीतादच अन्ये कल्पा रथन्तरे ॥७१
इत्येतत् मया प्रोक्त चित्रमध्यात्मदर्शनम् ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि कल्पानां विस्तर शुभम् ॥७२

जो द्विजाति गण दर्श और पौर्णमास का यजन किया करते हैं, उनकी फिर ब्रह्मलोक से पुनरावृत्ति कदाचन ही होती है ॥६४॥ जो आहित अग्नि वाला न हो वह वीरध्वा को गया हुआ भी मन को समाहित करके इस मन्त्र का उच्चारण करते हैं ॥६५॥ मन्त्र यह है—हे अग्ने ! आप रुद्र हैं असुर हैं, मही हैं, दिव हैं, शर्व हैं और मारुत हैं । आप पूछे हुए हैं, समय हैं, आप पाश-अन्वय शिव हैं और निवत्त पाणी के द्वारा धूपा हैं—इस इतने मन्त्र को मन से द्विज भली-भाँति वीरे मे उच्चारण करे । जो अग्नि की अचना करता है वह रुद्र के लोक को चला जाता है ॥६५॥६६॥ सोम और अग्नि भगवान् काल रुद्र हैं, यह श्रुति है । इसलिये जो अग्नि अचना करता है वह रुद्र से निवर्तमान नहीं होता है ॥६७॥ अट्ठाईसवाँ कल्प 'बृहत्'—इस संज्ञा वाला होता है । पुत्र की इच्छा वाले और प्रजा की सृजन-कामना वाले ब्रह्मा के मन से ध्यान करते हुए बृहत्साम रथन्तर हुआ ॥ ८॥ क्योंकि वहाँ सर्वतोमुख बृहत् उत्पन्न हुआ था, इसीलिये तत्त्वों के चिन्तकों के द्वारा यह बृहत कल्प जानने के योग्य हुआ है । ॥६६॥ अट्ठासी हजार योजनों के प्रमाण से परम रथन्तर सूर्य-मण्डल जानना चाहिए । इसलिये यह अच्छ न भेदन करने के योग्य सूर्य मण्डल जानना चाहिए । ॥७०॥ जो बृहद् साम सूर्यमण्डल भी भिद्यमान होता है । इस प्रत्र वासे योगात्मा द्विज इसका भेदन करके जाया करते हैं । सद्भाव को उपनीत अन्य कल्प- रथन्तर मे होते हैं । मैंने यह अध्यात्म दर्शन चित्र बतला दिया है । इससे आगे कल्पों का शुभ विस्तार बताऊँगा ॥७१॥७२॥

॥ कल्प-संख्यानिरूपण ॥

अत्यद्भुतमिदं सर्वं कल्पनान्ते महामुने ।
रहस्यं वै समाख्यातं मन्त्राणाञ्च प्रकल्पनम् ॥१
न तवाविदितं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।

तस्माद्विस्तरतः सर्वा कल्पसंख्या ब्रवीहि नः ॥२

अथ वः कथयिष्यामि कल्पसंख्या यथा तथा ।

युगाश्च च वर्षाग्रन्तु ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥३

एकं कल्पसहस्रन्तु ब्रह्मणोऽब्दं प्रकीर्तितः ।

एतदष्टसहस्रन्तु ब्रह्मणस्तद्युगं स्मृतम् ॥४

एकं युगसहस्रं तु सवनं तत् प्रजापतेः ।

सवनानां सहस्रन्तु द्विगुणं त्रिवृतं तथा ॥५

ब्रह्मणः स्थितिकालस्य चैतत् सर्वं प्रकीर्तितम् ।

तस्य संख्यां प्रवक्ष्यामि पुरस्ताद्वै यथाक्रमम् ॥६

अष्टाविंशतिर्ये कल्पा नामतः परिकीर्तिताः ।

तेषां पुरस्ताद्वक्ष्यामि कल्पसंज्ञा यथाक्रमम् ॥७

ऋषियों ने कहा—हे महामुने ! आपने यह मन्वन्तरों और समस्त कल्पों का सम्पूर्ण रहस्य और मन्वों का प्रकरण बताया है ॥१॥ तीनों लोकों में ऐसी कुछ भी वस्तु नहीं है जो आपको अविदित हो अर्थात् जिसे आप नहीं जानते हों—तात्पर्य यही है कि आप सभी कुछ जानते हैं । इसलिये आप हमारे सामने समस्त कल्पों की संख्या विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए ॥२॥ वायुदेव ने कहा—यहाँ मैं आपके आगे यथातथ्य कल्पों की संख्या—युग का अग्रभाग और परमेष्ठी ब्रह्माजी के वर्षों के अग्रभाग को बतलाता हूँ ॥३॥ एक सहस्र कल्पों का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है । इनका आठ सहस्र ब्रह्मा का युग कहा गया है ॥४॥ एक युग सहस्र प्रजापति का सवन होता है । इस तरह सवनों का सहस्र तथा द्विगुण एवं त्रिवृत यह सब ब्रह्मा की स्थिति का काल बताया गया है । उसकी संख्या यथाक्रम पहिले बताऊँगा ॥५॥६॥ कल्पों की अट्ठाईस संख्या नाम से बतलायी गई है । उनकी पहिले कल्प संज्ञा को यथाक्रम कहूँगा ॥७॥

रथन्तरस्य साम्नस्तु उपरिष्टान्निबोधत ।

कल्पान्ते नाम येषां वै मन्वोत्पत्तिश्च यस्य वा ॥८

एकोनविंशः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः ।

यस्मिंस्तत् परमं ध्यानं ध्यायतो ब्रह्मणस्तथा ॥९

श्वेतोष्णीषः श्वेतमाल्यः श्वेताम्बरधरः शिखी ।
उत्पन्नस्तु महातेजाः कुमारः पावकोपमः ॥१०
भीमं मुखं महारौद्रं सुघोरं श्वेतलोहितम् ।
दीप्तं दीप्तेन वपुषा महास्यं श्वेतवर्च्चसम् ॥११
तं दृष्ट्वा पुरुषं श्रीमान् ब्रह्मा वै विश्वतोमुखः ।
कुमारं लोकधातारं विश्वरूपं महेश्वरम् ॥१२
पुराणपुरुषं देवं विश्वात्मा योगिनां चिरम् ।
ववन्दे देवदेवेशं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥१३
हृदि कृत्वा महादेवं परमात्मानमीश्वरम् ।
सद्योजातं ततो ब्रह्म ब्रह्मा वै समचिन्तयत् ।
ज्ञात्वा मुमोच देवेशो हृष्टो हासं जगत्पतिः ॥१४

रथन्तर का साम का ऊपर से मनन लो, जिसकी जो मन ोत्पत्ति है और जो नामधेय है ॥८॥ उन्तीसवाँ कल्प श्वेत लोहित जानना चाहिए जिसमें ध्यान करने वाले ब्रह्माजी का परम ध्यान है ॥९॥ श्वेत उष्णीष (पगड़ी) वाला–श्वेत माला धारण करने वाला–श्वेत वस्त्र धारी–महान् तेज से युक्त पावक के समान दीप्ति वाला शिखी कुमार उत्पन्न हुआ ॥१०॥ जिसका मुख भीम–महान् रौद्र–सुघोर और श्वेत लोहित है । दीप्त वपु से दीप्यमान–महान् मुख वाले और श्वेत वर्चस उसको देखकर विश्वतोमुख श्रीमान पुरुष ब्रह्माजी ने लोकों के धाता–विश्वरूप–महेश्वर–कुमार और पुराण पुरुष देव-देव को विश्वात्मा लोक पितामह ने वन्दना की ॥ ११-१२-१३ ॥ परमात्मा ईश्वर महादेव को हृदय में स्थित करके ब्रह्म तुरन्त उत्पन्न हुआ है ऐसा ब्रह्माजी ने चिन्तन किया और ज्ञान प्राप्त करके परम प्रसन्न देवेश जगत्पति ने हास्य किया ॥ १४ ॥

ततोऽस्य पार्श्वतः श्वेता ऋषयो ब्रह्मवर्च्चसः ।
प्रादुर्भूता महात्मानः श्वेतमाल्यानुलेपनाः ॥१५
सुनन्दो नन्दकश्चैव विश्वनन्दोऽथ नन्दनः ।
शिष्यास्ते वै महात्मानो यैस्तु ब्रह्म ततो वृतम् ॥१६

तस्याथ श्वेत वर्णाभ श्वेतनामा महामुनि ।
निजज्ञ श्च महातेजा यस्माज्जज्ञ नरस्त्वसौ ॥१७

तत्र ते ऋषय सर्वे सद्याजात महेश्वरम् ।
तस्माद्विश्वेश्वर देव ये प्रपश्यन्ति वै द्विजा ।
प्राणायामपरा युक्ता ब्रह्मणि व्यवसायिन ॥१८

ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्च स ।
ब्रह्मलोकमतिक्रम्य ब्रह्मलोक व्रजन्ति च ॥१९

ततस्त्रिशत्तम कल्पो रक्तो नाम प्रकीर्त्तित ।
रक्तो यत्र महातेजा रक्तवर्ण मधारयत् ॥२०

ध्यायत पुत्रकामस्य ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
प्रादुर्भूतो महातेजा कुमारो रक्तविग्रह ।
रक्तमाल्याम्बर धरो रक्तनेत्र प्रतापवान् ॥२१

इसके अनन्तर इसके पास्व में ब्रह्मर्चेस श्वेत ऋषिगण प्रादुर्भूत हुए जो महान् आत्मा वाले और श्वेतमाल्य तथा अनुलेपन वाले थे ॥ १५ ॥ सुनन्द नामक विनन्द और आनन्द ये महान् आत्मा वाले शिष्य थे जिनसे यह ब्रह्म आवृत था ॥ १६ ॥ उसके आगे श्वेतवर्ण की आभा वाले श्वेत नाम वाले महामुनि उत्पन्न हुए जिससे महान् तेज वाला यह नर उत्पन्न हुआ था ॥ १७ ॥ वहाँ वे सब ऋषिगण सद्य उत्पन्न हुए विश्वेश्वर महेश्वर देव को देखते हैं और जो ब्राह्मण उनका ध्यान करते हैं वे प्राणायाम में परायण तथा ब्रह्म में व्यवसाय से युक्त थे ॥ १८ ॥ वे सब पापों से निर्मुक्त हुए बिना मल वाले ब्रह्मवर्चस ब्रह्मलोक का अतिक्रमण करके ब्रह्मलोक को चले जाते हैं ॥ १९ ॥ इसके पश्चात् श्री वायुदेव ने कहा—इसके अनन्तर तीसवाँ जो कल्प था वह रक्त—इस नाम से कहा गया है । जहाँ महान् तेज से युक्त रक्त था उसने रक्तवर्ण को धारण किया था ॥ २० ॥ पुत्र की कामना वाले परमेष्ठी ब्रह्मा के ध्यान करते हुए महान् तेज वाला रक्त विग्रह से युक्त कुमार उत्पन्न हुआ था जो रक्तमाल्य और रक्त वस्त्र के धारण करने वाला रक्त नेत्रों वाला तथा प्रताप वाला था ॥ २१ ॥

स तं दृष्ट्वा महादेवं कुमारं रक्तवाससम् ।
ध्यानयोगं परं कृत्वा बुबुधे विश्वमीश्वरम् ॥२२
स तं प्रणम्य भगवान् ब्रह्मा परमयन्त्रितः ।
वामदेवं ततो ब्रह्मा ब्रह्मात्मकं व्यचिन्तयत् ॥२३
एवं ध्यातो महादेवो ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
मनसा प्रीतियुक्तेन पितामहमथाब्रवीत् ॥२४
ध्यायता पुत्रकामेन यस्मात्तेऽहं पितामह ।
दृष्ट परमया भक्त्या ध्यानयोगेन सत्तम ॥२५
तस्माद्ध्यानं परं प्राप्य कल्पे कल्पे महातपाः ।
वेत्स्यसे मां महासत्व लोकधातारमीश्वरम् ।
एवमुक्त्वा ततः शर्वं अट्टहासं मुमोच ह ॥२६
ततस्तस्य महात्मानश्चत्वारश्च कुमारकाः ।
सम्बभूवुर्महात्मानो विरेजुः शुद्धबुद्धयः ॥२७
विरजश्च विवाहश्च विशोको विश्वभावनः ।
ब्रह्मण्या ब्रह्मणस्तुल्या वीरा अध्यवसायिनः ॥२८

उस रक्त वस्त्र धारी महादेव कुमार को उसने देखकर और पर ध्यान-योग में स्थित होकर विश्व-रूप ईश्वर का ज्ञान प्राप्त किया ॥ २२ ॥ भगवान परम यन्त्रित ब्रह्मा जी ने उसको प्रणाम करके फिर ब्रह्मा जी ने ब्रह्मात्मक वाम-देव का विशेष रूप से चिन्तन किया ॥ २३ ॥ इस प्रकार से परमेष्ठी ब्रह्मा के द्वारा ध्यान किये हुए महादेव प्रीति से युक्त मन से पितामह से कहा ॥ २४ ॥ हे सत्तम ! पुत्र की कामना रखने वाले और ध्यान करने वाले तुमने पितामह मुझे परम भक्ति से तथा ध्यान के योग से देखा था ॥ २५ ॥ इसलिये परम ध्यान प्राप्त करके महान् तप वाले कल्प-कल्प में हे महासत्व ! लोकों के धाता ईश्वर मुझको भली भाँति जान लोगे । इस प्रकार से कह कर पश्चात् शर्व ने बड़ा अट्टहास किया था ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् उसके महान् आत्मा वाले चार कुमार उत्पन्न हुए थे और शुद्ध बुद्धि वाले महात्मा विशेष रूप से दीप्तिमान हुए थे ॥ २७ ॥ वे विरज, विवाहु, विशोक और विश्वभावन थे तथा ब्रह्मण्य, वीर, अध्यवसायी और ब्रह्म के ही तुल्य थे ॥ २८ ॥

रक्ताम्बरधरा सर्वे रक्तमाल्यानुलेपना ।
रक्तभस्मानुलिप्ताङ्गा रक्तास्या रक्तलोचना ॥२९
ततो वर्षसहस्रान्ते ब्रह्मण्या व्यवसायिन ।
गृणन्तश्च महात्मानो ब्रह्म तद्वामदेवकम् ॥३०
अनुग्रहार्थ लोकानां शिष्याणां हितकाम्यया ।
धर्मोपदेशमखिलं कृत्वा ते ब्राह्मणा स्वयम् ।
पुनरेव महादेवं प्रविष्टा रुद्रमव्ययम् ॥३१
येऽपि चान्ये द्विजश्रेष्ठा युञ्जाना वाममीश्वरम् ।
प्रपद्यन्ति महादेवं तद्भक्तास्तत्परायणा ॥३२
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्चस ।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥३३

सब रक्त वस्त्रों के धारण करने वाले और रक्त-माल्य तथा अनुलेपन से युक्त थे। वे रक्त भस्म से अनुलिप्त अङ्गों वाले रक्त मुख से युक्त तथा रक्त नेत्रों वाले थे ॥ २९ ॥ इसके पश्चात् एक सहस्र वर्षों के अन्त में वे ब्रह्मण्य महात्मा और व्यवसायी उस वामदेव ब्रह्म को ग्रहण करने वाले थे ॥ ३० ॥ लोकों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये और शिष्यों के हित की कामना से समस्त धर्म का उपदेश करके वे ब्राह्मण स्वयं पुनः अव्यय रुद्र स्वरूप महादेव में प्रविष्ट हो गये ॥ ३१ ॥ और भी जो अन्य श्रेष्ठ द्विज वाम ईश्वर के युञ्जान होते हुए उनके परम भक्त एवं उन ही में परायण रहने वाले थे वे महादेव को प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ वे सभी पापों से छुटकारा पाने वाले होकर विमल अर्थात् मल से रहित विशुद्ध होते थे और ब्रह्मवर्चस रुद्र लोक को जाते हैं जहाँ से फिर इस संसार में आवृत्ति दुर्लभ हुआ करती है ॥ ३३ ॥

॥ माहेश्वरावतार-योग ॥

एकत्रिंशत्तमः कल्पः पीतवासा इति स्मृतः ।
ब्रह्मा यत्र महातेजाः पीतवर्णत्वमागतः ॥१
ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारः पीतवस्त्रवान् ॥२

पीतगन्धानुलिप्ताङ्ग पीतमाल्यधरो युवा ।
पीतयज्ञोपवीतश्च पीतोष्णीषो महाभुज ।।३
त दृष्ट्वा ध्यानसयुक्त ब्रह्मा लोकेश्वर प्रभुम् ।
मनसा लोकधातार ववन्दे परमेश्वरम् ।।४
ततो ध्यानगतस्तत्र ब्रह्मा माहेश्वरी पराम् ।
अपश्यद्गा विरूपा च महेश्वरमुखच्युताम् ।।५
चतुष्पदा चतुर्वक्त्रा चतुर्हस्ता चतु स्तनीम् ।
चतुर्नेत्रा चतु शृङ्गी चतुर्दंष्ट्रा चतुर्मुखीम् ।
द्वात्रिंशल्लोकसयुक्तामीश्वरी सर्वतोमुखीम् ।।६
स ता दृष्ट्वा महातेजा महादेवी महेश्वरीम् ।
पुनराह महादेव सर्वदेवनमस्कृत ।।७

श्री वायुदेव ने कहा इक्कीसवाँ कल्प पीतवासा इस नाम से कहा गया है जहाँ महान् तेज वाला ब्रह्मा पीत वर्णता को प्राप्त हो गया है ।। १ ।। पुत्र के पाने की कामना से युक्त ध्यान करने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा के पीत-वस्त्र वाला तथा महान् तेज से युक्त कुमार प्रादुर्भूत हुआ था ।। २ ।। वह कुमार पीत गन्ध से अनुलिप्त अङ्ग वाला था और वह युवा पीत-माल्य के धारण करने वाला था । वह महान् भुजाओं वाला पीतवर्ण का ही यज्ञोपवीत धारण करने वाला था और पीत ही मस्तक उष्णीष अर्थात् शिरोवस्त्र पहिने हुए था ।। ३ ।। ब्रह्मा ने ध्यान में सयुक्त उस लोकेश्वर प्रभु को देखकर मन से लोक धाता परमेश्वर की वन्दना की ।। ४ ।। इसके अनन्तर वहाँ पर ध्यान में स्थित ब्रह्मा जी ने महेश्वर के मुखच्युत विरूप पर माहेश्वरी गौ को देखा ।। ५ ।। वह गौ चार पदो वाली, चार मुखो वाली चार ही हाथो से युक्त और चार स्तन वाली थी तथा उसके चार नेत्र, चार शृङ्ग, चार दाढ और चार मुख थे । वह बत्तीस लोकों से सयुक्त, सर्वतोमुखी और ईश्वरी थी ।। ६ ।। वह महान् तेज वाला उस महादेवी महेश्वरी को देखकर समस्त देवो के द्वारा नमस्कृत अर्थात् वन्दित महादेव फिर बोले ।। ७ ।।

मति स्मृतिर्बुद्धिरिति गायमान पुन पुन ।
एह्येहीति महादेवी सोत्तिष्ठत् प्राञ्जलिर्भृशम् ।।८

विश्वमावृत्य योगेन जगत्सर्वं वशीकुरु ।
अथ वा महादेवेन रुद्राणी त्वं भविष्यसि ।
ब्राह्मणानां हितार्थाय परमार्थ भविष्यसि ॥९
अथनां पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः ।
प्रददौ देवदेवेशश्चतुष्पादां महेश्वरीम् ।
ततस्तां ध्यानयोगेन विदित्वा परमेश्वरीम् ॥१०
ब्रह्मा लोकनमस्कार्यं प्रपद्य तां महेश्वरीम् ।
गायत्रीन्तु ततो रौद्रीं ध्यात्वा ब्रह्मा सुयन्त्रितः ॥११
इत्येतां वैदिकीं विद्यां रौद्रीं गायत्रीमर्पिताम् ।
जपित्वा तु महादेवीं रुद्रलोकनमस्कृताम् ।
प्रपन्नस्तु महादेवं ध्यानयुक्तेन चेतसा । १२
ततस्तस्य महादेवो दिव्यं योगं पुनः स्मृतः ।
ऐश्वर्यं ज्ञानसम्पत्तिं वैराग्यं च ददौ पुनः ॥१३
अथाट्टहासं मुमुचे भीषणं दीप्तमीश्वरः ।
ततोऽस्य चवतो वक्त्रात् प्रादुर्भूता कुमारकाः ॥१४

मति स्मृति और बुद्धि वह बारी हुए और बार बार वही गायन करते हुए महादेवी चाहते-चाहते यह कहते हुए यह अत्यन्त प्राञ्जलि होकर वहाँ स्थित हो गये ॥ ८ ॥ योग से विश्व को आवृत करके इस समस्त जगत् को वश में करो । अथवा आप महादेव के साथ रुद्राणी हो जाओगी । ब्राह्मणों के हित के लिये आप परमार्थ हो जाओगी ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर इसको ध्यान करने वाले पुत्र की इच्छा वाले परमेष्ठी को देव देवेश ने चार पादों वाली महेश्वरी को दे दिया । इसके पश्चात् उसको ध्यान के योग से परमेश्वरी जान लिया था ॥ १० ॥ लोकों के द्वारा नमस्कार करने के योग्य ब्रह्मा जी ने उस महेश्वरी के शरण में जाकर इसके पश्चात् रौद्री गायत्री का ध्यान कर ब्रह्मा जी सुयन्त्रित हो गये ॥ ११ ॥ इस प्रकार से इस वैदिकी विद्या अर्पित रौद्री गायत्री का जप करके रुद्र लोक के द्वारा नमस्कृत महादेवी भली भाँति ध्यान में संलग्न हो गये थे और फिर ध्यान से युक्त चित्त से महादेव की प्रपन्नता से प्राप्त हो गये थे

॥ १२ ॥ इसके अनन्तर महादेव ने पुनः दिव्य योग दिया और ऐश्वर्य, ज्ञान रूपी सम्पत्ति तथा वैराग्य प्रदान किया था ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त ईश्वर ने शोषण एवं दीप्त अट्टहास किया। इससे इनके सब और माहुर्भूत कुमार दीप्त हो गये ॥ १४ ॥

पीतमाल्याम्बरधरा पीतगन्धविलेपना।
पीतोष्णीषशिरस्काश्च पीतास्या पीतमूर्द्धजाः ॥१५
ततो वर्षसहस्रान्ते उषित्वा विमलौजस।
योगात्मानस्ततः स्नाता ब्राह्मणानां हितैषिण ॥१६
धर्मयोगबलोपेता ऋषीणां दीर्घसत्रिणाम्।
उपदिश्य तु ते योगं प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ॥१७
एवमेतेन विधिना प्रपन्ना ये महेश्वरम्।
अन्येऽपि नियतात्मानो ध्यानयुक्ता जितेन्द्रिया ॥१८
ते सर्वे पापमुत्सृज्य विरजा ब्रह्मवर्चस।
प्रविशन्ति महादेवं रुद्रन्ते त्वपुनर्भवा ॥१९
ततस्तस्मिन् गते कल्पे पीतवर्णे स्वयम्भुव।
पुनरन्य प्रवृत्तस्तु सितकल्पो हि नामत ॥२०
एकार्णवे तदा वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके।
स्रष्टुकाम प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखित ॥२१

वे सभी कुमार पीत माल्य तथा अम्बर के धारण करने वाले थे और पीतवर्ण की गन्ध के अनुलेपन से युक्त थे। इनके मस्तक पर उष्णीष अर्थात् शिरोवेष्टन वस्त्र था वह भी पीत था, पीत मुख से युक्त तथा पीत ही केशों वाले थे ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर एक सहस्र वर्षों के अन्त में निवास करके विमल ओज वाले, योगात्मा और स्नान किये हुए तथा ब्राह्मणों के हितों के चाहने वाले धर्म के तथा योग के बल से उपेत ने सत्र दीर्घ सत्र का यजन करने वाले ऋषियों को अपना उपदेश देकर रुद्र ईश्वर योग में प्रविष्ट हो गये ॥ १६-१७ ॥ इस प्रकार से जो इस विधि से महेश्वर को प्रसन्न हुए तथा अन्य लोग भी ध्यान से युक्त नियत आत्मा वाले जितेन्द्रिय थे वे सभी अपने पापों से छूटकर विरज

और ब्रह्मभवन में महाग्नि रूप में प्रवेश किया करते हैं और फिर उनका जन्म नहीं होता है ॥ १८ १९ । श्री वायुदेव ने कहा—इसके अनन्तर स्वयम्भू की लोहवर्ण वाले कल्प के समाप्त हो जाने पर फिर दूसरा कल्प प्रवृत्त हुआ जिसका नाम सित कल्प हुआ ॥ २ ॥ उस समय सहस्र दशमास समुद्र के दिव्य एक सहस्र वर्ष हो जाने पर प्रजा के सृजन की कामना करने वाले ब्रह्माजी परम दुःखित होते हुए चिन्ता करने लगे ॥ २१ ॥

तस्य चिन्तयमानस्य पुत्रकामस्य वै प्रभो ।
कृष्णः समभवद्वर्णो ध्यायतः परमेष्ठिनः ॥२२
अथापश्यन्महातेजाः प्रादुर्भूतं कुमारकम् ।
कृष्णवर्णं महावीर्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥२३
कृष्णाम्बरवरोष्णीषं कृष्णयज्ञोपवीतिनम् ।
कृष्णेन मौलिना युक्तं कृष्णस्रगनुलेपनम् ॥२४
स तं दृष्ट्वा महात्मानमघोरं घोरविक्रमम् ।
ववन्दे देवदेवेशं विश्वेशं कृष्णपिङ्गलम् ॥२५
प्राणायामपरः श्रीमान् हृदि कृत्वा महेश्वरम् ।
मनसा ध्यानसंयुक्तं प्रपन्नस्तु महेश्वरम् ।
अघोरेति ततो ब्रह्मा ब्रह्म एवानुचिन्तयन् ॥२६
एवं वै ध्यायतस्तस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
मुमोच भगवान् रुद्रः अट्टहासं महास्वनम् ॥२७
अथास्य पार्श्वतः कृष्णाः कृष्णस्रगनुलेपनाः ।
चत्वारस्तु महात्मानः सम्बभूवुः कुमारकाः ॥२८

इस तरह से चिन्ता करने वाले पुत्र की कामना से युक्त प्रभु परमेष्ठी का ध्यान में संलग्न रहते रहते ही कृष्णवर्ण हो गया ॥ २२ ॥ इसके अनन्तर महान् तेज वाले ने प्रादुर्भाव होने वाले कृष्णवर्ण से युक्त महान् वीर्य वाले अपने तेज से देदीप्यमान कुमार को देखा ॥ २३ ॥ वह कुमार काले वस्त्र और शिरोवेष्टन वाला था तथा कृष्ण उपवीत धारण कर रहा था । उसका मस्तक भी कृष्ण था तथा कृष्णवर्ण की माला और विलेपन से युक्त था ॥ २४ ॥ उस कुमार-महात्मा

वाले घोर मन्त्र से युक्त अमर उसने देखकर कृष्ण पिंगल पिंगलेश तथा देव देवेश उसको प्रणाम किया ॥ २५ ॥ प्राणायाम करने में परायण होकर धीमान् अपने हृदय में उसको स्थित करके ध्यान में संयुक्त यतियों के स्वामी महेश्वर को मन से प्रसन्न हुआ था और इसके पश्चात् यह अघोर है, ऐसा ब्रह्मा ने उस ब्रह्म का चिन्तन किया था ॥ २६ ॥ इस प्रकार से परमेष्ठी ब्रह्माजी के ध्यान करते हुए भगवान् रुद्र ने उस समय बहुत ही अधिक ध्वनि से युक्त महान् अट्टहास किया था ॥ २७ ॥ इसके पश्चात् इसके पार्श्व प्रदेश में कृष्णवर्ण वाले तथा कृष्णवर्ण की माला और विलेपन से युक्त महान् आत्मा वाले चार कुमारों का प्रादुर्भाव (जन्म) हुआ था ॥ २८ ॥

कृष्णाः कृष्णाम्बरोष्णीषा कृष्णास्याः कृष्णवाससः ।
ततश्चाट्टहासः सुमहान् हुङ्कारश्चैव पुष्कलः ।
नमस्कारश्च सुमहान् पुनः पुनरुदीरितः ॥२९
ततो वर्षसहस्रान्ते योगात्तत् पारमेश्वरम् ।
उपासित्वा महाभागाः शिष्येभ्यः प्रददुस्ततः ॥३०
योगेन योगसम्पन्नाः प्रविश्य मनसा शिवम् ।
अमलं निर्गुणं स्थानं प्रविष्टा विश्वमीश्वरम् ॥३१
एवमेतेन योगेन ये चाप्यन्ये द्विजातयः ।
स्मरिष्यन्ति विधानज्ञा गन्तारो रुद्रमव्ययम् ॥३२
ततस्तस्मिन् गते कल्पे कृष्णकल्पे भयानके ।
अन्यः प्रवर्त्तितः कल्पो विश्वरूपस्तु नामतः ॥३३
विनिवृत्ते तु संहारे पुनः सृष्टे चराचरे ।
ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः ।
प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती ॥३४
विश्वमाल्याम्बरधरं विश्वयज्ञोपवीतिनम् ।
विश्वोष्णीषं विश्वगन्धं विश्वस्थानं महाभुजम् ॥३५
अथ तं मनसा ध्यात्वा युक्तात्मा वै पितामहः ।
ववन्दे देवमीशानं सर्वेशं सर्वगं प्रभुम् ॥३६

वे चारों उत्पन्न होने वाले कुमार एकदम कृष्ण वर्ण वाले थे। उनके वस्त्र और शिरोवेष्टन भी कृष्ण थे कृष्ण वर्ण का ही उन सब का मुख था और कृष्ण माल्यधारी थे। उन्होंने सुमहान् अट्टहास और बहुत अधिक हुङ्कार एवं बार बार सुमहान् नमस्कार कर उपस्थान किया था ॥ २९ ॥ इसके अनन्तर जब एक सहस्र वर्ष समाप्त हो गये तब योग से उस परम ईश्वर की उपासना करके महाभाग वाले उन्होंने शिष्यों को दे दिया ॥ ३० ॥ योग से सम्पन्न होते हुए योग के बल से वे मन से अमल निर्गुण विश्व स्वरूप ईश्वर के स्थान में प्रविष्ट हो गये ॥ ३१ ॥ इस प्रकार से इसी योग से जो अन्य भी द्विजाति थे जो कि इस विधान के ज्ञाता थे वे अव्यय रुद्र के समीप में गमन करने वाले स्मरण करते ॥ ३२ ॥ इसके अनन्तर उस कृष्ण रूप वाले भयानक कल्प के समाप्त हो जाने पर फिर अन्य कल्प प्रवृत्त हुआ जिसका नाम विश्व रूप था ॥ ३३ ॥ संहार के निवृत्त हो जाने पर और फिर इस चराचर के सृष्ट हो जाने पर पुत्र की कामना रखने वाले परम ध्यान में संलग्न रहने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा के महान् नाद (ध्वनि) वाली विश्व रूपा सरस्वती प्रादुर्भूत हुई अर्थात् सरस्वती ने जन्म ग्रहण किया था ॥ ३४ ॥ विश्व माल्य को धारण करने वाले तथा विश्व के अम्बर के धारण करने वाले विश्व यज्ञोपवीत के धारी विश्व का उष्णीष धारण करने वाले विश्वगन्ध विश्व स्थान और महान् भुजा वाले उसका युक्तात्मा ब्रह्मा ने मन से ध्यान करके उस सर्वत्र गमन करने वाले सब के स्वामी ईशान देव की वन्दना की ॥ ३५, ३६ ॥

ओमीशान नमस्तेऽस्तु महादेव नमोऽस्तु ते।
एवं ध्यानगतं तत्र प्रणमन्तं पितामहम्।
उवाच भगवानीशः प्रीतोऽहं ते किमिच्छसि ॥ ३७
ततस्तु प्रणतो भूत्वा वाग्भिः स्तुत्वा महेश्वरम्।
उवाच भगवान् ब्रह्मा प्रीतः प्रीतेन चेतसा ॥३८
यदिदं विश्वरूपन्ते विश्वगं विश्वमीश्वरम्।
एतद् वेदितुमिच्छामि कथाय परमेश्वर ॥३९
यथा भगवती देवी चतुष्पदा चतुर्मुखी।

चतुःशृङ्गी चतुर्वक्त्रा चतुर्दंष्ट्रा चतुःस्तनी ॥४०
चतुर्हस्ता चतुर्नेत्रा विश्वरूपा कथं स्मृता ।
किन्नामधेया कोऽस्यात्मा किंवीर्या वापि कर्मतः ॥४१

हे महादेव ! श्रीमीशान आपके लिए नमस्कार है इस प्रकार से ध्यान में संलग्न होने वाले एवं प्रणाम करते हुए पितामह से भगवान् ईश ने कहा— मैं तुम से बहुत ही प्रसन्न हूँ, बतलाओ तुम क्या चाहते हो ? ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त प्रणत होकर और अपनी वाणियों से महेश्वर की बहुत कुछ स्तुति करके परम प्रसन्न चित्त से ब्रह्माजी ने कहा ॥ ३८ ॥ जो आपका यह विश्व रूप है, विश्व में सर्वत्र गमन करने वाला और इस विश्व का ईश्वर स्वरूप है इसे मैं जानना चाहता हूँ कि यह परमेश्वर कौन है ? ॥ ३९ ॥ और मैं यह भी ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखता हूँ कि यह भगवती चार पादों वाली तथा चार मुखों वाली, चार सींग, चार मुख, चार दाँत एवं चार स्तनों वाली देवी कौन है जिसके चार हाथ हैं चार नेत्र हैं। यह विश्वरूपा कैसे कही गई है ? इसका क्या नाम है, इसकी आत्मा कौन है इसका वीर्य (पराक्रम) क्या होता है और इसका कर्म क्या है, यह सभी मैं जानना चाहता हूँ ॥ ४०-४१ ॥

रहस्यं सर्वमन्त्राणां पावनं पुष्टिवर्द्धनम् ।
शृणुष्वेतत्परं गुह्यमादिसर्गे यथा तथम् ॥४२
अयं यो वर्त्तते कल्पो विश्वरूपस्त्वसौ स्मृतः ।
यस्मिन् भवादयो देवा षड्विंशन्मनवः स्मृताः ॥४३
ब्रह्मस्थानमिदं चापि यदा प्राप्तं त्वया विभो ।
तदाप्रभृति कल्पश्च त्रयस्त्रिंशत्तमो ह्ययम् ॥४४
शतं शतसहस्राणामतीता ये स्वयम्भुवः ।
पुरस्तात्तव देवेश तान्शृणुष्व महामुने ॥४५
आनन्दस्तु स विज्ञेय आनन्दस्ते महालयः ।
शालङ्कायनगोत्रतपसा मम पुत्रस्त्वमागतः ॥४६
त्वयि योगश्च साङ्ख्यश्च तपो विद्याविधिः क्रिया ।

ऋतं सत्यञ्च यद्ब्रह्म अहिंसा सन्ततिक्रमा ॥४७
ध्यानं ध्यानवपु शान्तिर्विद्याऽविद्यामतिर्धृति ।
कान्ति शान्ति स्मृतिर्मेधा लज्जा शुद्धि सरस्वती ।
तुष्टि पुष्टि क्रिया चैव लज्जा क्षान्ति प्रतिष्ठिता ॥४८
षड्विंशत्तद्गुणा ह्येषा द्वात्रिंशाक्षरसंज्ञिता ।
प्रकृतिं विद्धि तां ब्रह्म त्वत्प्रसूतिं महेश्वरीम् ॥४९

महेश्वर ने कहा—यह समस्त मन्त्रों का रहस्य है और यह पावन तथा पुष्टि के वर्धन करने वाला है। तुम अब मुख से इस परम गोपनीय विषय को सुनो जो कि आदि युग में हुआ था ॥ ४२ ॥ जो यह कल्प इस समय वर्तमान है यह विश्वरूप इस नाम वाला कहा गया है जिसमें ब्रह्मादि देव छब्बीस मनु कहे गये हैं ॥ ४३ ॥ हे विभो ! यह ब्रह्म-स्थान है जब कि आपने इसे प्राप्त किया है। तब से ही लेकर यह ईशसंज्ञक कल्प कहा गया है ॥ ४४ ॥ हे देवेश ! आपके सम्मुख ही जो सैकड़ों और सहस्रों स्वयम्भू बीत गये उनकी कथा बतलाता हूँ। उस समय तुम्हारा नाम आनन्द था ॥ ४५ ॥ तुम्हारा ब्रह्मत्व भी आनन्द ही होता है। सावर्ण्य गोत्र तप से तुम मेरे पुत्रता को प्राप्त हुए हो ॥ ४६ ॥ तुममें योग सांख्य तप विद्या विधि क्रिया ऋत सत्य जो ब्रह्म है यह अहिंसा सन्तति क्रम प्रतिष्ठित हैं ॥ ४७ ॥ ध्यान ध्यान का वपु शान्ति विद्या अविद्या मति धृति कान्ति शान्ति स्मृति मेधा लज्जा शुद्धि सरस्वती तुष्टि पुष्टि क्रिया लज्जा और क्षान्ति ये सब तुम में प्रतिष्ठित हैं ॥ ४८ ॥ ये छब्बीस गुण बत्तीस अक्षरों की संज्ञा से युक्त हैं। हे ब्रह्मन् ! इनको आपकी प्रसूति महेश्वरी प्रकृति समझना चाहिए ॥ ४९ ॥

तथा भगवती देवी तत्प्रसूतिः स्वयम्भुव ।
चतुर्मुखी जगद्योनि प्रकृतिर्गौ प्रकीर्तिता ।
प्रधानं प्रकृति चैव यदाहुस्तत्त्वचिन्तका ॥५०
अजामेनां लोहितां शुक्लकृष्णां विश्वं सम्प्रसृजमानां सुरूपाम् ।
अजोऽहं वै बुद्धिमान् विश्वरूपां गायत्रीं गां विश्वरूपां हि बुद्धा ॥५१
एवमुक्त्वा महादेव अट्टहासमथाकरोत् ।

वल्गितास्फोटितञ्चैव कहाकहनदत्तथा ॥५२
ततोऽस्य पार्श्वतो दिव्याः सर्वरूपाः कुमारकाः ।
जटी मुण्डी शिखण्डी च अर्द्धमुण्डश्च जज्ञिरे ॥५३
ततस्ते तु यथोक्तेन योगेन सुमहौजस ।
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु उपासित्वा महेश्वरम् ॥५४
धर्मोपदेशं नियतं कृत्वा योगमयं दृढम् ।
शिष्टानां नियतात्मानः प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ॥५५

वह यह भगवती देवी स्वयम्भू की तन्मूर्ति है और यह चतुर्मुखी, जगद्योनि, प्रकृति और गौ कही गई है। तत्वों के चिन्तन करने वाले पुरुष इसको प्रधान और प्रकृति कहते हैं ॥ ५० ॥ बुद्धिमान् 'मैं अज हूँ' यह अजा, लोहिता, कृष्ण शुक्ला विश्व का सम्भजन करने वाली सुरूपा, विश्वरूप वाली, गौ और गायत्री जानी गई है ॥ ५१ ॥ महादेव ने इस प्रकार से कहकर अट्टहास किया और वल्गित एवं स्फोटित तथा वाला कहाकहे की ध्वनि की ॥ ५२ ॥ इसके अनन्तर उसके पार्श्व देश में जटी, मुण्डी शिखण्डी और अर्धमुण्ड दिव्य सर्वरूप कुमार उत्पन्न हुए ॥ ५३ ॥ इसके पश्चात् महान् ओज से युक्त यथोक्त योग के द्वारा उन्होंने दिव्य एक सहस्र वर्ष तक महेश्वर की उपासना की ॥ ५४ ॥ फिर योगमय नियत दृढ धर्मोपदेश करके शिष्टों में नियत आत्मा वाले ईश्वर रुद्र में प्रविष्ट हो गये ॥ ५५ ॥

॥ शार्व-स्तोत्र ॥

चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनयो विदुः ।
कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं चेति चतुर्युगम् ॥१
एतत्सहस्रपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणः स्मृतम् ।
यामाद्यास्तु गणाः सप्त रोमवन्तश्चतुर्दश ॥२
सशरीरा श्रयन्ते स्म जनलोकं सहानुगाः ।
एवं देवेष्वतीतेषु महर्ल्लोकाज्जनं तपः ॥३
मन्वन्तरेष्वतीतेषु देवाः सर्वे महौजसः ।
ततस्तेषु गतेषूर्द्ध्वं सायुज्यं कल्पवासिनाम् ॥४

समेत्य देवस्तो देवा प्राप्ते सङ्कालने सदा ।
महर्लोकं परि यज्य गणास्ते च चतुर् दा ॥५
भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरान्तेषु च तथा ।
शून्येषु तेषु लोकेषु महान्तेषु भुवादिषु ।
देवेष्वथ गतेषूर्द्ध कल्पवासिषु च जनम ॥६
तत्सहत्या ततो ब्रह्मा देवर्षिगणदानवान् ।
संस्थापयति च सर्वान् दाहवृष्ट्या युगक्षये ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—मुनिगण भारतवर्ष में चार युग कहते हैं कृत त्रेता द्वापर और तिष्य ये चार युग हैं ॥ १ ॥ इन युगों का एक सहस्र वर्ष एक हो १ है तब ब्रह्मा का एक दिन होता है । यामादि साथ गण और औम वाले चौदह शरीर एवं तनुओं के साथ जनलोक का सेवन करते थे । इस प्रकार से देवों के व्यतीत हो जाने पर महर्लोक से जन और फिर तपलोक का सेवन करते हैं ॥ २ ३ ॥ मन्वन्तरों के व्यतीत हो जाने पर महान् योग से युक्त समस्त देव होते हैं । इसके पश्चात् कल्पवासियों में उनके क्रम सायुज्य को प्राप्त हो जाने पर वे देव देवों के एकत्रित होकर उस समय सङ्कालन प्राप्त हु ने पर वे चौदहगण महर्लोक का परित्याग कर देते हैं ॥ ४ ५ ॥ उस समय अवशिष्ट भूतादि स्थावरान्त में शून्य लोक महान् भुवादि और देव को कि कल्पवासी व अब न ग मे जनलोक में चले जाने पर इसके उपरान्त उस संहृति से ब्रह्मा देव ऋषिगण और दानवों को संस्थापित करते हैं और युग के क्षय में सब की दाह वृष्टि से सम्भावना किया करते हैं ॥ ६ ७ ।

सोऽतीतः सप्तमः कल्पो मया वः परिकीर्तितः ।
समुद्र सप्तभिर्गर्विमेकीभूतैमहार्णवम् ।
आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम् ॥८
मार्यकार्णवे तस्मिन् शङ्खचक्रगदाधरः ।
जीमूताभोऽम्बुजाक्षश्च किरीटी श्रीपतिर्हरिः ॥९
नारायणमुखोद्गीर्णः सोऽष्टम पुरुषोत्तमः ।
अष्टबाहुर्महावक्षा लोकानां योनिरुच्यते ।

किमप्यचिन्त्य युक्तात्मा योगमास्थाय योगवित् ॥१०
फणासहस्रकलितं तमप्रतिमवर्चसम् ।
महाभोगपतेर्भोगमन्वास्तीर्य महोच्छ्रयम् ।
तस्मिन्महति पर्यङ्के शेते वै कनकप्रभे ॥११
एवं तत्र शयानेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
आत्मारामेण क्रीडार्थं सृष्टं नाभ्यां तु पङ्कजम् ॥१२
शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यवर्चसम् ।
वज्रदण्डं महोत्सेधं लीलया प्रभविष्णुना ॥१३
तस्यैवं क्रीडमानस्य समीपं देवमीढुषः ।
हेमब्रह्माण्डजो ब्रह्मा रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ।
चतुर्मुखो विशालाक्षः समागम्य यदृच्छया ॥१४

जो सातवाँ कल्प व्यतीत हो गया वह मैंने तुमको बतला दिया है। सात समुद्र जो गाढ़ एकीभूत महार्णव हैं उनसे एक अतिघोर तमोमय विभाग से रहित अर्णव हो गया था ॥ ८ ॥ उस एक समुद्र में मैंने शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले, मेघ की आभा के सदृश आभा से युक्त, कमल के समान नेत्रों वाले, किरीटधारी, लक्ष्मी के स्वामी हरि को देखा जो कि नारायण के मुख से उद्गीर्ण हुए और वह आठवें पुरुषोत्तम थे। उनके आठ भुजाएँ थीं, महान् चौड़ा वक्षःस्थल था और जो समस्त लोकों की योनि अर्थात् उद्भव स्थान कहे जाते हैं। योग के वेत्ता युक्त आत्मा वाले किसी अचिन्त्य का योग में स्थित होकर ध्यान करते थे ॥ ९ १० ॥ एक सहस्र फनों से युक्त अप्रतिम वर्चस वाले महाभोगपति के उस महान् उच्छ्रय वाले भोग को फैलाकर उस कनक के समान प्रभा वाले महान् पर्यङ्क पर शयन करते हैं ॥ ११ ॥ इस प्रकार से वहाँ शयन करने वाले प्रभविष्णु विष्णु ने जो कि अपने आप में रमण करने वाले हैं उनने केवल क्रीडा के लिये अपनी नाभि में एक कमल नाल की सृष्टि की थी॥१२॥ वह पङ्कज नाल सौ योजन के विस्तार वाला तथा तरुण सूर्य के समान वर्चस वाला था, इसका वज्र के सदृश दण्ड तथा इसकी महान् ऊँचाई थी, इसकी रचना प्रभविष्णु ने लीला से ही की थी ॥ १३ ॥ इस तरह क्रीडा करने वाले

समेत्य देवस्ते देवा प्राप्ते सङ्कालन तदा ।
महर्लोकं परित्यज्य गणास्ते च चतुर्दश ॥५
भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरान्तेषु च तदा ।
शून्येषु तेषु लोकेषु महान्तेषु भुवादिषु ।
देवेष्वथ गतेषूर्ध्वं कल्पवासिषु च जनम् ॥६
तत्संहृत्य ततो ब्रह्मा देवर्षिगणदानवान् ।
संस्थापयति च सर्वान् दाहवृष्ट्या युगक्षये ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—मुनिगण ! भारतवर्ष में चार युग कहते हैं कृत त्रेता द्वापर और तिष्य ये चार युग हैं ॥ १ ॥ इन युगों का एक सहस्र जब तक हो । है तब ब्रह्मा का एक दिन होता है । यामादि सात गण और गोत्र वाले चौदह शरीर एवं अनुगों के साथ जनलोक का सेवन करते थे । इस प्रकार से देवों के अतीत हो जाने पर महर्लोक से जन और फिर तपलोक का सेवन करते हैं ॥ २-३ ॥ मन्वन्तरों के व्यतीत हो जाने पर महान् लोक से युक्त समस्त देव होते हैं । इसके पश्चात् कल्पवासियों में उनके ऊर्ध्व सायुज्य को प्राप्त हो जाने पर वे देव देवों के एकत्रित होकर उस समय सङ्कालन प्राप्त होने पर वे चौदहगण महर्लोक का परित्याग कर देते हैं ॥ ४-५ ॥ उस समय अवशिष्ट भूतादि स्थावरान्त में शून्य लोक महान् भुवादि और देव कोटि कल्पवासी के ऊर्ध्व भाग में जनलोक में चले जाने पर इसके उपरान्त वहाँ महर्षि से ब्रह्मा देव ऋषिगण और दानवों को संस्थापित करते हैं और युग के क्षय में सब की दाह वृष्टि से संस्थापना किया करते हैं ॥ ६-७ ॥

योऽतीतः सप्तमः कल्पो मया व परिकीर्तितः ।
समुद्रः सप्तभिर्गाढैरेकीभूतैर्महार्णवः ।
आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम् ॥८
मायर्यकार्णवे तस्मिन् शङ्खचक्रगदाधरः ।
जीमूताभोऽम्बुजाक्षश्च किरीटी श्रीपतिर्हरिः ॥९
नारायणमुखोद्गीर्णः सोऽष्टमः पुरुषोत्तमः ।
अष्टबाहुर्महोरस्को लोकानां योनिरुच्यते ।

किमप्यचिन्त्यं युक्तात्मा योगमास्थाय योगवित् ॥१०
फणासहस्रकलितं तमप्रतिमवर्चसम् ।
महाभोगपतेर्भोगमन्वास्तीर्य महोच्छ्रयम् ।
तस्मिन्महति पर्यङ्के शेते वै कनकप्रभे ॥११
एवं तत्र शयानेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
आत्मारामेण क्रीडार्थं सृष्टं नाभ्यां तु पङ्कजम् ॥१२
शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यवर्चसम् ।
वज्रदण्डं महोत्सेधं लीलया प्रभविष्णुना ॥१३
तस्यैवं क्रीडमानस्य समीपं देवमीढुषः ।
हेमगर्भाण्डजो ब्रह्मा रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ।
चतुर्मुखो विशालाक्षः समागम्य यदृच्छया ॥१४

जो सातवाँ कल्प व्यतीत हो गया वह मैंने तुमको बतला दिया है। सात समुद्र जो गाढ़ एकीभूत महार्णव हैं उनसे एक अतिघोर तमोमय विभाग से रहित अर्णव हो गया था ॥ ८ ॥ उस एक समुद्र में मैंने शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले, मेघ की आभा के सदृश आभा से युक्त, कमल के समान नेत्रों वाले, किरीटधारी, लक्ष्मी के स्वामी हरि को देखा जो कि नारायण के मुख से उद्गीर्ण हुए और वह आठवें पुरुषोत्तम थे। उनके आठ भुजाएँ थीं, महान् चौड़ा वक्षःस्थल था और जो समस्त लोकों की योनि अर्थात् उद्गम स्थान कहे जाते हैं। योग के वेत्ता युक्त आत्मा वाले किसी अचिन्त्य का योग में स्थित होकर ध्यान करते थे ॥ ९ १० ॥ एक सहस्र फणों से युक्त अप्रतिम वर्चस वाले महाभोगपति के उस महान् उच्छ्रय वाले भोग को फैलाकर उस कनक के समान प्रभा वाले महान् पर्यङ्क पर शयन करते हैं ॥ ११ ॥ इस प्रकार से वहाँ शयन करने वाले प्रभविष्णु विष्णु ने जो कि अपने आप में रमण करने वाले हैं उनने केवल क्रीड़ा के लिये अपनी नाभि में एक कमल नाल की सृष्टि की थी ॥ १२ ॥ वह पङ्कज नाल सौ योजन के विस्तार वाला तथा तरुण सूर्य के समान वर्चस वाला था, इसका वज्र के सदृश दण्ड तथा इसकी महान् ऊँचाई थी, इसकी रचना प्रभविष्णु ने लीला से ही की थी ॥ १३ ॥ इस तरह क्रीड़ा करते वाले

उनके समीप में शेष की उपासना करने वाले हैं। ब्रह्माण्ड से उत्पन्न सुवर्ण के समान वर्ण वाले इन्द्रियों से परे ब्रह्माजी वहाँ पर आये जो कि चार मुखों से युक्त विशाल नेत्रों वाले थे ॥ १४ ॥

श्रिया युक्तेन मध्येन सुप्रभेण सुगन्धिना ।
तं क्रीडमानं पद्मेन दृष्ट्वा ब्रह्मा स भेजिवान् ॥१५
स विस्मयमथागम्य शस्य सम्पूर्णया गिरा ।
प्रोवाच को भवान् शेते आश्रितो मध्यमम्भसाम् ॥१६
अथ तस्याच्युतः श्रुत्वा ब्रह्मणस्तु शुभं वचः ।
उदतिष्ठत पर्यङ्काद्विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥१७
प्रत्युवाचोत्तरं चैव क्रियते यच्च किञ्चन ।
द्यौरन्तरिक्षं भूतञ्च परं पदमहं प्रभुः ॥१८
तमेवमुक्त्वा भगवान् विष्णुः पुनरथाब्रवीत् ।
कस्त्वं खलु समायातः समीपं भगवान् कुतः ।
कुतश्च भूयो गन्तव्यं कुत्र वा ते प्रतिश्रयः ॥१९
को भवान् विश्वमूर्तिस्त्वं कर्त्तव्यं किञ्च ते मया ।
एवं ब्रुवाणं वैकुण्ठं प्रत्युवाच पितामहः ॥२०
यथा भवांस्तथा चाहमादिकर्त्ता प्रजापतिः ।
नारायणसमाख्यातः सर्वं वै मयि तिष्ठति ॥२१

ब्रह्माजी ने श्री से युक्त सुन्दर प्रभावाले सुगन्ध से वासित नवीन कमल से क्रीडा करते हुए उनका दर्शन कर उनकी सेवा करना आरम्भ कर दिया ॥१५॥ उनके उपरान्त वह धन्य व आश्चर्य में भरकर शस्य सम्पूर्ण वाणी से बोले इस जल के मध्य में आश्रय लेकर शयन करने वाले आप कौन हैं? ॥१६॥ इसके अनन्तर भगवान् अच्युत उन ब्रह्माजी के इस शुभवचन स्वरूप वचन को सुन कर विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाले होते हुए पर्यङ्क से उठ बैठे ॥१७। और उन्होंने ब्रह्माजी के प्रश्न का उत्तर दिया कि जो कुछ भी किया जाता है और अन्तरिक्ष (आकाश) एवं भूत उन सबमें मैं परम पद प्रभु हूँ ॥१८॥ तब ब्रह्माजी से इस तरह भगवान् विष्णु ने कह कर फिर वे यह बोले आप कौन हैं

जो यहाँ पर आये हो और आप कहाँ से आये हैं ? यहाँ आपका आगमन किस लिये हुआ है और फिर कहाँ जाना है तथा आपका आश्रय स्थान कौन सा है ? ॥१९॥ आप विश्वमूर्ति कौन हैं और मुझ से आप को क्या करना है ? इस प्रकार से बोलने वाले भगवान् विष्णु को पितामह ब्रह्माजी ने उत्तर दिया ॥२०॥ जिस प्रकार आप हैं वैसे ही आदि कर्त्ता प्रजापति मैं भी हूँ । मुझे नारायण इस नाम से कहा गया है और यह सभी कुछ मेरे अन्दर ही रहता है अर्थात् स्थिति प्राप्त करता हूँ ॥२१॥

सविस्मयं परं श्रुत्वा ब्रह्मणा लोककर्तृणा ।
सोऽनुज्ञातो भगवता वैकुण्ठो विश्वसम्भवः ॥२२
कौतूहलान्महायोगी प्रविष्टो ब्रह्मणो मुखम् ।
इमानष्टादशद्वीपान् ससमुद्रान् सपर्वतान् ।
प्रविश्य स महातेजाश्चातुर्वर्ण्यसमाकुलान् ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् सप्तलोकान् सनातनान् ॥२३
ब्रह्मणस्तूदरे दृष्ट्वा सर्वान् विष्णुर्महायशाः ।
अहोऽस्य तपसो वीर्यं पुनः पुनरभाषत ॥२४
पर्यटन् विविधान् लोकान् विष्णुर्नानाविधाश्रमान् ।
ततो वर्षसहस्रान्तेनान्तं हि ददृशे तदा ॥२५
तदाऽस्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रनिकेतनः ।
अजातशत्रुर्भगवान् पितामहमथाब्रवीत् ॥२६
भगवन् आदि मध्यञ्च अन्तं कालदृशोर्न च ।
नाहमन्तं प्रपश्यामि ह्युदरस्य तवानघ ॥२७
एवमुक्त्वाब्रवीद्भूयः पितामहमिदं हरिः ।
भवानप्येवमेवाद्य ह्युदरं मम शाश्वतम् ।
प्रविश्य लोकान् पश्येतानतौपम्यान् द्विजोत्तम ॥२८

लोकों के कर्त्ता ब्रह्माजी ने परम आश्चर्य के साथ इस को सुन कर भगवान् ने विश्व सम्भव भगवान विष्णु को अनुज्ञात किया ॥२२॥ कौतूहल से वह महान् योगी ब्रह्मा के मुख में प्रविष्ट हो गये । उस महान् तेज वाले ने प्रवेश

करके समुद्रों और पर्वतों के सहित इन अठारह द्वीपों को आनुपूर्व्य से यथा क्रम एवं सनातन ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त सात लोकों को सबको ब्रह्मा के उदर में देखकर महान तप वाले विष्णु ने मन में सोचा हो हो इसके तप का कितना आश्चर्य पूर्ण पराक्रम है ? इस के अनन्तर वे बार बार बोले ।।२३ २४।। विष्णु अनेक लोक और विविध भांति के आश्रमों का पर्यटन करते रहे पर एक सहस्र वर्षों के अन्त में भी उनका अन्त उन्होंने नहीं देखा ।।२५।। तब उस समय इनके मुख से पन्नगेन्द्रारि केतन अर्थात् पन्नग सर्पों के शिरोमणि के शत्रु गरुड़ के केतन वाले ने निकल कर, अजात शत्रु अर्थात् ऐसे जिन का कोई शत्रु उत्पन्न ही न हुआ हो भगवान इसके अनन्तर पितामह ब्रह्माजी से बोले ।।२६।। हे अनघ ? हे भगवान ? आदि मध्य और अन्तकाल और दिशा का अन्त तथा आपके उदर का अन्त मैं नहीं देख पा रहा हूँ ।।२७।। इस प्रकार से कह कर भगवान् हरि फिर पितामह से यह बोले हे सुरोत्तम ! ऐसे ही आप भी मेरे शाश्वत उदर में प्रवेश करके उपमा से रहित इन लोकों को देखें ।।२८।।

मन प्रह्लादनी वाणी श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च ।
श्रीपतेरुदरं भूय प्रविवेश पितामह ।।२९
तानेव लोकान् गर्भस्थ पश्यन् सोऽचिन्त्यविक्रम ।
पर्य टित्वादिदेवस्य ददर्शान्तं न वै हरे ।।३०
ज्ञात्वागमन्तु स पितामहस्य द्वाराणि सर्वाणि पिधाय विष्णु ।
विभुमन कर्त्तु मियेष चाशु सुखं प्रसुप्तोऽस्मि महाजलौघे ।।३१
ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितान्युपलक्ष्यते ।
सूक्ष्मं कृत्वात्मनो रूपं नाभ्यां द्वारमविन्दत ।।३२
पद्मसूत्रानुमार्गेण ह्यनुगम्य पितामह ।
उज्जहारात्मनो रूपं पुष्करच्चतुराननं ।
विरराजारविन्दस्थ पद्मगर्भसमद्युति ।।३३
एतस्मिन्नन्तरे ताभ्यामेकैकस्य तु कात्स्न्यं श ।
प्रवर्त्त माने संहर्षे मध्ये तस्यार्णवस्य तु ।।३४
ततो ह्यपरिमेयात्मा भूतानां प्रभुरीश्वर ।

शूलपाणिर्महादेवो हैमचीराम्बरच्छद ।
आगच्छद् यत्र सोऽनन्तो नागभोगपतिर्हरिः ॥३५

उनकी अनेकों प्रसन्नता प्रदान करने वाली इस वाणी को सुनकर तथा उसका भली भाँति अभिनन्दन करके पितामहने श्रीपति के उदर में प्रवेश किया था ॥२६॥ चिन्तन करने के योग्य विक्रम वाले भगवान् हरि ने गर्भ में स्थित होते हुए उन्हीं लोकों को देखकर और चारों ओर पर्यटन करके आदि देव हरि का अन्त उन्होंने नहीं देखा ॥३०॥ उन पितामह के आगम को जान कर भगवान् विष्णु ने समस्त द्वारों को बन्द करके विभुने मन में यह करने की इच्छा की कि शीघ्र ही सुख पूर्वक इस महान् जलोध में शयन कर जाऊ ॥३१॥ इसके उपरान्त ब्रह्माजी को समस्त द्वार पिहित दिखलाई दिये तब ब्रह्माजी ने अपने स्वरूप को सूक्ष्म बनाकर नाभि में द्वार प्राप्त किया था ॥३२॥ उस पितामह ने कमल सूत्र के अनुमार्ग के द्वारा अनुगमन करके फिर चतुरानन ने कमल से अपने रूप का उद्धार किया था। उस अरविन्द में स्थित होकर पद्म के गर्भ के समान द्युति वाले ब्रह्मा विशेष रूप से शोभित हुए ॥३३॥ इस बीच में उन दोनों में एक-एक को पूर्ण तथा हर्ष के वशवर्ती हो जाने से उस समुद्र के मध्य में पूर्ण समध्याप हुआ था ॥३४॥ श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर अपरिमेय आत्मा वाले प्राणियों के स्वामी ईश्वर हैमचीराम्बर को धारण करने वाले शूल हाथ में लिये हुए महादेव वहाँ आगये जहाँ कि नागभोग के पति वह अनन्त हरि वर्त्तमान थे ॥३५॥

शीघ्रं विक्रमतस्तस्य पद्भ्यामत्यर्थपीडिता ।
उद्भूतास्तूर्णमाकाशे पृथुलास्तोयबिन्दवः ।
अत्युष्णाश्चातिशीताश्च वायुस्तत्र ववौ भृशम् ॥३६

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं ब्रह्मा विष्णुमभाषत ।
अबिन्दवो हि स्थूलोष्णा कम्पते चाम्बुजं भृशम् ।
एतं मे संशयं ब्रूहि किं वान्यत् त्वं चिकीर्षसि ॥३७

एतदेवंविधं वाक्यं पितामहमुखोद्भवम् ।
श्रुत्वाप्रतिमकर्मा हि भगवानसुरान्तकृत् ॥३८
किन्तु खल्वेन मे नाभ्यां भूतमन्यत्कृतालयम् ।
वदसि प्रियमत्यर्थं विप्रियेऽपि च ते मया ॥३९
इत्येवं मनसा ध्यात्वा प्रत्युवाचेदमुत्तरम् ।
किन्न्वत्र भगवानद्य पुष्करे जातसम्भ्रम ॥४०
किं मया भवद् कृतं देव यन्मां प्रियमनुत्तमम् ।
भाषसे पुरुषव्याघ्र किमर्थं ब्रूहि तत्त्वतः ॥४१
एवं ब्रुवाणं देवेशं लोकयात्रान्तु तत्त्वगाम् ।
प्रत्युवाचाम्बुजाभाक्षो ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः ॥४२

नाभि निकलन करने वाले उनके पवों से अत्यन्त पीड़ित आकाश में मोटी मल की बिन्दु उत्पन्न हुई थी । मैं अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त शीतल की । यहाँ पर वायु बहुत ही अधिक चलने लगी ॥ ३६ ॥ तब ब्रह्मा जी ने महान् आश्चर्य देखकर भगवान विष्णु से कहा—ये परम स्थूल एवं उष्ण जल की बूँदें इस कमल को बहुत ही अधिक कंपाती हैं। आप मेरे इस संशय को बतलाइये आप और क्या करना चाहते हैं ? ॥ ३७ ॥ पितामह के मुख से उद्भूत इस वाक्य को सुनकर असुरों के अन्त करने वाले अप्रतिम अर्थात् अनुपम कर्म करने वाले भगवान बोले ॥ ३८ ॥ निश्चय ही मेरी इस नाभि में क्या अन्य प्राणी आलय करने वाले हैं ऐसा कहते हैं । मेरे द्वारा तुम्हारे अत्यन्त विप्रिय होने पर भी इसे अत्यन्त प्रिय ही कहते हैं ॥ ३९ ॥ इस प्रकार से मन से ध्यान करके यह उत्तर बोले । क्या यहाँ पर आप इस कमल में सम्भ्रम वाले हो गये हैं ॥ ४० ॥ हे देव ! मैंने जो किया है हे पुरुष व्याघ्र ! जो अनुत्तम प्रिय को मुझे बोल रहे हैं आप किस लिये ऐसा कर रहे हैं ठीक-ठीक मुझे बतलाइये ॥ ४१ ॥ इस तरह बोलने वाले देवेश से अम्बुज की आभा वाले वेदों के निधि प्रभु ब्रह्मा जी ने तत्व वाली जो लोक यात्रा थी उसे बतलाया था ॥४२॥

योऽसौ तवोदरं पूर्वं प्रविष्टोऽहं त्वयेच्छया ।
यथा ममोदरे लोकाः सर्वे दृष्टास्त्वया प्रभो ।
तथैव दृष्टाः कात्स्न्र्येन मया लोकास्तवोदरे ॥४३

ततो वर्षसहस्रान्ते उपावृत्तास्य मेऽनघ ।
नूनं मत्सरभावेन मां वशीकर्तुमिच्छता ।
आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि त्वया पुनः ॥४४
ततो मया महाभाग संचिन्त्य स्वेन चेतसा ।
लब्धो नाभ्यां प्रवेशस्तु पद्मसूत्राद्विनिर्गमः ॥४५
माभूत्ते मनसोऽल्पोऽपि व्याघातोऽथ कथंचन ।
इत्येषानुगतिर्विष्णो कार्याणामौपसर्गिकी ॥४६
यन्मयानन्तरं कार्यं मयाऽध्यवसितं त्वयि ।
त्वत्प्रबाधितुकामेन क्रीडापूर्वं यदृच्छया ।
आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि मया पुनः ॥४७
न तेऽन्यथावमन्तव्यो मान्यः पूज्यश्च मे भवान् ।
सर्वं मर्षय कल्याण यन्मयाऽपकृतं तव ।
तस्मान्मयोच्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो ॥४८
नाहं भवन्तं शक्नोमि सोढुं तेजोमयं गुरुम् ।
स चोवाच वरं ब्रूहि पद्मादवतराम्यहम् ॥४९

आपकी इच्छा से जो मैंने पहिले आप के उदर में प्रवेश किया था तब मैंने आपके उदर में पूर्ण रूप से, उसी रूप से समस्त लोक देखे जैसे कि हे प्रभो ! आपने मेरे उदर में सम्पूर्ण लोक देखे थे ॥ ४३ ॥ हे अनघ ! फिर एक सहस्र वर्ष पर्यन्त इधर-उधर वहाँ पर पर्यटन करने वाले मुझ को मात्सर्य के भाव से वश में करने की इच्छा वाले आपने शीघ्र ही समस्त द्वार घटित कर दिये अर्थात् बन्द कर दिये थे ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! इसके अनन्तर मैंने अपने चित्त से सोच-विचारकर नाभि में प्रवेश प्राप्त किया जिससे कि पद्मसूत्र से मेरा फिर विनिर्गम हुआ ॥ ४५ ॥ आपके मन को थोड़ा-सा भी किसी प्रकार का व्याघात न होवे, यह विष्णु के कार्यों की औपसर्गि की अनुगति होती है ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर जो मुझे करना चाहिए मैंने आप में अध्यवसित (निश्चित) कर लिया है । तुमको कोई भी बाधा न करने की इच्छा वाले मैंने यह इच्छा से क्रीडा-पूर्वक शीघ्र समस्त द्वार पुनः घटित कर दिये ॥ ४७ ॥ आपको इस विषय में

कुछ अन्य प्रकार की बात नहीं समझनी चाहिए। आप मेरे मान्य एवं पूज्य करने के योग्य होते हैं। हे कल्याण स्वरूप! आपका जो भी मैंने कुछ अपकार किया है उसे क्षमा कीजिये। हे प्रभो! इसलिये मेरे द्वारा कहे हुए आप पद्म से अवतरण करें॥ ४८॥ मैं तेजपूर्ण गुरु आपको सहन नहीं कर सकता हूँ। इस पर वह बोले—वर माँग लो मैं पद्म से अवतरण करता हूँ॥ ४९॥

पुत्रो भव ममारिघ्न मुदं प्राप्स्यसि शोभनम्।
सत्य धनो महायोगी त्वमीड्य प्रणवात्मक॥५०
अद्यप्रभृति सर्वेश श्वेतोष्णीषविभूषण।
पद्मयोनिरितीत्येवं ख्यातो नाम्ना भविष्यसि।
पुत्रो मे त्वं भव ब्रह्मन् सर्वलोकाधिप प्रभो॥५१
ततः स भगवान् ब्रह्मा वरं गृह्य किरीटिन।
एवं भवतु चेत्युक्त्वा प्रीतात्मा गतमत्सर॥५२
प्रत्यासन्नमथायातं बालार्काभं महाननम्।
भूतमत्यद्‌भुतं दृष्ट्वा नारायणमथाब्रवीत्॥५३
अप्रमेयो महावक्त्रो दंष्ट्री व्यस्तशिरो रुहः।
दशबाहुस्त्रिशूलाङ्को नयनैर्विश्वतोमुखः॥५४
लोकप्रभुः स्वयं साक्षाद्विकृतो मुञ्जमेखली।
मेढ्रेणोर्ध्वेन महता नदमानोऽतिभैरवम्॥५५
कः खल्वेष पुमान् विष्णो तेजोराशिर्महाद्युतिः।
व्याप्य सर्वा दिशो द्यां च इत एवाभिवर्त्तते॥५६

भगवान् विष्णु ने कहा—हे अरिघ्न! मेरे पुत्र हो जाओ बहुत ही अच्छा आनन्द प्राप्त करोगे। सत्य धन वाले और महान् योगी आप प्रणव स्वरूप स्तुति करने के योग्य हैं। ५० ॥ हे सर्वेश! आज से लेकर श्वेत शिरोवेष्टन से विभूषित आप पद्मयोनि इस नाम से विख्यात हो जाओगे। हे प्रभो! हे ब्रह्मन्! हे समस्त लोकों के अधिप! तुम मेरे पुत्र हो जाओ॥ ५१॥ इसके अनन्तर उन भगवान् ब्रह्मा जी ने किरीटी (विष्णु) के वरदान को ग्रहण करके ऐसा ही होगा यह कहकर प्रसन्न आत्मा वाले और मत्सरता से रहित हो

गये थे ॥ ५२ ॥ समीप में आये हुए बाल सूर्य के समान आभा वाले महान् आनन (मुख) से युक्त हुए अत्यन्त अद्भुत नारायण को देखकर बोले— ॥ ५३ ॥ अप्रमेय अर्थात् समझ में नहीं आने के योग्य, महान् मुख से युक्त अट्टधारी, व्यस्त वालों वाले, दश भुजाओं से युक्त, त्रिशूल के चिह्न वाले, नेत्रों से विश्वतोमुख, स्वयं लोकों के स्वामी, साक्षात् विकृत स्वरूप वाले, मूँज की मेखलाधारी, महान् ऊर्ध्व मेढ़ से ध्वनि करते हुए, हे विष्णो ! यह कौन ऐसा पुरुष है जो तेज की राशि और महाद्युति वाला है और समस्त दिशा में व्याप्त होकर स्वयं की ओर ही आ रहा है ॥ ५४-५५-५६ ॥

तेनैवमुक्तो भगवान् विष्णुर्ब्रह्माणम ब्रवीत् ।
पद्भ्यामस्तलनिपातेन यस्य विक्रमतोऽर्णवे ।
वेगेन महताकाशे व्यथिताश्च जलाशया ॥५७
छटाभिर्विष्णुतोऽत्यर्थं सिच्यते पद्म सम्भव ।
घ्राणजेन च वातेन कम्पमानं त्वया सह ।
दोधूयते महापद्म स्वच्छन्द मम नाभिजम् ॥५८
स एव भगवानीशो ह्यनादिश्चान्तकृद्विभु ।
भवानहञ्च स्तोत्रेण ह्युपतिष्ठाव गोध्वजम् ॥५९
ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभाक्ष ब्रह्मा प्रोवाच केशवम् ।
न भवान् नूनमात्मानं लोकानां योनिमुत्तमम् ॥६०
ब्रह्माण लोककर्त्तारं माञ्च वेत्ति सनातनम् ।
कोऽयं भो शङ्करो नाम ह्यावयोर्व्यतिरिच्यते ॥६१
तस्य तत् क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वा विष्णुरभाषत ।
मा भैव वद कल्याण परिवाद महात्मन ॥६२
मायायोगेश्वरो धर्मो दुराधर्षो वरप्रद ।
हेतुरस्याय जगत पुराण पुरुषोऽव्यय ॥६३

उनके द्वारा इस प्रकार से कहे गये भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा जी से कहा—जिसके विक्रम से पदों के तल निपातन से समुद्र में महान् वेग से, आकाश में समस्त जलाशय व्यथित हो गये हैं, छटाओं के द्वारा विष्णु से भी अधिक पद्म-

सम्मद विद्यमान होते हैं और प्राण से उत्पन्न वायु से आपके साथ कम्पमान होकर मेरे नाभि से उत्पन्न इस स्वच्छ महान् पद्म को भी कथा रहे हैं वह यह भगवान् ईश हैं जो अनादि और अन्त करने वाले विभु है। मैं और आप इनकी नीलकण्ठ की स्तोत्र के द्वारा स्तुति करें ॥ ५७-५८-५९ ॥ इसके पश्चात् क्रोध युक्त महान् अम्बुद की आभा वाले केशव से ब्रह्मा ने कहा—आप उत्तम लोकों की योनि लोकों के करने वाले मुझको सनातन ब्रह्मा को न्यूनात्मा नहीं जानते हैं। यह शङ्कर कौन है जो हम दोनों से भी अधिक बन रहा है। ॥ ६०-६१ ॥ उनके उस क्रोध से उत्पन्न वाक्य को सुनकर विष्णु ने कहा—हे कल्याण ! ऐसा महान् आत्मा वाले की परिवाद (निन्दा) मत करो ॥ ६२ ॥ यह महान् मायायोग का ईश्वर परम दुराधर्ष वर प्रदान करने वाले इस जगत् के हेतु पुराण और अव्यय पुरुष है ॥ ६३ ॥

जीवः खल्वेष जीवात्मा ज्योतिरेकः प्रकाशते ।
बालक्रीडनकैर्देवः क्रीडते शङ्करः स्वयम् ॥६४
प्रधानमव्ययं ज्योतिरव्यक्तं प्रकृतिस्तमः ।
अस्य चैतानि नामानि नित्यं प्रसवधर्मिणः ।
यः कः स इति दुःखार्तैर्मृग्यते यतिभिः शिवः ॥६५
एष बीजी भवान् बीजमहं योनिः सनातनः ।
एवमुक्तोऽथ विश्वात्मा ब्रह्मा विष्णुमभाषत ॥६६
भवान्योनिरहं बीजं कथं बीजी महेश्वरः ।
एतन्मे सूक्ष्ममव्यक्तं संशयं छेत्तुमर्हसि ॥६७
ज्ञात्वा चैव समुत्पत्तिं ब्रह्मणा लोकतन्त्रिणा ।
इदं परमसादृश्यं प्रश्नमभ्यवदद्धरिः ॥६८
अस्मान्महत्तरं गुह्यं भूतमन्यन्न विद्यते ।
महतः परमं धाम शिवमध्यात्मिनां पदम् ॥६९
द्वैधीभावेन चात्मानं प्रविभज्य व्यवस्थितः ।
निष्कलः सूक्ष्ममव्यक्तः सकलश्च महेश्वरः ॥७०

यह जीवों का निश्चय ही जीव है और एक ज्योति को प्रकाशित करते

हैं। यह देव शङ्कर स्वयं बच्चों के खिलौनों से क्रीडा किया करते हैं ॥ ६४ ॥ नित्य ही प्रसव के धर्म वाले इनके प्रधान, अव्यय, ज्योति, अव्यक्त, प्रकृति, तम ये नाम कहे जाते हैं। वह कौन है जो दुःखों के आर्त होने वाले यतियों के द्वारा खोजा जाया करता है? वह यही शिव है ॥ ६५ ॥ यह बीज वाले हैं, आप बीज हैं, मैं योनि हूँ जो कि सनातन हूँ। इस प्रकार से कहे गये विश्वात्मा ब्रह्मा से बोले—॥ ६६ ॥ आप योनि हैं अर्थात् वह स्थान हैं जहाँ बीज पैदा करता है, मैं बीज हूँ और महेश्वर बीज वाले हैं, यह मुझे बहुत बड़ा संशय हो रहा है इसलिये आप इस मेरे सन्देह का छेदन करने में समर्थ हो ॥ ६७ ॥ लोक-तन्त्री ब्रह्मा के द्वारा समुत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त कर भगवान् हरि ने इस परम सान्देह्य प्रश्न को बतलाया था ॥ ६८ ॥ इससे अधिक महान् अन्य कोई भी भूत नहीं है। शिव महान् का परम धाम और अध्यात्मवादियों का पद होता है ॥ ६९ ॥ अपने स्वरूप के दो विभाग कर प्रविष्ट होते हुए यह व्यवस्थित रहते हैं। सूक्ष्म अव्यक्त एक निष्कल स्वरूप है और दूसरा सकल अर्थात् कलाओं से युक्त महेश्वर स्वरूप होता है ॥ ७० ॥

अस्य मायाविधिज्ञस्य अगम्यगहनस्य च ।
पुरा लिङ्गं भवद्बीजं प्रथमं त्वादिसर्गिकम् ॥७१
मयि योनौ समायुक्तं तद्बीजं कालपर्ययात् ।
हिरण्मयमपारस्तद्योन्यामण्डमजायत ॥७२
शतानि दशवर्षाणामण्डं चाप्सु प्रतिष्ठितम् ।
अन्ते वर्षसहस्रस्य वायुना तद्द्विधा कृतम् ॥७३
कपालमेकं द्यौर्जज्ञे कपालमपरं क्षितिः ।
उल्बन्तस्य महोत्सेधं योऽसौ कनकपर्वतः ॥७४
ततस्तस्मात् प्रबुद्धात्मा देवो देववरः प्रभुः ।
हिरण्यगर्भो भगवान्ह जज्ञे चतुर्भुजः ॥७५
ततो वर्षसहस्रान्ते वायुना तद्द्विधा कृतम् ।
अतारार्केन्दुनक्षत्रं शून्यं लोकमवेक्ष्य च ।
कोऽयमत्रे त्यभिध्याते कुमारास्तेऽभवंस्तदा ॥७६

प्रियदर्शनास्तुतनवो येऽतीता पूर्वजास्तव ।
भूयो वर्षसहस्रान्ते तत एवात्मजास्तव ।
भुवनानलसङ्काशा पद्मपत्रायतेक्षणा ॥७७

इस माया की विधि को जानने वाले तथा भगवान् एवं महान् का पहिले आदि सर्गिक प्रथम लिङ्ग बीज हुआ जो कि आप हैं ॥ ७१ ॥ काल के पर्याय से वह बीज योनि स्वरूप पुर्न में संयुक्त हुआ । वह उस समय योनि में अपार हिरण्मय अण्ड के रूप में उत्पन्न हो गया था ॥ ७२ ॥ वह अण्ड दश सहस्र वर्ष एक जल में ही प्रतिष्ठित रहा फिर अन्त में हजार वर्ष के बाद वह वायु के द्वारा दो कर दिया गया ॥ ७३ ॥ उसका एक कपाल अर्थात् आधा भाग ने द्यौ को उत्पन्न किया और दूसरे कपाल से क्षिति उत्पन्न हुई । उत्वेल का महोत्सेध जो है वह वह कनक पर्वत है ॥ ७४ ॥ इसके पश्चात् उसमें प्रबुद्ध आत्मा वाला देवों में श्रेष्ठ प्रभु देव हिरण्यगर्भ आप और चार भुजाओं वाला मैं उत्पन्न हुआ ॥७५॥ फिर एक सहस्र वर्ष के अन्त में वायु ने पुन दो टुकड़े किये । तारा सूत्र से रहित पुण्यलोक को देखकर यहाँ पर यह कौन है ऐसा अभिधान करने पर उस समय वे कुमार हुये ॥ ७६ ॥ देखने में परम प्रिय सुन्दर शरीर वाले आप के जो पहिले होने वाले पूर्वज थे वे ही एक सहस्र वर्षों के अन्त में आपके अङ्क आत्मज हैं । जो भुवन की अग्नि के समान तथा पद्मपत्र के तुल्य विशाल नेत्रों वाले हैं ॥ ७७ ॥

श्रीमान् सनत्कुमारस्तु ऋभुश्च ऊर्ध्वरेतसौ ।
सनातनश्च सनकस्तथैव च सनन्दन ।
उत्पन्ना समकाले ते बुद्धयाऽतीन्द्रियदर्शना ॥७८
उत्पन्ना प्रतिभात्मानो जगतुश्च तदैव हि ।
नारप्स्यन्ते च कर्माणि तापत्रयविवर्जिता ॥७९
अस्य सौम्य बहुक्लेशं जराशोकसमन्वितम् ।
जीवितं मरणं चैव सम्भवश्च पुनः पुनः ॥८०
स्वर्गभूतं पुन स्वर्गे दुःखानि नरकास्तथा ।
विदित्वा चागमं सर्वमवश्यं भविष्यताम् ॥८१

नमस्ते स्त्वस्मदादीनां भूतानां प्रभवाय च ।
वेदकर्म्मावदानानां द्रव्याणां प्रभवे नमः ।।६३
नमो योगस्य प्रभवे सांख्यस्य प्रभवे नमः ।
नमो ध्रुवनिशीथानामृषीणां पतये नमः ।।६४
विद्युदशनिमेघानां गर्जितप्रभवे नमः ।
उदधीनाञ्च प्रभवे द्वीपानां प्रभवे नमः ।।६५
अद्रीणां प्रभवे चैव वर्षाणां प्रभवे नमः ।
नमो नदानां प्रभवे नदीनां प्रभवे नमः ।।६६
नमश्चौषधिप्रभवे वृक्षाणां प्रभवे नमः ।
धर्म्माध्यक्षाय धर्म्माय स्थितीनां प्रभवे नमः ।।६७
नमो रसानां प्रभवे रत्नानां प्रभवे नमः ।
नमः क्षणानां प्रभवे कलानां प्रभवे नमः ।।६८
निमेष प्रभवे चैव काष्ठानां प्रभवे नमः ।
अहोरात्रार्द्धमासानां मासानां प्रभवे नमः ।।६९

हमारे सदृश प्राणियों के प्रभव स्थान के लिये नमस्कार है । वेद-कर्म और अवदान द्रव्यों को जन्म देने वाले के लिये नमस्कार है ।।६३।। योग दर्शन के उत्पन्न करने वाले तथा सांख्य को प्रभव देने वाले के लिये नमस्कार है । ध्रुव निशीथ ऋषियों के स्वामी के लिये नमस्कार है ।।६४।। विद्युत्-वज्र और मेघों तथा गर्जन के प्रभव स्वरूप के लिये नमस्कार है । समस्त समुद्रों को जन्म

प्रणयात्मानमासाद्य नमस्कृत्वा जगद्गुरुम् ।
त्वाञ्च मां च सङ्क्रुद्धौ नि श्वासान्निर्दहेदयम् ।।८७
एवं ज्ञात्वा महायोगं अभ्युत्तिष्ठन् महाबलं ।
अहं त्वामभयं कृत्वा स्तोष्येऽहमनलप्रभम् ।। ८८
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा ततः स गरुडध्वजः ।
अतीतैश्च भविष्यैश्च वर्त्तमानैस्तथैव च ।
नामभिश्छान्दसैश्चैव इदं स्तोत्रमुदीरयत् ।।८९
नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतेऽनन्ततेजसे ।
नमः क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः ।।९०
अमेढ्रायोर्द्ध्वमेढ्राय नमो वैकुण्ठरेतसे ।
नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय अपूर्वप्रथमाय च ।।९१
नमो हव्याय पूज्याय सद्योजाताय वै नमः ।
गह्वराय घनेशाय हेमचीराम्बराय च ।।९२

आपके ही इस माहात्म्य को तथा आत्मा से ही अपने आपको देखकर एवं ईश्वर के सद्गुण तथा कम्बुचेलण मुझको जानकर महान् योग वाले प्राणियों को वर देने वाले प्रभु महादेव को जो कि प्रणव के स्वरूप वाले हैं प्राप्त करके जगत् के गुरु को नमस्कार करके यह क्रुद्ध होकर तुमको और मुझको निश्वास से निर्दग्ध कर देते हैं ।। ८६।।८७।। इस प्रकार से महान् बल वाले इस महायोग का ज्ञान प्राप्त करके अभ्युत्थित होता हुआ मैं तुमको आगे करके अनल के समान प्रभा वाले की स्तुति करूँगा ।।८८।। श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर गरुडध्वज विष्णु ने ब्रह्माजी को आगे करके अतीत (गुजरे हुए) आगे आने वाले तथा वर्त्तमान नामों से और छान्दसों के द्वारा इस स्तोत्र का उच्चारण किया था ।।८९।। सुन्दर व्रत वाले अनन्त तेज से युक्त भगवान् आपके लिये नमस्कार है । क्षेत्र के अधिपति बीज वाले शूली के लिये नमस्कार है ।।९० ।। मेढ़ से रहित तथा ऊर्द्ध्व मेढ़ वाले वैकुण्ठरेता आपके लिये नमस्कार है । ज्येष्ठ, श्रेष्ठ तथा अपूर्व प्रथम के लिये नमस्कार है ।।९१।। हव्य पूज्य और सद्य उत्पन्न होने वाले के लिये नमस्कार है । गह्वर घनेश और हेमचीराम्बर धारण करने वाले के लिये नमस्कार है ।।९२।।

नमस्ते ह्यस्मदादीनां भूतानां प्रभवाय च ।
वेदकर्म्मावदानानां द्रव्याणां प्रभवे नमः ॥९३
नमो योगस्य प्रभवे सांख्यस्य प्रभवे नमः ।
नमो ध्रुवनिशीथानामृषीणां पतये नमः ॥९४
विद्युदशनिमेघानां गर्जितप्रभवे नमः ।
उदधीनाञ्च प्रभवे द्वीपानां प्रभवे नमः ॥९५
अद्रीणां प्रभवे चैव वर्षाणां प्रभवे नमः ।
नमो नदानां प्रभवे नदीनां प्रभवे नमः ॥९६
नमश्चौषधिप्रभवे वृक्षाणां प्रभवे नमः ।
धर्म्माध्यक्षाय धर्म्माय स्थितीनां प्रभवे नमः ॥९७
नमो रसानां प्रभवे रत्नानां प्रभवे नमः ।
नमः क्षणानां प्रभवे कलानां प्रभवे नमः ॥९८
निमेषप्रभवे चैव काष्ठानां प्रभवे नमः ।
अहोरात्रार्द्धमासानां मासानां प्रभवे नमः ॥९९

हमारे सदृश प्राणियों के प्रभव स्थान के लिये नमस्कार है। वेद-कर्म और अवदान द्रव्यों के जन्म देने वाले के लिये नमस्कार है ॥९३॥ योग दर्शन के उत्पन्न करने वाले तथा सांख्य को प्रभव देने वाले के लिये नमस्कार है। ध्रुव निशीथ ऋषियों के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥९४॥ विद्युत्-वज्र और मेघों तथा गर्जन के प्रभव स्वरूप के लिये नमस्कार है। समस्त समुद्रों को जन्म देने वाले तथा सम्पूर्ण द्वीपों को उत्पन्न करने वाले के लिये नमस्कार है ॥९५॥ पर्वतों के प्रभव स्थान के लिये तथा वर्षों के उत्पत्ति स्वरूप वाले के लिये नमस्कार है। नद और नदियों के प्रभु के लिये नमस्कार है ॥९६॥ औषधियों के तथा वृक्षों के प्रभु के लिये नमस्कार है। धर्म के अध्यक्ष तथा धर्म स्वरूप एवं समस्त स्थितियों के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥९७॥ समस्त रसों के तथा सम्पूर्ण रत्नों के स्वामी के लिये हमारा नमस्कार है। क्षण और कलाओं के प्रभु के लिये नमस्कार है ॥९८॥ निमेष-काष्ठा अहोरात्र-अर्द्धमास और मासों के प्रभु के लिये हमारा नमस्कार है ॥९९॥

नम ऋतूनां प्रभवे सख्याया प्रभवे नम ।
प्रभवे च परार्द्धस्य परस्य प्रभवे नम ॥१०
नम पुराणप्रभवे युगस्य प्रभवे नम ।
चतुर्विधस्य सर्गस्य प्रभवेऽनन्तचक्षुषे ॥१०१
कल्पोदये निबद्धाना धार्तानां प्रभवे नम ।
नमो विश्वस्य प्रभवे ब्रह्मादिप्रभवे नम ॥१०२
विद्याना प्रभवे चव विद्याना पतये नम ।
नमो व्रताना पतये मन्त्राणा पतये नम ॥१०३
पितृणा पतये चव पशूना पतये नम ।
वाग्वृषाय नमस्तुभ्य पुराणवृषभाय च ॥१०४
सुचारुचारुकेशाय ऊर्ध्वचक्षु शिराय च ।
नम पशूना पतये गोवृषेन्द्रध्वजाय च ॥१०५

समस्त ऋतुओ के स्वामी तथा सम्पूर्ण सख्या के प्रभु के लिये नमस्कार है। परार्द्ध के प्रभु तथा पर के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥१ ॥ पुराणों के प्रभु-युग के अधिपति और चारों प्रकार के सर्ग के स्वामी अनन्त चक्षु वाले के लिये हमारा नमस्कार है ॥१ १॥ कल्प के उदय के समय मे धार्तांओं के प्रभु के लिये नमस्कार है। इस विश्व के प्रभु तथा ब्रह्मादि के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥१ २॥ समस्त विद्याओं के स्वामी तथा प्रभु के लिये नमस्कार है। समस्त व्रतों के तथा सम्पूर्ण मन्त्रो के प्रभु के लिये नमस्कार है ॥१ ३॥ पितृगण के स्वामी एवं पशुओ के प्रभु के लिये नमस्कार है। वाणी के वृषभ तथा पुराणो के वृषभ के लिये हमारा नमस्कार है ॥१ ४॥ सुन्दर केशो वाले के लिये तथा ऊर्ध्व चक्षु एव शिर वाले के लिये नमस्कार है। पशुओ के पति तथा वृष एव इन्द्र ध्वज के लिये नमस्कार है ॥१ ५॥

प्रजापतीना पतये सिद्धाना पतये नम ।
पन्नगोरगपर्णाणा पक्षिणा पतये नम ॥१ ६
गोकर्णाय च गोप्त्राय शङ्कुकर्णाय च नम ।
वाराहायाप्रमेयाय रक्षाधिपतये नम ॥१ ७

नमो ह्यप्सरसांपतये गणाना (पतये) ह्रीमये नमः ।
अम्भसां पतये चैव तेजसां पतये नमः ॥१०८
नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये श्रीमते ह्रीमते नमः ।
बलाबलसमूहाय ह्यक्षोभ्यक्षोभणाय च ॥१०९
दीर्घश्रृङ्गैक श्रृङ्गाय वृषभाय ककुद्मिने ।
नमः स्थैर्याय वपुषे तेजसे सुप्रभाय च ॥११०
भूताय च भविष्याय वर्त्तमानाय वै नमः ।
सुवर्च्चसेऽथ वीराय शूराय ह्यतिगाय च ॥१११
वरदाय वरेण्याय नमः सर्वगताय च ।
नमो भूताय भव्याय भवाय महते तथा ॥११२

समस्त प्रजापतियों के पति तथा समस्त सिद्धों के स्वामी के लिये नमस्कार है। गरुड़ तथा उरग एवं सर्पों के एवं पक्षियों के पति के लिये नमस्कार है ॥१०६॥ गोकर्ण गोष्ट और शङ्कु कर्ण के लिये नमस्कार है। वाराह—अप्रमेय और राक्षसों के अधिपति के लिये नमस्कार है ॥१०७॥ अप्सराओं के पति तथा गणों के स्वामी और ह्रीमय के लिये नमस्कार है। जलों के पति तथा तेजों के स्वामी के लिये हमारा नमस्कार है ॥१०८॥ श्री लक्ष्मी के स्वामी—श्रीमान् और ह्रीमान् के लिये नमस्कार है। बल तथा अबल के समूह स्वरूप एवं अक्षोभ्य और क्षोभण स्वरूप के लिये नमस्कार है ॥१०९॥ दीर्घश्रृङ्ग वाले, एक श्रृङ्ग वाले, ककुद वाले वृषभ के लिये नमस्कार है। स्थैर्य के वपु वाले तथा तेज स्वरूप एवं सुन्दर प्रभा वाले के लिये नमस्कार है ॥११०॥ भूत-भविष्य तथा वर्त्तमान के लिये नमस्कार है। सुन्दर वर्चस वाले वीर-शूर और अतिग के लिये नमस्कार है ॥१११॥ वरदान देने वाले, वरेण्य और सबमें निवास करने वाले के लिये नमस्कार है। भूत-भव्य-भव और महान् के लिये नमस्कार है ॥११२॥

जनाय च नमस्तुभ्यं तपसे वरदाय च ।
नमो वन्द्याय मोक्षाय जनाय नरकाय च ॥११३
भवाय भजमानाय इष्टाय याजकाय च ।

अम्बुनीशाय वीताय तत्वाय निर्गुणाय च ॥११४

नमः प्राणाय शुभाय नमः स्वाभरणाय च ।
हुताय अपहुताय प्रहुतप्रशिताय च ॥११५

नमोऽस्त्विष्टाय मूर्ताय अग्निष्टोमर्त्विजाय च ।
नमः ऋताय सत्याय भूताधिपतये नमः ॥११६

सर्वस्थाय नमश्चैव दक्षिणावभृथाय च ।
अहिंसायाथ लोकानां पशुमन्त्रौषधाय च ॥११७

नमस्तुष्टिप्रदानाय त्र्यम्बकाय सुगन्धिने ।
नमोऽस्त्विन्द्रियपतये परिहाराय अग्निये ॥११८

विश्वाय विश्वरूपाय विश्वतोऽक्षिमुखाय च ।
सर्वतः पाणिपादाय रुद्रायाप्रमिताय च ॥११९

तप स्वरूप अनल और अनल के लिये नमस्कार है । अध्वना करने के योग्य मोक्ष स्वरूप जम और नरक के लिये नमस्कार है ॥११३॥ जल भगवान् रुद्र मालिक अम्बुईश वीत तत्त्व निर्गुण के लिये नमस्कार है ॥११४॥ प्राण शुभ्र और स्वाभरण के लिये नमस्कार है । हुत अपहुत प्रहुत तथा प्रशित के लिये नमस्कार है ॥११५॥ इष्ट मूर्त और अग्नि ष्टोम ऋत्विज के लिये हमारा नमस्कार है । ऋत एवं सत्य तथा भूतों के अधिपति के लिये नमस्कार है ॥११६॥ सर्वस्थ के लिये तथा दक्षिणावभृथ के लिये नमस्कार है । अहिंसा के लिये तथा लोकों के पशु मन्त्र एवं औषध के लिये नमस्कार है ॥११७॥ तुष्टि के प्रदान करने वाले त्र्यम्बक और सुन्दर गन्ध वाले के लिये नमस्कार है । इन्द्रियों के पति परिहार तथा अग्न्यारों के लिये नमस्कार है ॥११८॥ विश्व विश्वरूप और विश्व से अक्षि मुख वाले और हाथ और पद वाले अप्रमित और रुद्र के लिये नमस्कार है ॥११९॥

नमो हव्याय कव्याय हव्यकव्याय वै नमः ।
नमः सिद्धाय मेध्याय चेष्टाय स्वव्ययाय च ॥१२०

सुवीराय सुघोराय ह्यक्षोभ्याक्षोभणाय च ।
सुमेधसे सुप्रजाय दीप्ताय भास्कराय च ॥१२१

नमो नमः सुवर्णाय तपनीयनिभाय च ।
विरूपाक्षायत्र्यक्षाय पिङ्गलाय महौजसे ॥१२२
दृष्टिघ्नाय नमश्चैव नमः सौम्येक्षणाय च ।
नमो धूम्राय श्वेताय कृष्णाय लोहिताय च ॥१२३
पिशिताय पिशङ्गाय पिताय च निषङ्गिणे ।
नमस्ते सविशेषाय निर्विशेषाय वै नमः ॥१२४
नमो वै पद्मवर्णाय मृत्युघ्नाय च मृत्यवे ।
नमः श्यामाय गौराय कद्रवे रोहिताय च ॥१२५
नमः कान्ताय सन्ध्याभ्रवर्णाय बहुरूपिणे ।
नमः कपालहस्ताय दिग्वस्त्राय कपर्दिने ॥१२६

हव्य और कव्य तथा हव्य कव्य के लिये नमस्कार है। सिद्ध, मेध्य चेष्ट और अव्यय के लिये नमस्कार है ॥१२०॥ सुवीर, सुघोर, अक्षोभ्य क्षोभण, सुमेधा, सुप्रजा, दीप्त और भास्कर के लिये नमस्कार है ॥१२१॥ सुवर्ण और तपनीय के तुल्य के लिये नमस्कार है विरूपाक्ष, त्र्यक्ष, और महान् ओज वाले के लिये नमस्कार है ॥१२२॥ दृष्टि के हनन करने वाले के लिये नमस्कार है और सौम्य नेत्र वाले के लिये नमस्कार है। धूम्र, श्वेत, कृष्ण और लोहित के लिये हमारा नमस्कार है, ॥१२३॥ पिशित, पिशङ्ग, पीत और निषङ्ग वाले के लिये हमारा नमस्कार है विशेषता से युक्त तथा निर्विशेष के लिये नमस्कार है ॥१२४॥ पद्म जैसे वर्ण वाले, मृत्यु के नाश करने वाले तथा मृत्यु स्वरूप के लिये नमस्कार है। श्याम, गौर, कद्रु और रोहित के लिये नमस्कार है ॥१२५॥ कान्त सन्ध्या के समान अभ्र वर्ण वाले तथा बहुत, से रूप वाले के लिये नमस्कार है। कपाल हाथ में रखने वाले, दिशाओं के वस्त्र वाले अर्थात् नग्न या कपर्दी के लिये नमस्कार है ॥१२६॥

अप्रमेयाय शर्वाय ह्यवध्याय वराय च ।
पुरस्तात् पृष्ठतश्चैव विभ्राणाय कृशानवे ॥१२७
दुर्गाय महते चैव रोधाय कपिलाय च ।
अर्कप्रभशरीराय बलिने रंहसाय च ॥१२८

नमो मुक्ताट्टहासाय क्ष्वेडितास्फोटिताय च ।
नदते कूर्दते चैव नमः प्रमुदिताय च ॥१५२
नमोऽद्भुताय स्वपते धावते प्रस्थिताय च ।
ध्यायते जृम्भते चैव रुदते द्रवते नमः ॥१५३
वल्गते क्रीडते चैव लम्बोदरशरीरिणे ।
नमः कृताय कण्ठाय मुण्डाय विकटाय च ॥१५४
नमः उन्मत्तवेषाय किङ्किणीकाय वै नमः ।
नमो विकृतवेषाय क्रूरायामर्षणाय च ॥१५५
अप्रमेयाय दीप्ताय दीप्तये निर्गुणाय च ।
नमः प्रियाय वामाय मुखाग्निधराय च ॥१५६
नमस्तोकाय तनवे गुणैरप्रमिताय च ।
नमो गण्याय गुह्याय अगम्यागमनाय च ॥१५७

विशेषरूप से भीषण भीम संग के समर्पण करने वाले छिद्रों के स वाद्य (सम्पुनाथ) के द्वारा गान किये हुए तथा महाभाव के लिये हमारा नमस्कार है ॥१५१॥ अट्टहास को छोड़ने वाले क्ष्वेडित से आस्फोटित हूं न करने वाले और प्रमुदित के लिये हमारा नमस्कार है ॥१५२॥ अद्भुत शयन करते धावे धारण करते हुए प्रस्थान किये हुए ध्यान करने वाले जृम्भा लेते हुए रुदन करते हुए और द्रवित होते हुए आपके लिये नमस्कार है ॥१५३॥ वल्गते हुए क्रीडा करते हुए लम्बोदर शरीर वाले कृत कण्ठ मुण्ड और विकट के लिये नमस्कार है ॥१५४॥

उन्मत्त वेष वाले किङ्किणीक विकृत वेष वाले क्रूर उग्र और अमर्षण के लिए नमस्कार है ॥१५५॥ अप्रमेय दीप्त दीप्त निर्गुण प्रिय और मुखाग्नि के धारण करने वाले आपके लिए हमारा नमस्कार है ॥१५६॥ तोक तनु और गुणों से अप्रमित गण्य गुह्य अगम्य और अगमन के लिए नमस्कार है ॥१५७

लोकधात्री त्वियं भूमिः पादौ सज्जनसेवितौ ।
सर्वेषां सिद्धयोगानामधिष्ठानं तवोदरम् ॥१५८
मध्येऽन्तरिक्षं विस्तीर्णं तारागणविभूषितम् ।
तारापथ इवाभाति श्रीमान् हारस्तवोरसि ॥१५९

दिशो दश भुजास्ते वै केयूराङ्गदभूषिता ।
विस्तीर्णपरिणाहश्च नीलाम्बुदचयोपम ॥१५०
कण्ठस्ते शोभते श्रीमान् हेमसूत्रविभूषित ।
दंष्ट्राकरालदुर्द्धर्षमनौपम्य मुखं तव ॥१५१
पद्ममालाकृतोष्णीषं शीर्षञ्च शोभते कथम् ।
दीप्ति सूर्ये वपुश्चन्द्रे स्थैर्यं भूम्यं निलो बले ॥१५२
तैक्ष्ण्यमग्नौ प्रभा चन्द्रे खे शब्दं शैत्यमप्सु च ।
अक्षरोत्तमनिष्पन्दान् गुणानेतान्विदुर्बुधा ॥१५३
जपो जप्यो महायोगी महादेवो महेश्वर ।
पुरेशयो गुहावासी खेचरी रजनीचर ॥१५४

यह लोकों की धात्री भूमि है और ये चरण सज्जनों के द्वारा सेवित है। समस्त सिद्धि योगों का आपका उदर अधिष्ठान है ॥ १४८ ॥ मध्य में विस्तीर्ण अन्तरिक्ष है जो कि तारागणों से विभूषित है। आपके उरस्थल में श्री से सम्पन्न हार तारापथ की भाँति शोभा देता है ॥ १४९ ॥ ये दश दिशाएँ आपकी भुजाएँ हैं जो कि केयूर और अङ्गदों से विभूषित हैं। नील अम्बुदों के समूह के समान विस्तीर्ण परिणाह है ॥ १५० ॥ आपका यह कण्ठ हेमसूत्र से विभूषित होकर परम शोभा वाला हो रहा है। दंष्ट्रा की करालता से दुर्धर्ष और उपमा से रहित आपका मुख है ॥ १५१ ॥ पद्मों की मालाओं से शिरोवेष्टन वाला शीर्षभाग किस प्रकार से शोभा दे रहा है जैसे सूर्य में दीप्ति, चन्द्र में वपु, स्थिरता में भूमि और बल में अनिल होता है ॥ १५२ ॥ अग्नि में तीक्ष्णता, चन्द्र में प्रभा, आकाश में ध्वनि और जल में शीतलता इन अक्षर और उत्तम निष्पन्द वाले गुणों को बुध लोग जानते हैं ॥ १५३ ॥ महादेव महेश्वर जप, जप्य, महान योगी, पुरेशय, गुहावासी, खेचर और रजनीचर हैं ॥ १५४ ॥

तपोनिधिर्गुहगुरुर्नन्दनो नन्दिवर्द्धन ।
हयशीर्षो धराधाता विधाता भूतिवाहन ॥१५५
बोद्धव्यो बोधनो नेता धूर्जटी दुष्प्रकम्पक ।
बृहद्रथो भीमकर्मा बृहत्कीर्तिर्धनञ्जय ॥१५६

घण्टाप्रिया ध्वजी छत्री पताकाध्वजिनीपतिः ।
कवची पट्टिशी शङ्खी पाशहस्तः परश्वधः ॥१५७
अगमस्त्वनघः शूरो देवराजारिमर्दनः ।
त्वां प्रसाद्य पुराऽस्माभिर्द्विषन्तो निहता युधि ॥१५८
अग्निस्त्वं चार्णवान् सर्वान् पिबन् वै न तृप्यसे ।
क्रोधाकारः प्रसन्नात्मा कामहा कामदः प्रियः ॥१५९
ब्रह्मण्यो ब्रह्मचारी च गोध्नस्त्वं शिष्टपूजितः ।
वेदानामव्ययः कोशस्त्वया यज्ञः प्रकल्पितः ॥१६०
हव्यञ्च वेद वहति वेदोक्तं हव्यवाहनः ।
प्रीते त्वयि महादेव वयं प्रीता भवामहे ॥१६१
भवानीशो नादिमान् धामराशिर्ब्रह्मा
लोकानाञ्च कर्ता त्वादिसर्गः ।
साङ्ख्याः प्रकृतिभ्यः परमं त्वां विदित्वा
क्षीणध्यानास्ते न मृत्युं विशन्ति ।१६२
योगेन त्वां ध्यायिनो नित्ययुक्ता
ज्ञात्वा भोगान् सन्त्यजन्ते पुनस्तान् ।
येऽन्ये मर्त्यास्त्वां प्रपन्ना विशुद्धास्ते
कर्मभिर्दिव्यभोगान् भजन्ते ।१६३
अप्रमेयस्य तत्त्वस्य यथा विद्मः स्वशक्तितः ।
कीर्तितं तव माहात्म्यमपारं परमात्मनः ।
शिवो नो भव सर्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥१६४

यह महेश्वर गण की भान गुह के गुप्त नामक और नन्दिवर्धन हैं । इस घोर धरा के धाता विधाता तथा श्रुति को वहन करने वाले हैं ॥ १५५ ॥ यह बोध करने के योग्य कारण नेता प्रवह, पुष्पदन्तक बृहद्रथ भीम कर्म करने वाले बृहत्कीर्ति और धनञ्जय हैं । १५६ ॥ यह महेश्वर घण्टाप्रिय ध्वजी धत्रधारी पताका ध्वजिनी के स्वामी कवचधारी पट्टिश धारण करने वाले शङ्खधारी हाथ में पाश ग्रहण करने वाले और परशुभृत हैं ॥ १५७ ॥ यह

अगम, अनघ, शूर, देवगण के शत्रुओं को मर्दन करने वाले हैं। आपको प्रसन्न कर हमने युद्ध में पहिले शत्रुओं को मारा था ॥ १५८ ॥ आप अग्नि स्वरूप हैं समस्त समुद्रों का पान करते हुए भी तृप्त नहीं होते हैं। आप क्रोध के घर हैं, प्रशान्त आत्मा वाले हैं, काम के नाशक तथा काम के प्रदान करने वाले शिव हैं ॥ १५९ ॥ आप ब्रह्मण्य अर्थात् ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले, ब्रह्मचारी, गौओं का नियमन करने वाले तथा शिष्ट पुरुषों के द्वारा पूजित हैं। आप वेदों के अध्ययन-कोष हैं और आपने यज्ञ की कल्पना की है ॥ १६० ॥ हव्य वेद का वहन करता है और हव्य वाहन वेदोक्त का वहन करता है। हे महादेव ! आपके प्रसन्न होने पर हम सब प्रसन्न होते हैं ॥ १६१ ॥ आप भवानी के स्वामी, आविर्भाव न होने वाले, धामों के समूह, लोकों के ब्रह्मा, आदिगर्भ और आप धर्ता हैं। सांख्य शास्त्र के ज्ञाता आपको प्रकृतियों से पर जान कर क्षीण ध्यान वाले वे मृत्यु में प्रवेश नहीं करते हैं ॥ १६२ ॥ ध्यान करने वाले योग के द्वारा आप से नित्य मुक्त होते हुए जानकर फिर उन समस्त भोगों का त्याग कर देते हैं। जो अन्य मनुष्य आपकी शरणागति में जाते हैं वे विशुद्ध होकर कर्मों से दिव्य भोगों का सेवन किया करते हैं ॥ १६३ ॥ अप्रमेय तत्व को जैसे अपनी शक्ति से जानते हैं वैसे ही परमात्मा आपका अपार माहात्म्य का कीर्त्तन किया। आप जो भी कोई हों वह हों, हमारे लिये सदा शिव होवें। आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥ १६४ ॥

॥ प्रकरण २५—मधुकैटभ उत्पत्ति ॥

सविधमिव तौ दृष्ट्वा मधुपिङ्गायतेक्षण ।
महोत्पदलोऽव्ययमव्यय स्वकीर्त्तनात् ॥१
उमापतिर्विरूपाक्षो दक्षयज्ञविनाशन ।
पिनाकी खण्डपरशुर्भूतप्राप्तस्त्रिलोचन ॥२
ततः स भगवान् देव श्रुत्वा वाक्यामृतं तयो ।
जानन्नपि महाभाग प्रीतिपूर्वमथाब्रवीत् ॥३
कौ भवन्तौ महात्मानौ परस्परहितैषिणौ ।
समेतावम्बुजाभाक्षौ तस्मिन् घोरे जलप्लवे ॥४

तावूचतुर्महात्मानौ समिरीक्ष्य परस्परम् ।
भगवन् किमत्र हर्षेण विज्ञातेन त्वया विभो ।
कुन वा सुखमानन्दमिच्छाचारभूतो त्वया ॥५
उवाच भगवान् देवो मधुरश्लक्ष्णया गिरा ।
भो भो हिरण्यगर्भ त्वां त्वां च कृष्ण वदाम्यहम् ॥६
प्रीतोऽहमनया भक्त्या शाश्वताक्षरयुक्तया ।
भवन्तौ मानदीयौ वै मम इह तरावुभौ ।
युवाभ्यां किं ददाम्यद्य वराणां वरमुत्तमम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—उन दोनों को भली भाँति ध्यान करते हुए की भाँति देखकर प्रभु विष्णु एवं बालक नेत्रों वाले महेश्वर अपने कौटीन से अत्यन्त प्रहृष्ट मुख वाले हो गये ॥ १ ॥ प्रजा के स्वामी विकृत नेत्रों वाले दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंस करने वाले पिनाकधारी वृषभ परम प्रभु महेश और तीन नेत्र वाले उन भगवान महादेव ने इन दोनों के वचनामृत को सुनकर फिर महाभाग जानते हुए भी प्रीति के साथ बोले—॥ २-३ ॥ इस ओर जल के विप्लव में परस्पर में हित के चाहने वाले महान आत्मा वाले आप दोनों कौन हैं ? आप कमल के समान नेत्रों वाले यहाँ इकट्ठे होते कौन हैं ? ॥ ४ ॥ उन दोनों महात्माओं ने परस्पर में भली भाँति देखकर कहा—हे भगवान ! हे विभो ! तत्त्व को जानने वाले आपके बिना अनन्त सुख इच्छाचार कहाँ हो सकता है ॥ ५ ॥ भगवान् देव मधुर और स्निग्ध वाणी से बोले—हे हिरण्य गर्भ ! हे कृष्ण ! मैं आप दोनों से कहता हूँ मैं आपकी इस भक्ति से प्रसन्न हो गया हूँ जो कि शाश्वताक्षर से युक्त है । अब आप दोनों ही मेरे परम मान नीय और अतिप्रिय हो गये हैं । मैं आज इतना प्रसन्न हूँ कि वरों में श्रेष्ठ है क्या तुम दोनों को वरदान दूँ ॥ १-७ ॥

ततोऽभ्युक्त वचने ब्रह्माण विष्णुरब्रवीत् ।
ब्रूहि ब्रूहि महाभाग यतो यस्ते विवादिन ॥८
प्रजाकामोऽस्म्यहं विष्णो पुत्रमिच्छामि धूर्जटेम ।
तेन स भगवान् ब्रह्मा वरेप्सु पुत्रलिप्सया ॥९

अथ विष्णुरुवाचेदं प्रजाकामं प्रजापतिम् ।
वीरमप्रतिमं पुत्रं यस्त्वमिच्छसि धूर्वहम् ॥१०
पुत्रत्वेनाभियुङ्क्ष्व त्वं देवदेवं महेश्वरम् ।
स तस्य वाक्यं सम्पूज्य केशवस्य पितामहः ॥११
ईशानं वरदं रुद्रमभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
उवाच पुत्रकामस्तु वाक्यमिदं सह विष्णुना ॥१२
यदि मे भगवान् प्रीतः पुत्रकामस्य नित्यशः ।
पुत्रो मे भव विश्वात्मन् त्वत्तुल्यो वापि धूर्वहः ।
नान्यं वरमहं वव्रे प्रीते त्वयि महेश्वर ॥१३
तस्य तां प्रार्थनां श्रुत्वा भगवान् भगनेत्रहा ।
निष्कल्मषमथाप्येवं बाढमित्यब्रवीद्वचः ॥१४

उनके द्वारा इस प्रकार से कहने पर विष्णु भगवान् ब्रह्माजी से बोले—हे महाभाग ! बोलो-सोचो जो भी वर आपको विधक्षित हो ॥ ८ ॥ हे विष्णो ! मैं प्रजा का कामना रखने वाला हूँ । मैं धुरी का वहन करने वाला पुत्र चाहता हूँ । इसके पश्चात् पुत्र की लिप्सा से वर की चाहना रखने वाले यह भगवान् ब्रह्माजी बोले ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर प्रजा की इच्छा वाले प्रजापति से भगवान् विष्णु ने यह कहा—कि जो आप परम वीर और अनुपम धुरी के वहन करने वाला पुत्र चाहते हो तो आप देवों के देव महेश्वर को ही पुत्रत्व के रूप से अभियुक्त करें । तब पितामह ने केशव भगवान् के इस वचन का आदर किया ॥ १०-११ ॥ कृताञ्जलि होकर वर देने वाले ईशान रुद्र को प्रणाम करके विष्णु के साथ ही पुत्र की कामना रखने वाले ब्रह्माजी ये वाक्य बोले ॥ १२ । यदि आप मुझ पर पूर्णतया प्रसन्न हैं तो नित्य ही पुत्र की कामना रखने वाले मेरे हे विश्वात्मन् ! आप पुत्र होवें अथवा अपने ही सदृश धुरी का वहन करने वाला पुत्र दो । मैं इसके अतिरिक्त कोई भी वरदान नहीं चाहता हूँ । हे महेश्वर ! आप जब प्रसन्न हैं तो यही वरदान मुझे देवें ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी की इस प्रार्थना को सुनकर भग के नेत्रों का हरण करने वाले भगवान् महेश्वर बिना किसी कल्मष तथा माया के 'अच्छा यही होगा' यह वचन बोले ॥ १४ ॥

यदा कार्यसमारम्भे कस्मिश्चित्तव सुव्रत ।
अनिष्पत्तौ च कार्यस्य क्रोधस्त्वा समुपैष्यति ।
आत्मकायाश्च ये रुद्रा विहिता प्राण हेतव ॥१५
सोऽहमेकादशात्मा वै शूलहस्तः सहानुगः ।
ऋषिभिस्सार्द्धं महात्मा च ललाटाद्भविता तदा ॥१६
प्रसादमतुलं कृत्वा ब्रह्मणः शंकरः पुनः ।
विष्णुं पुनरुवाचेदं ददामि च वरं तव ॥१७
स होवाच महाभागो विष्णुर्भवमिदं वचः ।
सर्वमेतत् कृतं देव परितुष्टोऽसि मे यदि ।
त्वयि मे सुप्रतिष्ठास्तु भक्तिरम्बुदवाहन ॥१८
एवमुक्तस्ततो देवस्तमभाषत केशवम् ।
विष्णो शृणु यथा देव प्रीतोऽहं तव शाश्वत ॥१९
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च जङ्गमं स्थावरं च यत् ।
विश्वरूपमिदं सर्वं रुद्रनारायणात्मकम् ॥२०
अहमग्निर्भवान् सोमो भवान् रात्रिरहं दिनम् ।
भवानृतमहं सत्यं भवान् क्रतुरहं फलम् ॥२१

हे सुव्रत ! जब तुम्हारे किसी कार्य के समारम्भ में कार्य की सिद्धि न होने पर आपको क्रोध आवेगा तब अपने एकादश रुद्र भी प्राणों के हेतु स्वरूप बनाये हैं वह मैं एकादश स्वरूप वाला हाथ में शूल धारण किये हुए अनुचरों के साथ महात्मा ऋषि मित्र उस समय ललाट से होऊँगा ॥ १५-१६ ॥ उस समय ब्रह्मा के ऊपर इस प्रकार का अतुल प्रसाद करके फिर विष्णु भगवान् से यह बोले—मैं आपको वरदान देता हूँ ॥ १७ ॥ तब महाभाग वह विष्णु भव अर्थात् महेश्वर से यह वचन बोले—हे देव ! यह सब किया गया है यदि मुझ पर आप अवश्य परितुष्ट एवं प्रसन्न हैं तो हे अम्बुद वाहन ! आप में मेरी सुप्रतिष्ठित भक्ति होवे ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर इस प्रकार से कहे हुए महादेव ने केशव से कहा—हे विष्णो ! हे शाश्वत ! हे देव ! आप सुनो मैं आप से बहुत ही प्रसन्न हूँ ॥ १९ ॥ प्रकाश और अप्रकाश स्थावर और जङ्गम जो यह विश्व का रूप है

वह सब रुद्र और नारायण के स्वरूप वाला ही है ।। २० ।। मैं अग्नि हूँ तो आप सोम हैं । आप रात्रि हैं तो मैं दिन हूँ । आप ऋत हैं तो मैं सत्य हूँ, आप क्रतु हैं तो मैं फल हूँ ।। २१ ।।

भवान् ज्ञानमहं ज्ञेयं यज्जपित्वा सदा जनाः ।
मां विशन्ति त्वयि प्रीते जनाः सुकृतकारिणः ।
आवाभ्यां सहिता चैव गतिर्नान्या युगक्षये ।।२२
आत्मानं प्रकृतिं विद्धि मां विद्धि पुरुषं शिवम् ।
भवानर्द्धशरीरं मे त्वहन्तव यथैव च । २३
वामपार्श्वमहम्मह्यं श्यामः श्रीवत्सलक्षणः ।
त्वञ्च वामेतरं पार्श्वं त्वहं वै नीललोहितः ।।२४
त्वञ्च मे हृदयं विष्णो तव चाहं हृदि स्थितः ।
भवान् सर्वस्य कार्यस्य कर्त्ताहमधिदैवतम् ।।२५
तदेहि स्वस्ति ते वत्स गमिष्याम्यम्बुदप्रभ ।
एवमुक्त्वा गतो विष्णोर्देवोऽन्तर्द्धानमीश्वरः ।।२६
ततः सोऽन्तर्हिते देवे सम्प्रहृष्टस्तदा पुनः ।
अशेत शयने भूयः प्रविश्यान्तर्जले हरिः ।।२७
तं पद्मं पद्मगर्भाभः पद्माक्षः पद्मसम्भवः ।
सम्प्रहृष्टमना ब्रह्मा भेजे ब्राह्मं तदासनम् ।।२८

आप ज्ञान हैं तो मैं ज्ञेय अर्थात् जानने के योग्य वस्तु हूँ । जिसका जप करके सनदा मनुष्य जो सुकृत करने वाले हैं आपके प्रसन्न होने पर मुझ में प्रवेश किया करते हैं । हम दोनों के सहित ही गति है और युग के क्षय में अन्य कोई भी गति नहीं होती है ।। २२ ।। अपने आपको प्रकृति समझो और मुझ शिव को पुरुष जानलो । आप मेरे आधे शरीर हैं और इसी प्रकार से मैं आपका भी आधा शरीर हूँ ।। २३ ।। मैं वाम पार्श्व हूँ और मेरे लिये श्याम श्रीवत्स का लक्षण है । और आप वाम से इतर अर्थात् दक्षिण पार्श्व हैं और मैं नील लोहित हूँ ।। २४ ।। हे विष्णो ! आप मेरे हृदय हैं और मैं आपके हृदय में स्थित हूँ । आप समस्त कार्यों के कर्त्ता हैं और मैं उन सब का अधिदैवत हूँ ।। २५ ।। हे

वत्स ! हे सम्पूर्ण प्रभु ! तो अब आइये आपका कल्याण हो अब मैं जाता हूँ । इसके इस प्रकार से कहकर विश्व के देव ईश्वर अन्तर्धान हो गये ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् महादेव के अन्तर्हित हो जाने पर वह भगवान् विष्णु फिर सम्मत प्रसन्न होकर हे सुव्रत ! हरि ने जल में अन्दर प्रवेश किया और अपनी माया से शयन करने लगे ॥ २७ ॥ पद्म के समान नेत्र वाले पद्म से समुत्पन्न अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी ने पद्मनाभ की आभा वाले उस कमल-आसन का सेवन किया ॥ २८ ॥

अथ दीर्घेण कालेन तत्राप्यप्रतिमप्रभौ ।
महाबलौ महासत्त्वौ भ्रातरौ मधुकैटभौ ॥२९
ऊचतुश्च वचनं भक्ष्यो च नौ भविष्यसि ।
एवमुक्त्वा तु तौ तस्मिन्नन्तर्धानं गतावुभौ ॥३०
दारुणन्तु तयोर्भावं ज्ञात्वा पुष्करसम्भवः ।
माहात्म्यं चात्मनो बुद्ध्या विज्ञातुमुपचक्रमे ॥३१
कर्णिकायां स्थितो भूयो नाध्यगच्छत्तदा गतिम् ।
ततः स पद्मनालेन अवतीर्य्य रसातलम् ।
कृष्णाजिनोत्तरासङ्गं ददर्शाप्सुजले हरिम् ॥३२
स च तं बोधयामास विबुद्धं चेदमब्रवीत् ।
भूतेभ्यो मे भयं देव त्रायस्वोत्तिष्ठ केशव ॥३३
ततः स भगवान् विष्णुः सब्रह्मासमरिन्दमम् ।
न भेतव्यं न भेतव्यमित्युवाच मुनिः स्वयम् ॥३४
तस्मात्पूर्वं त्वया प्रोक्तं भूतेभ्यो मे महद्भयम् ।
तस्मात्सुविदितावस्तौ द्वयौ त्वं नाशयिष्यसि ॥३५

इसके अनन्तर बहुत काल समय के पश्चात् वहाँ पर भी अप्रतिम महाबल वाले महासत्त्व से युक्त दो भाई मधु और कैटभ यह वचन बोले कि हमारे भक्ष्य होवोगे इतना कहकर वे दोनों वहाँ फिर अन्तर्धान हो गये । २९-३० ॥ पुष्कर सम्भव ब्रह्माजी ने उन दोनों के इस दारुण भाव को जानकर और अपना माहात्म्य समझ कर इसके जानने का उपक्रम किया ॥ ३१ ॥ फिर

जब कर्णिका घटन गति को नहीं जाना तो इसके उपरान्त उनने कमल नाल के द्वारा रसातल में अवतरण किया और वहाँ जल के भीतर कृष्णाजिन के उत्तम सङ्ग वाले हरि का दर्शन किया ॥ ३२ ॥ वहाँ उन्होंने उनको जगाया और विशेष रूप वृद्ध होने वाले उनसे यह कहा—हे देव ! मुझे भूतों से भय होता है, आप उठिये, मेरी रक्षा कीजिए और मेरा कल्याण करिये ॥ ३३ ॥ इसके पश्चात् भगवान् विष्णु जो कि शत्रुओं के दमन करने वाले हैं, हास के सहित बोले—आप को डरना नहीं चाहिए और डरो मत, यह वचन स्वयं मुनि ने कहे ॥ ३४ ॥ इससे पूर्व आपने कहा था कि भूतों से मुझे महान् भय हो रहा है सो शृङ्गादि शस्त्रों के द्वारा आप उन दोनों दैत्यों का नाश कर देंगे ॥ ३५ ॥

भूर्भुवःस्वस्ततो देवं विविशुस्तमयोनिजम् ।
तत प्रदक्षिणं कृत्वा तमेवासीनमागतम् ॥३६
गते तस्मिंस्ततोऽनन्त उद्गीर्य भ्रातरौ मुखात् ।
विष्णु जिष्णुश्च प्रोवाच ब्रह्माणमभिरक्षताम् ।
मधुकैटभयोर्ज्ञात्वा तयोरागमनं पुन ॥३७
चक्राते रूप साहश्य विष्णोर्जिष्णोश्च सत्तमौ ।
कृतसाहश्यरूपौ तौ नाभेवाभिमुखौ स्थितौ ॥३८
ततस्तौ प्रोचतुर्दैत्यौ ब्रह्माणं दारुणं वच ।
अस्माकं युध्यमानानां मध्ये त्वं प्राश्निको भव ॥३९
ततस्तौ जलमाविश्य सस्तम्भ्याप स्वमायया ।
चक्रतुस्तुमुलं युद्धं यस्य येनेप्सितं तदा ॥४०
तेषान्तु युध्यमानानां दिव्यं वर्षशतं कृतम् ।
न च युद्धमदोत्सेको ह्यन्योन्यं सन्यवर्तत ॥४१
लक्षणद्वयसंस्थानाद्रूपवन्तौ स्थितेङ्गितौ ।
साहश्याद्व्याकुलमना ब्रह्मा ध्यानमुपागमत् ॥४२

इसके अनन्तर "भूर्भुव स्व" ये उस अयोनिज देव के अन्दर प्रविष्ट हो गये । इसके पश्चात् उनने प्रदक्षिणा की और उसी आसन पर पुन आ गये और बैठ गये ॥ ३६ ॥ इसके पश्चात् उस अनन्त ने दो भाई मुख से उद्गीर्ण

होकर जिष्णु और विष्णु ये दोनों ब्रह्मा की रक्षा करते क्योंकि पूर्व उन दोनों मधु और कैटभ का आगमन जान लिया था ॥ ३७ ॥ जिष्णु और विष्णु के रूप की समानता उन दोनों ने बनाली थी और प्रारम्भ रूप वाले होकर उन दोनों के ही सामने वे स्थित हो गये थे ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर वे दोनों दैत्य ब्रह्माजी से बोले और अत्यन्त दारुण वाक्य कहे कि हमारे युद्ध करने वालों के मध्य में मध्यस्थ बन जाओ। ३९ ॥ इसके पश्चात् वे दोनों जल में प्रविष्ट होकर अपनी माया से उन्होंने जल को स्तम्भित कर दिया और फिर वहाँ उन दोनों ने उस समय तुमुल युद्ध बहुत भी जिसने चाहा किया था ॥ ४० ॥ उनको वहाँ युद्ध करते हुए दिव्य एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये और उन्मीनता का युद्ध करने के मद की अधिकता का अभिमान कम नहीं हुआ ॥ ४१ ॥ लक्षण द्वय के सम्मान से रूप वाले वे स्थित हुए होते थे। उन दोनों के अथाह स्वरूप से व्याकुल मन वाले ब्रह्माजी ध्यान में स्थित हो गये थे ॥ ४२ ॥

स तयोरन्तरं बुद्ध्वा ब्रह्मा वै दिव्येन चक्षुषा ।
पद्मकेसरजं सूक्ष्मं ववन्ध स्वयमन्तयोः ।
आमोदलब्धं गान्धर्वं ततो मध्यं मधुकरत् ॥५३
अपतत्स्वयमम्बकन्या विश्वरूपसमुत्थिता ।
पद्म स्तुवन्नवस्था पद्महस्ता शुभा सती ।
तां दृष्ट्वा रूपिणीं दैत्यौ प्रशंसन्यावभिज्ञिनौ ॥५४
तत ऊचतुस्तां कन्यां ब्रह्म मा मधुरया गिरा ।
कासि त्वमम्बुजाक्षी ब्रूहि सत्यमनिन्दिते ॥ ५५
साम्ना सम्पूज्य सा कन्या ब्रह्माणं प्राञ्जलिस्तदा ।
मोहिनीं विद्धि मां मायां विष्णोः सन्देहकारिणीम् ॥५६
त्वया सञ्चोद्यमानाद्य ब्रह्मणा प्राप्ता त्वरायुना ।
अस्याः प्रीतमना ब्रह्मा गौणं नाम चकार ह ॥५७
भया च व्याकुला यस्मात्त्वं च समुपस्थिता ।
महाव्याहृतिरित्येवं नाम्ना वै विख्यास्यति ॥५८
उर्ध्वं प्रया च शिरो भित्त्वा सावित्री तेन चोच्यते ।

एकानंशात् यस्मात्त्वमनेकांशा भविष्यसि ॥४९

तब ब्रह्माजी ने उन दोनों का आदर प्राप्त कर उन दोनों के पद्म केशर से उत्पन्न सूक्ष्म कवच बाँध दिया था। मेखला और गात्र तक इसके पश्चात् मन्त्र का उच्चारण किया ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर जप करते हुए उनके विश्वरूप से समुत्थित एक कन्या हुई जो कि पद्म हाथ में ग्रहण किये हुए और सती तथा पद्म एवं चन्द्र के समान मुख वाली थी। वे दोनों दैत्य उसे देखकर बहुत ही व्यथित तथा भय से वर्ण विवर्जित हो गये ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने मधुर वाणी से उस कन्या से कहा—हे अनिन्दिते! आप कौन है? और मैं आपको क्या समझूँ? आप तत्त्व-तथ्य मुझे बतलाने की कृपा करें ॥ ४५ ॥ तब उस कन्या ने वासुदेव से ब्रह्मा की पूजा करके और प्राञ्जलि होकर कहा—मुझको आप विष्णु भगवान् की सन्देश का पालन करने वाली मोहिनी समझ लीजिए ॥ ४६ ॥ हे ब्रह्मन्! आपके द्वारा संकीर्त्यमान होती हुई मैं यहाँ बहुत ही शीघ्रता से प्राप्त हुई हूँ। तब प्रसन्न मन वाले ब्रह्माजी ने इनका गौण नाम किया ॥ ४७ ॥ क्योंकि आप मेरे द्वारा व्याहृत हुई हैं और अब यहाँ उपस्थित हो गई हैं इस लिये अब से आपका नाम महाव्याहृति संसार में प्रचलित हो जायगा ॥ ४८ ॥ वह शिर का भेदन करके उत्थित हुई थी इसलिये वह सावित्री इस नाम से भी कही जाती है। क्योंकि बिना अंश वाली एक है इसलिये अनेक अंश वाली भी हो जायगी ॥ ४९ ॥

गौणानि तावदेतानि कर्मजान्यपराणि च।
नामानि ते भविष्यन्ति मत्प्रसादात् शुभानने ॥५०
ततस्तौ पीड्यमानौ तु बलेनभयाचिताम्।
अनाकूल नौ मरणं पुनरत्रेव भवेत्तव ॥५१
तथेत्युक्त्वा ततस्तूर्णमनयद्धमसाह्वनम्।
अनयत् कैटभं विष्णुर्जिष्णुश्चाप्यनयन्मधुम् ॥५२
एवन्तौ निहतौ दैत्यौ विष्णुना जिष्णुना सह।
प्रीतेन ब्रह्मणा चाथ लोकानां हितकाम्यया ॥५३
पुनस्त्वमीशेन यथा ह्यात्मा दत्तो निबोधत।

विष्णुना जिष्णुना सार्द्धं मधुकैटभयोस्तथा ।
सम्पराये व्यतिक्रान्ते ब्रह्मा विष्णुमभाषत ॥५४
अद्य संवत्सरं पूर्णं समयं प्रत्युपस्थितम् ।
यथेप्सितं व्रज स्वस्थानं यास्मि चाप्यहम् ॥५५
स तस्य वचसा देव संहारमकरोत्तदा ।
मही निस्थावरा कृत्वा प्रकृतिं स्थापयाद् ॥५६

ये उनके गौण नाम हैं और दूसरे कर्मों से उत्पन्न होने वाले भी नाम होते हैं । हे गुणानन्दे ! मेरे प्रसाद से इस प्रकार आपके बहुत से नाम होंगे ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर पीड़ित होते हुए उन दोनों ने यह वरदान माँगा हम दोनों का मरण अनावृत हो और आपका पुत्रत्व होवे ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर ऐसा ही हो यह कहकर हित की कामना से लोक ही यमालय को प्राप्त कर दिया जिष्णु कटभ को और विष्णु मधु को ले गये । ५२ ॥ इस प्रकार से विष्णु और जिष्णु के हाथ से दोनों दस्य मारे गये थे । तब प्रथम ब्रह्माजी ने लोकों के हित की कामना से यह सब किया था ॥ ५३ ॥ जब जिस तरह से अपने आपको पुत्र के रूप में ईश ने लिया था यह समझ लो । तब विष्णु और जिष्णु के साथ युद्ध में मधु और कैटभ के व्यतिक्रान्त हो जाने पर ब्रह्माजी ने विष्णु से कहा—॥ ५४ ॥ आज तो यह का पूरा समय समाप्त हो गया है और अब मैं भी यथेप्सित सम्पन्न से और अपने स्थान को जाता हूँ ॥ ५५ ॥ उसने उस वचन से देव ने तब संहार कर दिया था । इस भूमि को बिना स्थावर वाली तथा जङ्गमों को प्रकृति में स्थित कर दिया था ॥ ५६ ॥

यदि गोविन्द भवन्तो जितस्ते यावसो यदि ।
यद्धि मम् करणीयं स्या न्मया ते कथिमं वद्धन ॥५७
बाढं शृणु त्वं हेतोऽभि पद्मयाने बचो मम ।
प्रसादो यस्त्वया तेन ईश्वरात् पुनस्त्विच्छया ॥५८
इन्त्वया सफलं कृत्वा मत्तोऽभूद्गुणो भवान् ।
चतुर्विधानि भूतानि सृष्ठ त्वं विसृजस्व वा ॥५९
अवाप्य सञ्ज्ञोविन्दात् पद्मयोनिं पितामहः ।

प्रजाः स्रष्टुमनास्तेपे तत उग्रं तपो महत् ॥६०
तस्यैवं तप्यमानस्य न किञ्चित्समवर्तत ।
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधो व्यजायत ॥६१
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः ।
ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो वातपित्तकफात्मकाः ॥६२
महाभागा महासत्त्वाः स्वस्तिकैरप्यलङ्कृताः ।
प्रकीर्णकेशाः सर्पास्ते प्रादुर्भूता महाविषाः ॥६३

हे गोविन्द ! हे गरुड़ध्वज ! आपका कल्याण हो, आपने समुद्र का क्षय कर दिया है, अब मुझे बतलाइये कि मुझे क्या करना चाहिए ॥ ५७ ॥ विष्णु ने कहा—अच्छा, हे पद्मयोनि ! हे सुव्रत ! आप मेरे वचन श्रवण करो कि आपने महेश्वर से पुत्र की कामना से वरदान प्राप्त करने का समारम्भ किया था ॥ ५८ ॥ अब आप पुत्र से अनृण हो गये हैं और उस वरदान को सफल बनाइये । आप अब चार प्रकार के प्राणियों का सृजन करें अथवा विविध रूप से सृजन करने का कार्य करें ॥ ५९ ॥ इस प्रकार से पद्मयोनि पितामह ने गोविन्द से आज्ञा प्राप्त करके प्रजा के सृजन करने के मन वाले होकर फिर वहाँ महान् उग्र तपश्चर्या करने का आरम्भ कर दिया था ॥ ६० ॥ अब इस तरह से ब्रह्माजी बहुत समय तक तप करते रहे और कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ तो फिर उनको महान् दुःख उत्पन्न हुआ और उस दुःख से क्रोध बढ़ गया था ॥ ६१ ॥ जब ब्रह्माजी के नेत्र क्रोध से पूर्णतया आविष्ट हो गये तो फिर उनसे आँसुओं की बूँदें निकल पड़ी थीं । तब फिर उन अश्रु बिन्दुओं से वात, पित्त और कफ के स्वरूप वाले महाभाग, महान् सत्त्व, स्वस्तिकों से अलङ्कृत होते हुए महान् विष वाले तथा फैले हुए केशों वाले सर्प प्रादुर्भूत हो गये थे ॥ ६२-६३ ॥

सर्पांस्तथाग्रजान् दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दत ।
अहो धिक् तपसो मह्यं फलमीदृशकं यदि ।
लोकवैनाशिकी जज्ञे आदावेव प्रजा मम ॥६४
तस्य तीव्राभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा ।

विष्णुना जिष्णुना सार्द्ध मधुकैटभयोस्तथा ।
सम्पराये व्यतिक्रान्ते ब्रह्मा विष्णुमभाषत ॥५४
अद्य वर्षशतं पूर्णं समयः प्रत्युपस्थितः ।
यन्मेऽसम्भवच्छोरं स्वल्पान प्राणि चाण्डहम् ॥५५
स तस्य वचसा देवः संहारं करोत्तदा ।
मही निःस्थावरां कृत्वा प्रकृतिं च जङ्गमात् ॥५६

ये सब पके गौण नाम हैं और दूसरे कर्मों से उत्पन्न होने वाले भी नाम होते हैं। हे सुव्रतो ! मेरे प्रसाद से इस प्रकार आपके बहुत से नाम होंगे ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर दीक्षित होते हुए उन दोनों में यह वरदान माँगा हम दोनों का मरण अमन्भूत हो और आपका पुत्रत्व होवे ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर ऐसा ही हो यह कहकर हित की कामना से शीघ्र ही यमालय को प्राप्त कर दिया जिष्णु कहम को और विष्णु मधु को ले गये। ५२ ॥ इस प्रकार से जिष्णु और विष्णु के हाथ से दोनों दानव मारे गये थे। तब प्रसन्न ब्रह्माजी ने लोकों के हित की कामना से यह सब किया था ॥ ५३ ॥ अब जिस तरह से भगवन आपको पुत्रत्व के रूप से ईश ने किया था वह समझ लो। तब विष्णु और जिष्णु के साथ युद्ध में मधु और कहम के व्यतिक्रान्त हो जाने पर ब्रह्माजी ने विष्णु से कहा—॥ ५४ ॥ आज सौ वर्ष का पूरा समय समाप्त हो गया है और अब मैं भी संक्षेप तथा सम्भव से घोर अण्ड स्थापन करने वाला हूँ ॥ ५५ ॥ उसके इस वचन से देव ने तब संहार कर दिया था। इस भूमि को बिना स्थावर वाली तथा जङ्गमों को प्रकृति से रिक्त कर दिया था ॥ ५६ ॥

यदि गोविन्द भक्तोऽसि स्थितो यादृशः परि ।
ब्रूहि यत् करणीयं स्यान्मया ते लक्षितं महत् ॥५७
वाढं शृणु त्वं देवेश पद्मयोने वचो मम ।
प्रसादो यस्त्वया लब्ध ईश्वरात् पुत्रलिप्सया ॥५८
तं त्वया सफलं कृत्वा मत्तोऽभूदनुगो भवान् ।
चतुर्विधानि भूतानि सृज त्वं विसृजस्व वा ॥५९
समाप्य यज्ञान्तोविन्द्यात् पद्मयोनिं पितामहः ।

प्रजा सृष्टुमनास्तेपे तप उग्रं ततो महत् ॥६०
तस्यैवन्तप्यमानस्य न किञ्चित्समवर्त्तत ।
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधो व्यवर्द्धत ॥६१
सक्रोधाविष्टनेत्राभ्यामपतन्नश्रुविन्दव ।
ततस्तेभ्योऽश्रुविन्दुभ्यो वातपित्तकफात्मका ॥६२
महाभागा महासत्त्वा स्वस्तिकैरप्यलङ्कृता ।
प्रकीर्णकेशा सर्पास्ते प्रादुर्भूता महाविषा ॥६३

हे गोविन्द ! हे अरिनिषूदन ! आपका कल्याण हो, आपने समुद्र का क्षेप कर दिया है, अब मुझे बतलाइये कि मुझे क्या करना चाहिए ॥ ५७ ॥ विष्णु ने कहा—अच्छा, हे पद्मयोनि ! हे हेमाभ ! आप अब मेरा वचन श्रवण करो कि आपने महेश्वर से पुत्र की कामना से वरदान प्राप्त करने का प्रसाद लाभ किया था ॥ ५८ ॥ अब आप मुझ से अनृण हो गये हैं और उस वरदान को सफल बनाइये । आप अब चार प्रकार के प्राणियों का सृजन करें अथवा विशेष रूप से सृजन करने का कार्य करें ॥ ५९ ॥ इस प्रकार से पद्मयोनि पितामह ने गोविन्द से सज्ञा प्राप्त करके प्रजा के सृजन करने के मन वाले होकर फिर वहाँ महान् उग्र तपश्चर्या करने का आरम्भ कर दिया था ॥ ६० ॥ जब इस तरह से ब्रह्माजी बहुत समय तक तप करते रहे और कुछ भी न हुआ । जब .ही हुआ तो फिर उनको महान् दुःख उत्पन्न हुआ और उस दुःख से क्रोध बढ़ गया था ॥ ६१ । जब ब्रह्माजी के नेत्र क्रोध से पूर्णतया आविष्ट हो गये तो फिर उनसे आँसुओं की बूँदें निकल पड़ी थीं । तब फिर उन अश्रु बिन्दुओं से वात, पित्त और कफ के स्वरूप वाले महाभाग, महान् सत्त्व, स्वस्तिकों से अलङ्कृत होते हुए महान् विष वाले तथा फैले हुए केशों वाले सर्प प्रादुर्भूत हो गये थे ॥ ६२-६३ ॥

सर्पास्तथाग्रजात् दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दत ।
अहो धिक् तपसो मह्यं फलमीदृशकं यदि ।
लोकवैनाशिकी जज्ञे आदावेव प्रजा मम ॥६४
तस्य तीव्राभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा ।

मूर्च्छाभितापेन तदा जहौ प्राणान् प्रजापतिः ॥६५

तस्याप्रतिमवीर्यस्य देहात् कारुण्यपूर्वकम् ।
अथैकादश ते रुद्रा प्रोद्भूता रुदतस्तथा ।
रोदनात् खलु रुद्रास्ते रुद्रत्वं तेन तेषु तत् ॥६६

ये रुद्रा खलु ते प्राणा ये प्राणास्ते तदात्मका ।
प्राणा प्राणभृता ज्ञेया सर्वभूतेष्ववस्थिता ॥६७

अत्युग्रस्य महत्त्वस्य साधुना चरितस्य च ।
तस्य प्राणान् ददौ भूयस्त्रिशूली नीललोहित ।
ललाटात् पद्मयोनेस्तु प्रभुरेकादशात्मक ॥६८

ब्रह्मण सोऽददात् प्राणानात्मज स तदा प्रभु ।
प्रहृष्टवदनो रुद्र किंचित् प्रत्यागतासवम् ।
अभ्यभाषत्तदा देवो ब्रह्माणं परमं वच ॥६९

उपयाचस्व मा ब्रह्मन् स्मरतु महसि चात्मन ।
मा च वैक्लव्यमगम रुद्र प्रसाद कुरु मे प्रभो ॥७०

ब्रह्माजी ने उनसे पूर्व उत्पन्न होने वाले उन सर्पों को देखकर अपने आपको बहुत कुछ बुरा समझा था अहो ! इन मेरे तप को धिक्कार है । यह मुझे ऐसा तप का फल मिला है कि मैंने सबसे पूर्व यह लोकों के विनाश करने वाली प्रजा ही आदि में उत्पन्न की है ॥६४॥ उस समय ब्रह्माजी को बहुत ही तीव्र मूर्छा हो गई थी कि क्रोध और अमर्ष से ही पैदा हुई थी । तब प्रजापति ने उस मूर्छा के अभिताप से अपने प्राणों का परित्याग कर दिया था ॥६५॥ उनके उस अप्रतिम वीर्य वाले के देह से करुणा के साथ एकादश रुद्र रुदन करते हुए उत्पन्न हुए । क्योंकि वे रोदन कर रहे थे इसलिये ही उनमें रुद्रत्व के नाम की प्रसिद्धि हुई थी ॥६६॥ जो रुद्र हैं वे प्राण हैं और जो प्राण हैं वे तदात्मक हैं । समस्त भूतों में अवस्थित प्राणधारियों के उन्हें प्राण समझना चाहिए ॥६७॥ अत्युग्र उस महत्त्व और साधु के चरित्र उनके प्राणों को नीललोहित त्रिशूली ने फिर दे दिया था जो कि पद्मयोनि ब्रह्माजी के ललाट से एकादशात्मक प्रभु उत्पन्न हुए थे ॥६८॥ उस आत्मज प्रभु ने ब्रह्माजी को प्राणों को दिया था ।

और कहा—हे प्रभो ! आप मुझको अपना आत्मज रुद्र समझें और मुझ पर प्रसन्नता करें ॥७०॥

श्रुत्वा शिवं वचस्तस्य प्रभूतञ्च मनोगतम् ।
पितामहः प्रसन्नात्मा नेत्रे फुल्लाम्बुजप्रभे ॥७१
ततः प्रत्यागतप्राणः स्निग्धगम्भीरया गिरा ।
उवाच भगवान् ब्रह्मा शुद्धजाम्बूनदप्रभः ॥७२
भो भो वद महाभाग आनन्दयसि मे मनः ।
को भवान् विश्वमूर्तिस्त्वं स्थित एकादशात्मकः ॥७३
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणाऽनन्ततेजसा ।
ततः प्रत्यवदद्रुद्रो ह्यभिवाद्यात्मजैः सह ॥७४
यत्ते वरं मह ब्रह्मन् याचितो विष्णुना सह ।
पुत्रो मे भव देवेति त्वत्तुल्यो वापि धूर्वहः ॥७५
लोकेषु विश्रुतं कार्यं सर्वं विश्वात्मसम्भवे ।
विषादं त्यज देवेश लोकांस्त्वं स्रष्टुमर्हसि ॥७६
एवं स भगवानुक्तो ब्रह्मा प्रीतमना भवत् ।
रुद्रं प्रत्यवदद्भूयो लोकान्ते नीललोहितम् ॥७७

ब्रह्माजी ने इस परम सुन्दर वचन को सुनकर जिसे कि मन में वे चाहते ही थे, पितामह को बहुत ही प्रसन्नता हुई और उनके नेत्र विकसित कमलों के समान हो गये थे ॥७१॥ इसके अनन्तर प्रत्यागत प्राणों वाले भगवान् ब्रह्मा विशुद्ध सुवर्ण की कान्ति के समान कान्ति वाले होकर अत्यन्त स्निग्ध और गम्भीर वाणी से बोले ॥७२॥ हे महाभाग ! आप मेरे मन को बहुत ही आनन्दित कर रहे हैं । आप अब मुझे बतलाइये कि एकादश स्वरूप वाले विश्व की मूर्ति स्वरूप आप कौन हैं ? ॥७३॥ इस प्रकार से भगवान् ब्रह्मा के द्वारा कहे गये थे कि ब्रह्माजी अनन्त तेज से उस समय युक्त थे, भगवान् रुद्र ने अपने आत्मजों के साथ ब्रह्माजी को प्रणाम करके उत्तर दिया था ॥७४॥ हे ब्रह्मन् ! आपने भगवान् विष्णु के साथ मुझसे जो वरदान माँगा था कि आप स्वयं या आपके ही तुल्य धुरी को वहन करने वाला मेरा पुत्र होवे ॥७५॥ हे देवेश !

आप लोकों में समस्त त्रिवर्गों में सम्बन्ध एवं विपुलों के द्वारा जो आप लोकों के सृजन का करना चाहते हैं उसे अब विषाद को त्याग कर करें ॥७६॥ इस तरह से कहे हुए ब्रह्माजी के मन को बड़ी प्रसन्नता हुई और फिर भगवान् ब्रह्मा लोकात्म में नील लोहित रूप से कहने लगे ॥७७॥

साहाय्यं मम कार्याय प्रजा सृज मया सह ।
बीजो ऽद्य सर्वभूतानां तत्प्रपन्नस्तथा भव ।
बाढमित्येव तां वाणीं प्रतिजग्राह शङ्कर ॥७८
तत स भगवान् ब्रह्मा कृष्णाजिनविभूषित ।
मनोऽग्र सोऽसृजद् यो भूतानां धारणा वत ।
जिह्वा सरस्वतीञ्च व वक्त्रात् विश्वरूपिणीम् ॥७९
भृगुमङ्गिरसं दक्ष पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
वशिष्ठञ्च महातेजा ससृजे सप्त मानसान् ॥८०
पुत्रानात्मसमानान् सोऽसृजद्विश्वसम्भवान् ।
तेषां भूयोऽसृमार्गेण गावो वक्त्राद्विजज्ञिरे ॥८१
ओङ्कारप्रमुखान् वेदानभिमान्याश्च देवता ।
एवमेतान् यथाप्रोक्तान् ब्रह्मा लोकपितामह ॥८२
प्रजाधारान् मानसान् पुत्रान् प्रोवाच भगवान् प्रभु ।
प्रजा सृजत भद्रं वो रुद्रेण सह धीमता ॥८३
अनुगम्य महात्मानं प्रजानां पतयस्तदा ।
वयमिच्छामहे देव प्रजा स्रष्टुं त्वया सह ।
कल्पणस्त्वेष स देवस्तव चैव महेश्वर ॥८४

आप अब मेरी सहायता करें और मेरे साथ में रहकर मेरे काम के लिए प्रजा का सृजन करो। आप समस्त प्राणियों के बीज हैं। अब आप उसी रूप में प्रपन्न हो जावें। बस तो "बहुत अच्छा ऐसा ही होगा"—इस प्रकार से भगवान् शङ्कर ने ब्रह्माजी की इस वाणी को ग्रहण कर लिया था ॥७८॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने जो कि कृष्णाजिन से विभूषित थे सबसे आगे मन का सृजन किया फिर वेद ने प्राणियों की धारणा का सृजन किया। इसके उपरान्त विश्व-

रूपिणी जिह्वा तथा सरस्वती की सृष्टि की थी ॥७९॥ इसके अनन्तर भृगु अङ्गिरा, दक्ष, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ इन सात मानस पुत्रों को महान् तेज वाले ब्रह्माजी ने उत्पन्न किया ॥८०॥ फिर उनने अपने ही तुल्य अन्य विश्व-सम्भव पुत्रों का सृजन किया फिर उनके अनुमार्ग से मुख से गौओं को जन्म दिया ॥८१॥ लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने ओङ्कार की प्रमुखता वाले वेदों को तथा अन्य देवताओं को और इस प्रकार से यथाप्रोक्त इन सबको उत्पन्न किया। ॥८२॥ भगवान् प्रभु ने इन सृजन किए हुए दक्ष आदि मानस पुत्रों से कहा—आप सब धीमान् रुद्र के साथ प्रजा का सृजन करो। आपका कल्याण होगा ॥ ॥८३॥ अब उन समय प्रजाओं के पति उस महान् आत्मा वाले के पास जाकर पहुँचे और कहा—हे देव ! हम सब आपके साथ प्रजा का सृजन करने की इच्छा करते हैं। हे महेश्वर ! यह ब्रह्माजी का तथा आपका सन्देश है ॥८४॥

तैरेवमुक्तो भगवान् रुद्र प्रोवाच तान् प्रभु ।
ब्रह्मणश्चात्मजा यूयं प्राणान् गृह्य च वै सुरा ॥८५
कृत्वाप्रजाप्रजानेतान् ब्राह्मणानात्मजान्मम ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् सप्तलोकान्ममात्मकान् ।
भवन्त स्रष्टुमर्हन्ति वचनान्मम स्वस्ति व ॥८६
तेनैवमुक्ता प्रत्यूचु रुद्रमाद्यन्त्रिशूलिनम् ।
यथाज्ञापयसे देव तथा तद्वै भविष्यति ॥८७
अनुमान्य महादेव प्रजाना पतयस्तदा ।
ऊचुर्दक्ष महात्मान भवान् श्रेष्ठ प्रजापति ।
त्वा पुरस्कृत्य भद्रन्ते प्रजा स्रक्ष्यामहे वयम् ॥८८
एवमस्त्विति वै दक्ष प्रत्यपद्यत भाषितम् ।
तं सह स्रष्टुमारेभे प्रजाकाम प्रजापति ।
सर्गस्थिते तत स्थाणौ ब्रह्मा सर्गमथासृजत् ॥८९
अथादौ सप्तमेऽतीते कल्पे वै सम्बभूवतु ।
ऋभु सनत्कुमारश्च तपो लोकनिवासिनौ ।
ततो महर्षीनन्यान् स मानसानसृजत् प्रभु ॥९०

ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर भगवान् रुद्र ने उनसे कहा—आप सब देवता ब्रह्मा के पुत्र हो सो तुम सब मेरे लिये प्राणों को ग्रहण करो। मेरे समस्त भाग ग्रहण देने वाले इन अनेक ब्राह्मणों को वर्जित करके मेरे स्वरूप वाले ब्रह्मादि से स्थावर पर्यन्त सात लोकों को आप लोग सृष्टि करने के योग्य होते हैं। मेरे इस वचन से आपका कल्याण होगा ॥८५॥८६॥ इस तरह रुद्र के द्वारा कहे गये उन्होंने आज त्रिशूली रुद्र से कहा—हे देव! जैसी भी आप आज्ञा प्रदान करते हैं वही सब किया जायेगा ॥८७॥ तब समस्त प्रजा पतियों ने महादेव का सम्मान करके मधुरता से यह कहा कि आप स्वयं परम प्रभु प्रजापति हैं। हम सब आपकी ही आज्ञा करके प्रजा का सृजन करेंगे। आपका भला हो ॥८८॥ तब स्वयं प्रजापति ने कहा—ऐसा ही होगा और प्रजा की कामना वाले इस ने उन सबके साथ सृष्टि करने के कार्य का आरम्भ कर दिया। सर्ग के निमित्त होने वाले स्थाणु से फिर ब्रह्माजी ने मन का सृजन किया था ॥८९॥ इसके अनन्तर सप्तम कल्प के अतीत हो जाने पर तपोलोक के निवास करने वाले ऋभु और सनत्कुमार उत्पन्न हुए। फिर इसके पश्चात् प्रभु ने अन्य मानस महर्षियों का सृजन किया था ॥९०॥

॥ प्रकरण २६—रुद्रोत्पत्ति वर्णन ॥

अहो विस्मयनीयानि रहस्यानि महामते ।
त्वयोक्तानि यथातत्त्वं लोकानुग्रहकारणात् ॥१
तत्र च संशयो महामयता (वा) देषु सूचित ।
किं कारणं महादेव कलि भाष्य सुदारुणम् ।
हित्वा युगानि पूर्वाणि अवतारं करोति च ॥२
अस्मिन्मन्वन्तरे चैव प्राप्ते वैवस्वते प्रभो ।
अवतारं कथम्भक्त एतदिच्छामि वेदितुम् ॥३
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्धि लोके परत्र च ।
भक्तानामुपदेशार्थं विनयात्पृच्छतो मम ।
कथय त्वं महाभाग यदि ग्राह्यं महामतम् ॥४
एवं पृष्टोऽथ भगवान् वायुर्लोकहिते रतः ।

इदमाह महातेजा वासुदेवो लोकनमस्कृत ॥५
एतद्गुह्यतम लोके यन्मात्त्व परिपृच्छसि ।
तत्सर्वं शृणु गांगेय उच्यमान यथाक्रमम् ॥६
पुरा ह्येकार्णवे वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके ।
स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दु खित ॥७

श्री सूतजी ने कहा—हे महामते ! अहो ! आपने तो विस्मय करने के योग्य रहस्यों को समझा दिया है और यह भी लोगों पर अनुग्रह करके यथातत्त्व वर्णन किया है ॥१॥ उनमें भगवान् शूली के अवतारों में हमको बड़ा विस्मय होता है । क्या कारण है कि महादेव पूर्व युगों को छोड़कर इस दुर्दारुण कलियुग को प्राप्त कर अवतार ग्रहण करते हैं ॥२॥ हे प्रभो ! इस वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होने पर कैसे अवतार लिये । यह सब हम जानने की इच्छा रखते हैं ॥३॥ आपको तो कोई भी बात इस लोक की हो चाहे परलोक की हो अविदित नहीं है । भक्तों के उपदेश के लिये विनय के साथ पूछने वाले मुझको हे महाप्राज्ञ ! यह सब यतलाइये यदि यह महामत श्रवण कराने के योग्य है तो अवश्य श्रवण करा दें ॥४॥ श्री लोमशजी ने कहा—इस प्रकार से पूछे गये भगवान् वासुदेव जो कि सर्वदा लोक के हित में अनुराग रखने वाले थे, महान् तेज वाले लोकों के द्वारा नमस्कृत वासुदेव ने यह कहा ॥५॥ यह लोक में परम गोपनीय विषय है जो कि आप मुझसे इस समय पूछ रहे हैं । हे गांगेय ! वह सब यथाक्रम कहा हुआ मुझसे श्रवण करो ॥६॥ पहिले एकार्णव में ही जाने पर दिव्य एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये तब प्रजा के सृजन करने की कामना वाले ब्रह्माजी अत्यन्त दु खित होकर चिन्ता करने लगे ॥७॥

तस्य चिन्तयमानस्य प्रादुर्भूत कुमारक ।
दिव्यगन्ध सुरापेक्षी दिव्या श्रुतिमुदीरयन् ॥८
अशब्दस्पर्शरूपाख्यामगन्धा रसवर्जिताम् ।
श्रुति ह्युदीरयन् देवो यामविन्दच्चतुर्मुख ॥९
ततस्तु ध्यानसंयुक्तस्तप आस्थाय भैरवम् ।
चिन्तयामास मनसा मितय कोऽन्वयन्त्विति ॥१०

तस्य चिन्तयमानस्य प्रादुर्भूतं तदक्षरम् ।
अस्पर्शमरूपञ्च रसगन्धविवर्जितम् ॥११
अथोत्तम स लोकेषु स्वमूर्तिञ्चापि पश्यति ।
ध्यायंश्च स तदा देवमयन पश्यते पुन ॥१२
स श्वेतमथ रक्तञ्च पीतं कृष्णं तदा पुन ।
वर्णस्य तं पश्येत न स्त्री न च न पुंसकम् ॥१३
तत्सर्वं सुचिरं शात्वा चिन्तयन् हि तदक्षरम् ।
तस्य चिन्तयमानस्य कण्ठादुत्तिष्ठतेऽक्षर ॥१४

इस प्रकार चिन्ता में मग्न रहते हुए उनके कुमार प्रादुर्भूत हुए थे कि दिव्य रूप वाले और सुवापेसी थे तथा दिव्य श्रुति का उच्चारण कर रहे थे ॥ ॥८॥ चतुर्मुख देव ने स्पर्श और रूप से रहित अगन्ध वाली तथा रूपहीन एवं रस वर्जित ध्वनि का उच्चारण करते हुए ध्यान किया था ॥६। इसके पश्चात् ध्यान में सयुक्त होकर परम तपश्चर्या में स्थित होकर मन से सोचने लगे कि यह विषय कौन है ॥१ ॥ उनके चिन्तन करते हुए स्पर्श रूप से रहित तथा रस और गन्ध से वर्जित वह अक्षर प्रादुर्भूत हुआ ॥११॥ इसके अनन्तर उसने लोकों में अपनी मूर्ति को देखा। उस देव का ध्यान करते हुए पुन इस देव को ही देखा ॥१२॥ पहिले श्वेत फिर रक्त-पीत तथा कृष्ण वर्ण में स्थित उसको वहाँ देखा न तो वहाँ कोई स्त्री थी और न कोई पुरुष ही था। ॥१३॥ जब उसका बहुत समय तक ध्यान करके और उस अक्षर का चिन्तन करते हुए उसके चिन्तन करने वाले के कण्ठ से अक्षर उठता है ॥१४॥

एकमात्रो महाघोष श्वेतवर्ण सुनिर्मल ।
स ओंकारो भवेद्वेद अक्षर च महेश्वर ॥१५
एतच्चिन्तयमानस्य स्वक्षरं च स्वयम्भुव ।
प्रादुर्भूता तु रक्तान्तु स देव प्रथम स्मृत ॥१६
ऋग्वेद प्रथम तस्य त्वग्निमीले पुरोहितम् ।
एता दृष्ट्वा ऋच ब्रह्मा चिन्तयामास च पुन ।
तदक्षर महातेजा किमेतदिति लोककृत् ॥१७

तस्य चिन्तयमानस्य तस्मिन्नथ महेश्वर ।
द्विमात्रमक्षरं जज्ञे ईशित्वेन द्विमात्रिकम् ॥१८
तत पुनर्द्विमात्रं तु चिन्तयामास चाक्षरम् ।
प्रादुर्भूत च रक्त तच्छेदने गृह्य सा यजु ॥१९
इषे त्वोर्जेत्वा वायवस्थ देवो व सविता पुन ।
ऋग्वेद एकमात्रस्तु द्विमात्रस्तु यजु स्मृतम् ॥२०
ततो वेद द्विमात्र तु दृष्ट्वा चैव तदक्षरम् ।
द्विमात्र चिन्तयन् ब्रह्मा त्वक्षर पुनरीश्वर ॥२१

एकमात्र-महाघोष-श्वेत वर्ण वाला तथा सुनिमल यह ओङ्कार अक्षर को महादेव ने वेद समझा था ।।१५।। उस अक्षर का चिन्तन करने वाले स्वयम्भु के रक्त प्रादुर्भूत हुआ और वह प्रथम वेद कहा गया है ।।१६।। उसके प्रथम ऋग्वेद को "अग्निमीळे पुरोहितम्" इस ऋचा को ब्रह्माजी ने देखा और फिर चिन्तन में लग गये, महान् तेज वाले तथा लोकों के कर्ता ने विचार किया कि यह अक्षर क्या है ? ।।१७।। इस प्रकार से उसके चिन्तन करते हुए महेश्वर ने उससे ईशत्व से दो मात्रा वाला द्विमात्र अक्षर उत्पन्न किया ।।१८।। इसके पश्चात् फिर द्विमात्र अक्षर का चिन्तन किया । फिर उसके छेदन में रक्त वर्ण वाला यजु प्रादुर्भूत हुआ ।।१९।। जिसकी ऋचा यह है—"इषे त्वोर्जेत्वा वायवस्थ देवो व सविता पुन" । ऋग्वेद तो एकमात्र है और यजु द्विमात्र कहा गया है ।।२०।। इसके पश्चात् वेद को द्विमात्र देखकर फिर ईश्वर ब्रह्मा उस अक्षर को द्विमात्र चिन्तन करने में संलग्न हो गये थे ।।२१।।

तस्य चिन्तयमानस्य चोङ्कार सम्भवन्न ह ।
ततस्तदक्षर ब्रह्मा ओङ्कार समचिन्तयत् ॥२२
अथापश्यत्तत पीतमृच चैव समुत्थिताम् ।
अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ॥२३
ततस्तु स महातेजा दृष्ट्वा वेदानुपस्थितान् ।
चिन्तयित्वा च भगवांश्चिन्त्य यश्चिरक्षरम् ।
त्रिवर्ण यत् त्रिपत्रमोङ्कार ब्रह्मसञ्ज्ञितम् ।।२४

ततश्च व त्रिसमोगान् त्रिवर्णं तु तदक्षरम् ।
लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपं च सहितं त्रिदिवं त्रिकम् ॥२५
त्रिमात्रं त्रिपदं चैव त्रिपादं चैव शाश्वतम् ।
तस्मात्तदक्षरं ब्रह्मा चिन्तयामास वै प्रभुः ॥२६
तस्मात्तदक्षरं सोऽपि ब्रह्मरूपं स्वयम्भुवः ।
चतुर्दशमुखं देवं पश्यते दीप्ततेजसम् ।
तमोङ्कारं स हृत्वा वै विज्ञेयः स स्वयम्भुवः ॥२७
चतुर्मुखमुखात्तस्मादभिध्यायन्त चतुर्दश ।
नानावर्णाः स्वरा दिव्यमाद्यं यच्च तदक्षरम् ।
तस्माद् त्रिषष्टिवर्णा वै अकारप्रभवाः स्मृताः ॥२८॥

इस प्रकार से उनके चिन्तन करते हुए ओङ्कार समुत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् उस अक्षर ओङ्कार का ब्रह्माजी ने चिन्तन किया था ॥२३॥ इसके अनन्तर समुत्थित दीप्त वर्ण वाली ऋचा को देखा जिसका स्वरूप है— अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ॥२४॥ इसके पश्चात् उस महान् तेज वाले ने समुत्थित वेदों को देखकर भगवान् ने तीनों सन्ध्याओं में जो निरक्षर था उसका चिन्तन किया। क्योंकि तीन वर्ण वाला त्रिपदन ब्रह्म की सत्ता से युक्त ओङ्कार था ॥२५॥ इसके पश्चात् तीन के संयोग से तीन वर्ण वाला वह अक्षर लक्ष्य और अलक्ष्य से स्वरूप हित के सहित त्रिदिव त्रिक त्रिमात्र त्रिपद और शाश्वत वह अक्षर था उसका प्रभु ब्रह्माजी ने चिन्तन किया था ॥२५॥२६॥ इससे वह स्वयम्भू के ब्रह्म रूप उस अक्षर को चतुर्दश मुख वाले देव को जोकि दीप्त तेज वाला था देखा। उसने उस ओङ्कार को आगे करके उसे स्वयम्भू का ही जानना चाहिए ॥२७॥ उस चतुर्मुख (ब्रह्मा) के मुख से चौदह उत्पन्न हुए और नाना वर्ण वाले स्वर तथा आद्य वह दिव्य अक्षर उत्पन्न हुए। इससे अकार प्रभव तिरेसठ वर्ण कहे गये हैं ॥२८॥

तत साऽऽद्यात्स्वधर्मेण वर्णानां तु स्वयम्भुवः ।
अकाररूपं चाद्यं तु स्थितं सर्व प्रथमं स्वरः ॥२९
ततस्तेभ्यः स्वरेभ्यस्तु चतुर्दश महामुखाः ।
मनवः सम्प्रसूयन्ते दिव्या मन्वन्तरे स्वराः ॥३०

चतुर्दशमुखो यश्च अकारो ब्रह्मसंज्ञित ।
ब्रह्मकल्प समाख्यात सर्ववर्ण प्रजापति ॥३१
मुखात्तु प्रथमात्तस्य मनु स्वायम्भुव स्मृत ।
अकारस्तु स विज्ञेय श्वेतवर्ण स्वयम्भुव ॥३२
द्वितीयात्तु मुखात्तस्य आकारो वै मुख स्मृत ।
नाम्ना स्वारोचिषो नाम वर्ण पाण्डुर उच्यते ॥३३
तृतीयात्तु मुखात्तस्य इकारो यजुषा वर ।
यजुर्मय स चादित्यो यजुर्वेदो यत स्मृत ॥३४
ईकार स मनुर्ज्ञेयो रक्तवर्ण प्रतापवान् ।
तत क्षत्र प्रवर्तन्त तस्माद्रक्तस्तु क्षत्रिय ॥३५

इसके अनन्तर वर्णों के साधारण बोध के लिये स्वयम्भु का अकार रूप आदि में स्थित हुआ जोकि प्रथम स्वर कहा जाता है ॥२६॥ इसके उपरान्त उन स्वरों से चौदह महाभुज मनु उत्पन्न होते है जोकि मन्वन्तर मे विश्व स्वर हैं ॥३०॥ चतुर्दश मुख वाला जो अकार है वह ब्रह्म की संज्ञा से युक्त है ब्रह्म-कल्प अर्थात् ब्रह्म के ही सदृश, सब वर्ण और प्रजापति कहा गया है ॥३१॥ उसके प्रथम मुख से स्वायम्भुव मनु कहा गया है वह अकार तो स्वयम्भू का श्वेत वर्ण जानना चाहिए ॥३२॥ द्वितीय उसके मुख से आकार मुख कहा गया है वह नाम स्वारोचिष है और उसका वर्ण पाण्डुर कहा गया है ॥३३॥ उसके तीसरे मुख से यजु मे श्रेष्ठ इकार है। वह आदित्य यजुर्मय है इसीसे वह यजुर्वेद कहा गया है ॥३४॥ ईकार प्रताप वाला रक्तवर्ण मे युक्त मनु जानने के योग्य है। इससे क्षत्र प्रवृत्त होता है। इसीलिये क्षत्रिय रक्त होता है ॥३५॥

चतुर्थात्तु मुखात्तस्य उकार स्वर उच्यते ।
वर्णतस्तु स्मृतस्ताम्र स मनुस्तामस स्मृत ॥३६
पञ्चमात्तु मुखात्तस्य ऊकारो नाम जायते ।
पीतकी वर्ण तश्चैव मनुश्चापि चरिष्णव ॥३७
तत षष्ठान्मुखात्तस्य ओङ्कार कपिल स्मृत ।
चरिष्णुश्च तत षष्ठो विजय स महातपा ॥३८

सप्तमात्तु मुखात्तस्य ततो वैवस्वतो मनुः ।
अकारश्च स्वरस्तत्र वर्णेन कृष्ण उच्यते ॥३९
अष्टमात्तु मुखात्तस्य ऋकारं श्यामवर्णतः ।
श्यामाक्षरसुवर्णश्च तत्र सावर्णिरुच्यते ॥४०॥
मुखात्तु नवमात्तस्य लृकारो नवमः स्मृतः ।
धूम्रो वर्णस्तथापि धूम्रश्च मनुरुच्यते ॥४१
दशमात्तु मुखात्तस्य लृकारं प्रभुरुच्यते ।
समश्च स सवर्णश्च धमो सावर्णिको मनुः ॥४२

उसके सप्तम मुख से उकार स्वर कहा जाता है। वह वर्ण से ताम्र कहा गया है और वह शाकल मनु प्रसिद्ध हुआ है ॥३९॥ उसके पंचम मुख से ऊकार नाम वाला उत्पन्न होता है। वह वर्ण से पीत तथा भविष्य मनु कहा गया है ॥३७॥ इसके पश्चात् उसके छठे मुख से ओङ्कार हुआ जो कपिल कहा गया है। यह छठा मनु विजय और मंडार नाम वाला है ॥३८॥ उसके सप्तम मुख से वैवस्वत मनु हुए जिसका स्वर अकार है और वर्ण कृष्ण कहा जाता है ॥३९॥ उसके अष्टम मुख से ऋकार हुआ जो श्याम है। श्यामार्ण सुवर्ण होता है उसी से वह सावर्णि कहा जाता है ॥४०॥ नवम मुख से उसके लृकार हुआ जो नवम कहा गया है। वह वर्ण से धूम्र होता है और धूम्र मनु ही कहा जाता है ॥४१॥ उसके दशम मुख से लृ कार होता है जो कि प्रभु कहा जाता है। वह सम और सवर्ण है इसी लिए सावर्णिक मनु इस नाम से कहा गया है ॥४२॥

मुखादेकादशात्तस्य एकारो मनुरुच्यते ।
पिशङ्गो वर्णतश्चैव पिशङ्गो वर्ण उच्यते ॥४३
द्वादशात्तु मुखात्तस्य ऐकारो नाम उच्यते ।
पिशङ्गो भस्मवर्णाभः पिशङ्गो मनुरुच्यते ॥४४
त्रयोदशान्मुखात्तस्य ओकारो वर्ण उच्यते ।
पञ्चवर्णसमायुक्त ओकारो वर्णतः स्मृतः ॥४५
चतुर्दशमुखात्तस्य औकारो वर्ण उच्यते ।
भर्तृरो वर्णतश्चैव मनुः सावर्णिरुच्यते ॥४६

इत्येते मनवश्चैव स्वरा वर्णाश्च कल्पजाः ।
विज्ञेया हि यथातत्त्वं स्वरतो वर्णतस्तथा ॥४७
परस्परसवर्णाश्च स्वरा यस्माद् भूता हि वै ।
तस्मात्तेषां सवर्णत्वाद न्वयस्तु प्रकीर्तितः ॥४८
सवर्णा सदृशाश्चैव यस्माज्जातास्तु कल्पजाः ।
तस्मात् प्रजाना लोकेऽस्मिन् सवर्णा सर्वसन्धयः ॥४९
भविष्यन्ति यथाशीलं वर्णाश्च न्यायतोऽर्थत ।
अभ्यासात्सन्धयश्चैव तस्माज्ज्ञेयाः स्वरा इति ॥५०

एकादश मुख से उसके एकार हुआ जो मनु कहा जाता है। वर्ण से वह पिशङ्ग होता है इसी लिये पिशङ्ग इस नाम से कहा जाता है ॥४ ॥ उसके बारहवें मुख से ऐकार नाम वाला हुआ। वह पिशङ्ग और भस्म के वर्ण की आभा के समान आभा वाला था इसे पिशङ्ग मनु कहा जाता है ॥४४॥ उसके तेरहवें मुख से ओकार वर्ण उत्पन्न हुआ है। यह पञ्च वर्णों से युक्त उत्तम वर्ण ओकार है ॥४५॥ उसके चौदहवें मुख से औकार वर्ण हुआ। वह वर्ण से कर्बुर और सावर्णी मनु कहा जाता है ॥४६॥ ये मनु स्वर और वर्ण कल्प से जानने चाहिए। ये स्वर और वर्ण से ही यथातत्त्व और हैं ॥४७॥ क्योंकि स्वर परस्पर में सवर्णभूत हुए हैं। इसलिये उनके सवर्ण होने से अन्वय कहा गया है ॥४८॥ ये सवर्ण और कल्प में होने वाले सदृश उत्पन्न हुए हैं। इसलिये इस लोक में प्रजाओं के सर्व सन्धि वाले ये सवर्ण होते हैं ॥४९॥ यथाशील न्याय से और अर्थ से ये होंगे। अभ्यास से सन्धियाँ भी हैं इसी से ये ही स्वर जानना चाहिए ॥५०॥

॥ प्रकरण २७—ऋषि वंश कीर्तन ॥

भृगो ख्यातिर्विजज्ञेऽथ ईश्वरौ सुखदुःखयोः ।
शुभाशुभप्रदातारौ सर्वप्राणभृतामिह ।
देवौ धाताविधातारौ मन्वन्तर विचारणौ॥१
तयोर्ज्येष्ठा तु भगिनी देवी श्रीर्लोकभाविनी ।

सा तु नारायणं देवं पतिमासाद्य शोभनम् ।
नारायणात्मजौ साध्वी बलोत्साहौ व्यजायत ॥२
तस्यास्तु मानसाः पुत्रा ये चान्ये दिव्यचारिणः ।
ये वहन्ति विमानानि देवानां पुण्यकर्मणाम् ॥३
कन्ये द्वे च स्मृते भार्ये विधातुर्धातुरेव च ।
आयतिर्नियतिश्चैव तयोः पुत्रौ दृढव्रतौ ॥४

पाण्डुश्चैव मृकण्डुश्च ब्रह्मकोशौ सनातनौ ।
मनस्विन्यां मृकण्डोश्च मार्कण्डेयो बभूव ह ॥५
सुतो वेदशिरास्तस्य मूर्धन्यायामजायत ।
पीवर्यां वेदशिरसः पुत्रा वंशकराः स्मृताः ।
मार्कण्डेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः ॥६

पाण्डोश्च पुण्डरीकायां द्युतिमानात्मजोऽभवत् ।
उत्पन्नौ द्युतिमन्तश्च सृजवानश्च तावुभौ ।
तयोः पुत्राश्च पौत्राश्च भार्गवाणां परस्परम् ।
स्वायम्भुवेऽन्तरेऽतीते मरीचेः शृणुत प्रजाः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—भृगु से ख्याति ने सुख दुःख के स्वामी समस्त प्राणधारियों को शुभ तथा अशुभ को ग्रहण करने वाले मन्वन्तर के विचार करने वाले धाता और विधाता दो देव उत्पन्न किये थे ॥ १ ॥ इनकी ज्येष्ठ भगिनी लोकभाविनी श्री देवी थी । उसने नारायण देव को अपना पति प्राप्त किया जो कि परम शोभन थे । उस साध्वी देवी से नारायण के पुत्र बल और उत्साह उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ उसके अन्य दिव्यचारी मानस पुत्र थे जो कि पुण्यकर्म करने वाले देवों के विमानों का वहन किया करते हैं ॥ ३ ॥ दो कन्याएँ हुईं जो विधाता और धाता की भार्यायें हुई थी । इन दोनों के आयति और नियति नाम वाले दृढ़व्रत दो पुत्र हुए ॥ ४ ॥ पाण्डु और मृकण्डु ब्रह्मकोष तथा सनातन हुए । मनस्विनी में मृकण्डु से मार्कण्डेय उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ उनका पुत्र वेदशिरा मूर्धन्या में उत्पन्न हुआ था । वेदशिरा से पीवरी में वंश चलाने वाले पुत्र कहे गये हैं । वे सब वेद के पारगामी ऋषिगण मार्कण्डेय प्रसिद्ध हुए ॥ ६ ॥

पाण्डु से पुण्डरीका में द्युतिमान आत्मज हुआ। द्युतिमान और सृजमान दो पुत्र उत्पन्न हुए। उन दोनों के पुत्र और पौत्र आपस में भार्गवों के हुए। स्वायम्भुव के अन्तर व्यतीत हो जाने पर अब मरीचि की प्रजा के विषय में श्रवण करिये ॥ ७ ॥

पत्नी मरीचेः सम्भूतिर्विजज्ञे सात्मसम्भवम्।
प्रजापतेः पूर्णमासं कन्याश्चेमा निबोधत।
तुष्टिः पुष्टिस्त्विषा चैव तथा चापचितिः शुभा ॥८
पूर्णमासः सरस्वत्यां द्वौ पुत्रावुदपादयत्।
विरजं चैव धर्मिष्ठं पर्वसं चैव तावुभौ ॥९
विरजस्यात्मजो विद्वान् सुधामा नाम विश्रुतः।
सुधामसुतवैराजः प्राच्यान्दिशि समाश्रितः ॥१०
लोकपालः सुधर्मात्मा गौरीपुत्रः प्रतापवान्।
पर्वसः सर्वगणानां प्रविष्टः स महायशाः ॥११
पर्वसः पर्वसायान्तु जनयामास वै सुतौ।
यज्ञवामश्च श्रीमन्तं सुतं काश्यपमेव च।
तयोर्गोत्रकरौ पुत्रौ तौ जातौ धर्मनिश्चितौ ॥१२
स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी जज्ञे तावात्मसम्भवौ।
पुत्रौ कन्याश्चतस्रश्च पुण्यास्ता लोकविश्रुताः ॥१३
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा।
तथैव भरताग्निश्च कीर्तिमन्तश्च तावुभौ ॥१४

मरीचि की पत्नी सम्भूति नाम वाली थी उसने अपत्य पुत्र उत्पन्न किया जो पूर्णमास उत्पन्न होता है। और उसके जो कन्याएं हुईं उन्हें समझ लो। तुष्टि, पुष्टि, त्विषा, अपचिति और शुभा ये कन्याएं हुईं ॥ ८ ॥ पूर्णमास ने सरस्वती में दो पुत्र उत्पन्न किये थे जिनका नाम विरज और धर्मिष्ठ पर्वस था। ये दोनों पुत्र थे ॥ ९ ॥ विरज का पुत्र बड़ा विद्वान सुधामा इस नाम से विश्रुत था। सुधामा का पुत्र वैराज था जो कि पूर्व दिशा का आश्रय लेकर स्थित रहता था ॥ १० ॥ लोकपाल, सुधर्मात्मा और प्रताप वाला गौरी पुत्र पर्वस

प्रीति पुत्र धीमान दत्तात्रि की पत्नी ने सुमहान् बहुत से पत्रो का प्रसव किया था। वे सब स्वायम्भुवान्तर मे पौलस्त्य इस नाम से विख्यात् तथा कहे गये थे ॥ २३ ॥ क्षमा ने प्रजापति पुलह के पुत्रो को उत्पन्न किया। वे सब ही अग्निवर्चस थे जिनकी कीर्ति लोको मे प्रतिष्ठित है ॥ २४ ॥ वे कर्दम अम्बरीष और सहिष्णु ये तीन हैं और धनक पीवान ऋषि तथा पीवरी नाम कन्या थी ॥ २५ ॥ कर्दम की पत्नी श्रुति आत्रेयी ने पुत्रो को जन्म दिया। पुत्र शङ्खपद था तथा काम्या कन्या थी ॥ २६ ॥ वह धीमान शङ्खपद लोको का पालक और प्रजापति था। दक्षिण दिशा मे रत होकर काम्या को प्रियव्रत के लिये दे दिया था। काम्या ने प्रियव्रत से स्वायम्भुव के समान पुत्रों की प्राप्ति की थी। दश दश थे और दो कन्या उनमे थी जिन्होने महान क्षत्र को प्रवृत्त किया था ॥ २७-२८ ॥

पुत्रो धनकपीवाश्च सहिष्णुर्नाम विश्रुत ।
यशोधारी विजज्ञे च कामदेव सुमध्यम ॥२६
क्रतो क्रतुसम पुत्रो विजज्ञे सन्तति शुभा ।
नषा भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ते ऊर्ध्व रेतस ।
षष्ट्य तानि सहस्राणि वालखिल्या इति श्रुता ॥३०
अरुणस्याग्रतो यान्ति परिवार्य दिवाकरम् ।
आभूतसम्प्लवात्सर्वे पतङ्गसहचारिण ॥३१
स्वसारौ तु यवीयस्यौ पुण्यात्मसुमती च ते ।
पर्वतस्य स्नुषे ते च पूर्णमासस्रुतस्य च ॥३२
ऊर्जायान्तु वसिष्ठस्य पुत्रा व सप्त जज्ञिरे ।
ज्यायसी च स्वसा तेषा पुण्डरीका सुमध्यमा ॥ ३
जननी सा द्युतिमत पाण्डोस्तु महिषी प्रिया ।
अस्या स्त्विमे यवीयासो वासिष्ठा सप्त विश्रुता ॥३४
रज पुत्रोऽर्द्धबाहुश्च सवनश्चाघनश्च य ।
सुतपा शुक्र इत्येते सर्वे सप्तर्षय स्मृता ॥३५
रजसो साप्यजनयन्मार्कण्डेयी यशस्विनी ।

प्रतीच्यां दिशि राजन्यं केतुमन्तं प्रजापतिम् ॥३६
गोत्राणि नामभिस्तेषां वासिष्ठानां महात्मनाम् ।
स्वायम्भुवेऽन्तरेऽतीतास्त्वग्नेस्तु शृणुत प्रजाः ॥३७
इत्येष ऋषिसर्गस्तु सानुबन्धः प्रकीर्तितः ।
विस्तरेणानुपूर्व्या चाप्यग्नेस्तु शृणुत प्रजाः ॥३८

पुत्र धनक गोत्रवान् था जो सहिष्णु के नाम से विश्रुत हुआ। यशोधारी ने सुमध्यम कामदेव को उत्पन्न किया ॥ २९ ॥ क्रतु का क्रतु के तुल्य ही पुत्र हुआ और वह पुत्र ऊर्ध्वरेता थी । इनकी कोई भी भार्या नहीं थी और न इनका कोई पुत्र ही था क्योंकि ये सभी ऊर्ध्वरेता थे । ये सब साठ हजार थे जो बालखिल्य इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे ॥ ३० ॥ सूर्य को परिवृत करके ये अरुण के आगे जाया करते हैं और भूत सम्प्लव से लेकर ये सब पतङ्ग (सूर्य) के ही सहचरण करने वाले होते हैं ॥ ३१ ॥ भगिनी दो छोटी थी जिनका नाम पुण्या और आत्म सुमति था। ये दोनों पर्वत की स्नुषा थी जो कि पूर्णमास का पुत्र था ॥ ३२ ॥ ऊर्जा में वसिष्ठ के सात पुत्र उत्पन्न हुए और ज्यायसी (बड़ी) उनकी बहिन सुमध्यमा पुण्डरीका थी ॥ ३३ ॥ वह द्युतिमान् की माता थी और पाण्डु की प्यारी रानी थी । इससे ये यशीयान् सात वासिष्ठ प्रसिद्ध हुए थे ॥ ३४ ॥ रज, पुत्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनघ सुतपा और शुक्र ये सब सप्तर्षि कहे गये हैं ॥ ३५ ॥ यशस्विनी मार्कण्डेयी रज से जनन किया। प्रतीची दिशा में प्रजापति राजन्य केतुमान् को उत्पन्न किया ॥ ३६ ॥ उन महात्मा वासिष्ठों के नामों से गोत्र हैं। ये स्वायम्भुव मन्वन्तर में अतीत हो गये हैं। अब अग्नि की प्रजा का श्रवण करो ॥ ३ ॥ यह ऋषियों का सर्ग अनुबन्ध के सहित कह दिया गया है । अब विस्तार से तथा आनुपूर्वी के साथ अग्नि की प्रजा को सुनो ॥ ३८ ॥

॥ प्रकरण २८—अग्नि वंश वर्णन ॥

योऽसावग्निरभिमानी ह्यासीत् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात्स्वाहा व्यजायत ॥१
पावकः पवमानश्च पावमानश्च स स्मृतः ।

शुचिः सौरस्तु विज्ञेयः स्वाहापुत्रास्त्रयस्तु ते ॥२
निर्मथ्यः पवमानस्तु शुचिः सौरस्तु यः स्मृतः ।
पावकः वैद्युतश्चैव तेषां स्थानानि यानि च ॥३
पवमानात्मजश्चैव कव्यवाहन उच्यते ।
पावकात् सहरक्षस्तु हव्यवाहः शुचेः सुतः ॥४
देवानां हव्यवाहोऽग्निः पितॄणां कव्यवाहनः ।
सहरक्षोऽसुराणान्तु त्रयाणान्तु त्रयोऽग्नयः ॥५
एतेषां पुत्रपौत्रास्तु चत्वारिंशन्नवैव तु ।
वक्ष्यामि नामतस्तेषां प्रविभागं पृथक् पृथक् ॥६
वैद्युतो लौकिकाग्निस्तु प्रथमो ब्रह्मणः सुतः ।
ब्रह्मौदनाग्निस्तत्पुत्रो भरतो नाम विश्रुतः ॥७

स्वायम्भुवान्तर में जो यह अग्नि था वह बहुत अभिमान वाला था। यह ब्रह्माजी का मन से उत्पन्न होने वाला मानस पुत्र था उससे स्वाहा उत्पन्न हुई ॥ १ ॥ यह पावक पवमान और पावमान इन नामों से कहा गया है। शुचि और सौर विज्ञेय ये तीन स्वाहा के पुत्र थे ॥ २ ॥ पवमान निर्मथ्य करके शुचि और सौर जो कहा गया है। पावक और वैद्युत उनके ये स्थान हैं ॥ ३ ॥ पवमान का आत्मज कव्यवाहन कहा जाता है। पावक से सहरक्ष और शुचि का पुत्र हव्यवाह था ॥ ४ ॥ देवों का जो अग्नि है वह हव्यवाह होता है और पितृगण का जो अग्नि होता है वह कव्यवाहन कहा जाता है। सहरक्ष नामक जो अग्नि है वह असुरों का कहा गया है। इस प्रकार इन तीनों के पृथक्-पृथक् तीन ये अग्नि होते हैं ॥ ५ ॥ इनके जो पुत्र तथा पौत्र हैं वे उनचास हैं। उनके पृथक्-पृथक् प्रविभाग नाम से बतलाए जायेंगे ॥ ६ ॥ वैद्युत नामक जो अग्नि है वह लौकिक अग्नि है और प्रथम ब्रह्मा का पुत्र है। ब्रह्मौदन अग्नि उनका पुत्र है जो भरत इस नाम से प्रसिद्ध हुआ है ॥ ॥

वैश्वानरमुखस्तस्य महः काव्यो ह्यपां रसः ।
यज्ञेऽथर्वणा पूर्वं मथितः पुष्करोदधौ ।
सोऽथर्वा लौकिकाग्निस्तु दध्यङ्-चाथर्वणः सुतः ॥८

अथर्वा तु भृगुर्ज्ञेयोऽप्यङ्गिराश्चाथर्वण सुत ।
तस्मात् स लौकिकाग्निस्तु दध्यङ्ङाथर्वण सुत. ॥९
अथ य पवमानोऽग्निर्निर्मन्थ्य: कविभि स्मृत ।
स ज्ञेयो गार्हपत्योऽग्निस्तस्य पुत्रद्वय स्मृतम् ॥१०
शंस्यस्त्वाहवनीयोऽग्निर्यं स्मृतो हव्यवाहन ।
द्वितीयस्तु सुत प्रोक्त शुक्रोऽग्निर्यं प्रणीयते ॥११
तथा सभ्यावसथ्यौ वै शंस्यस्याग्ने सुतावुभौ ।
शंस्यस्तु षोडश नद्याश्चकमे हव्यवाहन ।
योऽसावाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजै स्मृत ॥१२
कावेरी कृष्णवेणीञ्च नर्मदां यमुनान्तथा ।
गोदावरीं वितस्ताञ्च चन्द्रभागामिरावतीम् ॥१३
विपाशां कौशिकीञ्चैव शतद्रु सरयूस्तथा ।
सीता सरस्वतीञ्चैव ह्लादिनी पावनी तथा ॥१४

उसका वैश्वानरमुख, मह काव्य और अपारस, अमूल ये नाम है पहिले अथर्वणो ने पुष्करोदधि में मथन किया था । वह अथर्वा लौकिक अग्नि है जो दध्यङ्ङाथवण का पुत्र है ॥ ८ ॥ अथर्वा भृगु को समझना चाहिए । अङ्गिरा अथर्वण का पुत्र है । इससे वह लौकिक अग्नि दध्यङ् चाथर्वण पुत्र है ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर जो पवमान अग्नि है वह कवियो के द्वारा निर्मन्थ्य कहा गया है । वह गार्हपत्य अग्नि जानना चाहिए । उससे दो पुत्र कहे गये हैं ॥१०॥ जो अग्नि हव्यवाहन कहा गया है वह आहवनीय अग्नि कहे जाने के योग्य है । दूसरा जो सुत कहा गया है वो शुक्र अग्नि प्रणीत किया जाता है ॥ ११ ॥ इसी प्रकार से शंस्याग्नि के सभ्य और आवसथ्य ये दो पुत्र हैं । शंस्य तो सोलह हैं । हव्य वाहन ने नदी को चाहा । जो यह आहवनीय अग्नि है वह द्विजों के द्वारा अभिमानी कहा गया है ॥ १२ ॥ कावेरी, कृष्ण वेणी, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, कौशिकी, शतद्रु, सरयू, सीता, सरस्वती, ह्लादिनी तथा पावनी ये नदियो के सोलह स्थान है ॥ १४ ॥

तासु षोडशधात्मान प्रविभज्य पृथक् पृथक् ।

आत्मानं व्यदधात्तासु धिष्णीष्वथ बभूव सः ॥१५
धिष्ण्यो दिव्याभिचारिण्यस्तासूत्पन्नास्तु धिष्णयः ।
धिष्णीषु जज्ञिरे यस्माद्धिष्ण्यस्तेन कीर्तिताः ॥१६
इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्णीष्वेव विजज्ञिरे ।
तेषां विहरणीया ये उपस्थेयाश्च येऽग्नयः ।
तान् शृणुध्वं समासेन कीर्त्यमानान् यथा तथा ॥१७
ऋतु प्रवाहणोऽग्नीध्रः पुरस्ताद्धिष्णयोऽपरे ।
विधीयन्ते यथास्थानं सौत्येऽहनि सवनक्रमात् ॥१८
अनिर्देश्यवाच्यानामग्नीनां शृणुत क्रमम् ।
सम्राडग्निः कृशानुर्यो द्वितीयोत्तरवेदिकः ॥१९
सम्राडग्निः स्मृता ह्यष्टौ उपतिष्ठन्ति तान् द्विजाः ।
अधस्तात्पर्षदन्यस्तु द्वितीयः सौऽग्निर्दृश्यते ॥२०
प्रतद्दोचे नभो नाम चत्वारि स विभाव्यते ।
ब्रह्मज्योतिर्वसुर्नाम ब्रह्मस्थाने स उच्यते ॥२१

इन उपर्युक्त सोलह नदियों में अपने आपको सोलह में पृथक् पृथक् विभाग करके उनमें अपने आपको कर दिया और वह धिष्णीपु हो गया ॥१५। उनमें धिष्ण्य दिव्याभिचारिण्य जो उत्पन्न हुए वे धिष्णय हुए। क्योंकि वे धिष्णी यकों में उत्पन्न हुए थे इससे वे धिष्ण्य कहे गये हैं ॥ १६ ॥ इतने वे नदी पुत्र हैं जो धिष्णीप में ही उत्पन्न हुए थे। उनमें विहार करने के योग्य जो उपस्थेय अग्नि हैं अब उनको संक्षेप से कहे जाने वालों को यथा तथा श्रवण करो ॥१७॥ ऋतु प्रवाहण आग्नीध्र और पहिले दूसरे धिष्ण्य सौत्य दिवस में सवन के क्रम से यथा स्थान किये जाते हैं ॥ १८ ॥ अनिर्देश्य तथा वाच्य अग्नियों के क्रम को सुनो। द्वितीयोत्तर वेदिक जो कृशानु होता है वह सम्राड अग्नि है ॥ १९ ॥ आठ सम्राट् अग्नि कहे गये हैं जिनका कि द्विज उपस्थान किया करते हैं। नीचे अन्य पर्षद् जो यहाँ पर वह द्वितीय दिखलाई देता है ॥ २ ॥ प्रतद्दोचे नभो नाम वाला वह चार विभावित होता है। ब्रह्म ज्योति वसु नाम वाला वह ब्रह्म स्थान में कहा जाता है ॥ २१ ॥

हव्यसूय्यदिसंसृष्टः शामित्रे स विभाव्यते ।
विश्वस्याश्च समुद्रोऽग्निर्ब्रह्मस्थाने स कीर्त्यते ॥२२
ऋतुधामा च सुज्योतिरौदुम्बर्यां स कीर्त्यते ।
ब्रह्मज्योतिर्वसुर्नाम ब्रह्मस्थाने स उच्यते ॥२३
अजैकपादुपस्थेय स वै शालामुखीयकः ।
अनुद्देश्योऽप्यहिर्बुध्न्यः सोऽग्निर्गृहपतिः स्मृतः ॥२४
शंस्यस्यैव सुताः सर्वे उपस्थेया द्विजैः स्मृताः ।
ततो विहरणीयाश्च वक्ष्याम्यष्टौ तु तत्सुतान् ॥२५
कतुप्रवाहणोऽग्नीध्रस्तत्रस्था धिष्णयोऽपरे ।
विहियन्ते यथास्थानं सौत्येऽह्नि सवनक्रमात् ॥२६
पौत्रेयस्तु ततो ह्यग्निः स्मृतो यो हव्यवाहनः ।
शान्तिश्चाग्निः प्रचेतास्तु द्वितीयः सत्य उच्यते ॥२७
तथाग्निर्विश्वदेवस्तु ब्रह्मस्थाने स उच्यते ।
अवक्षुरच्छावाकस्तु भुवः स्थाने विभाव्यते ॥२८

हव्य सूर्यादि से संसृष्ट वह शामित्र कर्म मे प्रकट होता है । विश्वस्याप समुद्र अग्नि वह ब्रह्म स्थान मे कीर्त्तित किया जाता है ॥ २२ ॥ ऋतु धामा और सुज्योति अग्नि जो होता है वह औदुम्बरी मे कहा जाता है । ब्रह्म ज्योति वसु नाम वाला वह ब्रह्म स्थान में कहा जाता है ॥ २३ ॥ अजैक पादुपस्थेय शालामुखीयक वह अनुद्देश्य भी अहिर्बुध्न्य वह अग्नि गृहपति कहा गया है ॥ २४ ॥ ये सब शंस्य के ही पुत्र हैं और द्विजो के द्वारा उपस्थान करने के योग्य कहे गये हैं । अब इसके अनन्तर विहरणीय आठ उसके पुत्र हैं उन्हे बताते हैं ॥ २५ ॥ ऋतु, प्रवहण, अग्नीध्र और वहाँ पर स्थित दूसरे धिष्ण्य जो यथा स्थान विहरणीय होते हैं और सौत्य दिवस मे सवन के क्रम से हुआ करते हैं ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् पौत्रेय जो हव्यवाहन कहा गया है, शान्ति और प्रचेता अग्नि द्वितीय सत्य कहा जाता है ॥ २७ ॥ तथा विश्वदेव अग्नि जो है वह तो ब्रह्म स्थान मे कहा जाता है । अवक्षु और अच्छावाक तो भुव स्थान मे विभावित (प्रकट) होता है ॥ २८ ॥

इध्मोऽरग्निः सवीयस्तु नस्थाय सविभाव्यते ।
अष्टमस्तु स्थरस्तिरस्तु मार्जलीय प्रकीर्तित ॥२९
धिष्ण्या विहरणीया ये सौम्येना येन चव हि ।
तयोय पावको नाम स चापा गभ उच्यते ॥३०
अग्नि सोऽवभृथो ज्ञ य सम्यक प्राप्याप्सु हूयते ।
हृच्छयस्तत्सुतो ह्यग्निजठरे यो नणा स्थित ॥३१
मन्युमान् जाठरस्याग्नेर्विद्धानग्नि सुत स्मत ।
परस्परोच्छित्त छोऽग्निभू तानां इ विभुमहान् ॥ २
पुत्र सोऽग्नेमन्युमतो घोर सवत क स्मृत ।
पिबन्नप स वसति समुद्र वडवामुख ॥ ३
समुद्र वासिन पुत्र सहरक्षो विभा पते ।
सहरक्षसुत क्षामो गृहाणि स दहे नृणाम् ॥३४
क्रव्यादोऽग्नि सुतस्तस्य पुरुषानत्ति यो मृताम् ।
इत्येते पावकस्याग्ने पुत्रा ह्य व प्रकीर्तिता ॥ ५

यवीष्ठ इध्मोऽरग्नि तो नैष्ठिक सम्भावित होता है । जो आठवाँ स्थरस्ति है वह तो मार्जलीय कहा गया है ॥ २९ ॥ जो धिष्ण्य विहरणीय सम्य सौम्य के द्वारा होते हैं उनमें एक पावक नाम वाला है वह अपः गम कहा जाया करता है ॥ ३० ॥ वह अवभृथ अग्नि जानना चाहिए जो भली भाँति प्राप्त करके अपों में हवन किया जाता है । उसका पुत्र हृच्छय अग्नि होता है जो मनुष्यों के जठर में स्थित होता है ॥ ३१ ॥ जठर की रहने वाली जाठर अग्नि का विद्वान् मन्युमान् अग्नि सुत कहा गया है । परस्पर में उच्छित्त वह अग्नि भूतों का महान् विभु होता है ॥ ३२ ॥ वह मन्युमान् अग्नि का पुत्र घोर सम्वर्त्तक कहा गया है । वह जल का पान करता हुआ वडवामुख समुद्र में निवास किया करता है ॥ ३३ ॥ समुद्र में निवास करने वाले का पुत्र सहरक्ष विभावित होता है । सहरक्ष का पुत्र क्षाम होता है वह मनुष्यों के घरों को जला दिया करता है ॥ ३४ ॥ क्रव्याद अग्नि उसका पुत्र है जो मरे हुए मनुष्यों के शव का भोजन किया करता है । इतने ये पावक अग्नि के पुत्र हैं जो कि इस प्रकार से कहे गये हैं ॥ ३५ ॥

ततः शुचेस्तु यं सौरेर्गन्धर्वैरसुरावृतैः ।
मथितो यस्त्वरण्यां वै सोऽग्निरग्निः समिध्यते ॥३६
आयुर्नामाथ भगवान् पशौ यस्तु प्रणीयते ।
आयुषो महिमान् पुत्रः स पावनान्नामतः सुतः ॥३७
पाकयज्ञेष्वभिमानी सोऽग्निस्तु सवनः स्मृतः ।
पुत्रश्च सवनस्याग्नेरद्भुतः स महायशाः ॥३८
विविचिस्त्वद्भुतस्यापि पुत्रोऽग्नेः स महान् स्मृतः ।
प्रायश्चित्तेऽथ भीमानां हुतं भुङ्क्ते हविः सदा ॥३९
विविचेस्तु सुतो ह्यर्को योऽग्निस्तस्य सुतास्त्विमे ।
अनीकवान् वास्तुजवांश्च रक्षोहा पितृकृत्तथा ।
सुरभिर्वसुरत्नादौ प्रविष्टो यश्च रुक्मवान् ॥४०
शुचेरग्नेः प्रजा ह्येषा वह्नयस्तु चतुर्दश ।
इत्येते वह्नयः प्रोक्ताः प्रणीयन्तेऽध्वरेषु ये ॥४१
आदिसर्गे ह्यतीता वै यामैः सह सुरोत्तमैः ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमग्नयस्तेऽभिमानिनः ॥४२

इसके अनन्तर शुचि सौरि का जिन असुरावृत गन्धर्वों के द्वारा अरणी में मथन किया हुआ अग्नि है वह अग्नि समिद्ध किया जाता है ॥ ३६ ॥ वह भगवान् आयु नाम वाला होता है जो पशु में प्रणीत किया जाता है । आयु नामक अग्नि का पुत्र महिमान् पुत्र है वह पावन् नाम वाला पुत्र कहा गया है ॥ ३७ ॥ पाक यज्ञों में जो अभिमानी अग्नि है वह सवन कहा गया है । सवन अग्नि का पुत्र वह महान् यश वाला अद्भुत होता है ॥ ३८ ॥ अद्भुत अग्नि का भी पुत्र विविचि होता है जो कि महान् कहा गया है । वह भीमों के प्रायश्चित्त में सर्वदा हवन किये हुए हवि को खाया करता है ॥ ३९ ॥ विविचि अग्नि का पुत्र अर्क है उसके पुत्र ये होते हैं जिनके नाम अनीकवान्, वास्तुजवान्, रक्षोहा, पितृ कृत् और सुरभि हैं जो रुक्मवान् वसुरत्नादि में प्रविष्ट हो गया है ॥ ४० ॥ ये शुचि नामक अग्नि की प्रजा है और चौदह वह्नि हैं । ये वह्नि कहे गये हैं जो कि अध्वरों में प्रणीत होते हैं ॥ ४१ ॥ सुरोत्तम यामों के साथ

आदि सर्ग में अतीत हुए हैं जो स्वायम्भुव मन्वन्तर में पहिले जो अग्नि थे वे अभिमानी थे ॥ ४२ ॥

एते विहरणीयास्तु चेतनाचेतनेष्विह ।
स्थानाभिमानिनो लोके प्रागासन् हव्यवाहना ॥७३
काम्यनैमित्तिकाजस्त्रेष्वेते कर्मस्ववस्थिता ।
पूर्वमन्वन्तरेऽतीते शुक्लर्यामैः सुतैः सह ।
देवैर्महात्मभिः पुण्यैः प्रथमस्यान्तरे मनोः ॥७४
इत्येतानि मयोक्तानि स्थानानि स्थानिनश्च ह ।
एतैरेव तु प्रसङ्ख्यातमतीतानागतेष्वपि ॥७५
मन्वन्तरेषु सर्वेषु लक्षणं जातवेदसाम् ।
सर्वे तपस्विनो ह्येते सर्वे ह्यवभृथा स्तथा ।
प्रजानां पतय सर्वे ज्योतिष्मन्तश्च ते स्मृता ॥७६
स्वारोचिषादिषु ज्ञेया सावर्ण्यन्तेषु सप्तसु ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु नानारूपप्रयोजनैः ॥७७
वर्तन्ते वर्त्तमानश्च देवैरिह सहाग्नय ।
अनागतैः सुरैः सार्द्धं वर्त्स्यन्तेऽनागताग्नय ॥७८
इत्येष विनियोजनीना मया प्रोक्तो यथातथम् ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च पितृणां वक्ष्यते तत ॥७९

ये सब यहाँ पर चेतन और अचेतनों में विहरणीय अग्नि हैं। संसार में स्थानाभिमानी हव्यवाहन पहिले थे ॥ ४३ ॥ ये सब कामना वाले काम्य कर्म तथा नैमित्तिक एवं सकल कर्मों में समवस्थित रहा करते हैं। पहिले अतीत मन्वन्तर में शुक्ल याम पुत्रों के साथ तथा मनु के जो कि प्रथम था उसके अन्तर में पुण्यशील महात्मा और देवों के साथ था ॥ ४४ ॥ ये सब मैंने स्थानियों के स्थान बतला दिये हैं उनके द्वारा ही अतीत और अनागतों में भी प्रसंख्यात हैं ॥ ४५ ॥ समस्त मन्वन्तरों में जातवेदों के लक्षण कहे गये हैं। ये सब तपस्वी और सभी अवभृथ थे। ये सब प्रजाओं के पति और ज्योतिष्मान् कहे गये हैं ॥ ४६ ॥ स्वारोचिष आदि और सावर्ण्य अन्त वाले सातों मन्वन्तरों में उन में

अनेक रूप और विविध प्रयोजनों के द्वारा जानने के योग्य होते हैं ॥ ४७ ॥ ये अग्नि वर्तमान देवों के साथ रहते हैं और अनागत सुरों के साथ अनागताग्नि होते हैं ॥ ४८ ॥ इतना यह मैंने अग्नियों का विनय यथातथ (ठीक-ठीक) कह दिया है । अब इससे आगे विस्तार के साथ तथा आनुपूर्वी के साथ पितृगणों का बतलाया जायगा ॥ ४९ ॥

॥ प्रकरण २९—देववंश वर्णन ॥

ब्रह्माण सृजत पुत्रान् पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
अम्भासि जज्ञिरे तानि मनुष्यासुरदेवता ॥१
पितृवन्मन्यमानस्य जज्ञिरे पितरोऽस्य वै ।
तेषां निसर्गः प्रागुक्तो विस्तरस्तस्य वक्ष्यते ॥२
देवासुरमनुष्याणां दृष्ट्वा देवोऽभ्यभाषत ।
पितृवन्मन्यमानस्य जज्ञिरे वोपपक्षिणः ॥३
मन्वादय पङ्नवस्तान् पितॄन परिचक्षते ।
ऋतव पितरो देवा इत्येषा वैदिकी श्रुति ॥४
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ह्यतीतानागतेष्वपि ।
एते स्वायम्भुवे पूर्वमुत्पन्ना ह्यन्तरे शुभे ॥५
अग्निष्वात्ता स्मृता नाम्ना तथा बर्हिषदश्चये ।
अयज्वानस्तथा तेषामासन् वै गृहमेधिन ।
अग्निष्वात्ता स्मृतास्ते वै पितरोऽनाहिताग्नय ॥६
यज्वानस्तेषु ये ह्यासन् पितर सोमपीथिन ।
स्मृता बर्हिषदस्ते वै पितरस्त्वग्निहोत्रिण ।
ऋतव पितरो देवा शास्त्रेऽस्मिन्निश्चयो मत ॥७

श्री सूतजी ने कहा—पूर्व स्वायम्भुव अन्तर मे पुत्रों के सृजन करने वाले ब्रह्मा जी के मनुष्य असुर और देवों ने उन जलों को उत्पन्न किया ॥ १ ॥ पितृ की भाँति मन्यमान इससे पितर उत्पन्न हुए । उनका निसर्ग तो इसके पूर्व में ही कह दिया गया है किन्तु अब इस समय उसका विस्तार कहा जाता है ॥२॥ देवासुर मनुष्यों का सर्ग देखकर देव बोले—पितृ की भाँति मन्यमान ने उपप-

आर्तविक स्थाणु जङ्गम उत्पन्न होते हैं। आर्तव पितर हैं और ऋतु पितामह होते हैं ॥ १८ ॥ ये सब सुमेरु से प्रसूत होते हैं और प्रजापालन करते हैं। इसीलिये सुमेरु जो होता है वह प्रजाओं का प्रपितामह कहा गया है ॥ १९ ॥ ये स्थानों में स्थानी और स्थानाभिमानी कहे गये हैं। तन्मय होने से उसी नाम से आख्यात और तद्रूप कहे गये हैं ॥ २० ॥ जो इनका प्रजापति कहा गया है वह सम्वत्सर माना गया है। सम्वत्सर अग्नि कहा गया है और द्विजों के द्वारा ऋत भी वह कहा जाता है ॥ २१ ॥

ऋतात्तु ऋतवो यस्माज्जज्ञिरे ऋतवस्ततः ।
मासा षडृतवो ज्ञेयास्तेषां च आर्तवाः सुताः ॥२२
द्विपदाश्चतुष्पदाश्चैव पक्षिसंसर्पतामपि ।
स्थावराणां च पञ्चानां पुष्पं कालार्तवं स्मृतम् ॥२३
ऋतुत्वमार्तवत्वं च पितृत्वं च प्रकीर्तितम् ।
इत्येते पितरो ज्ञेया ऋतवश्चार्तवाश्च ये ॥२४
सर्वभूतानि तेभ्योऽथ ऋतुकालाद्विजज्ञिरे ।
तस्मादेतेऽपि पितर आर्तवा इति नः श्रुतम् ॥२५
मन्वन्तरेषु सर्वेषु स्थिताः कालाभिमानिनः ।
स्थानाभिमानिनो ह्येते तिष्ठन्तीह प्रसंयमात् ॥२६
अग्निष्वात्ता बर्हिषदः पितरो द्विविधाः स्मृताः ।
जज्ञाते च पितृभ्यस्तु द्वे कन्ये लोकविश्रुते ॥२७
मेना च धारिणी चैव याभ्यां विश्वमिदं धृतम् ।
पितरस्ते निजे कन्ये धर्मार्थं प्रददुः शुभे ।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चैव ते उभे ॥२८

ऋत इस नाम से ही उससे ऋतु उत्पन्न हुए हैं। मास छै ऋतुऐं समझनी चाहिए और उनके पाँच आर्तव पुत्र होते हैं ॥ २२ ॥ द्विपद चतुष्पद पक्षी संसर्पण करने वाले और स्थावर इन पाँचों को पुष्प कालार्तव कहा गया है ॥ २३ ॥ ऋतुत्व आर्तवत्व और पितृत्व कहा गया है। ये सब ऋतु और जो आर्तव हैं वे सब पितर जानने के योग्य होते हैं ॥ २४ ॥ उनसे ही समस्त

प्राणी ऋतु काल से उत्पन्न हुए हैं। इसलिये ये आर्त्तव भी पितर हैं ऐसा हमने सुना है ॥ २५ ॥ समस्त मन्वन्तरों में ये कालाभिमानी तथा स्थानाभिमानी प्रसयम से यहाँ रहा करते हैं ॥ २६ ॥ अग्निष्वात्त और बर्हिषद ऐसे ये दो प्रकार के पितर कहे गये हैं। इन पितरों से लोक प्रसिद्ध दो कन्याएँ उत्पन्न हुई थी ॥ २७ ॥ जिनका नाम मेना और धारिणी है। जिन दोनों के द्वारा ही यह समस्त विश्व धारण किया हुआ होता है। पितरों ने ये अपनी दोनों कन्याओं को धर्म के लिए दे दिया था। वे शुभ दोनों ही ब्रह्मवादिनी तथा योगिनी थी ॥ २८ ॥

अग्निष्वात्तास्तु ये प्रोक्तास्तेषां मेना तु मानसी ।
धारणी मानसी श्चैव कन्या बर्हिषदां स्मृता ॥२९
मेरोस्तु धारणी नाम पत्न्यर्थं व्यसृजन् शुभाम् ।
पितरस्ते बर्हिषद स्मृता ये सोमपीथिन ॥३०
अग्निष्वात्तास्तु तां मेनां पत्नीं हिमवते ददु ।
स्मृतास्ते वै तु दौहित्रास्तद्दौहित्रान् निबोधत ॥३१
यस्ते हिमवत पत्नी मैनाकं सान्वसूयत ।
गङ्गा सरिद्वरा चैव पत्नी या लवणोदधे ।
मैनाकस्यानुज क्रौञ्च क्रौञ्चद्वीपो यत स्मृत ॥३२
मेरोस्तु धारणी पत्नी दिव्यौषधिसमन्वितम् ।
मन्दरं सुषुवे पुत्र तिस्र कन्याश्च विश्रुता ॥३३
वेला च नियतिश्चैव तृतीया चायति पुन ।
धातुश्चैवायति पत्नी विधातुर्नियति स्मृता ॥३४
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वन्तयोर्वै कीर्तिता प्रजा ।
सुषुवे सागराद्वेला कन्यामेकामनिन्दिताम् ॥३५
सावर्णिना च सामुद्री पत्नी प्राचीनबर्हिष ।
सवर्णा साथ सामुद्री दशप्राचीनबर्हिष ।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगा ॥३६

जो अग्निष्वात्त कहे गये हैं उनकी मेना मानसी है और धारणी तथा

भृग्वङ्गिरा मरीचिश्च पुलस्त्य पुलह क्रतु ॥१४
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च सप्त स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
अग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसु ॥१५
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्य सवन पुत्र एव च ।
मनो स्वायम्भुवस्यैते दश पुत्रा महौजस ॥१६

ये सब स्वायम्भुव मन्वन्तर में सोमपायी थे। ये त्विषिमान् महान् बल वाले और ओजशील गण थे ॥ ८ ॥ उनमें इन्द्र सदा विश्व का भोग करने वाला प्रथम विभु था। जो असुर थे वे उनके दाय प्राप्त करने वाले बान्धव थ ॥ ९ ॥ सुपर्ण यक्ष गन्धर्व पिशाच उरग राक्षस ये आठ पितृगण के साथ नामस्थ देवयोनि हैं ॥ १० ॥ स्वायम्भुव अन्तर में इनकी सहस्रों प्रजा व्यतीत हो गई जो कि प्रभाव रूप आयु और बल से सम्पन्न थ ॥ ११ ॥ यहाँ उनका पूर्ण विस्तार से वर्णन नहीं किया जाता है। यहाँ उसका प्रसङ्ग न होवे। स्वायम्भुव निसर्ग अब मनु जानना चाहिए ॥ १२ ॥ अतीत में वर्तमान वत्सर ने उसे देखा था जो कि प्रजाओं के देवताओं के ऋषियों के और पितरों के साथ में था ॥ १३ ॥ उनके सात पहिले जो थ अब उनके विषय में समझ लो भृगु अङ्गिरा। मरीचि पुलस्त्य पुलह क्रतु अत्रि और वसिष्ठ ये सात स्वायम्भुव अन्तर में थे। अग्नीध्र अग्निबाहु मेधा मेधातिथि वसु ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्य सवन और पुत्र ये स्वायम्भुव मनु के महान् ओज वाले दश पुत्र थे ॥ १४ १५ १६ ।

वायुप्रोक्ता महासत्त्वा राजान प्रथमेऽन्तरे ।
सासुरं तत्सगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
सपिशाचमनुष्यञ्च सुपर्णाप्सरसाङ्गणम् ॥१७
नो शक्यमानुपूर्व्येण वक्तुं वर्षशतैरपि ।
बहुत्वान्नामधेयानां सङ्ख्या तेषां कुले तथा ॥१८
या वै प्रजाकुलाख्यास्तु आसन् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
कालेन बहुनातीता अयनाब्दयुगक्रमैः ॥१९
क एष भगवान् कालः सर्वभूतापहारकः ।

कस्य योनि किमादिश्च किन्तत्त्वं स किमात्मज ॥२०
किमस्य चक्षु का मूर्ति के चास्यावयवा' स्मृता ।
किन्नामधेय कोऽस्यात्मा एतत् प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥२१

प्रथम मन्वन्तर में वायु के द्वारा कहे हुए महान् सत्त्व वाले राजा थे । वह सुरों के सहित, गन्धर्वों से युक्त, यक्ष, उरग और राक्षसों के सहित, पिशाचों से युक्त तथा मनुष्यों के सहित और सुपर्ण तथा अप्सराओं के गण से युक्त था ॥ १७ ॥ बहुत, से नामों की संख्या उनके कुल में थी क्योंकि बहुत सारे नाम थे उन सब का आनुपूर्वी के साथ वर्णन करने का कार्य सौ वर्ष में भी पूर्ण नहीं किया जा सकता है ॥ १८ ॥ जो युग युग के नाम वाले स्वायम्भुव मन्वन्तर में थे वे अयन वर्ष और युग के क्रम से बहुत अधिक काल में व्यतीत हो गये हैं ॥१६॥ ऋषियों ने कहा—यह भगवान् काल जो कि समस्त प्राणियों के अपहरण करने वाला है, कौन है ? किसकी यह योनि है ? इसके आदि में क्या था ? इस का वास्तविक तत्त्व क्या है ? और यह किस का आत्मज है ? ॥ २० ॥ इसके नेत्र क्या हैं ? इसकी मूर्ति कैसी है ? और इसके अन्य शरीरावयव कैसे कहे गये हैं ? इसका नाम क्या है ? इसकी आत्मा क्या है ? हम सब यह बात आप से पूछ रहे है, कृपा कर हमें आप यह सब बताइये ॥ २१ ॥

श्रूयतां कालसद्भावं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
सूर्ययोर्निर्निमेषादि सङ्ख्याचक्षु स उच्यते ॥२२
मूर्त्तिरस्य त्वहोरात्रे निमेषावयवश्च स ।
संवत्सरशत त्वस्य नाम चास्य कलात्मकम् ।
साम्प्रतानागतातीतकालात्मा स प्रजापति ॥२३
पञ्चानां प्रविभक्तानां कालावस्था निबोधत ।
दिनार्द्धमासमासैस्तु ऋतुभिस्त्वयनैस्तथा ॥२४
संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीय परिवत्सर ।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सर ॥२५
वत्सर पञ्चमस्तेषां काल स युगसंज्ञित ।
तेषान्तु तत्त्व वक्ष्यामि कीर्त्यमान निबोधत ॥२६

श्रीसूतजी ने कहा— अब आप सब लोग इस काल का सद्भाव मुझसे श्रवण करें और उसको सुनकर हृदय में अवधारण भी करें। इसकी योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थान सूर्य है। इसकी संख्या चक्षु निमेष आदि होते हैं जोकि कहा जाता है ॥२२॥ अहोरात्र अर्थात् दिन और रात ही इसकी मूर्ति है और निमेष ही इसकी मूर्ति के अवयव होते हैं। कलात्मक जो सम्वत्सर ही इसका नाम होता है। वर्त्तमान भूत और भविष्य के स्वरूप वाला वह प्रजापति है ॥२३॥ प्रकृष्ट रूप से विभक्त पाँचों को ही काल की अवस्था जान लो जोकि पाँच विभाग दिन अर्धमास (पक्ष) ऋतु मास और अयन में होते हैं यही पाँचों का विभाग है और उन्हीं से काल की अवस्था होती है ॥२४॥ सम्वत्सर प्रथम होता है—दूसरा परिवत्सर तृतीय इद्वत्सर और चौथा अनुवत्सर तथा पञ्चम वत्सर होता है। उनका जो काल होता है वही युग रूप संज्ञा से युक्त होता है। अब उनका मैं वर्णन बतलाता हूँ आप लोग इस भली भाँति समझ लेवें ॥२५॥२६॥

ऋतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स तु संवत्सरो मतः ।
आदित्ये यस्त्वसौ सारः कालाग्निः परिवत्सरः ॥२७
शुक्लकृष्णा गतिश्चापि अपां सारमयः खगः ।
स इड्वत्सरः सोमः पुराणे निश्चलो मतः ॥२८
यश्चायं तपते लोकांस्तनुभिः सप्तसप्तभिः ।
आयुःकर्ता च लोकस्य स वायुरिति वत्सरः ॥२९
अहङ्कारात् रुदन् ब्रह्मा यद्भक्तो ब्रह्मणश्च यः ।
स रुद्रो वत्सरस्तेषां विज्ञेयो नीललोहितः ।
तेषां हि तत्त्वं वक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोधत ॥३०
अङ्गप्रत्यङ्गसंयोगात् कालात्मा प्रपितामहः ।
ऋक्सामयजुषां योनिः पञ्चानां पतिरीश्वरः ॥३१
सोऽग्निर्यजुश्च सोमश्च स भूतः स प्रजापतिः ।
प्रोक्तः संवत्सरश्चेति सूर्यो योऽग्निर्मनीषिभिः ॥३२
तस्मात् कालविभागानां मासर्त्वयनयोरपि ।

ग्रहनक्षत्रशीतोष्णवर्षायु: कर्मणा तथा ।
योजित: प्रविभागानां दिवसानां च भास्कर ।।३३

जो ऋतु अग्नि कहा गया है वह सम्वत्सर माना गया है । यह आदित्य का सार है, कालाग्नि परिवत्सर होता है ।।२७।। शुक्ल कृष्ण गति है और जलों का सारमय रस है । वह इदावत्सर सोम है जो कि पुराण में निश्चय किया गया है ।।२८।। जो यह सात-रस तनुओं से लोकों को लगता है यह लोक का आयुकर्ता वायु है और वत्सर होता है ।।२९।। अहङ्कार से रुदन करता हुआ रुद्र ब्रह्म से समुद्भूत हुआ । वह रुद्र उनका नीललोहित वत्सर उत्पन्न हुआ । अब मैं उनका कहा गया तत्त्व बतलाता हूँ जिसे आप समझ लेवें ।।३०।। अङ्गों और प्रत्यङ्गों के संयोग से कालात्मा अर्थात् काल के स्वरूप वाला प्रपिता-मह है जो कि ऋक् साम और यजु का जन्मस्थान है और पाँचों का पति ईश्वर है ।।३१।। वह अग्नि यजु और सोम है वह प्रजापति है । जो सम्वत्सर कहा गया है और मनीषियों के द्वारा जो अग्नि सूर्य कहा गया है ।।३२।। क्योंकि काल के विभागों का, मास, ऋतु और अयन का तथा ग्रह, नक्षत्र शीत, उष्ण वर्षा, आयु कर्मों का और प्रविभाग दिवसों का भास्कर ही योजित है ।।३३।।

वैकारिक: प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्र: प्रजापति: ।
एकोऽनेकोऽथ दिवसो मासोऽथर्तु: पितामह: ।।३४
आदित्य: सविता भानुर्जीवनो ब्रह्मसत्कृत: ।
प्रभवश्चाप्ययश्चैव भूतानां तेन भास्कर: ।।३५
ताराभिमानी विज्ञेयस्तृतीय: परिवत्सर: ।
सोम: सर्वौषधिपतिर्यस्मात्स प्रपितामह: ।।३६
आजीव: सर्वभूतानां योगक्षेमकृदीश्वर: ।
अवेक्षमाण: सततं बिभर्ति जगदंशुभि: ।।३७
तिथीनां पर्वसन्धीनां पूर्णिमादर्शयोरपि ।
योनिर्निशा करो यश्च योऽमृतात्मा प्रजापति: ।।३८
तस्मात् स पितृमान् सोम ऋग्यजुश्छन्दआत्मक: ।

प्राणापानसमानाद्यैर्व्यानोदानात्मकैरपि ।।४९

कर्मभिः प्राणिनां लोके सर्वचेष्टाप्रवर्त्तकः ।

प्राणापानसमानानां वायूनाञ्च प्रवर्त्तकः ।।५०

वक्तारिक-प्रसन्न मनोमा बाला ब्रह्मा पुत्र प्रजापति है । एक दिन माघ और ऋतु पितामह नहुँ ।।१४।। आदित्य सविता भानु जीवन और ब्रह्मा के द्वारा सत्कार प्रसन्न होने वाला प्रभव और प्राणियों का अत्यय कहा होता इसीसे भास्कर कहा जाता है । ।।३४।। साराभिमानी तीसरा परिवत्सर जानना चाहिए । सोम समस्त औषधियों का स्वामी हो । है इसी कारण से यह प्रपितामह होता है या कहा गया है ।।३६।। यह समस्त जीवों का मारीच है और सोम के अपने आत्मा और ईश्वर है । सर्वदा निरीक्षण करता हुआ इस जगत् का किरणों के द्वारा भरण किया करता है ।।३७।। तिथियों का तथा पर्व सन्धियों का एवं पूर्णिमा और दर्श का भी जो निशाकर योनि होता है और जो अमृतात्मा एवं प्रजापति है ।।३८।। उससे यह पितृगण मास ऋतु और यह स्वरूप वाला सोम प्राणापान समानादि तथा व्यान और उदानात्मक कर्मों के के द्वारा लोक में प्राणियों की समस्त चेष्टाओं का प्रवर्त्तक होता है और प्राण अपान एवं समान वायुओं का प्रवर्त्तक होता है ।।३९।।४ ।।

पञ्चानाञ्चेन्द्रियमनोबुद्धिस्मृतिबलात्मनाम् ।

समानकालकरणं क्रिया सम्पादयन्निव ।।४१

सर्वात्मा सर्वलोकानामावहः प्रवहादिभिः ।

विधाता सर्वभूतानां शमी नित्यं प्रभञ्जनः ।।४२

योनिरग्नेरपां भूमेः रवेश्चन्द्रमसस्तु यः ।

वायुः प्रजापतिर्विभुः सर्वलोकात्मा प्रपितामहः ।।४३

प्रजापतिं मुखैर्वेदैः सम्यगिष्टकनादिभिः ।

त्रिभिरेव कपालैस्तु त्र्यम्बकोऽयमिहेष्यते ।

इत्यतो भगवान् यस्मात्तस्मात्त्र्यम्बक उच्यते ।।४४

गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगती चैव या स्मृता ।

त्र्यम्बका नामतः प्रोक्ता योनयः सवनस्य ता ।।४५

ताभिरेकत्वभूताभिस्त्रिविधाभिः स्ववीर्यतः ।
त्रिसाधनपुरोडाशस्त्रिकपालः स वै स्मृतः ॥४६
इत्येतत्पञ्चवर्षं हि युगं प्रोक्तं मनीषिभिः ।
यच्चैव पञ्चधात्मा वै प्रोक्तः संवत्सरो द्विजैः ।
सैकः षट्कं विजज्ञेऽथ मध्वादीनृतवः किल ॥४७

पाँचों इन्द्रिय, मन, बुद्धि, स्मृति और जलाशयों का समान भाव करने वाला तथा क्रियाओं को मानों सम्पादन करता हुआ- सर्वात्मा और प्रवहादि के द्वारा समस्त लोकों का आवहन करने वाला तथा समस्त भूतों का विधाता और क्षमी प्रभञ्जन नित्य होता है ॥४१॥४२॥ जो अग्नि, जल, भूमि, सूर्य और चन्द्रमा का जन्म स्थान योनि है वह वायु भूतों का प्रजापति, लोकात्मा और प्रपितामह है ॥४ ॥ सभी भाँति इष्ट फलों के कर्ता प्रजापति प्रधान देवों के द्वारा तथा तीनों ही कपालों के द्वारा और ओषधि द्वारा अम्बकों के द्वारा भगवान् का यजन किया जाता है इसी कारण से वह त्र्यम्बक इस नाम से कहे जाते हैं ॥४४॥ गायत्री, त्रिष्टुप् जगती जो कही गई हैं और नाम से त्र्यम्बका कही गई है वे सबन की योनि है ॥४६। एकत्वभूत उन तीनों प्रकार वालों से अपने वीर्य से तीन सावन के पुरोडाश वाला है इसी लिये वह त्रिकपाल कहा गया है ॥४८॥ यह इतना पाँच वर्ष का मनीषियों ने युग कहा है और यही पञ्च प्रकार के स्वरूप वाला द्विजों के द्वारा सम्वत्सर कहा गया है। वह एक षट्क पैदा किया जो कि मधु आदि ऋतुएँ हैं ॥४७॥

ऋतुपुत्रास्तु पञ्च इति सर्गः समासतः ।
इत्येष पवमानो वै प्राणिनां जीवितानि तु ॥४८
नदीवेगसमायुक्तः कालो धावति संहरन् ।
अहोरात्रकरस्तस्मात् स वायुरभवत्पुनः ॥४९
एते प्रजानां पतयः प्रधानाः सर्वदेहिनाम् ।
पितरः सर्वलोकानां लोकात्मानः प्रकीर्तिताः ॥५०
ध्यायतो ब्रह्मणो वक्त्रादुद्वभ् समभवद्भव ।
ऋषिर्विप्रो महादेवो भूतात्मा प्रपितामहः ॥५१

ईश्वरः सर्वभूतानां प्रणवायोपपद्यते ।
आत्मवेशेन भूतानामङ्गप्रत्यङ्गसम्भवः ॥५२
अग्निः संवत्सरः सूर्यश्चन्द्रमा वायुरेव च ।
युगाभिमानी कालात्मा नित्यं संक्षेपकृद्विभुः ।
उन्मादकोऽनुग्रहकृत्स्वः ध्रुवत्सर उच्यते ॥५३
इत्याविष्टा भगवता जगत्यस्मिन् स्वेन तेजसा ।
आश्रयाश्रयसंयोगात्तनुभिर्नामभिस्तथा ॥५४

ऋतुओं के पुत्र आर्तव पाँच हैं। संक्षेप से यही युग होता है। यह प्राणियों के योनियों का परिमाण होता है ॥४८॥ नदी के वेग के समान ही काल सबका संहार करता हुआ क्षीण करता है अहोरात्र करने वाला है इससे यह फिर वायु हो गया था ॥४९॥ ये सब प्रजाओं के प्रजापति हैं और समस्त देवादिकों के पति हैं और समस्त लोकों के पितर हैं अतएव वे लोकों का प्रजनित हुए हैं ॥५१॥ ध्यान में स्थित ब्रह्माजी के मुख से भव उत्पन्न हुए थे जो कि ऋषि विप्र महादेव भूतात्मा और प्रपितामह हैं। ॥५ ॥ समस्त प्राणियों के ईश्वर प्रणव के लिये उपपन्न होते हैं। आत्म वेश से भूतों के अङ्ग प्रत्यङ्ग के सम्भव होते हैं ॥५२॥ अग्नि सम्वत्सर सूर्य चन्द्रमा और वायु ये युगाभिमानी काल के स्वरूप वाले विभु और नित्य ही संक्षेप करने वाले होते हैं उन्मादक और अनुग्रह करने वाले हैं यह ध्रुवत्सर कहे जाते हैं। ५३॥ आश्रयाश्रय के संयोग से तनुओं से तथा नामों के द्वारा इस जगती तल में भगवान के द्वारा अपने तेज द्वारा आविष्ट होते हैं ॥५४॥

ततस्तस्य तु वीर्येण सोमानुग्रहकारकम् ।
द्वितीयं भद्रसंयोगं सन्ततस्यैककारकम् ॥५५
देवत्वञ्च पितृत्वञ्च कालत्वञ्चास्य यत्परम् ।
तस्मार्द्र सर्वथा भवस्तद्वसुभिरभिपूज्यते ॥५६
पतिः पतीनां भगवान् प्रजेशानां प्रजापतिः ।
भवनः सर्वभूतानां सर्वेषां नीललोहितः ।
ओषधीः प्रतिगन्धत्तः रुद्रः क्षीणाः पुनः पुनः ॥५७

इत्येषा वदवस्य वै न तच्छक्य प्रमाणत ।
बहुत्वात् परिसङ्ख्यातुं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥५८
इमं वंश प्रजेशानां महतां पुण्यकर्मणाम् ।
कीर्त्तयन् स्थिरकीर्त्तीना महतीं सिद्धिमाप्नुयात् ॥५९

इसके अनन्तर उसके बीच मे लोकों पर अनुग्रह करने वाला मन्वतर का एक करने वाला द्वितीय भद्र संयोग होता है ॥ ५५ ॥ देवत्व, पितृत्व और इसका वात्सल्य परस्पर है उसमे सर्वथा भद्र उसी के भांति विद्वानों के द्वारा अभिपूजित होते हैं ॥ ५६ ॥ भगवान् पतियों के भी पति और प्रजा के ईशों के भी प्रजापति तथा समस्त प्राणियों जन्म स्थान एवं नील लोहित हैं। रुद्र पुन पुन क्षीण हुई औषधियों का सन्धान करते हैं ॥ ५७ ॥ इनकी जो सन्तति है वह प्रमाण के स्वरूप से कही नही जा सकती है। बहुत होने के कारण उनकी परिसंख्या भी नहीं की जा सकती है क्योंकि पुत्र और पौत्रो का कुछ भी अन्त नहीं है ॥ ५८ ॥ महान् एवं पुण्य कर्म वाले इन प्रजेशों का जो यह वंश है जिनकी कि कीर्ति स्थिर है उसका कीर्तन करते हुए महती सिद्धि की प्राप्ति होती है ॥ ५९ ॥

॥ प्रकर्ण ३०—युगधर्म निरूपण ॥

अत ऊर्द्ध प्रवक्ष्यामि प्रणवस्य विनिश्चयम् ।
ओङ्कारमक्षरं ब्रह्म त्रिवर्णव्यापितं स्मृतम् ॥१
यो यो यस्य यथा वर्णो विहितो देवतास्तथा ।
ऋचो यजूंषि सामानि वायुरग्निस्तथा जलम् ॥२
तस्मात्तु अक्षरादेव पुनरन्ये प्रजज्ञिरे ।
चतुर्द्दश महात्मानो देवाना ये तु देवता ॥३
तेषु सर्वगतश्चैव सर्वग सर्वयोगवित् ।
अनुग्रहाय लोकानामादिमध्यान्त उच्यते ॥४
सप्तर्षयस्तथेन्द्रा ये देवाश्च पितृभि सह ।
अक्षरात्प्रसृता सर्वे देवदेवान्महेश्वरात् ॥५
इहामुत्र हितार्थाय वदन्ति परम पदम् ।

पूर्वमेव मयोक्तस्ते कालस्तु युगसंज्ञितः ॥६
कृतं त्रेता द्वापरञ्च युगानि कलिना सह ।
परिवर्त्तमानस्तैरेव भ्रममाणेषु चक्रवत् ॥७
देवतास्तु तदोद्विग्ना कालस्य वशमागताः ।
न शक्नुवन्ति तं मानं संस्थापयितुमात्मना ॥८

श्री वायुदेव ने कहा—इसके आगे अब हम प्रणव का विनिश्चय कहेंगे। ओङ्कार जो अक्षर ब्रह्म है और भूः आदि ये तीन वर्ण वाला कहा गया है ॥१॥ जो जो जिसका जैसा भी वर्ण और देवता विहित किया गया है वैसा ही ऋक् यजु साम वायु अग्नि और जल होता है ॥२॥ उस अक्षर से ही फिर अन्य उत्पन्न हुए हैं। ये चौदह महान् आत्मा वाले हैं जो कि देवों के भी देवता होते हैं ॥३॥ उनमें भगवान् ब्रह्म और सद्योग का वेत्ता लोकों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये आदि मध्य तथा अन्त कहा जाता है ॥४॥ सप्तर्षि इन्द्र और जो देव हैं वे पितरों के साथ सब प्रकार देवों के देव महेश्वर से ही निःसृत हुए हैं ॥५॥ यहाँ और परलोक में हितार्थ के लिये परम पद कहते हैं। मैंने युग की संज्ञा से यह काल पहिले ही बतला दिया है ॥६॥ कृतयुग त्रेता द्वापर युगादि एवं कलियुग के साथ परिवर्त्तमान उनके द्वारा ही चक्र की भाँति भ्रम प्राप्त होने पर तब देवगण अत्यन्त उद्विग्न होकर इस काल के वश में आ गये और अपने से उस मान को संस्थापना न कर सके हैं ॥७-८॥

तदा ते व्याप्यता भूत्वा आदौ मन्वन्तरस्य च ।
ऋषयश्चैव देवाश्च रुद्रश्चैव महातपाः ॥९
अभ्यासेन मनस्तीव्र सहस्रं परिवत्सरान् ।
प्रपन्नास्ते महादेवं भीताः कालस्य वै तदा ॥१
अयं हि कालो देवेशश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्मुखः ।
कोऽस्य नियन्ता महादेव जगतामस्य महेश्वर ॥११
अथ दृष्ट्वा महादेवस्तु कालञ्चतुर्मुखम् ।
न भेतव्यमिति प्राह को वः कामः प्रदीयताम् ॥१२
मत्तं स्थित्वाब्रवीत् सर्वं न कृताय परिश्रम ।

उवाच देवो भगवान् स्वयम्भूगम सुदुर्जय ॥१३
यदस्य मुख श्वेत चतुर्जिह्व हि मध्यगे ।
एतत् कृतयुग नाम तस्य कालस्य व मुखम् ।
असौ देव सुरश्रेष्ठो ब्रह्मा वैवस्वतो मुख ॥१४

उस समय के बाद अर्थात् मौन होकर मन्वन्तर के आदि में देवता, ऋषिगण और महान् तप वाला इन्द्र सहस्रों परिवत्सर पर्यन्त तीव्र मन को समाहित करके तब काल से डरे हुए महादेव के शरण में प्राप्त हुए ॥ ९-१० ॥ यह चार मूर्ति तथा चार मुखो वाला देवो का ईश काल था। हे महेश्वर ! हे महादेव ! अगाध इसको कौन जानता है ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर उस चार मुखो वाले काल को महादेव जी ने देखकर कहा—डरो मत। आपका क्या काम है मुझे बताओ । १२ ॥ सुदुर्जय स्वय भगवान् कालदेव ने कहा—यह सब मैं तुम्हारा कार्य करूँगा। यह तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ नही होगा ॥ १३ ॥ जो यह इसका श्वेत मुख जो कि चार जिह्वा वाला लक्षित होता है यह कृतयुग नाम वाला उस काल का मुख है। यह सुरो में श्रेष्ठ ब्रह्मा देव हैं और वैवस्वत मुख है ॥ १४ ॥

यदेतद्रक्तवर्णाभ तृतीय व स्मृत मया ।
त्रिजिह्व लेलिहान तु एतत् त्रेतायुग द्विजा ॥१५
अत्र यज्ञप्रवृत्तिस्तु जायते हि महेश्वरात् ।
ततोऽत्र हूयते यज्ञस्तिस्रो जिह्वास्त्रयोऽग्नय ।
इष्टा चैवाग्नयो विप्रा कालजिह्वा प्रवर्तते ॥१६
यदेतद्वै मुख भीम द्विजिह्व रक्तपिङ्गलम् ।
द्विपादोऽत्र भविष्यामि द्वापर नाम तद्युगम् ॥१७
यदेतत् कृष्णवर्णाभ तुरीय रक्तलोचनम् ।
एकजिह्व पृथु श्याम लेलिहान पुन पुन ॥१८
तत कलियुग घोर सर्वलोकभयङ्करम् ।
कालस्य तु मुख ह्येतच्चतुर्थं नाम भीषणम् ॥१९
न सुख नापि निर्वाण तस्मिन् भवति वै युगे ।

कालग्रस्ता प्रजा चापि युगे तस्मिन् भविष्यति ॥२०
ब्रह्मा कृतयुगे पूज्यस्त्रेतायां यज्ञ उच्यते ।
द्वापरे पूज्यते विष्णुरहम्पूज्यश्चतुर्ष्वपि ॥२१

जो यह रक्त वर्ण की आभा वाला मेरे द्वारा आपसे तृतीय कहा गया है तीन शीर्ष वाला इसको चाटता हुआ है द्विजो ! यह त्रेतायुग है ॥ १५ ॥ यहाँ पर भगवान् महेश्वर से यज्ञ करने में प्रवृत्ति होती है । तब से यहाँ यज्ञ का यजन किया जाता है । तीन शीर्ष और तीन ही अग्नि हैं । हे द्विजो ! अग्नि चयन करके काम सिद्धि की प्रवृत्ति होती है ॥ १६ ॥ यह जो दो शीर्ष वाला रक्त एवं पिङ्गल वर्ण वाला भयानक मुख है यहाँ दो पाद वाला हो जाएगा । यह द्वापर नाम वाला युग है ॥ १७ ॥ यह जो चतुर्थ कृष्ण वर्ण की आभा वाला रक्त लोचन एक शीर्ष वाला अधिक ध्यान को बार-बार चाटने वाला है यह घोर समस्त लोकों में भयङ्कर कलियुग है । यह चौथा कल्प का भीषण मुख है ॥ १९ ॥ इस युग में न तो कोई सुख ही होता है और न निर्वाण (मोक्ष) ही होता है । इस युग में प्रजा भी सब काल से ग्रस्त रहा करेगी ॥ २० ॥ कृतयुग में ब्रह्मा पूजा के योग्य होते हैं । त्रेता में यज्ञ कहा जाता है । द्वापर में विष्णु पूजे जाते हैं और मैं चारों में पूज्य होता हूँ ॥ २१ ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च यज्ञश्च कालस्यैव कलात्रयम् ।
सर्वेष्वेव हि कल्पेषु चतुर्मूर्तिर्महेश्वरः ॥२२
अहं जगो जनयिता (च) काल कालप्रवर्त्तकः ।
युगकर्त्ता तथा चैव परः परपरायणः ॥२३
तस्मात् कलियुगं प्राप्य लोकानां हितकारणात् ।
अभयायच देवानामुभयोर्लोकयोरपि ॥२४
तदा मध्याच पूज्यश्च भविष्यामि सुरोत्तमाः ।
तस्मादस्य न राय च कलिं प्राप्य महौजसः ॥२५
एवमुक्तास्तत सर्वा देवता ऋषिभिः सह ।
प्रणम्य शिरसा देवं पुनरूचुर्जगत्पतिम् ॥२६
महातेजा महाकायो महावार्यो महाद्युति ।

भीषण सर्वभूतानां कथं कालश्चतुर्मुखः ॥२७

एष कालश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्मुखः ।
लोकसंरक्षणार्थाय अतिक्रामति सर्वशः ॥२८

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ये तीनों काल से ही कलाएँ हैं। समस्त शास्त्रों में चतुर्मूर्ति महेश्वर होते हैं ॥ २२ ॥ यह जो है इस युग का करने वाला काल है जो काल का प्रवर्तक होता है तथा यह युग का करने वाला और पर परायण होता है ॥ २३ ॥ इसमें लोकों के हित कारण में कलियुग को प्राप्त करके दोनों लोकों में देवों का अपराध है ॥ २४ ॥ हे सुरोत्तमो ! तब उस समय मैं मध्य और पूज्य हो जाऊँगा। इससे महान् ओज वालो ! कलियुग को पाकर कुछ भी भय नहीं करना चाहिए ॥ २५ ॥ इस प्रकार से ऋषियों के साथ समस्त देव कहे गये और उन्होंने सिर से देव को प्रणाम करके फिर वे जगत् के पति से बोले ॥ २६ ॥ देवर्षियों ने कहा—महान् तेज वाला, महान् काय वाला और महान् वीर्य वाला तथा महाद्युति से युक्त समस्त प्राणियों के लिये भीषण काल चार मुखों वाला कैसे हुआ है ॥ २७ ॥ श्री महादेव जी ने कहा—यह काल चार मूर्तियों वाला, चार दाढ़ों वाला और चार मुख वाला लोकों के संरक्षण के लिये सभी ओर से अतिक्रमण करता है ॥ २८ ॥

नासाध्यं विद्यते चास्य सर्वस्मिन् सचराचरे ।
कालः सृजति भूतानि पुनः संहरति क्रमात् ॥२९

सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशे ।
तस्मात्तु सर्वभूतानि कालः कलयते सदा ॥३०

विक्रमस्य पदान्यस्य पूर्वोक्तान्येकसप्ततिः ।
तानि मन्वन्तराणीह परिवृत्तयुगक्रमात् ॥३१

एकं पदं परिक्रम्य पदानामेकसप्ततिः ।
यदा कालः प्रक्रमते तदा मन्वन्तरक्षयः ॥३२

एवमुक्त्वा तु भगवान् देवर्षिपितृदानवान् ।
नमस्कृतश्च तैः सर्वैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥३३

एवं स काले भगवान् देवर्षिपितृदानवान् ।

पुनः पुनः संहरते सृजते च पुनः पुनः ॥३४

भूतो म वत्स्य त्र देवर्षिपितृमानव ।

पूज्यते च (मानीतो भयात् कालस्य तस्य च ॥३५

समस्त चराचर मे इसको कुछ भी असाध्य नहीं होता है । यह काल ही प्राणियो का सृजन किया करता है और यही काल से उनका संहार करता है ॥ ३० ॥ सभी काल के वश मे आने वाले होते हैं किन्तु यह काल किसी के भी वश मे रहने वाला नहीं होता है । इसीलिये समस्त प्राणियो का यह काल संक्रमण किया करता है ॥ ३० ॥ इसके विक्रम के इकहत्तर पद हैं जो पहिले कहे गये हैं । वे यहाँ परिवृत्त युगों के क्रम से मन्वन्तर होते हैं ॥ ३१ ॥ एक पद का परिक्रम करके जो कि इकहत्तर पद है । जब काल संक्रमण किया करता है तब मन्वन्तर का क्षय होता है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार से भगवान् ने देवर्षि पितृ और मानवो का सृजन और उनका करण के पश्चात् उन सबके द्वारा नमस्कृत होकर वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गये ॥ ३३ ॥ इस प्रकार से वह भगवान् काल में देव महर्षि पितर और मानवो को पुनः पुनः सृजन किया करते हैं और बार बार संहार भी किया करते हैं ॥ ३४ ॥ इसीलिये उस काल के भय से मन्वन्तर में देवर्षि पितृ मानवो के द्वारा भगवान् पूजे जाते हैं ॥ ३५ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कलौ कुर्यात्तपो द्विज ।

यशस्य महादेव तस्य पुण्यफलं महत् ।

तस्माद् वा शिव गत्वा भवतीय च भूतले ॥ ३६

अपयान्त देवाश्च कलिम्प्राप्य सुदारुणम् ।

तप इच्छन्ति सुमिद्ध कर्तुं धर्मपरायणाः ।

अवतारान् कलिं प्राप्य करोति च पुनः पुनः ॥३७

एवं कालान्तरे सर्वे यतीना गो सहस्रकः ।

मीयस्वतेऽन्तरे तस्मिन् देवराजयस्तथा ॥ ३८

इत्वापि पौरवो राजा मनुश्चैवेक्ष्वाकुवाना ।

महायोगबलोपेता कालाभ्रमुपासते ॥ ३९

क्षीणे कलियुगे तस्मिस्तिष्ये त्रेतायुगे पुनः ।

सप्तर्षिभिश्चैव सार्द्ध भाव्ये त्रेतायुगे पुनः ।
गोत्राणां क्षत्रियाणाञ्च भविष्यास्ते प्रकीर्तिताः ॥४०
द्वापरान्ते प्रतिष्ठन्ते क्षत्रिया ऋषिभिः सह ।
कृते त्रेतायुगे चैव तथा क्षीणे च द्वापरे ।
नराः पातकिनो ये वै वर्त्तन्ते ते कलौ स्मृताः ॥४१
मन्वन्तराणां सप्तानां सन्तानार्थं श्रुतिः स्मृतिः ।
एवमेतेषु सर्वेषु युगक्षयक्रमस्तथा ॥४२

इसीलिये द्विज को इस कलियुग में समस्त प्रयत्नों से तपश्चर्या करनी चाहिए। महादेव की शरणागति में आने वाले को उसके पुण्य का महान् फल होता है। इससे देवता स्वर्ग में जाकर फिर इस भूतल में अवतरित होते हैं ॥ ३६ ॥ ऋषिगण और देववृन्द इस सुदारुण कलियुग को पाकर धर्म परायण होते हुए बहुत अधिक तप करने की इच्छा किया करते हैं और इस कलियुग को प्राप्त करके पुनः पुनः अवतारों को किया करते हैं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार से कालान्तर में हजारों ही जो सब हैं वे अतीत हो गये हैं। इसी तरह से इस वैवस्वत अन्तर में देवराजर्षि अतीत हो गये हैं ॥ ३८ ॥ देवापि पौरव राजा मनु और इक्ष्वाकु के वंश में जन्मने वाले जो कि महान् योग के बल से युक्त थे कालान्तर की उपासना करते हैं ॥ ३९ ॥ उस कलियुग के क्षीण हो जाने पर त्रेतायुग के विद्य होने पर फिर सप्तर्षियों के साथ भाव्य त्रेता युग में गोत्र और क्षत्रियों के भविष्य प्रकीर्तित किये गये हैं ॥ ४० ॥ द्वापर के अन्त में ऋषियों के साथ क्षत्रिय प्रतिष्ठित होते हैं। कृतयुग, त्रेतायुग तथा द्वापर युग के क्षीण हो जाने पर इस कलियुग में मनुष्य जो हैं वे सब पातकी होते हैं ऐसा कहा गया है ॥ ४१ ॥ सात मन्वन्तरों की सन्तानार्थ श्रुति और स्मृति है। तथा इसी प्रकार से इन सब में युगों के क्षय होने का क्रम होता है ॥ ४२ ॥

परस्परं युगानाञ्च ब्रह्मक्षत्रस्य चोद्भवः ।
यथा वै प्रकृतिस्तेषां प्रवृत्तानां यथा क्षयम् ॥४३
जामदग्न्येन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते ।
क्रियन्ते कुलटाः सर्वाः क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः ।

त्रेतायां त्रीणि सहस्राणि संख्यया मुनिभिः सह ।
तस्यापि त्रिशती सन्ध्या सन्ध्यांशस्त्रिशतः स्मृतः ॥५७
अनुषङ्गपादस्त्रेतायास्त्रिसहस्रस्तु संख्यया ।
द्वापरे द्वे सहस्रे तु वर्षाणां सम्प्रकीर्तितम् ॥५८
तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्यांशो द्विशतस्तथा ।
उपोद्घातस्तृतीयस्तु द्वापरे पाद उच्यते ॥५९
कलिं वर्षसहस्रं तु प्राहुः संख्याविदो जनाः ।
तस्यापि शतिका सन्ध्या सन्ध्यांशः शतमेव च ।६०
संहारपादः संख्यातश्चतुर्थो वै कलौ युगे ।
ससन्ध्यानि सहस्राणि चत्वारि तु युगानि च ॥६१
एतद् द्वादशसाहस्रं चतुर्युगमिति स्मृतम् ।
एवं पाद सहस्राणि श्लोकानां पञ्च पञ्च च ॥६२
सन्ध्यासन्ध्यांशकैरेव द्वे सहस्रे तथाऽपरे ।
एवं द्वादशसाहस्रं पुराणं कवयो विदुः ॥६३
यथा वेदश्चतुष्पादश्चतुष्पादं तथा युगम् ।
यथा युगं चतुष्पादं विधात्रा विहितं स्वयम् ।
चतुष्पादं पुराणन्तु ब्रह्मणा विहितं पुरा ॥६४

त्रेता युग मुनियों के साथ संख्या में सहस्र व । उसकी त्रिशती सन्ध्या तथा त्रिशत वाला सन्ध्यांश कहा गया है ॥ ५७ ॥ त्रेता का अनुषङ्ग पाद संख्या से तीन सहस्र वाला था । द्वापर में दो सहस्र वर्ष कहे गये हैं ॥ ५८ ॥ उस द्वापर युग की भी द्विशती सन्ध्या तथा सन्ध्यांश भी दो सौ वाला था । उपोद्घात तीसरा द्वापर में पाद कहा जाता है ॥ ५९ ॥ संख्या के ज्ञाता विद्वान कलियुग को एक सहस्र वर्ष वाला बताते हैं । उसकी भी सन्ध्या एक सौ वाली शतिका है और उसका सन्ध्यांश भी इसी प्रकार वाला एक सौ का है । कलियुग में चतुर्थ संहार पाद होता है । इस तरह सन्ध्या के साथ तथा अंशों के सहित चार युगों का वर्णन किया गया है ॥ ६१ ॥ यह द्वादश सहस्र का चतुर्युग होता है जिसको कि स्मृत बतलाया गया है । इसी प्रकार से पादों में

श्लोकों का योग पाँच सहस्र है ॥ ६२ ॥ तथा सन्ध्या और सन्ध्यांशकों के द्वारा दूसरे दो सहस्र होते हैं इस तरह से कवि लोग पुराणों को बारह सहस्र वाले कहा करते हैं ॥ ६३ ॥ जिस तरह वेद चार पादों वाला है उसी प्रकार से युग भी चार पादों वाला होता है। जिस तरह विधाता ने स्वयं युग को चार पाद वाला बनाया है उसी तरह से पहिले ब्रह्माजी ने सुरों के भी चतुष्पाद का निर्माण किया था ॥ ६४ ॥

॥ प्रकरण ३१—स्वायम्भुव-वंश-कीर्तन ॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ।
तुल्याभिमानिनः सर्वे जायन्ते नामरूपतः ॥१
देवाश्च विविधा ये च तस्मिन् मन्वन्तरेऽधिपाः ।
ऋषयो मानवाश्चैव सर्वे तुल्याभिमानिनः ॥२
महर्षिसर्गः प्रोक्तो वै वंशः स्वायम्भुवस्य तु ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च कीर्त्यमानं निबोधत ॥३
मनोः स्वायम्भुवस्यासन् दश पौत्रास्तु तत्समाः ।
यैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपसमन्विता ॥४
ससमुद्राकरवती प्रतिवर्षं निवेशिता ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तदा ॥५
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य तु ।
प्रजासर्गतपोयोगैस्तैरियं विनिवेशिता ॥६
प्रियव्रतात् प्रजावन्तं वीरात् कन्या व्यजायत ।
कन्या सा तु महाभागा कर्दमस्य प्रजापतेः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अतीत और अनागत मन्वन्तरों में सब में यहाँ पर सब नाम और रूप से तुल्याभिमानी उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥ अनेक देव जो कि उस मन्वन्तर में अधिप थे ऋषिवृन्द और मानवगण ये सभी तुल्य अभिमान वाले थे ॥ २ ॥ स्वायम्भुव का वंश महर्षियों का सर्ग कह दिया गया है। अब विस्तार के साथ तथा आनुपूर्वी से वर्णन किये जाने वाले का श्रवण करो ॥ ३ ॥ स्वायम्भुव मनु के उन्हीं के समान दश पुत्र थे जिनके द्वारा यह सातों द्वीपों से

समन्वित समस्त पृथ्वी परिपूर्ण है ॥ ४ ॥ यह भूमि प्रतिपद निवेशित होती हुई समुद्र तथा आकरों वाली है। स्वायम्भुव मन्वन्तर में पहिले आद्य महायुग में उस समय यह पृथ्वी इसी तरह से युक्त थी ॥ ५ ॥ राजा प्रियव्रत के पुत्र तथा स्वायम्भुव मनु के पौत्रों के द्वारा यह प्रजा का सर्ग तपश्चर्या और योग से निवेशित की गई थी ॥ ६ ॥ राजा प्रियव्रत से जो कि प्रजा वाला एवं वीर था कन्या उत्पन्न हुई थी वह कन्या महान् भाग्य वाली थी जो प्रजापति कर्दम को ब्याही गई थी ॥ ७ ॥

कन्ये द्वे शतपुत्राश्च सम्राट् कुक्षिश्च ते उभे।
ययोर्वै भ्रातरः शूराः प्रजापतिसमा दश ॥८
अग्नीध्रश्च वपुष्मांश्च मेधा मेधातिथिर्विभुः।
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यः सवनः सत्र एव च ॥९
प्रियव्रतोऽभिषिच्यैतान् सप्त सप्तसु पार्थिवान्।
द्वीपेषु तेषु धर्मेण द्वीपांस्तांश्च निबोधत ॥१०
जम्बूद्वीपेश्वरं चक्रे अग्नीध्रन्तु महाबलम्।
प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापि तेन मेधातिथिः कृतः ॥११
शाल्मली तु वपुष्मन्तं राजानमभिषिक्तवान्।
ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान् प्रभुः ॥१२
द्युतिमन्तञ्च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत्।
शाकद्वीपेश्वरश्चापि हव्यश्चक्रे प्रियव्रतः ॥१३
पुष्कराधिपतिञ्चापि सवनं कृतवान् प्रभुः।
पुष्करे सवनस्यापि महावीरः सुतोऽभवत्।
धातकिश्चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ॥१४

दो कन्या सौ पुत्र और सम्राट् कुक्षि ये दोनों थे उन दोनों के प्रजापति के समान शूर भाई दश थे ॥ ८ ॥ उनके नाम ये हैं—अग्नीध्र, वपुष्मान्, मेधा मेधातिथि, विभु, ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्य सवन और सत्र ये दश हैं ॥ ९ ॥ राजा प्रियव्रत ने सात इन राजाओं का सात द्वीपों में अभिषेक करके उन द्वीपों में धर्म से नियुक्त कर दिया था उन द्वीपों के विषय में अब समझ करो ॥ १० ॥

जम्बूद्वीप में महान् बल वाले अग्नीध्र को वहाँ का स्वामी बनाया था। प्लक्ष द्वीप में उसने मेधातिथि को वहाँ का राजा नियुक्त किया था ॥ ११ ॥ शाल्मलि द्वीप में वपुष्मान् को राजा अभिषिक्त किया था। कुश द्वीप में ज्योतिष्मान् को प्रियव्रत प्रभु ने राजा बनाया था ॥ १२ ॥ क्रौञ्चद्वीप में द्युतिमान् को राजा होने की आज्ञा दी थी। प्रियव्रत ने शाकद्वीप में हव्य को वहाँ का राजा बनाया था ॥ १३ ॥ पुष्कर द्वीप में सवन का अभिषेक किया था। पुष्कर द्वीप में सवन का भी महावीत नाम वाला पुत्र हुआ था और एक धातकि पुत्र था ये दोनों पुत्र पुत्रवानों में परम श्रेष्ठ थे ॥ १४ ॥

महावीतं स्मृतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ।
नाम्ना तु धातकेश्चापि धातकीखण्डमुच्यते ॥१५
हव्योऽप्यजनयत् पुत्रान् शाकद्वीपेश्वरान् प्रभुः ।
जलदञ्च कुमारञ्च सुकुमारं मणीचकम् ।
वसुमोदं सुमोदाकं सप्तमञ्च महाद्रुमम् ॥१६
जलदं जलदस्याथ वर्षं प्रथममुच्यते ।
कुमारस्य च कौमारं द्वितीयं परिकीर्तितम् ॥१७
सुकुमारं तृतीयन्तु सुकुमारस्य कीर्तितम् ।
मणीचकस्य चतुर्थं मणीचकमिहोच्यते ॥१८
वसुमोदस्य वै वर्षं पञ्चमं वसुमोदकम् ।
मोदाकस्य तु मोदाकं वर्षं षष्ठं प्रकीर्तितम् ॥१९
महाद्रुमस्य नाम्ना तु सप्तमन्तु महाद्रुमम् ।
एषान्तु नामभिस्तानि सप्तवर्षाणि तत्र वै ॥२०
क्रौञ्चद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रा द्युतिमतस्तु वै ।
कुशलो मनुगश्चोष्णः पीवरश्चान्धकारकः ।
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सुता द्युतिमतस्तु वै ॥२१

महावीत महात्मा ने उस नाम से वर्ष स्थापित किया था और धातकि के नाम से भी धातकीखण्ड कहा जाता है ॥ १५ ॥ हव्य ने शाक द्वीप के स्वामी पुत्रों को उत्पन्न किया था। ये सात पुत्र थे जिनके नाम, जलद, कुमार,

सुकुमार मणिवक वसुमोद सुमोदक और सातवाँ महाद्रुम हैं । ये सातों पुत्रों के नाम हैं ॥ १६ ॥ जलद का जलद प्रथम वर्ष कहा जाता है । कुमार का कौमार दूसरा वर्ष कहा गया है ॥ १७ ॥ तृतीय सुकुमार का सुकुमार इसी नाम वाला वर्ष कहा गया है । मणिवक का चौथा मणीचक वर्ष है इसी नाम से कहा जाता है ॥ १ ॥ पाँचवाँ वसुमोदका वसुमोदक और मोदाक का छठा मोदाक वर्ष कहा गया है ॥१९॥ सातवाँ महाद्रुम के नाम का महाद्रुम वर्ष है । ये इनके नामों से सात वर्ष होते हैं ॥ २ ॥ क्रौञ्चद्वीप के स्वामी द्युतिमान् के पुत्र हुए उनके नाम कुशल मनुग उष्ण पीवर अन्धकारक मुनि और दुन्दुभि ये द्युतिमान् राजा के पुत्र हुए थे ॥ २१ ॥

तेषां स्वनामभिर्देशाः क्रौञ्चद्वीपाश्रयाः शुभाः ।
उष्णस्योष्णः स्मृतो देशः पीवरस्यापि पीवरः ॥२२
अन्धकारकदेशस्तु अन्धकारश्च कीर्त्यते ।
मुनेस्तु मुनिदेशो वै दुन्दुभेर्दुन्दुभिः स्मृतः ।
एते जनपदाः सप्त क्रौञ्चद्वीपे तु भास्वराः ॥२३
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्त ते सुमहौजसः ।
उद्भिदो वेणुमांश्चैव स्वैरथो लवणो धृतिः ।
षष्ठः प्रभाकरश्चैव सप्तमः कपिलः स्मृतः ॥२४
उद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम् ।
तृतीयं स्वैरथाकारं चतुर्थं लवणं स्मृतम् ॥२५
पञ्चमं धृतिमद्वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् ।
सप्तमं कपिलं नाम कपिलस्य प्रकीर्तितम् ॥२६
तेषां द्वीपाः कुशद्वीपे तत्सनामान एव तु ।
आश्रमाचारयुक्ताभिः प्रजाभिः समलङ्कृताः ॥२७
शाल्मलस्येश्वराः सप्त पुत्रास्ते तु वपुष्मतः ।
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ।
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभः सप्तमस्तथा ॥२८

इन सातों द्युतिमान् के पुत्रों के अपने २ नामों से क्रौञ्चद्वीप के अन्दर जनपद वाले सब देश हुए । उष्ण का उष्ण पीवर का पीवर इस नाम वाला

देश था ॥२२॥ अन्धकारक के देश का नाम भी अन्धकार ही कहा जाता है। मुनि का मुनि देश और दुन्दुभि का दुन्दुभि इसी नाम वाला देश था। ये सात जनपद क्रौञ्च द्वीप में परम भास्वर अर्थात् देदीप्यमान थे ॥२३॥ इसी तरह कुश द्वीप में महान् ओज वाले ज्योतिष्मान् के सात पुत्र हुए। उद्भिद, वेणुमान्, वैरथ, लवण, धृति, छठा प्रभाकर और सातवाँ कपिल कहा गया है ॥२४॥ उद्भिद ये प्रथम वर्ष—वेणुमण्डल, दूसरा—तृतीय वैरथाकार—चौथा लवण—पाँचवाँ धृतिमान्—छठा प्रभाकर और सातम कपिल इस नाम वाला वर्ष था जो कि इन्हीं नामों से सब प्रसिद्ध हैं ॥२५॥२६॥ उनके कुश द्वीप में द्वीप उन्हीं के समान हुए थे जो कि आश्रम एवं आचार से युक्त प्रजाओं से समन्वित थे ॥२७॥ शाल्मलि द्वीप के वपुष्मान् के सात पुत्र हुए जो उसी द्वीप के अधिप हुए थे। श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, मानस और सुप्रभ ये नाम वाले थे ॥२८॥

श्वेतस्य श्वेतदेशस्तु रोहितस्य च रोहितः ।
जीमूतस्य च जीमूतो हरितस्य च हारितः ॥२९॥
वैद्युतो वैद्युतस्यापि मानसस्यापि मानसः ।
सुप्रभः सुप्रभस्यापि सप्तैते देशपालकाः ॥३०॥
प्लक्षद्वीपे तु वक्ष्यामि जम्बूद्वीपादनन्तरम् ।
सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरा नृपाः ॥३१॥
ज्येष्ठः शान्तभयस्तेषां सप्तवर्षाणि तानि वै ।
तस्माच्छान्तभयाच्चैव शिशिरस्तु सुखोदयः ।
आनन्दश्च ध्रुवश्चैव क्षेमकश्च शिवस्तथा ॥३२॥
तानि तेषां सनामानि सप्तवर्षाणि भागशः ।
निवेशितानि तैस्तानि पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥३३॥
मेधातिथेस्तु पुत्रैस्तैः सप्तद्वीपनिवासिभिः ।
वर्णाश्रमाचारयुक्ताः प्लक्षद्वीपे प्रजाः कृताः ॥३४॥
प्लक्षद्वीपादिकेष्वेव शाकद्वीपान्तरेषु वै ।
ज्ञेयः पञ्चसु धर्मो वै वर्णाश्रमविभागशः ॥३५॥

श्वेत का श्वेत देश था तथा रोहित का रोहित, जीमूत का जीमूत,

हरिवर्ष का हारिक वरवत का वर्ष त मानस का मानस और सुषमा का सुषम देश था और ये सातों पुत्र देशों के पालक थे जो कि देश उन्हीं सातों के नामों से प्रसिद्ध हैं ॥२६॥२ ॥ जम्बू द्वीप के बाद मे सात द्वीप कहूँगा । मेधा तिथि के सात पुत्र हुए थे जो कि प्लक्ष द्वीप के स्वामी राजा हुए थे ॥३१॥ उनमें जो सबसे बड़ा था व॰ शान्तमय था । उसके भी सात पुत्र हुए थे । फिर शान्तमय के पीछे शिशिर सुखोदय आनन्द शिव क्षेमक और सातवाँ ध्रुव ये नाम वाले सात पुत्र थे ॥३२॥ इन सातों के नामों से ही विभाग पूर्वक सात वर्ष हुए । इन्होंने पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर में इन सातों को निवेशित किया था ॥ ३॥ मेधा तिथि के इन सात द्वीपो मे निवास करने वाले पुत्रों ने वर्णों तथा आश्रमों के आचार से युक्त प्लक्ष द्वीप मे प्रजा का सृजन किया था ॥३४॥ प्लक्ष द्वीपादि मे तथा शाक द्वीपान्तरों मे पाँचों मे वर्णाश्रम के विभाग से धर्म जानने के योग्य है ॥३५॥

सुखमायुश्च रूपञ्च धर्मं धर्मश्च नित्यशः ।
पञ्चस्वेतेषु द्वीपेषु सर्व साधारणं स्मृतम् ॥ ६
सप्तद्वीपपरिक्रान्तं जम्बूद्वीपं निबोधत ।
आग्नीध्रं ज्येष्ठदायादं कन्यापुत्रं महाबलम् ।
प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चत्तं जम्बूद्वीपेश्वरं नृपम् ॥ ७
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमौजसः ।
ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किम्पुरुषोऽनुजः ॥ ८
हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थोऽभूदिलावृतः ।
रम्यः स्यात्पञ्चमः पुत्रो हिरण्वान् षष्ठ उच्यते ॥३९
कुरुस्तु सप्तमस्तेषां भद्राश्वो ह्यष्टमः स्मृतः ।
नवमः केतुमालस्तु तेषां देशान्निबोधत ॥४०
नाभेस्तु दक्षिणं वर्षं हिमाह्वं तु पिता ददौ ।
हेमकूटं तु यत्पश्च ददौ किम्पुरुषाय तत् ॥४१
नैषधं यत् स्मृतं वर्षं हरिवर्षाय तद्ददौ ।
मध्यमं यत्सुमेरोस्तु स ददौ तदिलावृते ॥४२

सुख, आयु, रूप, बल और धर्म नित्य ही इन पाँचों द्वीपों में समस्त साधारण रूप से स्थित कहे गये हैं ।।३६।। सात द्वीपों से परिक्रान्त जम्बू द्वीप को जानना चाहिए। राजा प्रियव्रत ने आग्नीध्र, ज्येष्ठदायाद, कन्या पुत्र और महाबल को उस जम्बू द्वीप में वहाँ का राजा अभिषिक्त करके बनाया था।३७। इसके पुत्र भी प्रजापति के समान ही ओज वाले हुए थे। उनमें जो सबसे बड़ा ज्येष्ठ था वह 'नाभि'—इस नाम से प्रसिद्ध था। उसका छोटा भाई किम्पुरुष था ।।३८।। तीसरा हरिवर्ष, चौथा इलावृत, पाँचवाँ रम्य और षष्ठ हरिन्मान् तथा सातवाँ कुरु एवं अष्टम भद्राश्व कहा गया है, नवम केतुमाल था। अब उनके देशों के विषय में बतलाया जाता है उसका श्रवण करो ।।३९।।४०।। पिता ने नाभि को हिम नाम वाला दक्षिण देश दिया था और जो हेमकूट वर्ष था वह किम्पुरुष को दिया था ।।४१।। नैषध जो वर्ष था वह हरिवर्ष को दिया और जो सुमेरु के मध्यम था वह उसने इलावृत को दे दिया था ।।४२।।

नीलन्तु यत् स्मृतं वर्षं रम्यायैतत् पिता ददौ ।
श्वेतं यदुत्तरं तस्मात् पित्रा दत्तं हरिन्मते ।।४३
यदुत्तरं शृङ्गवतो वर्षं तत् कुरवे ददौ ।
वर्षं माल्यवतश्चापि भद्राश्वाय न्यवेदयत् ।।४४
गन्धमादनवर्षन्तु केतुमाले न्यवेदयत् ।
इत्येतानि महान्तीह नववर्षाणि भागशः ।।४५
आग्नीध्रस्तेषु सर्वेषु पुत्रांस्तानभ्यषिञ्चत ।
यथाक्रमं स धर्मात्मा ततस्तु तपसि स्थितः ।।४६
इत्येतैः सप्तभिः कृत्स्ना सप्तद्वीपा निवेशिता ।
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य तु ।।४७
यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ शुभानि तु ।
तेषां स्वभावतः सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ।।४८
विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च ।
धर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः ।
न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वेव तु सर्वशः ।।४९

जो नील इस नाम वाला वर्ष था वह पिता ने रम्य नाम वाले पुत्र को दिया। जो श्वेत था उसे पिता के द्वारा हिरण्वान् को दिया गया था ॥४३॥ जो शृङ्गवान् के उत्तर में वर्ष था उसे कुरु नामक पुत्र को दिया। माल्यवान् का जो वर्ष था वह भद्राश्व को दिया गया ॥४४॥ गन्धमादन नाम वाला वर्ष केतुमाल को दे दिया था। ये सब महान् भाग से जो वर्ष हैं ॥४५॥ इन सबमें आग्नीध्र ने उन पुत्रों को अभिषिक्त कर दिया था और उनको क्रम के अनुसार ही दिया गया फिर वह धर्मात्मा स्वयं तपश्चर्या में स्थित हो गया था ॥४६॥ इन सातों ने धर्मात्मा सात द्वीप निवेशित किये थे वे सब प्रियव्रत के पुत्र थे तथा स्वायम्भुव मनु के पौत्र थे ॥४७॥ जो किम्पुरुष आदि शुभ आठ वर्ष थे उनको स्वभाव से ही बिना किसी प्रयत्न के सुख प्राप्त सिद्धि थी ॥४८॥ वहाँ उनमें किसी भी प्रकार का विपर्यय नहीं था और वहाँ पर जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु से उत्पन्न होने वाला कुछ भी भय नहीं होता था। उनमें कोई भी धर्म तथा अधर्म की बात भी नहीं थी और उनमें कोई भी उत्तम-मध्यम तथा अधम होने वाली बात भी नहीं थी। उनमें कोई भी युग की अवस्था नहीं थी और सभी को किसी भी क्षेत्र में देखा नहीं होता था ॥४९॥

नाभेर्हि सर्गं वक्ष्यामि हिमाह्वे तन्निबोधत ।
नाभिस्त्वजनयत् पुत्रं मेरुदेव्यां महाद्युतिः ।
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ॥५०
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः ।
सोऽभिषिच्याथ भरतं पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः ॥५१
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत् ।
तस्मात्तद्भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ॥५२
भरतस्यात्मजो विद्वान् सुमतिर्नाम धार्मिकः ।
बभूव तस्मिंस्तद्राज्यं भरतः संन्यवेशयत् ।
पुत्रसंक्रामितश्रीको वनं राजा विवेश सः ॥५३
तेजसस्तु सुतश्चापि प्रजापतिरमित्रजित् ।
तैजसस्यात्मजो विद्वानिन्द्रद्युम्न इति श्रुतः ॥५४
परमेष्ठी सुतस्तस्य निधने तस्य शोभन

प्रतीहारकुले तस्य नाम्ना जज्ञे न्वयात् ।
प्रतिहर्त्तेति विख्यातो जज्ञे तस्यापि धीमतः ॥५५
उन्नेता प्रतिहर्त्तुस्तु भवस्तस्य सुतः स्मृतः ।
उद्गीथस्तस्य पुत्रोऽभूत्प्रस्तावश्चापि तत्सुतः ॥५६

अब मैं नाभि के सर्ग को बतलाऊँगा उसको हिमाह्व में आप लोग श्रवण करें। नाभि ने जो कि महान् द्युति से युक्त था, मेरुदेवी में पुत्र को उत्पन्न किया था। उसका नाम ऋषभ था जो समस्त क्षत्रियों का पूर्वज तथा राजाओं में परम श्रेष्ठ था ॥५०॥ फिर ऋषभ से भरत उत्पन्न हुआ जो सौ पुत्रों में सबसे बड़ा था। वह भरत भी, अपने पुत्र को राज्यासन पर अभिषिक्त करके स्वयं सन्यास की अवस्था में स्थित हो गया था ॥ ५१ ॥ हिम नाम वाला दक्षिण जो वर्ष था वह भरत के लिये दिया था। इसी से उसके नाम से यह भारतवर्ष ऐसा प्रसिद्ध हुआ जिसे बुध लोग भली भाँति जानते हैं ॥५२॥ भरत का पुत्र सुमति नाम वाला परम धार्मिक और महान् विद्वान् था। वह राज्य सारा इसी को भरत ने दे दिया था। जब पुत्र ने राज्यश्री को सङ्क्रामित कर लिया तो फिर राजा ने सन्यास लेकर तपस्या के लिये वन गमन कर दिया ॥५३॥ तेज का पुत्र प्रजापति अमित्रजित था। तैजस का आत्मज विशेष विद्वान् इन्द्रद्युम्न इस नाम से संसार में प्रसिद्ध था ॥५४॥ और भौवन परमेष्ठी पुत्र उसके निधन होने पर प्रतीहार कुल में उसके नाम से उसके अन्वय से उत्पन्न हुआ था और वह प्रतिहर्त्ता-इस नाम से विख्यात हुआ। उस बुद्धिमान् प्रतिहर्त्ता के उन्नेता और उसके भुव सुत हुआ। उद्गीथ नाम वाला उसका पुत्र हुआ और उसका भी पुत्र प्रस्तावि हुआ था ॥५५॥५६॥

प्रस्तावेस्तु विभुः पुत्रः पृथुस्तस्य सुतो मतः ।
पृथोश्चापि सुतो नक्तो नक्तस्यापि गयः स्मृतः ॥५७
गयस्य तु नरः पुत्रो नरस्यापि सुतो विराट् ।
विराट्सुतो महावीर्यो धीमांस्तस्य सुतोऽभवत् ॥५८
धीमतश्च महान् पुत्रो महतश्चापि भौवनः ।
भौवनस्य सुतस्त्वष्टा अरिजस्तस्य चात्मजः ॥५९

जो नील इस नाम वाला वर्ष था वह पिता ने रम्य नाम वाले पुत्र को दिया। जो श्वेत था उसे पिता के द्वारा हिरण्मान् को दिया गया था ॥४३॥ जो शृङ्गवान् के उत्तर में वर्ष था उसे कुरु नामक पुत्र को दिया। माल्यवान् का जो वर्ष था वह भद्राश्व को दिया गया ॥४४॥ गन्धमादन नाम वाला वर्ष केतुमाल को दे दिया था। ये सब महान् भाग वाले वर्ष हैं ॥४५॥ इन सबमें क्रम से उन पुत्रों को अभिषिक्त कर दिया था और सबको क्रम के अनुसार ही दिया था फिर वह धर्मात्मा स्वयं तपश्चर्या में स्थित हो गया था ॥४६॥ इन सातों ने समस्त सात द्वीप निवेशित किये थे। ये सब प्रियव्रत के पुत्र थे तथा स्वायम्भुव मनु के पौत्र थे ॥४७॥ जो किम्पुरुष आदि शुभ आठ वर्ष थे उनकी स्वभाव से ही बिना किसी प्रयत्न के शुभ प्राप्त सिद्धि थी ॥४८॥ वहाँ उनमें किसी भी प्रकार का विपर्यय नहीं था और वहाँ पर जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु से उत्पन्न होने वाला कुछ भी भय नहीं होता था। उनमें कोई भी धर्म तथा अधर्म की बात भी नहीं थी और उनमें कोई भी उत्तम मध्यम तथा अधम होने वाली बात भी नहीं थी। उनमें कोई भी युग की व्यवस्था नहीं थी और सभी को किसी भी क्षेत्र में ऐसा नहीं होता था ॥४९॥

नाभेर्हि सर्गं वक्ष्यामि हिमाह्वे तन्निबोधत।
नाभिस्त्वजनयत् पुत्रं मेरुदेव्यां महाद्युतिः।
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ॥५०
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः।
सोऽभिषिच्याथ भरतं पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः ॥५१
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्।
तस्मात्तद्भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ॥५२
भरतस्यात्मजो विद्वान् सुमतिर्नाम धार्मिकः।
बभूव तस्मिंस्तद्राज्यं भरतः संन्ययोजयत्।
पुत्रसंक्रामितश्रीको वनं राजा विवेश सः ॥५३
तेजसस्तु सुतश्चापि प्रजापतिरमित्रजित्।
तैजसस्यात्मजो विद्वानिन्द्रद्युम्न इति श्रुतः ॥५४
परमेष्ठी सुतस्तस्य निधने तस्य शोभन

प्रतीहारकुले तस्य नाम्ना जज्ञे तदन्वयात् ।
प्रतिहर्तेति विख्यातो जज्ञे तस्यापि धीमत ॥५५
उन्नेता प्रतिहर्तुस्तु भुवस्तस्य सुत स्मृत ।
उद्गीथस्तस्य पुत्रोऽभूत्प्रस्ताविश्चापि तत्सुत ॥५६

अब मैं नाभि के सर्ग को बतलाऊँगा उसको हिमाह्व में आप लोग श्रवण करें। नाभि ने जो कि महान् द्युति से युक्त था, मेरुदेवी में पुत्र को उत्पन्न किया था। उसका नाम ऋषभ था जो समस्त क्षत्रियों का पूर्वज तथा राजाओं में परम श्रेष्ठ था ॥५०॥ फिर ऋषभ से भरत उत्पन्न हुआ जो सौ पुत्रों में सबसे बड़ा था। वह भरत भी, अपने पुत्र को गन्धमादन पर अभिषिक्त करके स्वयं सन्यास की अवस्था में स्थित हो गया था ॥ ५१ ॥ हिम नाम वाला दक्षिण जो वर्ष था वह भरत के लिये दिया था। इसी से उनके नाम से यह भारतवर्ष ऐसा प्रसिद्ध हुआ जिसे बुध लोग भली भाँति जानते हैं ॥५२॥ भरत का पुत्र सुमति नाम वाला परम धार्मिक और महान् विद्वान् था। यह राज्य सारा उसी को भरत ने दे दिया था। जब पुत्र ने राज्यश्री को संक्रामित कर लिया तो फिर राजा ने सन्यास लेकर तपस्या के लिये वन गमन कर दिया ॥५३॥ तेज का पुत्र प्रजापति अमितजित था। तैजस का आत्मज विशेष विद्वान् इन्द्रद्युम्न इस नाम से संसार में प्रसिद्ध था ॥५४॥ और धीमान परमेष्ठी पुत्र उसके निधन होने पर प्रतीहार कुल में उसके नाम से उसके अन्वय से उत्पन्न हुआ था और वह प्रतिहर्त्ता—इस नाम से विख्यात हुआ। उस बुद्धिमान् प्रतिहर्त्ता के उन्नेता और उसके भुव सुत हुआ। उद्गीथ नाम वाला उसका पुत्र हुआ और उसका भी पुत्र प्रस्तावि हुआ था ॥५५॥५६॥

प्रस्तावेस्तु विभु पुत्र पृथुस्तस्य सुतो मत ।
पृथोश्चापि सुतो नक्तो नक्तस्यापि गय स्मृत ॥५७
गयस्य तु नर पुत्रो नरस्यापि सुतो विराट् ।
विराट्सुतो महावीर्यो धीमांस्तस्य सुतोऽभवत् ॥५८
धीमतश्च महान् पुत्रो महतश्चापि भौवन ।
भौवनस्य सुतस्त्वष्टा अरिजस्तस्य चात्मज ॥५९

अग्निध्रस्य रज पुत्र शतजिद्रजसो मत ।
तस्य पुत्रशत त्वासीद्राजान सब एव ते ॥६०
विश्वज्योति प्रधाना यस्तैरिमा वर्द्धिता प्रजा ।
तैरिद भारत वर्षं सप्तखण्ड कृत पुरा ॥६१
तेषा वशप्रसूतैस्तु भुक्त य भारती धरा ।
कृतत्रेतादियुक्तानि युगाख्यान्येकसप्तति ॥६२
येऽतीतास्त्वय ग माद्ध राजानस्ते तद न्वया ।
स्वायम्भुवऽन्तरे पूर्व शतशोऽथ सहस्रश ॥६३
एष स्वायम्भव सर्गो येनेद पूरित जगत ।
ऋषिभिर्देवतश्चापि पितृग धर्वराक्षसै ॥६४
यक्षभूतपिशाचैश्च मनुष्यमृगपक्षिभि ।
तेषा सृष्टिरिय लोके युग सह विपत्तते ॥६५

प्रस्तावि का पुत्र विभु और इसका पुत्र पृथु हुआ। पृथु का पुत्र नक्त हुआ और नक्त का आत्मज गय नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥५७॥ गय का पुत्र नर हुआ और नर का आत्मज विराट नाम वाला उत्पन्न हुआ था। विराट का पुत्र महावीर्य हुआ तथा उसका पुत्र धीमान् उत्पन्न हुआ ॥५८॥ धीमान् का सुत महान् और महान् का पुत्र भौवन नामक उत्पन्न हुआ था। भौवन का पुत्र त्वष्टा और इसका पुत्र अरिज नाम वाला उत्पन्न हुआ ॥५९॥ अरिज का पुत्र रज हुआ और शतजित रज का पुत्र हुआ। उसके सौ पुत्र उत्पन्न हुए ये सभी राजा हुए थे ॥६ ॥ ये सब विश्व ज्योति के प्रधान वाले थे और उनके द्वारा ये सन्तति पर्याप्त रूप से वर्द्धित हुई थी उन्होंने ही इस भारतवर्ष को सात खण्डों वाला पहिले किया था ॥६१॥ उनके वश में प्रसूत होने वालों के द्वारा इस भारत की भूमिका पूर्ण रूप से भोग किया गया। कृत त्रेतादि से युक्त इकहत्तर युग नाम वाले इसने इस भारती भूमि को युक्त किया था ॥६२॥ इन युगों के साथ जो राजा व्यतीत हो गये थे वे इस अन्वय (वश) वाले थे जो स्वायम्भुव मन्वन्तर में पहिले सैकड़ों और सहस्रों की सख्या में हुए थे ॥६३॥ यह स्वायम्भुव सर्ग है जिससे यह समस्त जगतीतल पूरित हो रहा है जिसमें ऋषि देवता पितृगण गन्धर्व और राक्षस सभी हैं। इनके अतिरिक्त यक्ष भूत पिशाच

मनुष्य, मृग और पक्षी आदि सब हैं। इनकी यह सृष्टि लोक में युगों के साथ विभक्त होती है ॥६५॥

॥ भुवन विन्यास ॥

यदिदं भारतं वर्षं यस्मिन् स्वायम्भुवादयः ।
चतुर्दशैते मनवः प्रजासर्गे भवन्त्युत ॥१
एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ।
एतत् श्रुत्वा वचस्तेषामब्रवील्लोमहर्षण ॥२
पौराणिकस्तदा सूत ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
एतद्विस्तरतो भूयस्तानुवाच समाहित ॥३
पुण्यतीर्थे हिमवतो दक्षिणस्याचलस्य हि ।
पूर्वपश्चायतस्यास्य दक्षिणेन द्विजोत्तमाः ॥४
तथा जनपदानां च विस्तरं श्रोतुमर्हथ ।
अथ वो वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः ॥५
इदं तु मध्यमं चित्रं शुभाशुभफलोदयम् ।
उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत् ॥६
वर्षं यद्भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा ।
भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते ।
निरुक्तवचनाच्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम् ॥७

ऋषियों ने कहा—जो यह भारतवर्ष है जिसमें स्वायम्भुवादि चौदह मनु प्रजा के सर्ग में होते हैं ॥१॥ हे सत्तम ! हम इसे जानना चाहते हैं सो आप यह हमें बतलाइये । ऋषिगण के इस वचन को सुनकर लोमहर्षण महर्षि उनसे कहने लगे ॥२॥ उस समय में महात्मा ऋषियों से पौराणिक सूतजी फिर पूर्ण तथा समाहित होकर यह सब विषय विस्तारपूर्वक उनसे बोले ॥३॥ श्रीसूत जी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! पूर्वपश्चायत् इस दक्षिण हिमवान् पर्वत के पुण्य तीर्थ में दक्षिण की ओर से जो जनपद हैं उनका पूरा विस्तृत वर्णन आप सब सुनने के योग्य होते हैं । यहाँ पर भारतवर्ष में जो प्रजा है वह

आपके सामने मैं वर्णन करूँगा ॥५।६॥ शुभ और अशुभ कर्मों का उदय इसका यहाँ ही मध्यम विध होता है जोकि समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में है ॥६॥ यहाँ जो वर्ष है इसका नाम भारत है और यहाँ जो प्रजा निवास किया करती है वह भारती प्रजा कही जाती है। प्रजाओं के भरण करने के कारण से मनु भी भरत ऐसा कहा गया है। निरुक्त वचनों के वचन से भी यह वर्ष कहा गया है ॥७॥

अतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते ॥८
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान् निबोधत।
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ॥९
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान्।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥१०
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम् ॥११
आयतो ह्याकुमारिक्यादागङ्गाप्रभवाच्च वै।
तिर्यगुत्तरविस्तीर्णः सहस्राणि दशैव तु ॥१२
द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु सर्वशः।
पूर्वे किराता ह्यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः ॥१३
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः।
इज्यायुद्धवणिज्याभिर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥१४॥

इससे यहाँ स्वर्ग मोक्ष और मध्य अन्त गम्यमान होता है अर्थात् प्राप्त किया जाता है। अन्य भूमि में मनुष्यों का निश्चय ही कर्म का विधान नहीं होता है ॥८॥ इस भारतवर्ष के नौ भेद कहे गये हैं जोकि समुद्र से अन्तरित हैं ऐसा समझना चाहिए और ये परस्पर में अगम्य होते हैं ॥९॥ इन्द्रद्वीप कसेरु ताम्रपर्ण गभस्तिमान् नागद्वीप सौम्य गन्धर्व वारुण और यह जो इनमें सागर से संवृत नवम द्वीप है यह द्वीप दक्षिणोत्तर में एक सहस्र योजन वाला होता है ॥१०॥ ॥११॥ यह कुमारी से गङ्गा प्रभव तक लेकर आयत है और तिर्य

उत्तर में नौ सहस्र विस्तीर्ण होता है ॥१२॥ यह द्वीप नित्य ही अन्तों में म्लेच्छों से उपविष्ट है। पूर्व में इसके अन्त में किरात लोग हैं और पश्चिम में यवन कहे गये हैं ॥१३॥ मध्य में इसके भाग से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं, जोकि इज्या, युद्ध, वाणिज्य आदि के द्वारा अपना वर्त्तन करते हुए व्यवस्थित रहते हैं ॥१४॥

तेषां संव्यवहारोऽयं वर्तते तु परस्परम् ।
धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु ॥१५
सङ्कल्पपञ्चमानां तु आश्रमाणां यथाविधि ।
इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिर्येषु मानुषी । १६
यस्त्वयं नवमो द्वीपस्तिर्यगायत उच्यते ।
कृत्स्नं जयति यो ह्येनं स सम्राडिह कीर्त्यते ॥१७
अयं लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षो विराट् स्मृतः ।
स्वराडन्यः स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरम् ॥१८
सप्त चास्मिन् सुपर्वाणो विश्रुता कुलपर्वताः ।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥१९
तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपगाः ।
अभिज्ञाताः सर्वगुणा विपुलाश्चित्रसानवः ॥२०
मन्दरः पर्वतश्रेष्ठो वैहारो दर्दुरस्तथा ।
कोलाहलः ससुरसः मैनाको वैद्युतस्तथा ॥२१

उनका परस्पर में ऐसा सुन्दर व्यवहार रहता है कि वर्णों का अपने अपने कर्मों में धर्म, अर्थ और काम से युक्त व्यवहार रहता है ।१५॥ सङ्कल्प पञ्चम आश्रमों की विधि के अनुसार यहाँ पर मित्र में स्वर्ग तथा अपवर्ग के लिये मानवी प्रवृत्ति रहा करती है ॥१६। जो यह नवमद्वीप है वह तिर्यक् (टेढ़ा) आयत है ऐसा कहा जाता है । इस पूरे को जो जीत कर शासन किया करता है वही यहाँ पर सम्राट कहा जाता है ।।१ ॥ यह लोक तो सम्राट् और अन्तरिक्ष विराट कहा गया है और जो अन्य लोक है वह स्वराट्

कहे गये हैं। उनका विस्तार फिर कहा जायगा ॥१८॥ इनमें सात कुल कुल पर्वत प्रसिद्ध हैं जिनके नाम महेन्द्र मलय सह्य शुक्तिमान ऋक्ष पर्वत विन्ध्य और पारियात्र हैं। ये ही सात कुल पर्वत कहे गये हैं ॥१९॥ इन सात कुल पर्वतों के समीप में रहने वाले सहस्रों अन्य पर्वत हैं जोकि अविज्ञात [सुन्दर-नूतन] समस्त गुणों से युक्त विपुल और चित्र शिखरों वाले हैं ॥२०॥ मन्दर पर्वतों में बहुत ही श्रेष्ठ पर्वत है। वहार दर्दुर कोलाहल सुरस मैनाक वैद्युत पर्वत हैं ॥२१॥

नातन्धमो नाम गिरिस्तथा पाण्डुर पर्वतः ।
गन्तुप्रस्थः कृष्णगिरिर्गोधनो गिरिरेव च ॥२२
पुष्पगिर्युज्जयन्तौ च शैलो रैवतकस्तथा ।
श्रीपर्वतश्च कारुश्च कूटशैलो गिरिस्तथा ॥२३
अन्ये तेभ्य परिज्ञाता ह्रस्वा स्वल्पोपजीविन ।
तैर्विमिश्रा जनपदा आर्यम्लेच्छाश्च नित्यश ॥२४
पीयन्ते यैरिमा नद्यो गङ्गा सिन्धु सरस्वती ।
शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयूस्तथा ॥२५
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहू ।
गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती ॥२६
कौशिकी च तृतीया तु निश्चीरा गण्डकी तथा ।
इक्षुर्लोहित इत्येता हिमवत्पाद निःसृता ॥२७॥
वेदस्मृतिर्वेत्रवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च ।
वर्णाशा चन्दना चैव सतीरा महती तथा ॥२८
परा चर्मण्वती चैव विदिशा वेत्रवत्यपि ।
शिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः ॥२९

इसके अतिरिक्त अन्य धन नाम वाला गिरि है तथा पाण्डुर पर्वत है गन्तुप्रस्थ कृष्णगिरि गोधनगिरि पुष्पगिरि उज्जयन्त रैवतक श्रीपर्वत कारु कूटशैल गिरि हैं ॥२२॥ इन से अन्य जो पर्वत हैं वे छोटे और स्वल्प उपयोगी परिज्ञात हुए हैं। अनेक जन से मिले हुए हैं जो नित्य ही आर्य और

म्लेच्छों से युक्त रहते हैं ।। २३-२४ ।। जिसके द्वारा ये नदियाँ पाई जाती हैं उन नदियों के नाम—गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, सरयू, इरावती, वितस्ता, विपाशा, देविका, कुहू, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी, तृतीया, निश्चीरा, गण्डकी, इक्षु और लोहित ये सब नदियाँ हिमवान् के पाद से निकली हुई हैं ।। २५-२६-७ ।। वेदस्मृति, वेत्रवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, पर्णाशा, चन्दना, सदानीरा, मही, परा, चर्मण्वती, विदिशा, वेत्रवती, क्षिप्रा, अवन्ती—ये पारियात्राश्रया कही गई हैं ।।२८-२९।।

शोणो महानदश्चैव नर्मदा सुमहाद्रुमा ।
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च ।।३०
तमसा पिप्पला श्रोणी करतोया पिशाचिका ।
नीलोत्पला विपाशा च जम्बुला बालुवाहिनी ।।३१
सितेरजा शुक्तिमती मकुणा त्रिदिवा क्रमात् ।
ऋक्षपादात् प्रसूतास्ता नद्यो मणिनिभोदकाः ।।३२
तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या मद्रा च निषधा नदी ।
वेन्वा वैतरणी चैव शितिबाहु कुमुद्वती ।।३३
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तशिला तथा ।
विन्ध्यपादप्रसूताश्च नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ।।३४
गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेण्यथ वञ्जुला ।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा कावेरी च तथापगा ।
दक्षिणापथनद्यस्तु सह्यपादाद्विनिःसृताः ।।३५

और शोण महान् नद है तथा नर्मदा, सुमहाद्रुमा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, श्रोणी, करतोया, पिशाचिका, नीलोत्पली, विपाशा, जम्बुला, बालुवाहिनी, सितेरजा, शुक्तिमती, मकुणा, त्रिदिवा, ये सब नदियाँ ऋक्षपाद नामक पर्वत के पाद से प्रसूत होने वाली और मणि के समान स्वच्छ जल वाली नदियाँ हैं ।। ३०-३१-३२ ।। तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, मद्रा, निषधा नदी, वेन्वा, वैतरणी, शितिबाहु कुमुद्वती, तोया महागौरी, दुर्गा अन्तशिला ये समस्त नदियाँ विन्ध्याचल के पाद से प्रसूत होने वाली और शुभ तथा परम

पवित्र जल वाली हैं ॥ ३३-३४ ॥ गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेणी वन्जुला तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा कावेरी ये समस्त नदियाँ दक्षिण पथ की ओर वाली तथा सह्याद्रि पर्वत के पाद से निकली हुई हैं ॥ ३५ ॥

कृतमाला ताम्रवर्णा पुष्पजात्युत्पलावती ।
मलयाभिजातास्ता नद्यः सर्वाः शीतजलाः शुभाः ॥३६
त्रिसामा ऋतुकुल्या च इक्षुला त्रिदिवा च या ।
लाङ्गुलिनी वंशधरा महेन्द्रतनयाः स्मृताः ॥३७
ऋषीका सुकुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी ।
कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ॥३८
सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्वा गङ्गाः समुद्रगाः ।
विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृताः ॥३९
तासां नद्युपनद्योऽपि शतशोऽथ सहस्रशः ।
तास्त्विमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजाङ्गलाः ॥४०
शूरसेना भद्रकारा बोधाः शतपथेश्वराः ।
वत्साः किसष्णाः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः ॥४१
अथ पार्श्वे तिलङ्गाश्च मगधाश्च वृकैः सह ।
मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्तिताः ॥४२

कृतमाला ताम्रवर्णा पुष्पजाती उत्पलावती ये समस्त नदियाँ मलयाचल से उत्पन्न होने वाली तथा शुभ एवं शीतल जल वाली हैं ॥ ३६ ॥ त्रिसामा ऋतुकुल्या इक्षुला त्रिदिवा लाङ्गुलिनी वंशधरा] महेन्द्र तनया अर्थात् ये सब महेन्द्राचल से उत्पन्न होने वाली नदियाँ कही गई हैं ॥ ३७ ॥ ऋषीका सुकुमारी मन्दगा मन्दवाहिनी कृपा पलाशिनी ये सब नदियाँ शुक्तिमान् पर्वत से प्रसूत होने वाली हैं ॥ ३८ ॥ ये सभी नदियाँ पुण्य अर्थात् परम पवित्र हैं सरस्वती हैं और सब गङ्गा एवं समुद्र में जाने वाली हैं। ये सब विश्व की मातायें और जगती तल के समस्त पापों का हरण करने वाली कही गई ॥ ३९ ॥ इन नदियों से निकलने वाली उपनदियाँ भी सैकड़ों तथा सहस्रों ही हैं। वे ये सब कुरुपाञ्चाल शाल्व और सजाङ्गला हैं ॥ ४० ॥ शूरसेना

भद्रकारा और शतपथेश्वरों के द्वारा बोधा वत्सा किष्यणा, कुल्या, कुन्तला, काशिकोसला हैं ॥ ४१ ॥ इसके अनन्तर पादप में ही तिलङ्ग, मगध जो कि वृकों के सहित हैं मध्यदेश में ये प्राय जनपद कहे गये हैं ॥ ४२ ॥

सह्यस्य चोत्तरार्द्धे तु यत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामिह कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरम ॥ ४३
तत्र गोवर्द्धनो नाम सुरराजेन निर्मित ।
रामप्रियार्थं स्वर्गोऽयं वृक्षा ओषधयस्तथा ॥४४
भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवतारिता ।
अन्त पुरवनोद्देशस्तेन जज्ञे मनोरम ॥४५
वाह्लीका वाटधानाश्च आभीरा कालतोयका ।
अपरीताश्च शूद्राश्च पह्लवाश्चर्मखण्डिका ॥४६
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रका ।
शका ह्रदा कुलिन्दाश्च परिता हारपूरिका ॥४७
रमटा रुद्धकटका केकया दशमालिका ।
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ॥४८
काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बरा प्रियलौकिका ।
पीनाश्चैव तुषाराश्च पह्लवा बाह्यतोदरा ॥४९
आत्रेयाश्च भरद्वाजा प्रस्थलाश्च कसेरुका ।
लम्पाका स्तनपाश्चैव पीडिका जुहुडै सह । ५०
अपगाश्चालिमद्राश्च किरातानाञ्च जातय ।
तोमरा हंसमार्गाश्च काश्मीरास्तङ्गणास्तथा ॥५१
चूलिकाश्चाहुकाश्चैव पूर्णदर्वास्तथैव च ।
एते देशा ह्युदीच्यास्तु प्राच्यान् देशान्निबोधत ॥५२

सह्य पर्वत के उत्तरार्द्ध में जहाँ कि गोदावरी नदी है पृथ्वी में और समस्त इस भूमण्डल में यह प्रदेश बहुत ही सुन्दर है ॥ ४३ ॥ वहाँ पर गोवर्द्धन पर्वत है जो कि सुरराज के द्वारा विनिर्मित किया गया है। यह राम की प्रिया के लिये स्वर्ग है तथा यहाँ पर वृक्षादि एवं ओषधियाँ सब भरद्वाज मुनि

ने ही उसके विध करने के लिये अवतरित किये हैं। अन्तःपुर जन का इस्थ उसने परम सुन्दर सम्पन्न किया है ॥ ४४ ४५ ॥ वाह्लीक वाटधान आभीर कालतोयक अपरीत पल्लव और चर्म खण्डिक शूद्र जाति वाले लोग होते हैं। गान्धार यवन सिन्धु सौवीर भद्रक शक द्रुह्य पुलिन्द पारद हारपूरिक रमट रद्ध कटिक कैकय दशमानिक ये क्षत्रियोपनिवेश तथा वैश्य एवं शूद्र कुल हैं ॥ ४६ ४७ ४८ ॥ काम्बोज दरद बर्बर प्रियलौकिक पीन तुषार पल्लव और बाह्यतोदर हैं। आत्रेय भरद्वाज प्रस्थल कसेरुक लम्पाक स्तनपा तथा शूद्रों के सहित पीडिक अपव और अलिमद ये सब किरातों की जातियाँ होती हैं। तोमर हंसमार्ग काश्मीर तङ्गण चूलिक आहुक तथा पूर्ण दर्व ये सब देश उत्तर के हैं अर्थात् उत्तर दिशा में होने वाले प्रसिद्ध होते हैं। अब प्राच्य अर्थात् पूर्व दिशा में होने वालों को श्रवण करो ॥ ४९ ५० ५१ ५२ ॥

अङ्गा वङ्गा मद्गुरका अन्तर्गिरिबहिर्गिराः ।
तथा प्रवङ्गा वाङ्गेया मालदा मालवर्तिनः ॥५३
ब्रह्मोत्तराः प्रविजया भार्गवा गेयमर्थकाः ।
प्राग्ज्योतिषाश्च मुण्डाश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।
माला मगधगोविन्दाः प्राच्या जनपदाः स्मृताः ॥५४
अथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः ।
पाण्ड्याश्च केरलाश्चैव चोल्याः कुल्यास्तथैव च ॥५५
सेतुका मूषिकाश्चैव कुमना वनवासिकाः ।
महाराष्ट्रा माहिषकाः कलिङ्गाश्चैव सर्वशः ॥५६
आभीराः सह चैषीका आटव्याश्च वराश्च ये ।
पुलिन्दा विन्ध्यमूलीका वैदर्भा दण्डकैः सह ॥५७
पौलिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोगवर्धनाः ।
नैषिकाः कुन्तला अन्ध्रा उद्भिदा नलकालिकाः ॥५८
दाक्षिणात्याश्च वै देशा अपरांस्तान्निबोधत ।
शूर्पारकाः कोलवना दुर्गाः कालीतकैः सह ॥५९
पुलेयाश्च सुरालाश्च रूपसास्तापसैः सह ।
तथा तुरसिताश्चैव सर्वे चैव परक्षराः ॥६०

अन्प्रवाहक सुजरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, प्रवङ्ग वङ्ग, मालदा, मालवर्ती, ब्रह्मोत्तर, प्रविजय, भार्गव, गेयमथक, प्राग्ज्योतिष, मुण्ड, विदेह, ताम्रलिप्तक, माला, मगध और गोविन्द ये सब जन पद प्राची दिशा में कहे गये हैं ॥ ५३ ५४ ॥ इसके अनन्तर दक्षिणापथ वासी जनपद हैं जिनके नाम पाण्ड्य, केरल, चोल्य कुल्य, सेतुक मूषिक, कुमन, वनवासिक हैं। महाराष्ट्र, माहिषक, कलिङ्ग, अभीर, वैषीक, आटव्य, वरा, पुलिन्द, विन्ध्य मूलीक और दण्डकों के सहित वैदर्भ, पौनिक, मौलिक, अश्मक, भोगवर्द्धन, नैणिक, कुन्तल, आन्ध्र, उद्भिद और नलकालिक ये सब दक्षिणात्य प्रदेश होते हैं। इनके अतिरिक्त जो दूसरे हैं अब उनका श्रवण करो। सूर्पाकार, कोलवन, कालीतक, पुलेय, सुराल, रूपस, तापस, तुरसित ये सब परजन हैं ॥ ५५-५६।५७-५८-५९-६० ॥

नासिक्याद्याश्च ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदा ।
भानुकच्छा समा हेया सहसा शाश्वतैरपि ॥६१
कच्छीयाश्च सुराष्ट्राश्च अनर्ताश्चार्बुदैः सह ।
इत्येते सम्परीताश्च शृणुध्वं विन्ध्यवासिनः ॥६२
मालवाश्च करूषाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ।
उत्तमर्णा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह ॥६३
तोशला कोशलाश्चैव त्रैपुरा वैदिकास्तथा ।
तुमुरास्तुम्बुराश्चैव पट्सुरा निषधैः सह ॥६४
अनुपास्तुण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा ह्यवन्तयः ।
एते जनपदाः सर्वे विन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ॥६५
अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये ।
निगर्हरा हसमार्गाः क्षुपणास्तङ्गणाः खसाः ॥६६
कुशप्रावरणाश्चैव हूणा दर्वाः सहूदकाः ।
त्रिगर्ता मालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह ॥६७
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः ।
कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुष्टयम् ।
तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टान्निबोधत ॥६८

कालिक से आदि लेकर जो नर्मदा के अन्तर में हैं वे शाश्वतों के द्वारा कहा आनुरूप्य के समान हुए हैं। कच्छीय लवाद्र, आनर्त अर्बुद ये सब सम्पदीन होते हैं। अब विन्ध्य वासियों को श्रवण करो। मालव करूष मेकल उत्कल उत्तमर्ण दशार्ण भोज किष्किन्धक तोसल कोसल त्रैपुर तथा वैदिक तमुर तुम्बुर, षट्पुर निषध अनूप तुण्डिकेर वीतिहोत्र अवन्ती ये समस्त जनपद विन्ध्य के पृष्ठ पर निवास करने वाले हैं ॥ ११ १२ १३ १४ १५ ॥ इनके आगे जो पर्वताश्रयी देश हैं उन्हें बतलाया जाता है निगहर हंसमार्ग कुपथ अपथ कुथ कुशप्रावरण हूण दर्व हूहुक त्रिगर्त मालव किरात तामस ये पर्वतों पर आश्रय वाले प्रदेश हैं। कवि लोग भारतवर्ष में चार युग कहते हैं उनके नाम कृतयुग त्रेता द्वापर और कलियुग ये चार होते हैं। उनका निसर्ग बतलायेंगे। ऊपर से जानलो ॥ १६ १७ १८ ॥

॥ प्रकरण ३३–ज्योतिष प्रचार (1) ॥

अथ प्रमाणं मूर्ध्वं च वर्ष्यमाणं निबोधत।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्।
जगत्प्रधानको ह्येते व्यापकास्तु प्रकीर्तिताः ॥१
जननी सर्वभूतानां सर्वभूतधरा धरा।
नानाजनपदाकीर्णा नानाधिष्ठानपत्तना ॥२
नानानदनदीशैला नैकजातिसमाकुला।
अनन्ता गीयते देवी पृथिवी बहुविस्तरा ॥३
नदीनदसमुद्रस्थास्तथा क्षुद्राश्रया स्थिता।
पर्वताकाशसंस्थाश्च अन्तर्भूमिगताश्चया ॥४
आपोऽनन्ताश्च विज्ञेयास्तथाग्निः सर्वलौकिकः।
अनन्तः पठ्यते चैव व्यापकः स्वयम्भवः ॥५
तथाकाशमनालम्बं रम्यं नानाश्रयं स्मृतम्।
अनन्तं प्रमितं सर्वं वायुश्चाकाशसम्भवः ॥६
आपः पृथिव्यामुदके पृथिवी चोपरि स्थिता।
आकाशञ्चापरमथ पुनर्भूमिः पुनर्जलम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब आप लोग अध प्रमाण और ऊर्द्ध जो कि मेरे द्वारा वर्णमान होगा उसका श्रवण करें। पृथिवी, वायु, आकाश, जल और पाँचवी ज्योति ये अनन्त धातुऐं हैं जो व्यापक कही गई हैं ॥ १ ॥ समस्त प्राणियों के जनन करने वाली जननी तथा सम्पूर्ण भूतों को धारण करने वाली धरा होती है जो कि अनेक प्रकार के जनपदों से आकीर्ण है तथा विविध प्रकार के अधिष्ठान एवं नगरों वाली है ॥ २ ॥ इस धरा में नाना भाँति के नद, नदी तथा पर्वत हैं और अनेक प्रकार की जातियों से यह समाकुल हो रही है। यह पृथिवी देवी अनन्त एवं बहुत विस्तार वाली गाई जाती है ॥ ३ ॥ नदी, नद और समुद्र में रहने वाले तथा छोटे छोटे आश्रमों में स्थित, पर्वत एवं आकाश में रहने वाले तथा इस भूमण्डल के अन्दर में रहने वाले जल भी अनन्त हैं इन्हें भी बिना अन्त वाले जानना चाहिए। इसी भाँति समस्त लोक में रहने वाला यह अग्नि भी व्यापक एवं सर्व सम्भव तथा अनन्त पढ़ा जाता है ॥ ४ ५ ॥ इसी प्रकार से यह आकाश बिना अवलम्ब वाला, सुन्दर एवं अनेकों का आश्रय कहा गया है। यह सब अनन्त अधित है। और वायु आकाश से उत्पन्न होने वाला है ॥ ६ ॥ जल पृथिवी में है और जल के ऊपर यह पृथ्वी स्थित है। आकाश ऊपर है फिर नीचे जल है और फिर भूमि है ॥ ७ ॥

एवमन्तमनन्तस्य भौतिजस्य न विद्यते ।
पुरा सुरैरभिहित निश्चितन्तु निबोधत ॥८
भूमिजलमथाकाशमिति ज्ञेया परम्परा ।
स्थितिरेषा तु विज्ञेया सप्तमेऽस्मिन् रसातले ॥६
दशयोजनसाहस्रमेकभौम रसातलम् ।
साधुभि परिविख्यातमेकैक बहुविस्तरम् ॥१०
प्रथममतलञ्चैव सुतलञ्तु तत परम् ।
तत परतर विद्याद्वितल बहुविस्तरम् ॥११
ततो गभस्तल नाम परतश्च महातलम् ।
श्रीतलञ्च तत प्राहु पाताल सप्तम स्मृतम् ॥१२
कृष्णभौमञ्च प्रथम भूमिभागञ्च कीर्त्तितम् ।

पाण्डुभौम द्वितीयन्तु तृतीय रक्तमृत्तिकम् ॥१३
पीतभौमञ्चतुर्थं तु पञ्चमं शर्करातलम् ।
षष्ठं शिलामयञ्चैव सौवर्णं सप्तमन्तलम् ॥१४

इस प्रकार से इस भौतिक की अनन्तता है और इसका अन्त कभी नहीं होता है। वहिर्देवी ने जो कहा है अब आप जो भी निश्चित है उसका श्रवण करो ॥ ८ ॥ भूमि जल तथा आकाश यह इनकी परम्परा होती है जो कि जानने के योग्य है। इस समय १४ तल में वह स्थिति जानने के योग्य होती है ॥ ९ ॥ दश सहस्र योजन वाला यह एक भौम रसातल है। साधु पुरुषों के द्वारा यह एक एक बहुत विस्तार से युक्त परिविस्तार है ॥ १ ॥ इनमें जो प्रथम है यह अतल नाम वाला है। इसके आगे सुतल होता है। इसके भी आगे बहुत विस्तार वाला वितल होता है ॥ ११ ॥ इस के आगे गभस्तल नाम वाला है और फिर आगे महातल है। इस के आगे श्रीतल कहा गया है और पाताल सातवाँ कहा गया है ॥ १२ ॥ प्रथम भाग कृष्ण भौम है जो कि भूमिका भाग कीर्तित किया गया है। पाण्डु भूमि वाला पाण्डु भौम दूसरा भाग है। तीसरा रक्त भूमि वाला अर्थात् जिसमें लाल मिट्टी है ऐसा भाग है। पीतभौम चौथा भाग होता है। पाँचवाँ भाग शर्करा तल वाला होता है और छठवाँ भाग शिलाओं से पूर्ण है तथा सातवाँ भाग सौवर्ण होता है अर्थात् हेममय है ॥ १ १४ ॥

प्रथमे तु तले ख्यातमसुरेन्द्रस्य मन्दिरम् ।
नमुचेरिन्द्रशत्रोर्हि महानादस्य चालयम् ॥१५
पुरञ्च शङ्कुकर्णस्य कबन्धस्य च मन्दिरम् ।
निष्कुलादस्य च पुरं प्रहृष्टजनसङ्कुलम् ॥१६
राक्षसस्य च भीमस्य शूलदन्तस्य चालयम् ।
लोहिताक्षकलिङ्गानां नगरं श्वापदस्य तु ॥१७
धनञ्जयस्य च पुरं नागेन्द्रस्य महात्मनः ।
कालियस्य च नागस्य नगरं कलशस्य च ॥१८
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।

तले ज्ञेयानि प्रथमे कृष्णभौमे न संशयः ।।१६
द्वितीयेऽपि तले विप्रा दैत्येन्द्रस्य सुरक्षसः ।
महाजम्भस्य च तथा नगरं प्रथमस्य तु ।।२०
हयग्रीवस्य कृष्णस्य निकुम्भस्य च मन्दिरम् ।
शङ्खाख्येयस्य च पुरं नगरं गोमुखस्य च ।।२१

इनमें जो प्रथम तल है उसमें असुरों के स्वामी का मन्दिर कथित है । इन्द्र के शत्रु महानाद वाले नमुचि का यह आलय है ।। १५ ।। शङ्कुकर्ण का नगर है और कबन्ध का मन्दिर है । और निष्कुल से इसका पुर परम प्रहृष्ट मनुष्यों से नकुल अर्थात् घिरा हुआ है ।। १६ ।। अत्यन्त भीम अर्थात् भयानक शूलदन्त राक्षस का आलय है । लोहिताक्ष कलिङ्गों का और श्वापद का नगर है ।। १७ ।। महेन्द्र महात्मा धनञ्जय का नगर है तथा कालिय नाग का और कम्बल का वहाँ पर नगर है ।। १८ ।। इस प्रकार से वहाँ पर नाग दानव और राक्षसों के सहस्रों नगर हैं । ये सब कृष्णभौम प्रथम तल में ही जानने के योग्य होते हैं और इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।। १६ ।। हे विप्रो ! द्वितीय तल में भी दैत्यों के स्वामी राक्षस प्रथम महाजम्भ का नगर है ।। २० ।। और फिर वहाँ हयग्रीव, कृष्ण, और निकुम्भ का मन्दिर है । शङ्ख नाम वाले और गोमुख का पुर एवं नगर है ।। २१ ।।

राक्षसस्य च नीलस्य मेघस्य क्रथनस्य च ।
पुरञ्च कुपादस्य महोष्णीषस्य चालयम् ।।२२
कम्बलस्य च नागस्य पुरमश्वतरस्य च ।
कद्रुपुत्रस्य च पुरं तक्षकस्य महात्मनः ।।२३
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
द्वितीयेऽस्मिन् तले विप्राः पाण्डुभौमे न संशयः ।।२४
तृतीये तु तले ख्यातं प्रह्लादस्य महात्मनः ।
अनुह्लादस्य च पुरं दैत्येन्द्रस्य महात्मनः ।।२५
तारकाख्यस्य च पुरं पुरं त्रिशिरसस्तथा ।
शिशुमारस्य च पुरं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ।।२६

व्यवनस्य च विज्ञेय राक्षसस्य च मन्दिरम् ।
राक्षसेन्द्रस्य च पुरं कुम्भिलस्य खरस्य च ॥२७
विराधस्य च क्रूरस्य पञ्मुल्कामुखस्य च ।
हेमकस्य च नागस्य तथा पाण्डुरकस्य च ॥२८

इनके अतिरिक्त वहाँ पर भीम मेत्र और कृष्ण राक्षस का पुर है तथा कुलपाद और महोष्णीष का आलय है ॥ २२ ॥ कम्बल नाग का और अश्वतर का पुर है । कद्रु के पुत्र महान् आत्मा वाले तक्षक का नगर है ॥ २३ ॥ इस प्रकार से वहाँ पर नाग दानव और राक्षसों के सहस्रों ही पुर हैं । हे विप्रो ! इस द्वितीय तल में ऐसे अनेक नगर हैं जो कि पाण्डु भौम इस नाम वाला है । इनमें भी किञ्चित् संशय नहीं है ॥ २४ ॥ तीसरे तल में महात्मा प्रह्लाद का पुर प्रसिद्ध है तथा महात्मा व मेद अनुह्लाद का नगर है ॥ २५ ॥ यहाँ पर इनके अतिरिक्त तारक नाम वाले का पुर त्रिशिरा का पुर और हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों से समाकुल शिशुमार का पुर है ॥ २६ ॥ वहाँ पर च्यवन राक्षस का मन्दिर है जो जान लेना चाहिए तथा राक्षसेन्द्र कुम्भिल और खर का पुर भी है ॥ २७॥ तथा क्रूर विराध का पुर और उल्कामुख का पुर है । एवं हेमक नाग तथा पाण्डुरक के भी यहाँ पर पुर हैं ॥ २८ ॥

मणिमन्त्रस्य च पुरं कपिलस्य च मन्दिरम् ।
नन्दस्य चोरगपतेर्विशालस्य च मन्दिरम् ॥२९
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
तृतीयेऽस्मिंस्तले विप्रा पीतभौमे न संशयः ॥३०
चतुर्थे दैत्यसिंहस्य कालनेमेर्महात्मनः ।
गजकर्णस्य च पुरं नगरं कुञ्जरस्य च ॥३१
राक्षसेन्द्रस्य च पुरं सुमालेर्बहुविस्तरम् ।
मुञ्जस्य लोकनाथस्य वृकवक्त्रस्य चालयम् ॥३२
बहुयोजनसाहस्रं बहुपक्षिसमाकुलम् ।
नगरं वैनतेयस्य चतुर्थेऽस्मिन् रसातले ॥३३
पञ्चमे शर्कराभौमे बहुयोजनविस्तृते ।

त्रिगोपनस्य नगरं दैत्यसिंहस्य धीमतः ॥३४
वैदूर्यस्याग्निजिह्वस्य हिरण्याक्षस्य चालयम् ।
पुरञ्च विद्युज्जिह्वस्य राक्षसस्य च धीमतः ॥३५

वहाँ तीसरे तल में मणिमन्त्र का पुर तथा कपिल का मन्दिर है। उरगों के स्वामी नन्द का एवं विशाख का मन्दिर है ॥ २६ ॥ हे विप्रो इस तृतीय तल में, जो कि पीतभौम है, नाग, दानव और राक्षसों के सहस्रों ही पुर एवं मन्दिर हैं इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ३० ॥ अब आगे चौथे तल में दैत्यों में सिंह महात्मा कालनेमि के, गजकर्ण के तथा कुञ्जर के पुर एवं मन्दिर हैं ॥ ३१ ॥ तथा राक्षसेन्द्र सुमालि का बहुत विस्तार वाला पुर है। मुञ्ज लोहनाथ राक्षस के आलय हैं ॥ ३२ ॥ इस चतुर्थ रसातल में बहुत से सहस्र योजन के विस्तार वाला और बहुत से पक्षियों समाकुल किया हुआ वैनतेय का सुरम्य नगर है ॥ ३३ ॥ पाँचवाँ जो शर्करा भौम तल है उसमें जो कि बहुत योजनों के विस्तार वाला है दैत्यों में सिंह के समान एवं बुद्धिमान् विरोचन का नगर है ॥ ३४ ॥ वैदूर्य, अग्नि जिह्व और हिरण्याक्ष का आलय (घर) है तथा धीमान् राक्षस विद्युज्जिह्व का पुर भी है ॥ ३५ ॥

महामेघस्य च पुरं राक्षसेन्द्रस्य शालिनः ।
कम्बलस्य च नागस्य स्वस्तिकस्य जयस्य च ॥३६
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
पञ्चमेऽपि तथा ज्ञेयं शर्करानिलये सदा ॥३७
षष्ठे तले दैत्यपतेः केसरेर्नगरोत्तमम् ।
सुपर्णेन सुलोम्नश्च नागस्य महिषस्य च ।
राक्षसेन्द्रस्य च पुरं सुरकोशस्य महात्मनः ॥३८
तत्रास्ते सुरसापुत्रः शतशीर्षो मुदा युतः ।
कश्यपस्य सुतः श्रीमान् वासुकिर्नाम नागराट् ॥३९
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
षष्ठे तलेऽस्मिन् विख्याते शिलाभौमे रसातले ॥४०
सप्तमे तु तले ज्ञेयं पाताले सर्वपश्चिमे ।

पुर बले प्रमुदित नरनारीसमाकुलम् ॥४१
असुराधिप पूगमुदात्तहर्षभूमि
मुचुकुन्दस्य दैत्यस्य तत्र च नगर महत् ॥४२

राक्षसेन्द्र एव माली महामेघ का पुर है। तथा इसी तल मे कमठ नाग स्वस्तिक तथा जय के भी पुर हैं ॥३६॥ इस प्रकार से पाँचवे शर्करा निचय मे नाग दानव तथा राक्षसो के सहस्रो ही पुर स्थित हैं जो जानलेने चाहिए ॥३७॥ अब छठा तल जो है इसमे दैत्यो के पति केसरी का उत्तम नगर है। एव सुपर्णा सलोमा और महिष के नगर हैं। राक्षसेन्द्र महात्मा उत्क्रोश का नगर है ॥३८॥ वहाँ पर छठे तल मे सुरसा का पुत्र और शतशीर्ष बड़ी ही प्रसन्नता से युक्त है और वहाँ कश्यप का पुत्र श्रीमान् नागराट वासुकि नाम वाला है ॥३९॥ इस छठे शिलामीय विख्यात रसातल मे नाग दानव और राक्षसो के हजारो ही पुर हैं ॥४०॥ अब सातवें तल मे जोकि सब से पीछे वाला है पाताल नाम वाले मे नर और नारियो से समाकुल बलि का बहुत ही प्रमुदित नगर है ॥४१॥ वहाँ पर अमर और भाशीविषों से पूर्ण और अदुष्ट देवो के शत्रुओ से युक्त मुचुकुन्द दैत्य का एक बहुत बड़ा नगर है ॥४२॥

अनेकदितिपुत्राणा समुदीर्णमहापुर ।
तथैव नागनगर श्च विपुलानि सहस्रश ॥४३
दैत्याना दानवानाच समुदीर्णमहापुर ।
उदीर्ण राक्षसावासैरनेकश्च समाकुलम् ॥४४
पातालान्ते च विप्रेन्द्र विस्तीर्णे बहुयोजने ।
आस्ते रक्तारविन्दाक्षो महात्मा ह्यजरामर ॥४५
धौतशङ्खोदरवपुर्नीलवासा महाभुज ।
विशालभोगो द्युतिमांश्चित्रमालाधरो बली ॥४६
रुक्मशृङ्गारवदात स दीप्तास्येन विराजता ।
असुर्मुखसहस्रेण शोभन वै स कुण्डली ॥४७
स जिह्वामालया देवो लोलज्वालानलाचिषा ।
ज्वालामालापरिक्षिप्त कैलास इव लक्ष्यते ॥४८

स तु नेत्रसहस्रेण द्विगुणेन विराजता ।
बालसूर्य्याभिताम्रेण शोभते स्निग्धमण्डलः ॥४६

वहाँ सप्तम तल में अनेक दिति के पुत्रों के समुदीर्ण महान् पुर में, तथा नागों के नगरों में जो कि बहुत ही ऋद्धिमान् हैं और संख्या में भी बहुत हैं, दैत्य और दानवों के समुत्तीर्ण महान् पुरों से तथा उदीर्ण राक्षसों के आवास स्थानों से जो कि बहुत से हैं यह सप्तम तल समाकुल है ॥४३॥४४॥ हे विप्रेन्द्रो सहस्र योजनों के विस्तार वाले इस पातालान्त में महात्मा अमरामर रक्तार विन्दाक्ष है ॥४५॥ वहाँ शेष भद्रोदरयु, नीरगामा, महाभुज, विशालभोग, द्युतिमान्, चित्रमालाम्बर, बली, शशभन्द्रु में अवदात (श्वेत) शीतभुज से विराजमान सहस्र मुख से प्रभुकुण्डली शोभा देता है ॥४६॥४७॥ वहाँ पर वह देव लोल (चञ्चल) ज्वाला के अनल की अर्चि वाली जिह्वाओं की माला से परिक्षिप्त कैलाश की भाँति दिखाई देते हैं ॥४८॥ वहाँ पर वह दुगुने सहस्र नेत्रों की शोभा से जो कि बाल सूर्य की अभिताम्रता के सदृश है स्निग्धमण्डल शोभायमान होते हैं ॥४९॥

तस्य कुन्देन्दुवर्णस्य अक्षमाला विराजते ।
तरुणादित्यमालेव श्वेतपर्वतमूर्द्धनि ॥५०
जटाकरालो द्युतिमान् लक्ष्यते शयनासने ।
विस्तीर्ण इव मेदिन्या सहस्रशिखरो गिरिः ॥५१
महाभोगैर्महाभागैर्महानागैर्महाबलैः ।
उपास्यते महातेजा महानागपतिः स्वयम् ॥५२
स राजा सर्वनागानां शेषो नाम महाद्युतिः ।
सा वैष्णवी ह्यहितनुर्मर्यादाया व्यवस्थिता ॥५३
सप्त चैते कथिता व्यवहार्या रसातलाः ।
देवासुरमहानागराक्षसाध्युषिताः सदा ॥५४
अतः परमनालोक्यमगम्यं सिद्धसाधुभिः ।
देवानामप्यविदितं व्यवहारविवर्जितम् ॥५५
पृथिव्यम्बुवह्निवायूनां नभसश्च द्विजोत्तमाः ।
महत्त्वमेवमृषिभिर्वर्ण्यते नात्र संशयः ॥५६

कु और इन्द के समान वर्ण वाले उसकी अक्षमाला विराजमान है। वह ऐसी शोभित होती है जैसे हिमालय के श्वेत पर्वत के शिखर पर नक्षत्र पुञ्जों की माला हो ।५।। जटाओं से धराधर धृति वाले वह अपने शयनासन पर ऐसे दिखाई देते हैं जैसे भूमि पर सहस्र शिखरों वाला कोई पर्वत फैला हुआ हो ।।५१।। वह महान् नागों का स्वामी महान् भोग वाले और महान् भोग वाले तथा महान् बल वाले महान् नागों के द्वारा महान् तेज से युक्त होकर उपासमान होते हैं ।।५२।। वह समस्त नागों के राजा हैं और महान् द्युति वाले शेष नाम वाले हैं। वह वह्नि की तनु अर्थात् शरीर स्वरूप अर्थात् विष्णु के रूप में रहने वाली है लोक मर्यादा में व्यवस्थित है ।।५३। ये सातों ही व्यवहार के योग्य स्थान कहे गये हैं। ये सब सर्वदा देव असुर महानाग और राक्षसों के निवास भूमि बने हुए हैं ।।५४।। इससे आगे स्थान देखने तथा गमन करने के अयोग्य है जिसमें कि बड़े सिद्ध और साधुगण नहीं जा सकते हैं। वह भाग बड़ा है इसे देवगण भी नहीं जानते हैं और व्यवहार से सर्वदा रहित ही है ।।५५।। हे द्विजोत्तमो ! ऋषियों के द्वारा पृथिवी अग्नि जल वायु और आकाश का महत्व इसी प्रकार से वर्णन किया जाता है इससे कुछ भी संशय नहीं है ।५६।।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम् ।
सूर्याचन्द्रमसावेतौ भ्रमन्तौ यावदेव तु ।
प्रकाशार्थं स्वभाभिस्तौ मण्डलाभ्यां समास्थितौ ।।५७
सप्तानां च समुद्राणां द्वीपानां तु स विस्तरः ।
विस्तरार्द्धं पृथिव्यास्तु भवेदन्यत्र बाह्यतः ।।५८
पर्यासपारिमाण्यं तु चन्द्रादित्यौ प्रकाशतः ।
पर्यासपारिमाण्येन भूमेस्तुल्यं दिवं स्मृतम् ।।५९
अवति त्रीनिमाल्लोकान् यस्मात् सूर्यः परिभ्रमन् ।
अवधातुः प्रकाशाख्यो ह्यवनात् स रविः स्मृतः ।।६०
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्ययोः ।
महित्वाद्वा महीशब्दो ह्यस्मिन् वर्षे निपात्यते ।।६१

अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भन्तु सुविस्तरम् ।
मण्डलं भास्करस्याथ योजनानां निबोधत ॥६२
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भास्करस्य तु ।
विस्तारात्त्रिगुणश्चास्य परिणाहोऽथ मण्डलम् ।
विष्कम्भो मण्डलस्यैव भास्कराद्द्विगुण शशी ॥६३

इससे आगे सूर्य और चन्द्रमा की गति के विषय मे बतलाऊँगा । ये दोनो सूर्य और चन्द्रमा जब तक भ्रमण किया करते है वे दोनो मण्डलो मे समा-स्थित होते हुए अपनी प्रभा से प्रकाशित होते है ॥५७॥ सात समुद्रो का और द्वीपो का यह विस्तार है पृथिवी का तो इस विस्तार का अर्धभाग है जोकि बाह्य से अन्य मे होता है ॥५८॥ चन्द्र और आदित्य पर्याय के पारिमाण्य को प्रकाशित किया करते है और पर्याय के पारिमाण्य से तुल्य ही दिव कहा गया है ॥५९॥ यह सूर्य परिभ्रमण करता हुआ तीनो लोको का जिस कारण रक्षा किया करता है वह अव धातु प्रकाश नाम वाला है और अवन करने से ही यह रवि कहा गया है ॥६०॥ इसके आगे अब चन्द्र और सूर्य का प्रमाण कहा जाता है । महत्व के कारण से मही यह शब्द इस वर्ष मे निपातित किया जाता है ॥६१॥ इस भारतवर्ष का सुविस्तार विष्कम्भ है अनन्तर भास्कर के मण्डल के योजन समझलो ॥ ॥६२॥ भास्कर का विस्तार नौ योजन सहस्र अर्थात् नौ योजन वाला है । इसके विस्तार से तिगुना इसके मण्डल का ही विष्कम्भ है । भास्कर से दुगुना चन्द्रमा है ॥६३॥

अथ पृथिव्या वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः सह ।
सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलञ्च यत् ॥६४
इत्येतदिह सङ्ख्यातं पुराणे परिमाणतः ।
तद्वक्ष्यामि प्रसङ्ख्याय साम्प्रतैरभिमानिभि. ॥६५
अभिमानिव्यतीता ये तुल्यास्ते साम्प्रतैरिह ।
देवा ये वै ह्यतीतास्ते रूपैर्नामभिरेव च ॥६६
तस्मात्तु साम्प्रतं देवं वक्ष्यामि वसुधातलम् ।
दिवस्तु सन्निवेशो वै साम्प्रतैरेव कृत्स्नशः ॥६७

शताद्ध कोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नतः स्मृता ।
तस्या चार्धप्रमाणेन मेरोर्वै चातुरन्तरम् ॥६८॥
पृथिव्या चार्ध विस्तारो योजनाग्रात्प्रकीर्तितः ।
मेरुमध्यात् प्रतिदिशं कोटिरेकादश स्मृता ॥६९
तथा शतसहस्राणि एकोननवतिः पुनः ।
पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्या चार्धविस्तरः ॥७०

इसलिये पृथिवी का प्रमाण योजनों के साथ बतलाता हूँ । सात द्वीपों और सात समुद्रों वालों का विस्तार और जो मण्डल है वह यहाँ पर परिमाण से पुराण ने संख्या की है । यह आजकल के होने वाले अभिमानियों के द्वारा प्रसंख्या के लिये बतलाता हूँ ॥६४॥६५॥ जो अभिमान करने वाले व्यतीत हो गये वे यहाँ आज के समय में होने वालों के तुल्य ही थे । जो देवता थे वे भी न भी और अपने रूपों से अब व्यतीत हो गये हैं ॥६६। इससे साम्प्रत अर्थात् इस समय में होने वाले देवों के वसुधा तल को बतलाता हूँ । साम्प्रतों के द्वारा ही पूर्वकल्प से शिव का सन्निवेश होता है ॥६७॥ यह पृथ्वी पूर्णतया पचास करोड़ विस्तार वाली कही गई । उसके अर्थ प्रमाण से मेरु का चातुरन्तर होता है ॥६८॥ पृथिवी का आधा विस्तार योजनाग्र से प्रकीर्तित होता है । मेरु के मध्य से प्रतिदिशा में ग्यारह करोड़ कहे गये हैं ॥६९॥ सौ हजार नवासी और पचास सहस्र पृथिवी का अर्ध विस्तार है ॥७०॥

पृथिव्या विस्तरं कृत्स्नं योजनैस्तन्निबोधत ।
तिस्रः कोट्यस्तु विस्तारः संख्यातः स चतुर्दिशम् ॥७१
तथा शतसहस्राणमेकोनाशीतिरुच्यते ।
सप्तद्वीपसमुद्रायाः पृथिव्यास्त्वेष विस्तरः ॥७२
विस्ताराद् त्रिगुणश्च व पृथिव्यन्तस्य मण्डलम् ।
गणितं योजनाग्रन्तु कोट्यस्त्वेकादश स्मृता ॥७३
तथा शतसहस्रं तु सप्तत्रिंशाधिकानि च ।
इत्येतद्वै प्रसंख्यातं पृथिव्यन्तस्य मण्डलम् ॥७४
तारकासन्निवेशस्य दिवि यावद्धि मण्डलम् ।

पर्याप्त संनिवेशस्य भूमेस्तावत्तु मण्डलम् ॥७५
पर्याप्तपारिमाण्येन भूमेस्तुल्यं दिवं स्मृतम् ।
सप्तानामपि लोकानामेतन्मानं प्रकीर्तितम् ॥७६
पर्याप्तपारिमाण्येन मण्डलानुगतेन च ।
उपर्युपरि लोकानां छत्रवत्परिमण्डलम् ॥७७

पृथिवी का विस्तार पूर्वक योजनों के द्वारा समझना चाहिए। चारों दिशाओं में अर्थात् सभी ओर तीन करोड़ विस्तार मण्डल किया गया है ॥७२॥ सात द्वीप और सात समुद्र वाली इस पृथिवी का विस्तार सौ हजार उन्चासी कहा जाता है।७३॥ इस विस्तार से तिगुना पृथिवी के अन्त का मण्डल होता है। योजनाग्र से गिना गया है और ग्यारह करोड़ कहे गये हैं॥७३। इसी प्रकार से सैंतीस अधिक सौ सहस्र महापृथिवी अन्त का मण्डल प्रसंख्यात किया गया है ॥७४॥ दिव में तारकाओं के संनिवेश का जितना मण्डल है संनिवेश का पर्याप्त और भूमि का मण्डल उतना ही है॥७५॥ इसलिये पर्याप्त के पारिमाण्य से भूमि का दिव में ही तुल्य होना है ऐसा कहा गया है। सातों लोकों का यह मान कहा गया है ॥७६॥ पर्याप्त के परिमाण्य से और मण्डल के अनुगत से लोकों के ऊपर ऊपर छत्र की तरह परिमण्डल होता है ॥७७॥

सन्निविष्टविहिता सर्वो येषु तिष्ठन्ति जन्तवः ।
एतदण्डकटाहस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् ॥७८
अण्डस्यान्तस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ।
भूर्लोकश्च भुवश्चैव तृतीयः स्वरिति स्मृतः ।
महर्लोको जनश्चैव तपः सत्यञ्च सप्तम ॥७९
एते सप्त कृता लोकाश्छत्राकारा व्यवस्थिताः ।
स्वकैरावरणैः सूक्ष्मैर्धार्यमाणाः पृथक् पृथक् ॥८०
दशभागाधिकाभिश्च ताभिः प्रकृतिभिर्बहिः ।
धार्यमाणा विशेषैश्च समुत्पन्नाः परस्परम् ॥८१
अस्याण्डस्य समन्ताच्च सन्निविष्टो घनोदधिः ।
पृथिवीमण्डलं कृत्स्नं घनतोयेन धार्यते ॥८२

घनोदधिपरेणाथ धार्यते घनतेजसा ।
बाह्यतो घनतेजस्तु तिर्यगूर्ध्वं समन्ततः ॥ ८३॥
घन तनुघनवातेन धार्यमाणं प्रतिष्ठितम् ।
घनवातात्तथाकाशमाकाशश्च महात्मना ॥८४

जिनमें जन्तु गण निवास करते हैं उनकी सन्निवति विहित हुई और इस अण्ड कटाह का प्रमाण भी कह दिया गया है ॥७८। इस अण्ड के भीतर ये लोक हैं सात द्वीप हैं और यह पृथ्वी है। तीनों लोकों में भूर्लोक भुव लोक और तीसरा स्वर्लोक है ऐसा कहा गया है। महर्लोक जनलोक तपलोक और सातवां सत्य लोक है ॥७९॥ ये सात लोक किये गये और छत्र के आकार वाले क्रम स्थित होते हैं। ये सभी स्व मे ९ आवरणों से आदि अपि सूक्ष्म हैं पृथक पृथक धार्यमाण हैं ॥८०॥ बाहिर दशभाग अधिक दश प्रकृतियों से और विशेष समुत्थों से परस्पर में धार्यमाण होते हैं ॥८१॥ इस अण्ड के चारों ओर घना समुद्र सन्निविष्ट होता है। इस समस्त भूमण्डल को घन जल ने धारण किया करता है ॥८२॥ इसके घनोदधि के परे घन तेज से धारण किया जाता है। बाहिर से घन तेज का तिर्यक और ऊर्ध्व मण्डल होता है ॥८३॥ चारों और घन वात का धारा यह धार्यमाण होता हुआ प्रतिष्ठित होता है घन वात से आकाश और महान् आत्मा वाले से आकाश प्रतिष्ठित होता है ॥८४॥

भूतादिना वृत्तः सर्वो भूतादिस्तु वृतः ।
वृतो महाननन्तेन प्रधानेनाव्ययात्मना ॥ ८५
पुराणि लोकपालानां प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ।
ज्योतिर्गणप्रचारस्य प्रमाणं परिपठ्यते ॥८६
मेरोः प्राच्यां दिशि तथा मानसस्य च मूर्द्धनि ।
वस्वोकसारा माहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता ॥८७
दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानसस्य च मूर्द्धनि ।
वैवस्वतो निवसति यम संयमने पुरे ॥८८
प्रतीच्यां तु पुनर्मेरोर्मानसस्य च मूर्द्धनि ।
सुखा नाम पुरी रम्या वरुणस्यापि धीमतः ॥८९

दिक्षुत्तरस्या मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्द्धनि ।
तुल्या माहेन्द्रपुर्यां तु सोमस्यापि विभावरी ॥९०
मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्दिशम् ।
स्थिता धर्मव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च ॥९१

यह सब भूतादि के द्वारा वृत है और यह सब भूत आदि महान् अर्थात् महत् से वृत होता है और वह महान् अव्ययात्मा एवं अनन्त प्रधान के द्वारा आवृत होता है ॥८५॥ अब लोकपालों के पुरों को क्रम के अनुसार बताया जाएगा और ज्योतिगण के प्रचार का प्रमाण भी बताया जायगा ॥८६॥ प्राची अर्थात् पूर्व दिशा में मानस के मूर्धापर मेरु है जिसके औकसार वासी हेम परिष्कृत माहेन्द्री है ॥८७॥ मानस के मस्तक पर ही मेरु के दक्षिण में यमपुर में वैवस्वत यम निवास किया करता है ॥८८॥ और मानस के मूर्धा-पर मेरु के पश्चिम दिशा में श्रीमान वरुण देव की परमरम्य सुखा नाम वाली नगरी है ॥८९॥ मानस के ही मूर्धापर उत्तर दिशा में मेरु के माहेन्द्र पुरी के तुल्य ही सोम की विभावरी पुरी है ॥९०॥ मानस के उत्तर पृष्ठ पर चारों दिशाओं में लोकपाल धर्म की व्यवस्था करने के लिये तथा लोकों के संरक्षण करने के वास्ते स्थित रहा करते हैं ॥९१।

लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतो दक्षिणायने ।
काष्ठागतस्य सूर्यस्य गतिर्या तां निबोधत ॥९२
दक्षिणे प्रक्रमे सूर्यः क्षिप्तेषुरिव सर्पति ।
ज्योतिषाञ्चक्रमादाय सततं परिगच्छति ॥९३
मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः ।
वैवस्वते संयमने उदयस्तत्र उच्यते ॥९४
सुखायामर्द्धरात्रञ्च मध्यगः स्याद्दिवंदा ।
सुखायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन् स तु दृश्यते ॥९५
विभायामर्द्धरात्रं स्यान्माहेन्द्र्यामस्तमेति च ।
तदा दक्षिणपूर्वेषामपराह्णो विधीयते ॥९६
दक्षिणापरदेश्यानां पूर्वाह्णः परिकीर्त्यते ।

येषामपरराअस्त्र ये जना उत्तरापथे ॥९७
येषां उत्तरपूर्वा ये पुष्करार्धं तान् प्रति ।
एवमेवोत्तरेष्वर्को भवनेषु विराजते ॥९८

लोकपालों के ऊपर के भाग में सब ओर से दक्षिण अयन में काष्ठागत सूर्य की जो गति होती है उसे आप लोग समझ लेवें । ९२॥ दक्षिण प्रक्रम में तथ फेंके हुए तीर की भाँति दौड़ लगाता है और निरन्तर ज्योतिर्गण के चक्र को लेकर चारों ओर व्याप्त करता है ॥९३॥ जिस समय भगवान् भुवन भास्कर अमरावती में मध्यगामी होते हैं तब वहाँ पर वैवस्वत संयमन में उदय कहा जाता है ॥९४॥ जब रविदेव मध्यगामी होते हैं तब सुखापुरी में अर्ध रात्रि होती है। सुखा में और इसके अनन्तर वारुणी में उत्तिष्ठ मान होते हुए वह दिखलाई दिया करते हैं ॥९५॥ विभा में आधीरात होती है और माहेन्द्री में वह अस्ताचलगामी होते हैं । तब दक्षिण पूर्व वालों का अपराह्ण किया जाता है ॥९६॥ दक्षिण प्रदेश वालों का पूर्वाह्ण परिकीर्त्तित होता है। उनके ऊपर में रात्रि होती है जो जन उत्तरापथ में निवास किया करते हैं ॥९७॥ जो देश उत्तर पूर्व होते हैं उनके प्रति पुरारात्रि होती है। इसी प्रकार से ही उत्तर भुवनों में सूर्यदेव विराजमान हुआ करते हैं ॥९८॥

सुखायामथ वारुण्यां मध्याह्ने चार्यमा यदा ।
विभावर्यां सोमपुर्यामुत्तिष्ठति विभावसुः ॥९९
रात्र्यर्धं चामरावत्यामस्तमेति यमस्य च ।
सोमपुर्यां विभायान्तु मध्याह्ने स्याद्दिवाकरः ॥१००
महेन्द्रस्यामरावत्यामुत्तिष्ठति यदा रविः ।
अर्धरात्रं संयमने वारुण्यामस्तमेति च ॥१०१
स शीघ्रमेव पर्य्येति भास्करोऽलातचक्रवत् ।
भ्रमन् वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि गगने रविः ॥१०२
एवं चतुर्षु द्वीपेषु दक्षिणान्तेन सर्पति ।
उदयास्तमनेनासावुत्तिष्ठति पुनः पुनः ॥१०३
पूर्वाह्णे चापराह्णे तु द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः ।

तपत्येकन्तु मध्याह्ने तैरेव तु सरश्मिभिः ॥१०४
उदितो वर्द्धमानाभिरामध्याह्न तपन् रविः ।
अतः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति ॥१०५

पुष्करा में तथा वारुणी में मध्याह्न में जब अयमान होते हैं तब विभावरी के और सोमपुरी में विभावसु उत्थित होते हैं अर्थात् उगते हैं ॥ ९९ ॥ उस समय अमरावती में रात्रि का आधा भाग होता है और यम के यहाँ अस्ताचल-गामी हुआ करते हैं। सोमपुरी और विभा में मध्याह्न में दिवाकर हुआ करते हैं ॥ १०० ॥ जिस समय महेन्द्र की अमरावती में सूर्य उदित हुआ करते हैं तब संयमन में आधी रात होती है और वारुणी में अस्त होते हैं ॥ १०१ ॥ वह भास्कर अलात के चक्र की भाँति शीघ्र ही आया करते हैं जाते हैं। आकाश में नक्षत्रों के भ्रममाण होते हुए सूर्य भ्रमण किया करते हैं ॥ १०२ ॥ इस प्रकार से चारों द्वीपों में दक्षिणान्त से प्रसर्पण किया करते हैं। उदय और अस्त मन के द्वारा यह बार-बार उत्थित हुआ करते हैं ॥ १०३ ॥ पूर्वाह्न में और अपराह्न में वह दोनों देवालय वाले होते हैं। एक को तो मध्याह्न में तपते हैं और वह उन्हीं रश्मियों के द्वारा वर्धमान होने वालियों से उदित होते हुए मध्याह्न तक सूर्य तपन किया करते हैं इसके पश्चात् ह्रास को प्राप्त होती हुई किरणों से वह अस्ताचल को चले जाया करते हैं ॥ १०४-१०५ ॥

उदयास्तमयाभ्यां हि स्मृते पूर्वापरे दिशौ ।
यावत्पुरस्तात्तपति तावत् पृष्ठे तु पार्श्वयोः ॥१०६
यत्रोद्यन् दृश्यते सूर्यस्तेषां स उदयः स्मृतः ।
यत्र प्रणाशमायाति तेषामस्तः स उच्यते ॥१०७
सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्तु दक्षिणे ।
विदूरभावादर्कस्य भूमेर्लेखावृतस्य च ।
ह्रियन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ॥१०८
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं भास्करस्य च ।
उच्छ्रायस्य प्रमाणेन ज्ञेयमस्तमनोदयम् ॥१०९
शुक्लच्छायोऽग्निरापश्च कृष्णच्छाया च मेदिनी ।

विदूरभावादर्कस्य उद्यतस्य विरश्मिता ।
रक्ताभावो विरश्मित्वाद्रक्तत्वाच्चाप्यनुष्णता ।।११०
लेखयावस्थितः सूर्यो यत्र यत्र तु दृश्यते ।
ऊर्ध्वं शतं सहस्रं तु योजनानां स दृश्यते ।।१११
प्रभा हि सौरी पादेन अस्तङ्गच्छति भास्करे ।
अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद् दूरात् प्रकाशते ।।११२

इस प्रकार से उदय और अस्तमयों के द्वारा पूर्वापर दिशाएँ कही गई हैं। जब तक आगे यह तपते हैं तब तक पृष्ठ में पावक का होना होता है ।। १०६ ।। जहाँ पर उगते हुए सूर्यदेव दिखाई देते हैं उनका वह उदय कहा गया है। जहाँ पर वह प्रकाश को प्राप्त होते हैं उनका वह अस्त कहा जाया करता है ।। १०७ ।। सब वर्षों के उत्तर में मेरु होता है और लोकालोक पर्वत सब के दक्षिण में होता है। सूर्य के विशेष दूर हो जाने से तथा भूमि की रेखा से आवृत होने से उसकी किरणें ह्रियमाण हो जाया करती हैं। इसी कारण से यह रात्रि में दिखलाई नहीं दिया करते हैं ।। १०८ ।। ग्रह नक्षत्र और ताराओं का तथा भास्कर का दर्शन उच्छ्राय के प्रमाण से जानना चाहिए। जो सर्वोच्च होता है वही अस्त कहा जाता है ।। १०९ ।। अग्नि और जल शुक्ल छाया वाले हैं और मेदिनी कृष्ण छाया वाली होती है। विशेष दूरी के भाव के होने के कारण से ही उदय सूर्य भी विरश्मिता होती है अर्थात् किरणों के दर्शन का अभाव रहा करता है। जब उसकी विरश्मिता होती है तो उसमें रक्तता का अभाव रहा करता है और लालिमा के भाव का अभाव होने से उष्णता का भी अभाव रहता है ।। ११० ।। रेखा से अवस्थित सूर्य जहाँ जहाँ पर भी दिखलाई देता है तो वह सहस्रों योजन ऊपर गया हुआ दिखलाई दिया करता है ।।१११।। भगवान् भुवन भास्कर के अस्त में गमन करने पर सौरी प्रभा पाद से अग्नि में आविष्ट हो जाया करती है इस लिये रात्रि में दूर से प्रकाशित होती है ।।११२।।

उदितस्तु पुनः सूर्य ऊष्माग्नेयमाविशत् ।
संयुक्तो वह्निना सूर्यस्ततः स तपते दिवा ।।११३
प्राकाश्यञ्च तथोष्ण्यञ्च सूर्याग्नेयी च तैजसी ।

परस्परानुप्रवेशादाप्याय्येते दिवानिशम् ॥११४
उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तथा तस्मिश्च दक्षिणे।
उत्तिष्ठति तथा सूर्ये रात्रिरापविशते त्वप:।
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ॥११५
अस्तं याति पुनः सूर्ये दिनं वै प्रविशत्यपः।
तस्माच्छुक्ला भवन्त्यापो नक्तमह्नः प्रवेशनात् ॥११६
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे।
उदयास्तमनेऽर्कस्य अहोरात्रं विशत्यपः ॥११७
दिनं सूर्यप्रकाशाख्यं तामसी रात्रिरुच्यते।
तस्माद्व्यवस्थिता रात्रिः सूर्यापेक्षमहः स्मृतम् ॥११८
एवं पुष्करमध्येन यदा सर्पति भास्करः।
त्रिंशांशकन्तु मेदिन्या मुहूर्त्तेनैव गच्छति ॥११९

पुनः जब वह उदित होता है तो सूर्य आग्नेय अंश में आविष्ट हो जाता है और वह्नि से संयुक्त होता हुआ वह सूर्य फिर दिन में तपा करता है ॥११३॥ प्रकाश का होना तथा उष्णता का होना ये दोनों ही सूर्य तथा अग्नि के तेज होते हैं। ये दोनों परस्पर में अनुप्रवेश करके ही दिन और रात्रि में आप्यायित हुआ करते हैं॥ ११४ ॥ भूमि के उत्तर अर्द्धभाग में तथा दक्षिण में सूर्य के उत्थित होने पर रात्रि जल में आविष्ट हो जाती है। इसी लिये जल दिवारात्रि के प्रवेशन से ताम्र हो जाते हैं॥ ११५ ॥ फिर सूर्य के अस्तगत हो जाने पर दिन जल में प्रविष्ट हो जाया करता है। इसी लिये जल शुक्ल हो जाते हैं। रात्रि दिन के प्रवेशन होने के कारण से ही ऐसा हुआ करता है ॥ ११६ ॥ इस क्रम के योग से भूमि के अर्द्ध दक्षिणोत्तर में सूर्य के उदयास्तमान वेला में अहोरात्र जल में प्रवेश किया करते हैं ॥ ११७ ॥ जो सूर्य के प्रकाश के नाम वाला होता है वही दिन कहा जाया करता है और जो तामसी अर्थात् प्रकाश के अभाव में अन्धकार से पूर्ण होती है वह रात्रि के नाम वाली कही जाया करती है। इससे रात्रि की व्यवस्था होती है और जो सूर्यापेक्ष है अर्थात् जिस समय में सूर्य देखने के योग्य होता है वह दिन कहा गया है ॥ ११८ ॥ इस प्रकार से जब

सर्व पुष्कर के मध्य से गमन किया करता है तो पृथ्वी का त्रिंशांशक मुहूर्त भर में ही चला जाता है ॥ ११९ ॥

योजनाग्रं मुहूर्त्तस्य इमा संख्या निबोधत ।
पूर्णं शतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु सा स्मृता ॥१२०
पञ्चाशत्तु तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ।
मौहूर्त्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते ॥१२१
एतेन गतियोगेन यदा काष्ठान्तु दक्षिणाम् ।
पर्य्यागच्छेत्तदादित्यः माघे काष्ठान्तमेव हि ॥१२२
सर्पते दक्षिणायान्तु काष्ठायां तन्निबोधत ।
नवकोट्यः प्रसंख्याता योजनैः परिमण्डलम् ॥१२३
तथा शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
अहोरात्रात्पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते ॥१२४
दक्षिणाद्विनिवृत्तोऽसौ विषुवस्थो यदा रविः ।
क्षीरोदस्य समुद्रस्य उत्तरान्तो दिशश्चरन् ॥१२५
मण्डलं विषुवच्चापि योजनैस्तन्निबोधत ।
तिस्रः कोट्यस्तु विस्तीर्णा विषुवच्चापि सा स्मृता ॥१२६

योजनाग्र से मुहूर्त की इस संख्या को समझ लो। वह पूर्ण सौ सहस्रों की इकत्तीस कही गई है ॥ १२० ॥ तथा अन्य पचास सहस्र अधिक सूर्य की यह मुहूर्त वाली गति का विधान किया जाता है ॥ १२१ ॥ इसी गति के योग से जब दक्षिण दिशा को सूर्य पर्यागमन किया करता है तब वह माघ में दिशा के अन्त को ही प्राप्त होता है ॥ १२२ ॥ दक्षिण दिशा में जब गमन किया करता है इसे भी समझ लो। नौ करोड़ योजनों से परिमण्डल प्रसंख्यात होता है ॥ १२३ ॥ तथा सौ सहस्र चालीस और पाँच अहोरात्र से सूर्य की यह गति होती है ऐसा विधान किया जाता है ॥ १२४ ॥ दक्षिण से जिस समय यह सूर्य विनिवृत्त होता हुआ विषुवस्थ हो जाता है और क्षीरोद समुद्र के उत्तरान्त दिशाओं में भ्रमण करता हुआ आता है ॥ १२५ ॥ विषुवत् का भी मण्डल होता है योजनों के द्वारा उसे भी जान लो। विषुवत् भी तीन करोड़ विस्तीर्ण कही गई है ॥ १२६ ॥

तथा शतसहस्राणामशीत्यैकाधिका पुनः ।
श्रवणे चोत्तरां काष्ठां चित्रभानुर्यदा भवेत् ।
शाकद्वीपस्य षष्ठस्य उत्तरान्ता दिशश्चरन् ॥१२७
उत्तरायान्त्य काष्ठाया प्रमाणं मण्डलस्य च ।
योजनाग्रात्प्रसंख्याता कोटिरेका तु या द्विजे ॥१२८
अशीतिर्नियुतानीह योजनाना तथैव च ।
अष्टपञ्चाशतञ्चैव योजनान्यधिकानि तु ॥१२९
नागवीथ्युत्तरावीथी अजवीथी च दक्षिणा ।
मूलं चैव तथाषाढे ह्यजवीथ्युदयास्त्रय ।
अभिजित्पूर्वत स्वातिर्नागवीथ्युदयास्त्रय ॥१३०
काष्ठयोरन्तरं यच्च तद्वक्ष्ये योजने पुन ।
एतच्छतसहस्राणामेकत्रिंशोत्तरं शतम् ॥१३१
त्रयस्त्रिंशाधिकाश्चान्ये त्रयस्त्रिंशद्योजनैः ।
काष्ठयोरन्तरं ह्येतद्योजनाग्रात् प्रतिष्ठितम् ॥१३२
काष्ठयोर्लेखयोश्चैव अन्तरे दक्षिणोत्तरे ।
ते तु वक्ष्यामि संख्याय योजनैस्तन्निबोधत ॥१३३

इसी प्रकार से सौ सहस्र और एकाधिक अस्सी श्रवण में उत्तर दिशा में जब सूर्य होता है तो वह शाकद्वीप षष्ठ की उत्तरान्त दिशाओं का विचरण करता हुआ ही होता है ॥ १२७ ॥ उत्तर दिशा में मण्डल का प्रमाण जो होता है वह द्विजों के द्वारा योजनाग्र से एक करोड़ प्रसंख्यात किया गया है ॥ १२८ ॥ यहाँ पर योजनों के अस्सी नियुत और अट्ठावन अधिक योजन होते हैं ॥१२९॥ नागवीथी, उत्तरावीथी और अजवीथी ये दक्षिण मूल और आषाढ में अजवीथी ये तीन उदय होते हैं। अभिजित नक्षत्र से पूर्व स्वाति में नागवीथी तीन उदय होते हैं ॥ १३० ॥ दिशाओं में जो अन्तर होता है उनको पुन योजनों के द्वारा बतलाया जायगा। यह सौ हजार एक सौ इकतीस और अन्य तेतीस अधिक अर्थात् तेतीस योजनों के द्वारा योजनाग्र से दिशाओं का अन्तर प्रतिष्ठित होता है ॥ १३१-१३२ ॥ दिशाओं में और लेखाओं में जो दक्षिणोत्तर अन्तर हुआ

करते हैं उनकी संख्या इसके योजनों के द्वारा बतलाया था उसका वह भी सब लोग समझ लेवें ॥ १३३ ॥

एकैकमन्तरं तस्या नियुतान्येकसप्तति ।
सहस्राण्यतिरिक्ताश्च ततोऽन्यानि पञ्चसप्तति ॥१३४
लेखयो काष्ठयोश्चैव बाह्याभ्यन्तरयो स्मृतम् ।
अभ्यन्तरन्तु पर्येति मण्डलान्युत्तरायणे ॥१३५
बाह्यतो दक्षिणे चैव सततन्तु यथाक्रमम् ।
मण्डलाना शत पूर्णमशीत्यधिकमुत्तरम् ॥१३६
चरते दक्षिणे चापि तावदेव विभावसु ।
प्रमाण मण्डलस्याथ योजनाग्रान्निबोधत ॥१३७
एकविंशद्योजनाना सहस्राणि समासत ।
शते द्वे पुनरप्यन्ये योजनाना प्रकीर्तिते ॥१३८
एकविंशतिभिश्चैव योजनैरधिके हि ते ।
एतत्प्रमाणमाख्यात योजनैर्मण्डलस्य तु ॥१३९
विष्कम्भो मण्डलस्यैव तिर्यक् स तु विधीयते ।
प्रत्यहं चरते तानि सूर्यो वै मण्डलक्रमम् ॥१४०

उसका एक-एक का अन्तर एक सप्तति अर्थात् इकहत्तर नियुत है। सहस्र अतिरिक्त हैं इसके बाद भी अन्य पिचहत्तर हैं ॥ १३४ ॥ लेखाओं तथा बाह्याभ्यन्तर दिशाओं में यह अन्तर कहा गया है। और अभ्यन्तर तो उत्तरायण में मण्डलों का परिगमन करता है ॥ १३५ ॥ बाहर से दक्षिण में निरन्तर क्रम के अनुसार एक सौ अस्सी मण्डलों के उत्तर में तथा उसी प्रकार से दक्षिण में भी विभावसु विचरण किया करता है। मण्डल का प्रमाण भी योजनाग्र से समझ लो ॥ १३६, १३७ ॥ संक्षेप से इक्कीस सहस्र तथा फिर अन्य दो सौ योजन कहे गए हैं ॥ १३८ ॥ इक्कीस अधिक योजनों के द्वारा मण्डल का प्रमाण कहा गया है ॥ १३९ ॥ मण्डल का जो विष्कम्भ होता है वह तिर्यक् (तिरछा) विधान किया जाता है। सूर्य प्रतिदिन मण्डल क्रम पूर्वक उनका विचरण किया करता है ॥ १४० ॥

कुलालचक्रपर्यन्तो यथा शीघ्रं निवर्त्तते ।
दक्षिणे प्रक्रमे सूर्यस्तथा शीघ्रं निवर्त्तते ॥१४१
तस्मात् प्रकृष्टा भूमिञ्च कालेनाल्पेन गच्छति ।
सूर्यो द्वादशभि शीघ्रं मुहूर्तैर्दक्षिणोत्तरे ॥१४२
त्रयोदशार्द्धमृक्षाणामह्नानुसरते रवि ।
मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥१४३
कुलालचक्रमध्यस्तु यथा मन्द प्रसर्पति ।
तथोदगयने सूर्यः सर्पते मन्दविक्रम ॥१४४
त्रयोदशार्द्धमर्द्धेन ऋक्षाणा चरते रवि ।
तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिमल्पा निगच्छति ॥१४५
अष्टादशमुहूर्तैस्तु उत्तरायणपश्चिमम् ।
अहर्भवति तच्चापि चरते मन्दविक्रम ॥१४६
त्रयोदशार्द्धमर्द्धेन ऋक्षाणाञ्चरते रवि ।
मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥१४७
ततो मन्दतर ताभ्याश्चक्र भ्रमति वै यथा ।
मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै यथा ॥१४८
त्रिंशन्मुहूर्तानि चाहुरहोरात्र ध्रुवो भ्रमन् ।
उभयो काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानि स ॥१४९

कुलाल (कुम्हार) का चक्र पर्यन्त जिस तरह शीघ्र ही लौट जाता है उसी प्रकार से दक्षिण प्रक्रम मे सूर्य भी शीघ्र निवृत्त हो जाता है ॥१४१॥ इससे इस प्रकृष्ट भूमि को अल्पकाल मे ही जाता है। सूर्य बारह मुहूर्तों मे ही दक्षिणोत्तर मे शीघ्र चला जाया करता है ॥१४२॥ दिन मे सूर्य नक्षत्रो के त्रयोदशार्द्ध का अनुसरण किया करता है और अठारह मुहूर्तो मे रात्रि मे नक्षत्रों का चरण किया करता है ॥१४३॥ जिस प्रकार से कुम्हार के चक्र का मध्य भाग मन्द गति से प्रसर्पण किया करता है वैसे ही उदगयन मे सूर्य देव भी मन्द विक्रम वाले हुए चला करते है ॥१४४॥ नक्षत्रो के त्रयोदशार्द्ध के अर्ध से सूर्य चरण किया करता है। इसी कारण से अल्प भूमि को भी बहुत अधिक काल

में छाया करता है ॥१४५॥ अठारह मुहूर्तों में उत्तरायण पश्चिम में दिन हुआ करता है उससे भी बहुत मन्द धीमी गति वाला होता हुआ विचरण किया करता है ॥ १४ ॥ अब नक्षत्रों के चन्द्रार्क (?) को भय से वर्णन किया करता है। रात्रि में वह तेरह मुहूर्तों में नक्षत्रों का चरण किया करता है ॥ १४७ ॥ इसके अनन्तर उन दोनों से जिस प्रकार कुछ और ... चक्र भ्रमण किया करता है और मृत्पिण्ड की भाँति मध्य में स्थित ध्रुव वहीं भ्रमण करता है ॥ १४८ ॥ तीस मुहूर्तों को ही अहोरात्र कहते हैं। ध्रुव भ्रमण करता हुआ दोनों दिशाओं के मध्य में वह मण्डलों का भ्रमण किया करता है ॥ १४९ ॥

कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्तते।
ध्रुवस्तथा हि विज्ञेयस्तत्रैव परिवर्तते ॥१५०
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मण्डलानि तु।
दिवा नक्तं च सूर्यस्य मन्दा शीघ्रा च वै गतिः ॥१५१
उत्तरे प्रक्रमे त्विन्दोर्दिवा मन्दा गतिः स्मृता।
तथैव च पुनर्नक्तं शीघ्रा सूर्यस्य वै गतिः ॥१५२
दक्षिणे प्रक्रमे चैव दिवा शीघ्रं विधीयते।
गतिः सूर्यस्य नक्तं वै मन्दा चापि तथा स्मृता ॥१५३
एवं गतिविशेषेण विभजन् रात्र्यहानि तु।
तथा विचरते मार्गे समेन विषमेण च ॥१५४
लोकालोके स्थिता ये तु लोकपालाश्चतुर्दिशम्।
अगस्त्यश्चरते तेषामुपरिष्टाज्ज्वलेन तु।
भजन्नसावहोरात्रमयं गतिविशेषणैः ॥१५५
दक्षिणे नागवीथ्यायां लोकालोकस्य चोत्तरम्।
लोकसन्तारको ह्येष वैश्वानरपथाद्बहिः ॥१५६
पृष्ठे यावत् प्रभा सौरी पुरस्तात् सम्प्रकाशते।
पार्श्वयोः पृष्ठतस्तावल्लोकालोकस्य सर्वतः ॥१५७

जिस प्रकार कुलाल के चक्र की नाभि वहाँ पर ही रहा करती है ध्रुव को भी उसी प्रकार का जान लेना चाहिए। वह वहाँ पर ही परिवर्तन किया

करता है ॥ १५० ॥ दोनों दिशाओं के मध्य में मण्डलों का भ्रमण करने वाले रात और दिन सूर्य की गति भी मन्द और शीघ्रता वाली हो जाती है ॥१५१॥ उत्तर प्रक्रम में चन्द्रमा की गति दिन में मन्द कही गई है। इसी भांति रात में सूर्य की गति शीघ्रता वाली हुआ करती है ॥ १५२ ॥ दक्षिण प्रक्रम में दिन में शीघ्र होने का विधान होता है। रात्रि में सूर्य की गति मन्द इसी भांति कही गई है ॥ १५३ ॥ इस प्रकार से गति विशेष के द्वारा रात और दिन का विभाग करते हुए सम और विषम के द्वारा उसी प्रकार मार्ग का विचरण किया करता है ॥ १५४ ॥ लोकालोक में जो स्थित हैं वे चारों दिशाओं में लोकपाल हैं। इनके ऊपर अगस्त्य वेग से चरण करते हैं जो कि इस प्रकार से गति विशेषों से रात दिन सेवन करने वाले हैं ॥ १५५ ॥ दक्षिण में नागवीथी से लोकालोक पर्वत के उत्तर में वैश्वानर पथ से बाहिर यह लोक सन्तारक है ॥ १५६ ॥ पुष्प में सौरी अर्थात् सूर्य की प्रभा जब तक आगे भली-भांति प्रकाशित होती है लोकालोक के पीछे और पार्श्वों में सब ओर तब तक प्रकाश किया करती है ॥ १५७ ॥

योजनानां सहस्राणि दशोर्द्ध्वमुच्छ्रितो गिरिः ।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च सर्वतः परिमण्डलः ॥१५८
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ।
अभ्यन्तरं प्रकाशन्ते लोकालोकस्य वै गिरेः ॥१५९
एतावानेव लोकस्तु निरालोकस्ततः परम् ।
लोकालोकः एकधा तु निरालोकस्त्वनेकधा ॥१६०
लोकालोकन्तु सन्धत्ते यस्मात् सूर्यः परिग्रहम् ।
तस्मात्सन्ध्येति तामाहुरुषाव्युष्टयोर्यदन्तरम् ।
उषा रात्रिः स्मृता विप्रैर्व्युष्टिश्चापि त्वहः स्मृतम् ॥१६१
सूर्यं हि ग्रसमानानां सन्ध्याकाले हि रक्षसाम् ।
प्रजापतिनियोगेन शापस्तेषां दुरात्मनाम् ।
अक्षयत्वञ्च देहस्य प्रापिता मरणं तथा ॥१६२
तिस्रः कोट्यस्तु विख्याता मन्देहा नाम राक्षसाः ।

अधमन्ति सहस्राणि भुञ्जन्ति दिने दिने ।
तापयन्तो दुरात्मान सूर्यमिच्छन्ति खादितुम् ॥१६३
अथ सूर्यस्य तेषाञ्च युद्धमासीत् सुदारुणम् ।
ततो ब्रह्मा च देवाश्च ब्राह्मणाश्चैव सत्तमाः ।
सन्ध्येति समुपासन्ते क्षेपयन्ति महाजलम् ॥१६४
ओङ्कारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।
तेन दह्यन्ति ते दैत्या वज्रभूतेन वारिणा ॥१६५

यह गिरि दश सहस्र योजन उच्छ्राय ऊपर का है और सब ओर से परिमण्डल प्रकाशयुक्त तथा अप्रकाश वाला है ॥ १५८ ॥ लोकालोक गिरि के भीतर नक्षत्र चन्द्र और सूर्य तथा ताराओं के गणों के साथ समस्त ग्रह प्रकाश किया करते हैं । १५९ ॥ इतना ही लोक है और इसके आगे तो निरालोक ही है । लोकालोक तो एक प्रकार का ही होता है और निरालोक अनेक प्रकार वाला होता है ॥ १६० ॥ जिस कारण से सूर्य लोकालोक के परिग्रह का संधान करता है इसी लिये उषा और व्युष्टि का जो अन्तर होता है उसको सन्ध्या कहा करते हैं । विप्रों के द्वारा उषा को रात्रि और व्युष्टि को दिन कहा गया है ॥ १६१ ॥ सन्ध्या के समय में सूर्य का ग्रास करने वाले उन दुरात्मा राक्षसों को प्रजापति के निदेश से शाप है देह का अक्षयत्व तथा न मरण को प्राप्त कराये गये थे ॥ १६२ ॥ मन्देहा नाम वाला विख्यात राक्षस गण कहा है जो दिन दिन में बढ़ने वाले सूर्य की भावना करते हैं । ये दुरात्मा ताप देते हुए सूर्य को खाना चाहते हैं ॥ १६३ ॥ इसके अनन्तर उनका और सूर्य का महा दारुण युद्ध हुआ था । तब ब्रह्माजी देवगण और उत्तम ब्राह्मण सन्ध्या इसकी उपासना करते हुए महाजल का क्षेप किया करते हैं ॥ १६४ ॥ ओङ्कार ब्रह्म से संयुक्त और गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित वह जल है । उस वज्रभूत जल से वे दैत्य दग्ध होते हैं ॥ १६५ ॥

ततः पुनर्महातेजा महाद्युतिपराक्रमः ।
योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वमुत्तिष्ठते व्रजन् ॥१६६
ततः प्रयाति भगवान् ब्राह्मणैः परिवारितः ।

वालखिल्यैश्च मुनिभिः कृतार्थं समर्चितम् ॥१६७
काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलान्ताम् ।
त्रिंशत् कलाश्चैव भवेन्मुहूर्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते ॥१६८
ह्रासवृद्धी त्वहर्भागैर्दिवसानां यथाक्रमम् ।
सन्ध्या मुहूर्तमाना तु ह्रासे वृद्धौ समा स्मृता ॥१६९
लेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तागते तु वै ।
प्रातस्तनः स्मृतः कालो भागश्चाह्नः स पञ्चमः ॥१७०
तस्मात् प्रातस्तनात्कालात् त्रिमुहूर्तस्तु सङ्गवः ।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्तु तस्मात्कालात्तु सङ्गवात् ॥१७१
तस्मान्मध्यन्दिनात् कालादपराह्ण इति स्मृतः ।
त्रय एव मुहूर्तास्तु तस्मात् कालाच्च मध्यमात् ॥१७२

इसके अनन्तर महान् तेज से युक्त और महान् द्युति तथा पराक्रम वाले सहस्र शत योजन ऊर्ध्व में उपस्थित होते हैं ॥ १६६ ॥ इसके पश्चात् बालखिल्य मुनि, कृतार्थ मरीचि और ब्राह्मणों के द्वारा परिवारित भगवान् प्रयाण करते हैं ॥ १६७ ॥ दश और पाँच निमेषों की काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओं से कलान्त होता है और तीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है तथा तीस मुहूर्तों की रात्रि तथा दिन सम होते हैं ॥ १६८ ॥ दिन के भागों से यथाक्रम दिनों की ह्रास और वृद्धि होती है । मुहूर्त के मान तक सन्ध्या ह्रास और वृद्धि में सम कही गई है ॥ १६९ ॥ इसके अनन्तर तीन मुहूर्त आदित्य के आगत होने पर लेखा प्रभृति होती है । जो प्रातस्तन होता है वह काल कहलाता है यह दिवस का पाँचवाँ भाग होता है ॥ १७० ॥ उस प्रातस्तन काल से तीन मुहूर्त वाला सङ्गव होता है । उस सङ्गव काल से तीन मुहूर्त वाला मध्याह्न होता है ॥ १७१ ॥ उस मध्यन्दिन काल से अपराह्ण यह कहा गया है । उस मध्यम काल से तीन ही मुहूर्त होते हैं ॥ १७२ ॥

अपराह्णे व्यतीपाते काले सायाह्न उच्यते ।
दशपञ्चमुहूर्ताह्नि मुहूर्तास्त्रय एव च ॥१७३
दशपञ्चमुहूर्तं वै अहर्विषुवति स्मृतम् ।

दशपंचमुहूर्ताहं रात्रिंदिवमितिस्मृतम् ॥१७४
वर्द्धते ह्रसतश्चैव अयने दक्षिणोत्तरे ।
अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिस्तं ग्रसते त्वहः ॥१७५
शरद्वसन्तयोर्मध्ये विषुवं तद्विभाव्यते ।
अहोरात्रं कलाश्चैव सर्वं साम समश्नुते ॥१७६
तथा पञ्चदशाहानि पक्ष इत्यभिधीयते ।
द्वौ पक्षौ च भवेन्मासो द्वौ मासावर्कजावृतुः ।
ऋतुत्रयमयनं स्याद्द्वेऽयने वर्षमुच्यते ॥१७७
निमेषादिकृतः कालः काष्ठायां दश पञ्च च ।
कलायां विंशतिः काष्ठा मात्राशीतिः प्रमाणतः ॥१७८
मात्राशीतिकलाकृतं आर्षां तेषु परीक्षयेत् ।
द्विषष्टिमासकश्चापि मध्यमो वा भवेत् ॥१७९
चत्वारि त्रीणि सहस्राणि शतान्यष्टौ च बिन्दु ।
सप्ततिश्चापि तत्र व वर्षाणि विद्धि निश्चये ॥१८०

अपराह्न के व्यतीत होने वाले पर जो काल होता है वह सायाह्न कहा जाता है। दस पाँच मुहूर्त से तीन ही मुहूर्त होते हैं ॥ १७३ ॥ दस पन्द्रह मुहूर्त वाला दिन रात कहा गया है। दस पाँच मुहूर्त से रात्रिंदिव यह कहा गया है ॥ १७४ ॥ दक्षिण और उत्तर अयन में रात्रि दिन बढ़ता है और ह्रास को प्राप्त होता है। यह रात्रि का ग्रास करता है और रात्रि अह का ग्रास किया करती है। इसी तरह से इन दोनों का ह्रास तथा वर्धन हुआ करता है ॥ १७५ ॥ शरद और वसन्त के मध्य में वह विषुवत् विभावित होता है। अहोरात्र और कला सब इसको सोम समश्नन किया करता है ॥ १७६ ॥ इसी प्रकार से पन्द्रह दिन का पक्ष कहा जाता है। दो पक्षों का एक मास होता है और दो मासों के अन्तर में एक ऋतु होता है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है और दो अयनों का एक वर्ष कहा जाया करता है ॥ १७७ ॥ दस और पाँच अर्थात् पन्द्रह कला का निमेषादि कृत काल होता है। बीस कला का काष्ठा और अस्सी (अस्सी) इसकी मात्रा होती है ॥ १७८ ॥

कलाधोंकौनका मिमतपट् उत्तर वालो माथा वायक के नजग पानी शेष गाथा मे चल होती है ॥ १७९ ॥ चालीस सहस्र सौ और आठ विद्युति मदार और यहाँ ही मनें निश्चय से जानो ॥ १८० ॥

चत्वारिंश शताभ्याहुर्विद्युती वैधसयुगे ।
चराशो ह्येष विज्ञेयो नालिका चात्र कारणम् ॥१८१
संवत्सरादय पञ्च चतुर्मानविकल्पिता ।
निश्चय सर्वकालस्य युग इत्यभिधीयते ॥१८२
संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीय परिवत्सर ।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सर ।
पञ्चमो वत्सरस्तेषां कालस्तु परिसज्ञित ॥१८३
त्रिंशत्शतं भवेत्पूर्ण पर्वणां तु रवेर्युगम् ।
एतान्यष्टादशत्रिंशदुदयो भास्करस्य च ॥१८४
ऋतवस्त्रिंशत सौरा अयनानि दशैव तु ।
पञ्चत्रिंशत् शतं चापि षष्टिर्मासाश्च भास्कर ॥१८५
त्रिंशदेव त्वहोरात्र स तु मासश्च भास्कर ।
एकषष्टिस्त्वहोरात्रा ऋतुरेको विभाव्यते ॥१८६
अहानां त्वधिकाशीति शतं चाप्यधिकं भवेत् ।
मानं तच्चित्रभानोस्तु विज्ञेय भुवनस्य तु ॥१८७

वैधसयुग विद्युति मे चारसौ ही कहते हैं । यहा चराण जानना चाहिए । यहाँ पर नालिका कारण है ॥ १८१ ॥ सम्वत्सर आदि पाँच चार मान से विकल्पित होते हैं । समस्त काल का निश्चय युग ऐसा कहा जाता है ॥ १८२ ॥ प्रथम सम्वत्सर होता है, दूसरा परिवत्सर होता है, तीसरा इद्वत्सर और चौथा अनुवत्सर तथा पाचवाँ वत्सर होता है । इस प्रकार से उनका काल परिसज्ञित होता है ॥ १८३ ॥ तीस सौ पर्वों का पूर्ण रवि का युग होता है । ये अठारह तीस भास्कर का उदय है ॥ १८४ ॥ सौर ऋतुऐं तीस और दस ही अयन होते हैं । पैंतीस और सौ तथा साठ मास भास्कर हैं ॥ १८५ ॥ तीस ही अहोरात्र का यह भास्कर मास होता है । इकसठ अहोरात्र

एक धनु विभाषित होता है ॥ १८ । दिनों के विरोधी और जो अधिक होते हैं । वह विषमादु भुवन का मान समझना चाहिए ॥ १८७ ॥

सौरसौम्य तु विज्ञेय नक्षत्र श्रावन तथा ।
नामान्येतानि चत्वारि य पुराण विभाव्यते ॥१८८
ते तस्यादारतश्च श्रृङ्गवान्नाम पर्वत ।
त्रीणि तस्य त शृङ्गाणि स्पृशन्तीव नभस्तलम् ॥१८९
तेषाम्पि शृङ्गवानाम सर्वतश्चैव विश्रुत ।
एकभागेन विस्तारो विष्कम्भश्चापि कीर्तित ॥१९०
तस्य च सर्वत शृङ्ग मध्यम तद्धिरण्मयम् ।
दक्षिण राजतञ्चैव शृङ्ग त स्फटिकप्रभम् ॥१९१
सर्वरत्नमय चैक शृङ्गमुत्तरमुत्तमम् ।
एव कूटैस्त्रिभि शैल शृङ्गवानिति विश्रुत ॥१९२
यत्तद्विषुवत शृङ्ग तदर्क प्रतिपद्यते ।
शरद्वसन्तयोर्मध्ये मध्यमा गतिमास्थित ।
अहस्तस्मात्तथो रात्रि करोति तिमिरापहः ॥१९३
हरिताश्च हया दिव्यास्त नियुक्ता महारथे ।
अनुलिप्ता इवाभान्ति पद्मरक्त गभस्तिभि ॥१९४
मेषान्त च तुलान्त च भास्करोऽन्यत स्मृता ।
मुहूर्ता दश पञ्च च अहोरात्रिश्च तावती ॥१९५

सौर सौम्य नक्षत्र और श्रावन ये हैं समझ लेना चाहिए । ये चार नाम हैं जिनसे पुराण विभावित होता है ॥ १८८ ॥ आकाश में उसके उत्तर में शृङ्गवान् नाम का एक पर्वत है उसके तीन शिखर हैं जो कि इतने ऊँचे हैं कि मानों वे आकाश तल का स्पर्श करते हैं ॥ १८९ ॥ उन्हीं से शृङ्गवान् यह नाम सब ओर विश्रुत होता है । एक भाग और विस्तार और विष्कम्भ भी कहा गया है ॥ १९ ॥ उसके शिखर सब ओर हैं उनमें जो मध्यम शृङ्ग है वह हिरण्मय होता है । दक्षिण शिखर राजत (चाँदी का) है जो कि स्फटिक की प्रभा वाला है ॥ १९१ ॥ उत्तर की ओर जो शिखर है वह समस्त रत्नों से

परिपूर्ण एक उत्तम शिखर है। इस प्रकार से तीन कूटों के शैलों से यह शृङ्गवान् इस नाम से प्रख्यात है ॥ १९२ ॥ जो विषुवत शृङ्ग है उसको अर्क प्रतिपन्न होता है। शरद् और वसन्त के मध्य में मध्यम गति में आस्थित होता है। तिमिर अर्थात् अन्धकार अपहरण करने वाला सूर्य दिन के तुल्य रात्रि को कर देता है ॥ १९३ ॥ दिव्य हरित अश्व महारथ में नियुक्त होते हैं। पद्म के समान रक्त किरणों से अनुलिप्त की भाँति शोभित होते हैं ॥ १९४ ॥ मेष के अन्त में और तुला के अन्त में भास्करोदय कहे गये हैं। पन्द्रह मुहूर्त भी उतनी ही अहोरात्रि होती है ॥ १९५ ॥

कृत्तिकानां यदा सूर्यं प्रथमांशगतो भवेत् ।
विशाखानां तथा ज्ञेयश्चतुर्थांशे निशाकरः ॥१९६
विशाखायां यदा सूर्यश्चरतेंऽशं तृतीयकम् ।
तदा चन्द्रं विजानीयात् कृत्तिकाशिरसि स्थितम् ॥१९७
विषुवन्तं तदा विद्यादेवमाहुर्महर्षयः ।
सूर्येण विषुवं विद्यात् कालं सोमेन लक्षयेत् ॥१९८
समा रात्रिरहश्चैव यदा तद्विषुवद्भवेत् ।
तदा दानानि देयानि पितृभ्यो विषुवत्स्वपि ।
ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण मुखमेतत्तु दैवतम् ॥१९९
ऊनरात्राधिमासौ च कलाकाष्ठामुहूर्तकाः ।
पौर्णमासी तथा ज्ञेया अमावास्या तथैव च ।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ॥२००
तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च शुक्रः शुचिश्चायनमुत्तरं स्यात् ।
नभो नभस्योऽथ इषुः सहोर्जः ।
सहःसहस्याविति दक्षिणं स्यात् ॥२०१
संवत्सरास्तथा ज्ञेया पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुता ।
तस्मात्तु ऋतवो ज्ञेया ऋतवो ह्यन्तराः स्मृता ॥२०२

जिस प्रकार कृत्तिकाओं का सूर्य प्रथमांशगत होता है उस विशाखाओं के चतुर्थांश में निशाकर होता है ॥ १९६ ॥ विशाखा में जब सूर्य तृतीय अंश में

करण किया करता है तब चन्द्रमा को कृत्तिका के शिर में स्थित जानना चाहिए ॥ १६७ ॥ उस समय वेग को विषुवान् समझना चाहिए ऐसा ऋषि लोग कहते हैं। सूर्य की विशद समझके और काल को सोम के साथ लक्षित करे ॥ १६८ ॥ जब रात्रि और दिन समान होंय और जब विषुवद् होवे तब विषु वान् में भी पितरों को दान देने चाहिये और विशेष करके ब्राह्मणों को देवे क्योंकि वे देवताओं का मुख हुआ करता है ॥ १६९ ॥ ऊन रात्र और अधि मास कला काष्ठा और मुहूर्त पौर्णमासी तथा अमावस्या जाननी चाहिए। सिनी वाली कुहू राका और अनुमति जाननी चाहिये ॥ २० ॥ तप और तपस्या मधु और माधव शुक्र और शुचि उत्तर अयन होता है। नभ और नभस्य इषु महीने और सह तथा .....स्य दक्षिण अयन जाने जाते ॥ २ १ ॥ इसके पश्चात् सम्वत्सर आते जो कि पंच अब्द ब्रह्मा के सुत हैं। उससे ऋतु आते जो अन्दर होते हैं वे ऋतु कहे गये हैं ॥ २ २ ॥

तस्मात्तु ऋतुमुखा ज्ञेया अमावास्यास्तु पर्वण ।
तस्मात्तु विषुवं ज्ञेय पितृदेवहितं सदा ॥२ ३
एवं ज्ञात्वा न मुह्यन्त दैवे पित्र्ये च मानवः ।
यस्मात् स्मृत प्रजानां च विषुवत्सर्वगं सदा ॥२ ४
आलोकान्त स्मृतो लोको लोकान्तो लोक उच्यते ।
लोकपालाः स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यतः ॥२०५
चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवात् ।
सुधामा चैव वैराजः कर्दमः शङ्खपस्तथा ।
हिरण्यरोमा पर्जन्य केतुमान् जातनिश्चय ॥२ ६
निर्द्वन्द्वा निरभिमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहा ।
लोकपाला स्थिता ह्येते लोकालोके चतुर्दिशम् ॥२ ७
उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम् ।
पितृयाण स वै पन्था वैश्वानरपथाद्बहिः ॥२०८
तत्रासते प्रजावन्तो मुनयो ह्यग्निहोत्रिणः ।
लोकस्य सन्तानकराः पितृयाणे पथि स्थिताः ॥२०९

इससे इस पर्व की अमावस्या को अनुमुक्ता जाननी चाहिए। इसमें पितर और देवों के हित वाला विशुद्ध सदा ज्ञान रखना चाहिए ॥ २०३ ॥ काल का इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त करके फिर देव तथा पितर सम्बन्धी कार्य में मोह नहीं करना चाहिये। इसके स्वस्ति में गमन करने वाला सदा प्रजाओं का विषुवत् कहा गया है ॥ २०४ ॥ आलोकान्त लोक कहा गया है और लोकान्त अलोक कहा जाता है वहाँ पर लोकालोक के मध्य में लोकपाल स्थित होते हैं ॥ २०५ ॥ वहाँ चार महान् आत्मा वाले भूतमहत्तर पर्यन्त रहा करते हैं। सुधामा, वैराज, कर्द्दम, शङ्खप, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, केतुमान जातनिश्चय, निर्द्वन्द्व, निरभिमान, निस्तन्द्र, निष्परिग्रह—ये लोकालोक में चारों दिशाओं में लोकपाल स्थित हैं ॥ २०६-२०७ ॥ अगस्त्य के उत्तर में और अजवीथी के दक्षिण में वैश्वानर पथ से बाहिर यह पितृयाण पन्था होता है ॥ २०८ ॥ वहाँ पर अग्निहोत्र करने वाले प्रजावान् मुनिगण लोक के सन्तान कहने वाले पितृयाण के मार्ग में स्थित होते हैं ॥ २०९ ॥

भूतारम्भकृतं कर्म आशिषा ऋत्विगुच्यते ।
प्रारभन्ते लोककामास्तेषां पन्था स दक्षिणः ॥२१०
चलितं ते पुनर्धर्मं स्थापयन्ति युगे युगे ।
सन्तत्या तपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ॥२११
जायमानास्तु पूर्वे वै पश्चिमानां गृहेषु च ।
पश्चिमाश्चैव जायन्ते पूर्वेषां निधनेष्वपि ।
एवमावर्तमानास्ते तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवात् ॥२१२
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनां गृहमेधिनाम् ।
सवितुर्दक्षिणं मार्गं श्रिता ह्याचन्द्रतारकम् ।
क्रियावतां प्रसङ्ख्या ये श्मशानानि भेजिरे ॥२१३
लोकसंव्यवहारेण भूतारम्भकृतेन च ।
इच्छाद्वेषप्रवृत्त्या च मैथुनोपगमेन च ॥२१४
तथा कायकृतेनेह सेवनाद्विषयस्य च ।
एतैस्तैः कारणैः सिद्धाः श्मशानानि हि भेजिरे ।
प्रजैषिणस्ते मुनयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे ॥२१५

नागवीथ्युत्तरे यच्च सप्तर्षिभ्यश्च दक्षिणम् ।
उत्तरः सवितुः पन्था देवयानस्तु स स्मृतः ॥२१६

भूतारम्भ कृत कर्म आशीष से ऋत्विग कहा जाता है। लोक की कामना वाले आरम्भ किया करते हैं उनका यह दक्षिण पन्था होता है ॥ २१ ॥ वे चलित हो जाने वाले धर्म को फिर युग युग मे स्थापित किया करते है और यह सन्तति से तप से मर्यादाओ से और श्रुत के द्वारा ही किया करते है ॥ २११ ॥ पश्चिमो के पूर्वो मे पूर्व जायमान होते हैं और पश्चिम पूर्वो के निधन होने पर उत्पन्न हुआ करते हैं। इस प्रकार से आवर्त्त मान वे भूतसंप्लव तक रहा करते है ॥ २१२ ॥ अठ्ठासी सहस्र गृहमेधी मुनियो का सविता का दक्षिण मार्ग है जिसमे वे आश्रित रहते हैं और जब तक चन्द्रमा तथा तारागण स्थित है तब तक रहते हैं और क्रिया वालो की प्रसख्या करनी चाहिए जो कि श्मशानो के सेवन किया करते थे ॥ २१३ ॥ लोक के सव्यवहार से और भूतारम्भ कृत से इच्छा और द्वेष की प्रवृत्ति से मैथुन के उपगम से तथा वहाँ पर कामकृत से और विषय के सेवन से इनमे ये कारण है जिन से सिद्ध लोग श्मशानो के सेवन किया करते थे। वे मुनिगण प्रजाओ के इच्छा वाले यहाँ द्वापरो मे उत्पन्न हुए ॥ २१४-२१५ ॥ नागवीथी के उत्तर मे और जो सप्तर्षियों के दक्षिण मे उत्तर सविता का पन्था है वह देवयान कहा गया है ॥ २१६ ॥

यत्र ते वासिनः सिद्धा विमला ब्रह्मचारिणः ।
सन्तति ते जुगुप्सन्ते तस्मान्मृत्युर्जितस्तु तैः ॥२१७
अष्टाशीतिसहस्राणि तेषामप्यूर्ध्वरेतसाम् ।
उदक्पन्थानमर्यम्णः श्रिता ह्याभूतसम्प्लवात् ॥२१८
इत्येतैः कारणैः शुद्धैस्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे ।
आभूतसम्प्लवस्थानाममृतत्वं विभाव्यते ॥२१९
त्रैलोक्यस्थितिकालोऽयमपुनर्मार्गगामिनः ।
ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां पुण्यपापकृतोऽपरम् ।
आभूतसम्प्लवान्ते तु क्षीयन्ते ह्यूर्ध्वरेतसः ॥२२०
ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्रास्ति वै स्मृतम् ।
एतद्विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम् ॥२२१

तत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णो परमं पदम् ।
धर्मध्रुवाद्यास्तिष्ठन्ति यत्र ते लोकसाधका ॥२२२

यहाँ पर जो निवास करने वाले हैं वे विमल, सिद्ध और ब्रह्मचारी हैं। वे निरन्तर जुगुप्सा करते हैं इससे उन्होंने मृत्यु को जीत लिया है ॥ २१७ ॥ उन ऊर्द्ध्वरेताओं के अट्ठासी सहस्र हैं जो अयमा के उदक् पन्था का आश्रय वाले हैं और भूतसप्लव अर्थात् महाप्रलय पर्यन्त वहाँ आश्रित रहते है ॥ २१८ ॥ इन सब कारणों से जो कि शुद्ध हैं वे अमृतत्व का सेवन करते थे। और भूतसप्लव तक स्थित रहने वालो का अमृतत्व विभावित होता है ॥ २१९ ॥ अयनमार्गगामिका यह त्रैलोक्य की स्थिति का काल है। ब्रह्म हत्या और अश्वमेधों से पुण्य, पाप कृत अपर है। भूतसप्लव के अन्त में ऊर्द्ध्वरेता भी क्षीण हो जाते हैं। ऊर्द्ध्वोत्तर महर्षियों के लिये जहाँ ध्रुव है वह कहा गया है। यह व्योम मे भास्वर तीसरा दिव्य विष्णु पद होता है जहाँ जाकर किसी प्रकार शोक नही करते हैं वही विष्णु का परम पद होता है। वहाँ धर्म ध्रुवादिक ठहरा करते हैं जहाँ वे लोक के साधक होते हैं ॥ २२२ ॥

॥ प्रकर्ण ३४—ज्योतिष प्रचार (२) ॥

स्वायम्भुवे निसर्गे तु व्याख्यातान्युत्तराणि तु ।
भविष्याणि च सर्वाणि तेषां वक्ष्याम्यनुक्रमम् ॥१
एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पप्रच्छुर्लोमहर्षणम् ।
सूर्याचन्द्रमसोश्चार ग्रहाणाञ्चैव सर्वश ॥२
भ्रमन्ते कथमेतानि ज्योतींषि दिवि मण्डलम् ।
तिर्यग्व्यूहेन सर्वाणि तथैवासङ्करेण च ।
कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम् ॥३
एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ।
भूतसम्मोहनन्त्वेतच्छ्रोतुमिच्छा प्रवर्त्तते ॥४
भूतसम्मोहनं ह्येतद् ब्रुवतो मे निबोधत ।
प्रत्यक्षमपि दृश्य मत्तत् सम्मोहयते प्रजा ॥५

योऽसौ चतुर्दिश पुच्छे शिशुमारे व्यवस्थित ।
उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढ़ीभूतो ध्रुवो दिवि ॥६
स हि भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहै सह ।
भ्रमन्तमनुगच्छन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥७

श्री सूत जी ने कहा—स्वायम्भुव निसर्ग मे जो चार व उनकी व्याख्या कर दी गई है । भविष्य मे जितने सब है उनका अनुक्रम बतलाया जायगा ॥१॥ यह सुनकर मुनिगण ने लोमहर्षण से पूछा कि सूर्य का चार और सब ग्रहों का चार कैसा होता है ? ॥२॥ ऋषियों ने कहा—दिविमण्डल मे ये ज्योतियाँ किस प्रकार से भ्रमण किया करती है । ये सब विवश मूढ़ से तथा किस प्रकार से भ्रमण किया करते है ? और इनको कौन भ्रमण कराया करता है अथवा ये स्वयं ही भ्रमण किया करते है ? ॥३॥ हे सत्तम ! हम सभी लोग इस बात को जानना चाहते हैं सो आप कृपा करके हमको सब बतलाइये । यह सुन सम्मोहन के जानने की इच्छा हमे होती है ॥४॥ श्री सूत जी ने कहा—अब मैं इस भूत सम्मोहन को ही बतलाता हूँ सो आप सब जान लेवे । जो यह प्रत्यक्ष मे देखने के योग्य है वही प्रजा का सम्मोहन किया करता है ॥५॥ जो यह चारो दिशाओं मे शिशुमार पुच्छ मे व्यवस्थित है वह राजा उत्तानपाद का मेढ़ीभूत पुत्र दिव मे ध्रुव है ॥६॥ वह ही स्वयं भ्रमण करता हुआ ग्रहो के साथ चन्द्र और आदित्य दोनो को भ्रमण कराया करता है और उन भ्रमण करते हुए के पीछे नक्षत्र समुदाय चक्र की भाँति किया करते है ॥७॥

ध्रुवस्य मनसा चासौ सर्पते ज्योतिषां गणः ।
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहै सह ॥८
वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै ।
तेषां योगश्च भेदश्च कालचारस्तथैव च ॥९

अस्तोदयौ तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे ।
विषुवद्ग्रहवर्णाश्च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्तते ॥१०
वर्षा घर्मो हिमं रात्रिः सन्ध्या चैव दिनं तथा ।
शुभाशुभं प्रजानाञ्च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्तते ॥११

ध्रुवेणाधिष्ठितश्चैव सूर्योऽप्यावृत्य तिष्ठति ।
तदेव दीप्तकिरणः स कालाग्निर्दिवाकरः ॥१२
परिवर्त्तं क्रमाद्विप्रा भाभिरालोकयन् दिशः ।
सूर्यः किरणजालेन वायुयुक्तेन सर्वशः ।
जगतो जलमादत्ते कृत्स्नस्य द्विजसत्तमा ॥१३
आदित्यपीतं सूर्याग्नेः सोमं सङ्क्रमते जलम् ।
नाडीभिर्वायुयुक्ताभिर्लोकाधानं प्रवर्त्तते ॥१४

ध्रुव के मन से यह भगण स्थिर भ्रमण किया करता है और सूर्य-चन्द्र और तारागण नक्षत्रों तथा ग्रहों के साथ भ्रमण किया करते हैं ॥ ८ ॥ ये सब वातानीकमयी बन्धनों से ध्रुव में बँधे हुए हैं। उनका योग भेद और कालचार होता है ॥ ९ ॥ अस्त, उदय तथा दक्षिणोत्तर अयन में अन्य उत्पात एवं विपुवत् यह सभी ध्रुव से ही प्रवृत्त हुआ करता है ॥ १० ॥ वर्षा, घाम, हिम, रात्रि, सन्ध्या तथा दिन और प्रजाओं का शुभ एवं अशुभ यह सभी कुछ ध्रुव से ही प्रवृत्त होता है ॥ ११ ॥ ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित जो है उनको अपःवृत करके सूर्य स्थित है इसी से यह दीप्त किरणों वाला—कालाग्नि और दिवाकर होता है ॥ १२ ॥ हे विप्रो ! हे द्विज सत्तमो ! सूर्य परिवृत्त क्रम से प्रभाओं से दिशाओं में आलोक करता हुआ जो कि सब ओर वायु से युक्त किरणों के जाल के द्वारा आलोक दिया करता है समस्त जगत् के जल का ग्रहण कर लेता है ॥ १३ ॥ सूर्याग्नि के आदित्य पीत जल को सोम सङ्क्रमित किया करता है। वायुयुक्त नाड़ियों से लोकाधान प्रवृत्त हुआ करता है ॥ १४ ॥

यत्सोमात् स्रवते सूर्यस्तदभ्रेष्ववतिष्ठते ।
मेघा वायुनिघातेन विसृजन्ति जलम्भुवि ॥१५
एवमुत्क्षिप्यते चैव पतते च पुनर्जलम् ।
नानाप्रकारमुदकन्तदेव परिवर्त्तते ॥१६
सन्धारणार्थं भूतानां मायैषा विश्वनिर्मिता ।
अनया मायया व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१७
विश्वेशो लोककृद्देवः सहस्रांशुः प्रजापतिः ।
धाता कृत्स्नस्य लोकस्य प्रभुर्विष्णुर्दिवाकरः ॥१८

सप्तलोकिकमम्भो च यत्सोमाश्रमस घ_तम् ।
सोमाधार जगत्सर्वमेतद्वाच्य प्रकीर्तितम ।।१९

सूर्यादुष्णं निसृवत सोमाच्छीत प्रवर्तत ।
शीतोष्णवीर्यो द्वावेतौ युक्तौ धारयता जगत् ।।२०

सोमाधारा न ी गङ्गा पवित्रा विमलोदका ।
सोमपुत्रपुरोगाश्च महानद्यो द्विजोत्तमा ।।२१

सोम से जो स्रवित होता है उसके आगे मे धूप अवस्थित रहता है । मेघ वायु के निघात प्राप्त कर उलटे ही भूमि पर जल का पात किया करते है ।। १५ ।। इस प्रकार से यह जल उत्क्षिप्त होता है और फिर गिरा करता है । यही जल अनेक प्रकार का परिवर्तित हुआ करता है ।।१६।। प्राणियो को सम्भ्रम करने के लिये यह विष्णुनिर्मित माया है और इस माया से य_ सचराचर त्रैलोक्य व्याप्त हो रहा है ।। १७ ।। यह समस्त विश्व का स्वामी लोको की रचना को करने वाला देव सहस्र किरणो वाला प्रजापति समस्त लोक का धाता प्रभु और विष्णु दिवाकर है ।। १८ ।। समस्त लौकिक जल सोम से आकाश से स व होता है । यह समस्त जगती तल ही सोम के आधार वाला है । यह बिल्कुल तथ्य ही कहा गया है ।। १९ ।। सूर्य से उष्णता का निस्रवण हुआ करता है । सोम से शीत की प्रवृत्ति होती है । ये दोनो शीतोष्ण वीर्य वाले है और दोनो ही युक्त होते हुये इस जगत को धारण किया करते है ।।२ ।। गङ्गा परम पवित्र नदी और विमल जल वाली सोम धारा है । हे द्विजोत्तमो ! य समस्त महानदियाँ सोम पुत्र के आगे चलने वाली होती है ।। २१ ।।

सर्वभूतशरीरेषु_ह्यापो ह्यनुगताश्च या ।
तप सन्दह्यमानेषु जङ्गमस्थावरेषु च ।
धूमभूतास्तु ता ह्यापो निष्क्रामन्तीह सर्वश ।।२२
तन चाभ्राणि जायन्त स्थानमभ्रमयं स्मृतम् ।
ताकस्तजा हि भूतभ्यो ह्याधत्त रश्मिभिर्जलम ।।२३
समुद्राद्वायुसयोगाद्वह त्यापो गभस्तय ।

यतस्त्वृतुवशात् काले परिवर्ती दिवाकरः ।
यच्छत्यपो हि मेघेभ्य शुचला शुक्लगभस्तिभिः ॥२४

अभ्रस्था प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिता ।
सर्वभूतहितार्थाय वायुभिश्च समन्ततः ॥२५

ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये ।
वायव्यं स्तनितञ्चैव वैद्युतञ्चाग्निसम्भवम् ॥२६

मेहनाच्च मिहेर्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च ।
न भ्रश्यन्ति यतस्त्वापस्तदभ्रं कवयो विदुः ॥२७

मेघाना पुनरुत्पत्तिस्त्रिविधा योनिरुच्यते ।
आग्नेया ब्रह्मजाश्चैव पक्षजाश्च पृथग्विधा ।
त्रिधा घना समाख्यातास्तेषा वक्ष्यामि सम्भवम् ॥२८

समस्त प्राणियो के शरीरो मे जो जल अनुगत होता है उनके जल जाने पर जगम और स्थावरों मे सबत्र ही उस जल का दाहीभाव हुआ करता है फिर वही जल धूमभूत होकर सब और निकलता है ॥ २२ ॥ उससे फिर बादलो की रचना होती है ये जल का स्थान ही कहा गया है । सूर्य का तेज ही किरणो के द्वारा भूतो से जल का आदान किया करता है ॥ २३ ॥ समुद्र से वायु के सयोग से किरणें जल का वहन किया करती है । क्योंकि फिर ऋतु के वश से काल मे दिवाकर परिवर्ती हो जाता है । शुक्ल किरणो के द्वारा मेघो से शुक्ल जल को देता है ॥ २४ ॥ अभ्रो मे रहने वाले जल वायु से समुदीरित होते हुये नीचे गिरा करते हैं ये जल समस्त प्राणियो के हित के लिये ही वायु के द्वारा भूमि पर प्रपतित हुआ करते हैं ॥ २५ ॥ फिर समस्त प्राणियो के हित सम्पादन करने के लिये छै मास तक यह जल भूमि पर बरसता रहता है । और वह वायव्य, स्तनित, वैद्युत तथा अग्नि सम्भव होता है ॥ २६ ॥ मेहन करने के कारण से यह मिह् धातु से मेघत्व को प्रकट किया करता है । यह जलो को भ्र शित नही किया करता है इसलिये कवि लोग इसे अभ्र कहा करते हैं ॥२७॥ पुन मेघो की उत्पत्ति का स्थान तीन प्रकार का बताया गया है । आग्नेय,

सर्वलौकिकसम्भो वै यस्मामाम्भस ह नभ्।
सोमाधारं जगत्सर्वमेतत्तथ्यं प्रकीर्तितम् ॥१९

सूर्यादुष्णं निस्रवते सोमाच्छीतं प्रवर्तते।
शीतोष्णवीर्यो द्वावेतौ युक्तौ धारयतो जगत् ॥२०

सोमाधारा नदी गङ्गा पवित्रा विमलोदका।
सोमपुत्रपुरोगाश्च महानद्यो द्विजोत्तमाः ॥२१

सोम से जो स्रवित होता है उसके भाग में सूर्य अवस्थित रहता है। मेघ वायु के निपात प्राप्त कर उसने ही भूमि पर जल का त्याग किया करते हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकार से यह जल उत्पन्न होता है और फिर गिरा करता है। वही जल अनेक प्रकार का परिवर्तित हुआ करता है ॥१६॥ प्राणियों को धारण करने के लिये यह विश्वनिर्मिता माया है और इस माया से यह सचराचर त्रैलोक्य व्याप्त हो रहा है ॥ १७ ॥ इस समस्त विश्व का स्वामी लोकों की रचना को करने वाला देव बहुत किरणों वाला प्रजापति समस्त लोक का धाता प्रभु और विष्णु दिवाकर है ॥ १८ ॥ समस्त लौकिक जल सोम से आकाश से प्राप्त होता है। यह समस्त जगती तल ही सोम के आधार वाला है। यह बिल्कुल तथ्य ही कहा गया है ॥ १९ ॥ सूर्य से उष्णता का निस्रवण हुआ करता है। सोम से शीत की प्रवृत्ति होती है। ये दोनों शीतोष्ण वीर्य वाले हैं और दोनों ही युक्त होते हुये इस जगत् को धारण किया करते हैं ॥२० ॥ गङ्गा परम पवित्र नदी और विमल जल वाली सोम धारा है। हे द्विजोत्तमो! ये समस्त महानदियाँ सोम पुत्र के आगे जाने वाली होती हैं ॥ २१ ॥

सर्वभूतशरीरेषु आपो ह्यनुगताश्च याः।
तेषु सन्दह्यमानेषु जङ्गमस्थावरेषु च।
धूमभूतास्तु ता आपो निष्क्रामन्तीह सर्वशः ॥२२
तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमभ्रमयं स्मृतम्।
अर्कस्तेजो हि भूतेभ्यो ह्याददे रश्मिभिर्जलम् ॥२३
समुद्राद्वायुसंयोगाद्वहन्त्यापो गभस्तयः।

यतस्त्वृतुवशात् काले परिवर्त्ती दिवाकर ।
यच्छत्यपो हि मेघेभ्य शुक्ला शुक्लगभस्तिभि ॥२४

अभ्रस्था प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिता ।
सर्वभूतहितार्थाय वायुभिश्च समन्तत ॥२५

ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये ।
वायव्य स्तनितञ्चैव वैद्युतञ्चाग्निसम्भवम् ॥२६

मेहनाच्च मिहेर्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च ।
न भ्रश्यन्ति यतस्तापस्तदभ्र कवयो विदु ॥२७

मेघानां पुनरुत्पत्तिस्त्रिविधा योनिरुच्यते ।
आग्नेया ब्रह्मजाश्चैव पक्षजाश्च पृथग्विधा ।
त्रिधा घना समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि सम्भवम् ॥२८

समस्त प्राणियों के शरीरों में जो जल अनुगत होता है उनके जल जाने पर जंगम और स्थावरों में सबत्र ही उस जल का दग्धीभाव हुआ करता है फिर वही जल धूमभूत होकर सब ओर निकलता है ॥ २२ ॥ उससे फिर बादलों की रचना होती है ये जल का स्थान ही कहा गया है । सूर्य का तेज ही किरणों के द्वारा भूतों से जल का आदान किया करता है ॥ २३ ॥ समुद्र से वायु के संयोग से किरणें जल का वहन किया करती हैं । क्योंकि फिर ऋतु के वश से काल में दिवाकर परिवर्त्त हो जाता है । शुक्ल किरणों के द्वारा मेघों से शुक्ल जल को देता है ॥ २४ ॥ अभ्रों में रहने वाले जल वायु से समुदीरित होते हुये नीचे गिरा करते हैं ये जल समस्त प्राणियों के हित के लिये ही वायु के द्वारा भूमि पर प्रपतित हुआ करते हैं ॥ २५ ॥ फिर समस्त प्राणियों के हित सम्पादन करने के लिये छैं मास तक यह जल भूमि पर बरसता रहता है । और यह वायव्य, स्तनित, वैद्युत तथा अग्नि सम्भव होता है ॥ २६ ॥ मेहन करने के कारण से यह मिहि धातु से मेघत्व को प्रकट किया करता है । यह जलों को भ्रंशित नहीं किया करता है इसलिये कवि लोग इसे अभ्र कहा करते हैं ॥२७॥ पुन मेघों की उत्पत्ति का स्थान तीन प्रकार का बताया गया है । आग्नेय,

ब्राह्म और पक्षज ये पृथक् प्रकार वाले होते हैं। घन तीन प्रकार वाले कहे गये हैं अब उनका सम्भव बतलाया जाता है ॥ २८ ॥

आग्नेयास्त्वण्डजाः प्रोक्तास्तस्मात् प्रवर्तनम्।
शीतदुर्दिनवाता ये स्वगुणास्ते व्यवस्थिताः ॥२९
महिषाश्च वराहाश्च मत्तमातङ्गगामिनः।
भूत्वा धरणिमभ्येत्य विचरंति रमन्ति च ॥३०
जीमूता नाम ते मेघा एतेभ्यो जीवसम्भवाः।
विद्युद्गुणविहीनाश्च घनधाराविलम्बिनः ॥३१
मूकाः घना महाकाया प्रवाहस्य वशानुगाः।
क्रोशमात्राश्च वर्षन्ति क्रोशार्द्धादपि वा पुनः ॥३२
पर्वताग्रनितम्बेषु वर्षन्ति च रमन्ति च।
बलाकागर्भदाश्चैव बलाकागर्भधारिणः ॥३३
ब्रह्मजानाम ते मेघा ब्रह्मनिश्वाससम्भवाः।
ते हि विद्युद्गुणोपेताः स्तनयन्ति स्वनप्रियाः ॥३४
तेषां शब्दप्रणादेन भूमिः स्वाङ्कुरोद्गमा।
राज्ञी राज्याभिषिक्तेव पुनर्यौवनमश्नुते।
तेष्वेव प्रीतिमासक्ता भूतानां जीवितोद्भवा ॥३५

जो आग्नेय मेघ होते हैं वे अण्डज होते है और उनका उनसे प्रवर्तन होता है। शीत दुर्दिन वात जो ये उनके अपने गुण है वे व्यवस्थित होते हैं ॥ २९ ॥ महिष वराह और मत्त मातङ्गगामी होकर धरणी में आकर विचरण किया करते हैं तथा रमण किया करते हैं ॥ ॥ जीमूत नाम वाले वे मेघ इनसे ही जीव सम्भूत होते हैं। वे विद्युद्गुण से रहित और घन धारा के विलम्बी होते हैं ॥ ३१ ॥ मूक अर्थात् गर्जन न करने वाले घन अर्थात् सघन चिकने बहुत बड़े काया अर्थात् आकार वाले और प्रवाह के वश में अनुगमन करने वाले ये एक कोश मात्र में अथवा आधे कोश में भी वर्षा किया करते हैं ॥ ३२ ॥ ये मेघ पर्वताग्र नितम्बों में बरसते हैं और रमण किया करते हैं। बलाकाओं के गर्भ के प्रदान करने वाले और बलाकाओं के गर्भधारी हुआ करते

हैं ॥ ३३ ॥ जो पुष्कल मेघ होते हैं व जल के निकलने से अग्नि ... करते हैं। ये विद्युद्गण से युक्त तथा स्वन (शब्द) किया करते हैं और गर्जना किया करते हैं ॥ ३४ ॥ उनके जल के प्रभाव से यह भूमि अपने समस्त अङ्कुरों से सम्पन्न वाली हो जाती है। आग के द्वारा अभिभूत की हुई वनों के प्रभाव से ही फिर यौवन की प्राप्ति कर लेती है। इनमें यह भूमि योनि को प्राप्त हुई अत्यन्त आसक्त होकर प्राणियों के जीवन को उत्पन्न करने वाली हो जाती है ॥ ३५ ॥

जीमूता नाम ते मेघास्तस्माज्जीवस्य सम्भवः।
द्वितीयं प्रवहं वायुं मेघास्ते तु समाश्रिताः ॥३६
एते योजनमात्राच्च सार्द्धाद्विकृतादपि।
वृष्टिसर्गस्तथा तेषां धारासारः प्रकीर्त्तिताः।
पुष्करावर्त्तका नाम ये मेघाः पक्षसम्भवाः ॥३७
शक्रेण पक्षाश्छिन्ना ये पर्वतानां महौजसाम्।
कामगानां प्रवृद्धानां भूतानां शिवमिच्छता ॥३८
पुष्करा नाम ते मेघा बृहन्तस्तोयमत्सराः।
पुष्करावर्त्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः ॥३९
नानारूपधराश्चैव महाघोरतराश्च ते।
कल्पान्तवृष्टेः स्रष्टारः संवर्त्ताग्नेर्नियामकाः ॥४०
वर्षन्त्येते युगान्तेषु तृतीयास्ते प्रकीर्त्तिताः।
अनेकरूपसंस्थाना पूरयन्तो महीतलम्।
वायुं परं वहन्त स्युराश्रिताः कल्पसाधकाः ॥४१
यान्यस्याण्डकपालस्य प्राकृतस्याभवंस्तदा।
तस्माद्ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्रः स्वयम्भुवः।
तान्येवाण्डकपालस्य सर्वे मेघाः प्रकीर्त्तिताः ॥४२

जीमूत नाम वाले वे मेघ होते हैं जिनसे जीवों का जन्म हुआ करता है। वे मेघ द्वितीय प्रवह वायु के समाश्रित हुआ करते हैं। ये साढ़े द्विगुणित योजन मात्र से भी इस प्रकार का उनका वृष्टि सर्ग होता है कि इसे धारासार कहा गया

है। पुष्कर और आवर्त नाम वाले पक्षसम्भव मेघ होते हैं ।। ३७ ।। स्वेच्छा से गमन करने की इच्छा वाले प्रभूत आंपियों की हितेच्छा से इन्द्र ने महान् ओज से मत्त पर्वतों के पंखों का छेदन कर दिया था ।। ३८ ।। पुष्कर नाम वाले जो मेघ हैं व बहुत बड़े और जल की मत्सरता रखने वाले होते हैं। इसी कारण से व पुष्करावर्त्तक इस नाम से शाब्दित हुए हैं। ३९ ।। अनेक प्रकार के रूपों को धारण करने वाले और महान् घोरतर तथा घोर वृष्टि के करने वाले एवं संवर्ताग्नि के नियामक होते हैं ।। ४० ।। ये युग के अन्त में वर्षा किया करते हैं और ये तृतीय कहे गये हैं। अनेक रूप और संस्थान वाले तथा इस महीतल को पूर देने वाले हैं और पर वायु का वहन करते हुए कल्प के साधक व्रतों पर आश्रित रहा करते हैं ।। ४१ ।। जो इस प्राकृत अण्ड के कपाल से उस समय में हुए थे जब चारों मुखों वाला स्वयम्भू ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था। ये ही अण्ड कपाल के सब मेघ प्रकीर्तित हुए हैं ।। ४२ ।।

तेषामाप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः ।
तेषां श्रेष्ठस्तु पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ।।४३
गजानां पर्वतानाञ्च मेघानां भोगिभिः सह ।
कुलमेकं पृथग्भूतं योनिरेका जलं स्मृतम् ।।४४
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवाः ।
तुषारवृष्टिं वर्षन्ति सर्वसस्यविवृद्धये ।।४५
षष्ठः परिवहो नाम तेषां वायुरपाश्रयः ।
योऽसौ धारयति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम् ।
दिव्यामृतजलां पुण्यां त्रिधा स्वर्गपथे स्थिताम् ।।४६
तस्या विष्यन्दनन्तोयं दिग्गजाः पृथुभिः करैः ।
शीकरं सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः ।।४७
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः ।
उदग् हिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षिणे ।
पुण्ड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र वै स्मृतम् ।।४८
तस्मिन्निपतितं वर्षं यत्तुषारसमुद्भवम् ।

ततस्त दानह्नो वायुर्हिमशैलात् समुद्वहन् ।
आनयत्यात्मयोगेन सिञ्चमानो महागिरिम् ॥४८

उस सब का भी अयन अविशेष रूप से धूम ही होता है। उनमें परम श्रेष्ठ पर्जन्य होता है और चारों दिग्गज होते हैं ॥ ४३ ॥ गजों का, मेघों का और पर्वतों का भोगियों के साथ पृथक् मूल एक ही कुल होता है और इनकी योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थल एक जल ही कहा गया है ॥ ४४ ॥ पर्जन्य और दिग्गज हेमन्त में शीत से जन्म ग्रहण करने वाले हैं। ये सब प्रकार के सस्यों की वृद्धि के लिये तुषार वृष्टि किया करते हैं ॥ ४५ ॥ परिवह नाम वाला श्रेष्ठ होता है जिसका अपाश्रय वायु होता है। जो यह भगवान् आकाश में दिखाई देने वाली, दिव्य, अत्यधिक जल से युक्त, पुण्या, विधा और स्वर्ग के मार्ग में स्थिति करने वाली गङ्गाधारण करते हैं ॥ ४६ ॥ उसके जल को विस्पन्दित करते हुए दिग्गज अपने पृथुकरों के द्वारा सीकर का मुञ्चन करते हैं वह नीहार कहा जाता है ॥ ४७ ॥ दक्षिण दिशा में जो गिरि है वह हेमकूट कहा जाता है। हिमाचल के पहाड़ के उत्तर और दक्षिण में पुण्ड्र नाम का नगर कहा गया है। वह नगर बहुत ही प्रसिद्ध है ॥ ४८ ॥ उसमें पड़ी हुई जो वर्षा है वह तुषार से समुद्भूत है। उससे उसका वहन करने वाला वायु हिमशैल से समुद्वहन करता हुआ आत्मयोग से महागिरि को सिञ्चन करता हुआ लाता है ॥ ४९ ॥

हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम् ।
इहाभ्येति ततः पश्चादपरान्तविवृद्धये ॥५०
मेघाश्चाप्यायनस्यैव सर्वमेतत् प्रकीर्तितम् ।
सूर्य एव तु वृष्टीनां स्रष्टा समुपदिश्यते ॥५१
ध्रुवेणा चेष्टितः सूर्यस्ताभ्यां वृष्टिः प्रवर्तते ।
ध्रुवेणावेष्टितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः ॥५२
ग्रहान्निःसृत्य सूर्यात्तु कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले ।
चारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण परिवेष्टितम् ॥५३
अतः सूर्यरथस्याथ सन्निवेशं निबोधत ।
संस्थितेनैकचक्रेण पञ्चारेण त्रिनाभिना ॥५४

हिरण्मयेन भगवान् पर्वणा तु महौजसा ।
नष्टवर्त्मान्धकारेण षट् प्रकार विनेमिना ।
प्रज्ञाण भास्वता सूर्य स्यन्दनेन प्रसर्पति ॥५५
दश योजनसाहस्रो विस्तारायामतः स्मृतः ।
द्विगुणोऽस्य रथोपस्थादीषादण्डप्रमाणतः ॥५६

हिमवान पर्वत का अतिक्रमण करके उससे आगे पृष्ट का शेष भाग कहा जाता है । इसके पश्चात् अपराह्न की वृद्धि के लिए वह वर्षा हुआ करती है ॥ ५ ॥ मध और आप्यायन यह सब कह दिया गया है । वृष्टियों के सृजन करने वाला सूर्य ही उपदिष्ट किया जाता है ॥ ५१ ॥ ध्रुव के द्वारा आवेष्टित सूर्य होता है इन दोनों से वृष्टि प्रवृत्त हुआ करती है । ध्रुव के द्वारा वायु फिर वृष्टि का संहार किया करता है ॥ ५२ ॥ सूर्य ग्रह से निकलकर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल के चार के अन्त में ध्रुव के द्वारा परिवेष्टित सूर्य में प्रवेश किया करता है ॥ ५३ ॥ इसके आगे उसके प्रथम तु सूर्य के रथ का सन्निवेश को समझ लो । एक चक्र से सहित होने वाले पाँच आर से विनाभिसे युक्त तथा महान् ओज वाले हिरण्मय पर्व से अंधकार एवं मार्ग के अन्धकार को दूर करने वाले तथा छः प्रकार की एक नेमि वाले भास्वान् भव वाले रथ से भगवान् प्रसर्पण किया करते हैं ॥ ५४—५५ ॥ दश हजार योजन के लम्बा विस्तार तथा आयाम कहा गया है जो ईषा दण्ड प्रमाण से इसके रथोपस्थ से दुगुना होता है ॥ ५६ ॥

स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथो ह्यर्थवशेन तु ।
असङ्गः काञ्चनो दिव्यो युक्तः पवनगैर्हयैः ॥५७
छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तु यतः शुक्रस्ततः स्थितः ।
वरुणस्यन्दनस्येह लक्षणैः सदृशस्तु सः ।
तेनाऽसौ चरति व्योम्नि भास्वता तु दिवाकरः ॥५८
अथेमानि तु सूर्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य तु ।
संवत्सरस्यावयवैः कल्पितानि यथा क्रमम् ॥५९
अहस्तु नाभिः सूर्यस्य एकचक्रः स वै स्मृतः ।
आराः पञ्चर्तवस्तस्य नेमिः षडृतवः स्मृताः ॥६

रथनीड स्मृतो ह्यब्दस्त्वयने कूबरावुभौ ।
मुहूर्ता बन्धुरास्तस्य शम्या तस्य कला स्मृता ॥६१
तस्य काष्ठा स्मृता घोणा ईषादण्ड क्षणास्तु वै ।
निमेषाश्चानुकर्षोऽस्येषा चास्य लवा स्मृता ॥६२
रात्रिर्वरूथो धर्मोऽस्य ध्वज ऊर्ध्वं समुच्छ्रित ।
युगाक्षकोटी ते ह्यस्य अर्थकामावुभौ स्मृतौ ॥६३

उसका वह रथ वर्ष के वश में रहने वाले ब्रह्मा के द्वारा निर्मित किया गया है जोकि सङ्ग रहित, दिव्य और सुवर्ण का है और पद-गमन करने वाले अश्वों से युक्त भी होता है ॥५७॥ अश्व स्वरूप छन्दों के द्वारा वहाँ युक्त है वहीं पर ही स्थित होता है। यहाँ वह वरुण के रथ के लक्षणों के सदृश ही होता है। शाश्वत उसके साथ वह व्योम में दिवाकर गमन किया करता है ॥५८॥ इसके उपरान्त सूर्य के रथ के इन प्रत्यङ्गों को सम्वत्सर के अवयवों के द्वारा यथाक्रम कल्पित किया गया है ॥५९॥ वह अर्थात् दिन सूर्य की नाभि है और यह एक चक्र वाला कहा गया है। पाँच ऋतुएँ ही उसके पाँच आरे होते हैं और छै ऋतुएँ उसकी नेमि बताई गई हैं ॥६०॥ अब्द रथ का नीड़ कहा गया है और दो अयन ही उसके दो कूबर हैं। मुहूर्त उसके बन्धुर हैं और कला उसकी शम्या है। ऐसा ही बताया गया है ॥६१॥ काष्ठा उसकी घोणा कही गई है और क्षण ईषादण्ड कहा गया है निमेष इसके अनुकर्ष हैं और लव इसका ईषा बताया गया है ॥६२॥ रात्रि इस रथ का वरूथ है। धर्म इसका ऊपर को समुच्छ्रित ध्वज है। अर्थ और काम ये दोनों उसके युगाक्ष कोटी कहे गये हैं ॥६३॥

साश्वरूपाश्छन्दांसि वहन्ते वामतो धुराम् ।
गायत्री चैव त्रिष्टुप्चानुष्टुब् जगती तथा ॥६४
पङ्क्तिश्च बृहती चैव उष्णिक् चैव तु सप्तमम् ।
अक्षे चक्र निबद्धन्तु ध्रुवे त्वक्ष समर्पित ॥६५
सहचक्रो भ्रमत्यक्ष सहाक्षो भ्रमति ध्रुव ।
अक्ष सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरित ॥६६

एवमध वशालस्य सन्निवेशो रथस्य तु ।
तथा संयोगभागेन संसिद्धो भास्वरो रथः ॥ ७
तेनासौ तरणिर्देवस्तरसा सर्पते दिवि ।
युगाक्षकोटिसम्बद्धौ रश्मी द्वौ स्यन्दनस्य हि ॥६८
ध्रुवेण भ्रमतो रश्मी निबद्धयुगयोस्तु वा ।
भ्रमतो मण्डलानि स्युः खेचरस्य रथस्य तु ॥६६
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु ।
ध्रुवेण संगृहीते वै द्विचक्रस्थ तरज्जुवत् । ७०

अश्व अश्वों के रूप में रहने वाले छन्द हैं जो वाममार्ग से धुरा को वहन करते हैं। वे सात छन्द गायत्री त्रिष्टुप् अनुष्टुप् जगती पंक्ति बृहती और सातवाँ उष्णिक है। अक्ष में चक्र निबद्ध है और यह अक्ष ध्रुव में समर्पित होता है ॥६४॥६५॥ चक्र के साथ अक्ष भ्रमण करता है और अक्ष के साथ में ध्रुव घुमता है। चक्र के साथ ही ध्रुव से प्रेरित होता हुआ यह अक्ष भ्रमण किया करता है ॥६६॥ इस प्रकार से अर्थ के वश से उसके रथ का यह सन्निवेश किया गया है और इस प्रकार से संयोग के भाव से सम्यक्तया सिद्ध उसका भास्वर रथ होता है ॥६७॥ इस रथ के द्वारा ही यह सूर्य देव दिव में वेग के साथ गमन किया करते हैं। उनके रथ के युगाक्ष कोटी से सम्बद्ध दो रश्मियाँ होती हैं ॥६८॥ निबद्ध युगों की दोनों रश्मियाँ ध्रुव के द्वारा भ्रमण किया करती हैं। भ्रमण करने वाले आकाशगामी रथ के मण्डल होते हैं ॥६६॥ उस स्यन्दन के दक्षिण युगाक्ष कोटी ध्रुव के द्वारा द्विचक्र स्थर रज्जु की भाँति संगृहीत होती है ॥७०॥

भ्रमन्तमनुगच्छेता ध्रुवं रश्मी तु तावुभौ ।
युगाक्ष कोटी ते तस्य वातोर्मी स्यन्दनस्य तु ॥७१
कीलासक्तो यथा रज्जुर्भ्रमते सर्वतो दिशम् ।
ह्रसतश्चास्य रश्मी तौ मण्डलेष्वन्तरायणे ॥७२
वर्धेते दक्षिणे चैव भ्रमतो मण्डलानि तु ।
ध्रुवेण संगृहीतौ तु रश्मी वै नयतो रविम् ॥७३

आकृष्येते यदा तौ वै ध्रुवेण समधिष्ठितौ ।
तदा सोऽभ्यन्तरं सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ॥७४
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुभयोश्चरन् ।
ध्रुवेण मुच्यमानाभ्यां रश्मिभ्यां पुनरेव तु ॥७५
तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।
उद्वेष्टयन् स वेगेन मण्डलानि तु गच्छति ॥७६

भ्रमण करने वाले ध्रुव के पीछे वे दोनों रश्मियाँ अनुगमन किया करती हैं। उस स्यन्दन (रथ) की युगाक्ष कोटी वे वातोर्मी होती है ॥७१॥ जिस प्रकार से कील में आसक्त रज्जु सब दिशाओं में भ्रमण किया करती है रास को प्राप्त होने वाली उसकी वे दोनों रश्मियाँ उत्तरायण के मण्डलों में रहती है ॥७२॥ दक्षिण में मण्डलों का भ्रमण करने वाले उसकी ध्रुव के द्वारा संग्रहीत वे रश्मियाँ रवि को ले जाती हैं ॥७३॥ जिस समय में ध्रुव के द्वारा समधिष्ठित वे दोनों आकृष्यमाण होती हैं उस समय में सूर्य मण्डलों के अन्दर भ्रमण किया करते हैं। वह वेग के साथ उद्वेष्टित करते हुए मण्डलों को चले जाते हैं ॥७६॥

॥ प्रकरण ३५—ध्रुवचर्या

स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ॥१
एते वसन्ति वै सूर्ये द्वौ, द्वौ मासौ क्रमेण तु ।
धाताऽर्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः ॥२
उरगो वासुकिश्चैव सङ्कीर्णारश्च तावुभौ ।
तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ ॥३
क्रतुस्थल्यप्सराश्चैव तथा वै पुञ्जिकस्थली ।
ग्रामणी रथकृच्छ्रश्च तपोर्यश्चैव तावुभौ ॥४
रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावुदाहृतौ ।
मधुमाधवयोरेष गणो वसति भास्करे ॥५
वासन्तौ ग्रैष्मिकौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह ।

ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च तक्षको रम्भ एव च ।।६
मेनका सहजन्या च गन्धर्वो च हूहा हहू ।
रथ स्वनश्च ग्रामण्यो रथचित्रश्च तावुभौ ।।७
पौरुषेयो वधश्चैव यातुधानावुदाहृतौ ।
एतेवसन्ति वै सूर्ये मासयो शुचिशुक्रयो ।।८

शौनकजी ने कहा—यह सूर्य का रथ देव आदित्य और ऋषियों के द्वारा अधिष्ठित होता है। इसी प्रकार से ये गन्धर्व अप्सराएँ ग्रामणी सर्प और राक्षसों के द्वारा भी अधिष्ठित रहा करता है ।।१।। ये सब सूर्य में दो दो मास तक निवास किया करते हैं और क्रम से इनका वहाँ वास हुआ। भास्कर में जिसका निवास है उनका परिगणन किया जाता है धाता अर्यमा पुलस्त्य पुलह प्रजापति उरग वासुकि और संकीर्णार ये दोनों गायन करने वाले तुम्बुरु और नारद गन्धर्व क्रतुस्थली अप्सरा पुञ्जिकस्थली ग्रामणी रथकृच्छ्र और रथौज ये दोनों रक्ष हेति प्रहेति ये यातुधान और मधु माधव के मासों में यह गण भास्कर में वास करते हैं ।।२।।३।।४।।५।। वासन्त और ग्रैष्मिक दो-दो मास हैं उनमें मित्र वरुण अत्रि और वसिष्ठ ऋषि तक्षक रम्भ मेनका और सहजन्या तथा हूहा हूहू दो गन्धर्व रथस्वन ग्रामण्य और रथचित्र ये दोनों पौरुषेय और वध दो यातुधान ये शुचि शुक्र मासों में सूर्य में निवास करते हैं ।।६।।७।।८।।

ततः सूर्ये पुनस्त्वन्या निवसन्तीह देवताः ।
इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च ।।९
एलापत्रस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च तावुभौ ।
विश्वावसूग्रसेनौ च प्रातश्चैवारुणश्च तु ।।१०
प्रम्लोचेति च विख्याता निम्लोचेति च ते उभे ।
यातुधानस्तथा सर्पो व्याघ्रः श्वेतश्च तावुभौ ।
नभानभस्ययोरेष गणो वसति भास्करे ।।११
शरद्ववी पुनः शुभा वसन्ति मुनि देवताः ।
पर्जन्यश्चाथ पूषा च भरद्वाजः सगौतम ।।१२

विश्वावसुश्च गन्धर्वास्तथा वै सुरभिश्च यः ।
विश्वाची च घृताची च उभे ते शुभलक्षणे ॥१३
नागश्चैरावतश्चैव विश्रुतश्च धनञ्जयः ।
सेनाजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ॥१४
आपो वातश्च तावेतौ यातुधानावुभौ स्मृतौ ।
वसन्त्येते तु वै सूर्ये मासयोरिष ऊर्जयोः ॥१५

इसके अनन्तर फिर यहां सूर्य में अन्य देवता निवास करते हैं जिनमें इन्द्र, विश्वावसु, अङ्गिरा, भृगु, एलापत्र, शङ्ख और चन्द्रपाल ये दोनों विश्वा वसु-उग्रसेन, प्राप्त अरुण-विश्वात प्रम्लोचा और निम्लोचा ये दोनों, यातुधान तथा सर्प, व्याघ्र और श्वेत ये दोनों, यह गण नभ और नभस्य इन दो मासों में भास्कर में वास करते हैं ॥९॥१०॥११॥ शरद ऋतु में फिर शुभ मुनि और इनका वास किया करते हैं। पर्जन्य और पूषा, गौतम के साथ भरद्वाज, विश्वावसु, गन्धर्व और इसी भांति सुरभि, विश्वाची और घृताची ये दोनों शुभ लक्षणों से हैं शुक्र, नाग और ऐरावत, विश्रुत और धनञ्जय सेनजित और सुषेण-सेनानी और ग्रामणी ये दोनों जल और वात ये दोनों यातुधान कहे गए हैं ये सब निश्चय ही इष और ऊर्ज मासों में सूर्य में निवास करते हैं ॥१२॥१३॥ ॥१४॥१५॥

हैमन्तिकौ तु द्वौ मासौ वसन्ति तु दिवाकरे ।
अंशो भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च क्रतुश्च ह ॥१६
भुजङ्गश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा ।
चित्रसेनश्च गन्धर्व ऊर्णायुश्चैव तावुभौ ॥१७
उर्वशी विप्रचित्तिश्च तथैवाप्सरसौ शुभे ।
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ॥१८
विद्युत्स्फूर्जश्च तावुभौ यातुधानावुदाहृतौ ।
सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे ॥१९
ततः शैशिरयोश्चापि मासयोर्निवसन्ति वै ।
त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च ॥२०

काद्रवेयौ तथा नागौ कम्बलाश्वतरावुभौ ।
गन्धर्वो धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चास्तथैव च ॥२१
तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रम्भा मनोरमा ।
ऋतजित्सत्यजिच्चैव ग्रामण्यौ लोकविश्रुतौ ॥२२
ब्रह्मोपेतस्तथा रक्षो यज्ञोपेतश्च स स्मृत ।
एते देवा वसन्त्यर्के द्वौ मासौ तु क्रमेण तु ॥२३

हैमन्तिक अर्थात् हेमन्त ऋतु के दो मासों में तो निम्न लोग अर्थात् यथोल्लिखित सौर रथ में वास करते हैं—अंशु और भग ये दोनों कश्यप और ऋतु भुजङ्ग महापद्म सर्प तथा कर्कोटक गन्धर्व और ऊर्णायु ये दोनों उर्वशी और विप्रचित्ति ये दोनों शुभ अप्सराएँ—तार्क्ष्य और अरिष्टनेमि दो सेनानी और ग्रामणी विद्युत और स्फूर्ज ये दोनों उग्र यातुधान कहे गये हैं। सह और सहस्य मास में ये सब दिवाकर में बसते हैं ॥१६॥१७॥१८॥१९॥ इसी प्रकार से शिशिर ऋतु के दो मासों में त्वष्टा विष्णु जमदग्नि विश्वामित्र—कम्बल और अश्वतर ये दोनों काद्रवेय नाग गन्धर्व धृतराष्ट्र तथा सूर्यवर्चा अप्सरा तिलोत्तमा—देवी रम्भा मनोरमा—ऋतजित् लोक में प्रसिद्ध ग्रामणी ब्रह्मोपेत राक्षस और को यज्ञोपेत कहा गया है। इतने ये देवगण दो मास तक सूर्य क्रम से निवास किया करते हैं ॥२०॥२१॥२२॥२३॥

स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तका ।
सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम् ॥२४
ग्रथितैःस्वैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम् ।
गन्धर्वाप्सरसश्च गीतनृत्यैरुपासते ॥२५
ग्रामणीयक्षभूतास्तु कुर्वतेऽभीषुसङ्ग्रहम् ।
सर्पा वहन्ति सूर्यञ्च यातुधानानुयान्ति च ।
वालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद्रविम् ॥२६
एतेषामेव देवानां यथावीर्यं यथातपः ।
यथायोगं यथासत्त्वं यथाधर्मं यथाबलम् ॥२७

यथा तपत्यसौ सूर्यस्तेपां सिद्धस्तु तेजसा ।
इत्येते वै वसन्तीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे ॥२८
ऋषयो देवगन्धर्वा पन्नगाप्सरसाङ्गणाः ।
ग्रामण्यश्च तथा यक्षा यातुधानाश्च मुख्यशः ॥२९
एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च ।
भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीह कीर्तिता ॥३०

ये सब द्वादश और सात गण स्थान के अभिमानी होते हैं । ये सूर्य को भी तेज से उत्तम तेज द्वारा आप्यायित किया करते हैं ॥ २४ ॥ ये मुनिगण ग्रथित वचनों के द्वारा रवि का स्तवन किया करते हैं तथा गन्धर्व और अप्सरायें गीतों एवं नृत्यों के द्वारा सूर्य की उपासना किया करते हैं ॥ २५ ॥ ग्रामणी और यक्ष, भूत भीष ग्रहण किया करते हैं । नाग सूर्य का वहन करते हैं और यातुधान अनुयान किया करते हैं । बालखिल्यादि उदय से परिचर्या करके उस रवि को अस्ताचल में ले जाया करते हैं ॥ २६ ॥ इन देवों के यथा वीर्य, यथातप, यथायोग तथा सत्व के अनुसार धर्म और बल के अनुसार जैसे यह सूर्य तपता है उनके तेज से सिद्ध होता है । इतने ये सब दो दो मास पर्यन्त दिवाकर में यहाँ निवास किया करते हैं ॥ २७-२८ ॥ ऋषि लोग, गन्धर्व देव, पन्नग और अप्सराओं के गण, ग्रामणी लोग तथा यक्ष, यातुधान बहुत सारे । ये तपते हैं, वर्षते हैं, दीप्त होते हैं, वान करते हैं और सृजन करते हैं एवं प्राणियों के जो यहाँ पर अशुभ कर्म होते हैं उनका व्यपोह किया करते हैं इस प्रकार के कहे गये हैं ॥ २९-३० ॥

मानवानां शुभं ह्येते हरन्ति दुरितात्मनाम् ।
दुरितं हि प्रचाराणां व्यपोहन्ति क्वचित् क्वचित् ॥३१
विमानेऽवस्थिता दिव्ये कामगा वातरंहसः ।
एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवसानुगाः ॥३२
वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः ।
गोपायन्ति तु भूतानि सर्वाणीहामनुक्षयात् ॥३३
स्थानाभिमानिनामेतत् स्थानं मन्वन्तरेषु वै ।

काद्रवेयौ तथा नागौ कम्बलाश्वतरावुभौ ।
गन्धर्वो धृतराष्ट्रश्च सूर्य वर्चास्तथैव च ॥२१
तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रम्भा मनोरमा ।
ऋतजित्सत्यजिच्चैव ग्रामण्यौ लोकविश्रुतौ ॥२२
ब्रह्मोपेतस्तथा रक्षो यज्ञोपेतश्च स स्मृतः ।
एते देवा वसन्त्यर्के द्वौ मासौ तु क्रमेण तु ॥२३

हैमन्तिक अर्थात् हेमन्त ऋतु के दो मासो में तो निम्न सीय अर्थात् अधोगामित सीम रूप से वास करते हैं—अंश और भग ये दोनों कश्यप और ऋतु मुजङ्ग—महापद्म सर्प तथा कर्कोटक गन्धर्व और ऊर्णायु ये दोनों अप्सरी और चित्रसेन ये दोनों शुभ गन्धराट्—तार्क्ष्य और अरिष्टनेमि दो सेनानी और ग्रामणी विद्युत् और स्फूर्ज ये दोनों उग्र यातुधान कहे गये हैं। सह और सहस्य मास में ये सब दिवाकर में बसते हैं ॥१६॥१७॥१८॥१९॥ इसी प्रकार से शिशिर ऋतु के दो मासो में त्वष्टा विष्णु जमदग्नि विश्वामित्र-कम्बल और अश्वतर ये दोनों काद्रवेय नाग गन्धर्व धृतराष्ट्र तथा सूर्यवर्चा अप्सरा तिलोत्तमा—देवी रम्भा मनोरमा ऋतजित् लोक में प्रसिद्ध ग्रामणी ब्रह्मो पेत रक्षावश और जो यज्ञोपेत कहा गया है। इतने ये देवगण दो मास तक सूर्य रूप से निवास किया करते हैं ॥२१॥२२॥२३॥

स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तका ।
सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम् ॥२४
ग्रथितैस्स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते ॥२५
ग्रामणीयक्षभूतास्तु कुर्वते भीषसंग्रहम् ।
सर्पा वहन्ति सूर्यञ्च यातुधानानुयान्ति च ।
बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद्रविम् ॥२६
एते यथैव देवानां यथावीर्यं यथातपः ।
यथायोगं यथासत्त्वं यथाधर्मं यथाबलम् ॥२७

यथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषां सिद्धस्तु तेजसा ।
इत्येते वै वसन्तीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे ॥२८
ऋषयो देवगन्धर्वा पन्नगाप्सरसाङ्गणाः ।
ग्रामण्यश्च तथा यक्षा यातुधानाश्च मुख्यशः ॥२९
एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च ।
भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीह कीर्तिताः ॥३०

ये सब द्वादश और सात गण स्थान के अभिमानी होते हैं। ये सूर्य को भी तेज से उत्तम तेज द्वारा आप्यायित किया करते हैं ॥ २४ ॥ ये मुनिगण ग्रथित वचनों के द्वारा रवि का स्तवन किया करते हैं तथा गन्धर्व और अप्सरायें गीतों एवं नृत्यों के द्वारा सूर्य की उपासना किया करते हैं ॥ २५ ॥ ग्रामणी और यक्ष, भूत भीम संग्रह किया करते हैं। सर्प सूर्य का वहन करते हैं और यातुधान अनुयान किया करते हैं। बालखिल्यादि उदय से परिचर्या करके उस रवि को अस्ताचल में ले जाया करते हैं ॥ २६ ॥ इन देवों के यथा वीर्य, यथातप, यथायोग तथा सत्य के अनुसार धर्म और बल के अनुसार जैसे यह सूर्य तपता है उनके तेज से सिद्ध होता है। इतने ये सब दो-दो मास पर्यन्त दिवाकर में यहाँ निवास किया करते हैं ॥ २७-२८ ॥ ऋषि लोग, गन्धर्व देव, पन्नग और अप्सराओं के गण, ग्रामणी लोग तथा यक्ष, यातुधान बहुत सारे। ये तपते हैं, वर्षते हैं, दीप्त होते हैं, दान करते हैं और सृजन करते हैं एवं प्राणियों के जो यहाँ पर अशुभ कर्म होते हैं उनका व्यपोह किया करते हैं इस प्रकार के कहे गये हैं ॥ २९-३० ॥

मानवानां शुभं ह्येते हरन्ति दुरितात्मनाम् ।
दुरितं हि प्रचाराणां व्यपोहन्ति क्वचित् क्वचित् ॥३१
विमानेऽवस्थिता दिव्ये कामगा वातरंहसः ।
एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवसानुगाः ॥३२
वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः ।
गोपायन्ति तु भूतानि सर्वाणीहामनुक्षयात् ॥३३
स्थानाभिमानिनामेतत् स्थानं मन्वन्तरेषु वै ।

अतीतानागतानां च वर्तन्ते साम्प्रतं च ये ॥३४

एवं वसन्ति ते सूर्ये सप्तकास्ते चतुर्दशम् ।

चतुर्दशसु सर्गेषु गणा मन्वन्तरेषु च ॥ ५

ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु मुञ्चमाना घर्म हिमञ्च वर्षञ्च दिन निशाञ्च ।

गच्छन्त्यनुवशात् परिवृत्तरश्मिर्देवान् पितॄंश्च मनुजांश्च तर्पयन् ॥ ६

पीतांश्च देवानमृतेन सूर्य सोमं सुषुम्नेन विवर्द्ध यित्वा ।

शुक्ले तु पूर्ण दिवसक्रमेण तं कृष्णपक्षे विबुधाः पिबन्ति ॥ ७

ये मानवों के शुभ कर्मों का तथा अपने भावों के अच्छे कर्मों का हरण किया करते हैं । कहीं-कहीं पर प्रचारों के दुरित का अपरोह किया करते हैं ॥ ३१ ॥ दिव्य विमान में अपने काम के अनुसार गमन करने वाले चारु रहते ये सब के साथ ही दिन में अनुगमन करने वाले होते हुए भ्रमण किया करते हैं ॥ ३२ ॥ वर्षण करते हुए तपते हुए और प्रजा को आह्लादित करते हुए यहाँ पर अनुक्रम से समस्त प्राणियों की रक्षा किया करते हैं ॥ ३३ ॥ स्थानाभिमानियों के मन्वन्तरों में यह स्थान है अतीत और अनागतों तथा जो साम्प्रत हैं वर्णित होते हैं । ३४ ॥ इस प्रकार से ये सातक चारों दिशाओं में सूर्य में वास किया करते हैं जो चौदह सर्गों में और मन्वन्तरों में गण बसते हैं ॥ ३५ ॥ ग्रीष्म काल में हिम में और वर्षाओं में घाम हिम तथा वर्षा का मुञ्चन करते हुए एवं दिन और रात्रि को बनाते हुए समय से ऋतु के कारण परिवृत्त रश्मियों वाला देव पितर और मनुष्यों को तृप्त करते हुए चलते हैं ॥ ३६ ॥ सूर्य देवताओं को अमृत के द्वारा प्रसन्न करता है और चन्द्रमा को सुषुम्ना के द्वारा विशेष रूप से वमन करके प्रसन्न किया करता है । शुक्लपक्ष में ही पूर्ण और दिनों के क्रम से कृष्णपक्ष में इसको देवता लोग पान करते हैं ॥ ३७ ॥

पीतन्तु सोमं द्विकलावशिष्टं कृष्णक्षये रश्मिभिरस्त कारतम् ।

सुधामृतं तत्पितरः पिबन्ति देवाश्च सौम्याश्च तथैव काव्यम् ॥३८

सूर्येण गोभिस्तु समुद्धृताभिरद्भिः पुनश्चैव समुद्धृताभिः ।

वृष्ट्याभिवृद्धाभिरथौषधीभिर्मर्त्याः क्षुधं त्वन्नपानैर्जयन्ति ॥३९

अमृतेन तृप्तिस्त्वर्द्ध मास सुराणां मासार्द्ध तृप्ति स्वधया पितॄणाम् ।
अन्नेन शश्वत् दधाति मर्त्यान् सूर्य स्वयं तच्च बिभर्ति गोभि ॥४०
अयं हरिस्तैर्हरि भिस्तुरङ्गैरभ्यन्हि चापो हरते तु रश्मिभि ।
विसर्गकाले विसृजश्च ता पुनर्बिभर्ति वाश्चन् सविता चराचरम् ॥४१
हरिहरिद्भिर्ह्रियते तुरङ्गैः पिबत्यथापो हरिभि सहस्रधा ।
तत पुनश्चैत्यपि तान्वर्गो हरि स मुह्यमानो हरिभिस्तुरङ्गमै ॥४२
इत्येव एकचक्रेण सूर्यस्तूर्ण रथेन तु ।
भद्रैस्तैरक्षतैरश्वै सर्पतेऽसौ दिवि क्षयें ॥४३
अहोरात्राद्रथेनासौ एकचक्रेण तु भ्रमन् ।
सप्तद्वीपसमुद्रान्ता सप्तभि सप्तभिर्हयै ॥४४

द्विकाला वशिष्ठ पीत सोम को कृष्णपक्ष मे रश्मियों के द्वारा धारण करते हुए उस सुधामृत को पितर पान किया करते हैं । देव और सौम्य उसी प्रकार से स्वधा का पान किया करते है ॥ ३८ ॥ सूर्य की किरणो से जो कि समुद्भूत है और फिर समुद्भूत जलो से वृष्टि मे सम्पन्न बढ़ी हुई औषधियो मे मनुष्य क्षुधा को अन्न पानो से जीता करते है ॥ ३९ ॥ अमृत से देवों की तृप्ति आधे मास तक होती है और सुधा से पितरो की मासार्द्ध तृप्ति हुआ करती है । मनुष्यो को अन्न मे सर्वदा तृप्ति होती है अन्न सूर्य स्वयं किरणो द्वारा इसका भरण किया करता है ॥ ४० ॥ यह हरि है जो उन हरि तुरङ्गमो के द्वारा जाता हुआ रश्मियो से जलो का हरण किया करता है और जब उनके त्याग का समय आता है तो पुन उनका विसर्जन करता हुआ सविता निरन्तर चराचर का भरण किया करता है ॥ ४१ ॥ हरि हरित् तुरङ्गमो मे ह्रियमाण होते है और सहस्रों प्रकार से हरियो के द्वारा जल का पान किया करते है । फिर इसके अनन्तर उनको यह हरि त्यागते है यह हरि हरि तुरङ्गमो से मुह्यमान होते है ॥ ४२ ॥ इस तरह से सूर्य एक चक्र (पहिया) वाले रथ के द्वारा उन भद्र अक्षत अश्वों से दिव मे क्षय में सर्पण किया करता है अर्थात् दौड़ लगाता रहता है ॥ ४३ ॥ यह इस रथ से जो कि एक ही चक्र वाला है एक अहोरात्र मे सात सात अश्वो से सात द्वीप वाले समुद्रो के अन्त तक भ्रमण करता है ॥ ४४ ॥

छन्दोभिरश्वरूपैस्तैर्यतश्चक्रं ततः स्थितैः ।
कामरूपैः सकृद्युक्तैरमितैस्तैर्मनोजवैः ॥४५
हरितैरव्ययैः पिङ्गैरीश्वरैर्ब्रह्मवादिभिः ।
अशीतिं मण्डलशतं भ्रमन्त्यह्नेन ते हयाः ॥४६
बाह्यमभ्यन्तरञ्चैव मण्डलं दिवसक्रमात् ।
कल्पादौ सम्प्रयुक्तास्ते वहन्त्याभूतसम्प्लवात् ।
आवृता बालखिल्यैस्ते भ्रमन्ते रात्र्यहानि तु ॥४७
ग्रथितैः स्वैर्वचोभिश्च स्तूयमानो महर्षिभिः ।
सेव्यते गीतनृत्यैश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
पतङ्गैः पतगैरश्वैर्भ्रममाणो दिवस्पतिः ॥४८
वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि तथा शशी ।
ह्रासवृद्धी तथैवास्य रश्मीनां सूर्यवत् स्मृते ॥४९
त्रिचक्रोभयपार्श्वस्थो विज्ञेयः शशिनो रथः ।
अपां गर्भसमुत्पन्नो रथः साश्वः ससारथिः ।
शताराश्च त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः ॥५०
दशभिस्तु कृशैर्दिव्यैरसङ्गैस्तैर्मनोजवैः ।
सकृद्युक्तैः रथे तस्मिन् वहन्ते चायुगक्षयात् ॥५१

उन छन्द रूप अश्वों से जहाँ चक्र है वहाँ ही स्थित और काम रूप वाले एकबार युक्त किये हुए अमित मनोवेगों से युक्त हरित अव्यय पिङ्ग ब्रह्मवादी ईश्वर के समान हैं जो अह्न में अस्सी मण्डलों का भ्रमण किया करते हैं ॥ ४५-४६ ॥ दिनों के क्रम से बाह्य और अभ्यन्तर मण्डल को कल्प के आदि में सम्प्रयुक्त वे भूत सम्प्लव तक वहन किया करते हैं। बालखिल्यों से आवृत हुए वे रात्रि और दिन वहन किया करते हैं ॥ ४७ ॥ परम प्रथित एवं स्वक वचनों से महर्षियों के द्वारा स्तूयमान तथा गन्धर्व और अप्सराओं के द्वारा गीत एवं नृत्यों से सेव्यमान होते हैं। दिवस्पति पतङ्ग पतग अश्वों के द्वारा भ्रममाण होते हुए रहते हैं ॥ ४८ ॥ तथा चन्द्रमा वीथी के आश्रय स्वरूप नक्षत्रों का चरण किया करता है। सूर्य की भाँति इसकी किरणों का ह्रास

और वृद्धि उसी प्रकार से कही गई है ॥ ४९ ॥ तीन चक्र वाला उभय पार्श्वों से स्थित चन्द्रमा का रथ समझना चाहिए जो जल के गर्भ से अश्वों तथा सारथि के सहित उत्पन्न हुआ है । एक सौ अर वाला, तीन चक्रों से युक्त और शुक्ल अश्वों के सहित होता है ॥ ५० ॥ सङ्ग से रहित, कृश, दिव्य और मन के तुल्य वेग वाले दश अश्वों से एकबार उस रथ में युक्त करके युग के क्षय पर्यन्त उसका वहन होता है ॥ ५१ ॥

संगृहीते रथे तस्मिन् श्वेतश्चक्षुःश्रवास्तु वै ।
अश्वास्तमेकवर्णास्ते वहन्ते शङ्खवर्चसम् ॥५२
ययुश्च त्रिमनाश्चैव वृषो राजीवलो हय ।
अश्वो वामस्तुरण्यश्च हंसो व्योमी मृगस्तथा ॥५३
इत्येते नामभिः सर्वे दश चन्द्रमसो हयाः ।
एते चन्द्रमसं देव वहन्ति दिवसक्षयात् ॥५४
देवैः परिवृतः सौम्यः पितृभिश्चैव गच्छति ।
सोमस्य शुक्लपक्षादौ भास्करे पुरतः स्थिते ।
आपूर्यते परस्यान्तः सततं दिवसक्रमात् ॥५५
देवैः पीतं क्षये सोममाप्याययति नित्यदा ।
पीतं पञ्चदशाहं तु रश्मिनैकेन भास्करः ॥५६
आपूरयन् सुषुम्नेन भागं भागमहः क्रमात् ।
सुषुम्नाप्यायमानस्य शुक्ला वर्द्धन्ति वै कलाः ॥५७
तस्माद्ध्रसन्ति वै कृष्णे शुक्ले आप्याययन्ति च ।
इत्येवं सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ॥५८

उस संगृहीत रथ में श्वेत चक्षुश्रवा एक वर्ण वाले अश्व उस शङ्ख वर्चस रथ का वहन किया करते हैं ॥ ५२ ॥ उनके नामों का यहाँ परिगणन किया जाता है । ययु, त्रिमना, वृष, राजीवल, हय, अश्व वाम, तुरण्य, हंस, व्योमी, मृग ये दश इन नामों वाले चन्द्रमा के अश्व हैं । ये चन्द्र देव दिवस के क्षय से वहन किया करते हैं ॥ ५३ ॥ देवों तथा पितरों के द्वारा परिवृत एवं सौम्य चन्द्र गमन करते हैं । शुक्लपक्ष के आदि में भास्कर के आगे स्थित होने पर

चन्द्रमा के पु का अन्तर्भाग [दिन के क्रम मे सतत आपूर्ण न होता है ।। ५५ ।। सत्य मे रश्मि के द्वारा पीत सोम को नि य ही अ प्यायित करता है । प ह दिन तक वह पीत होता है और मासकर अपनी एक ही रश्मि से वह क्रम से अनुसार भाग भाग को आपूरित सुषुम्ना से करते हुए रहते हैं और सुषुम्ना से आ यायमान चन्द्र की शुक्ल कलाएँ बढ़ा करती हैं ।। ५६-५७ ।। उससे कृष्ण पक्ष मे क्षमित होती हैं और शुक्ल मे आप्यायित हुआ करती हैं । इस प्रकार से सूर्य के वीर्य से चन्द्रमा का शरीर आप्यायित हुआ करता है ।। ५८ ।।

पौर्णमास्यां स दृश्येत शुक्ल सम्पूर्णमण्डल ।
तदाप्यायित सोम शुक्लपक्षे दिनक्रमात ।।५९
ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्दशी ।
अपां सारमयस्येन्दो रसमात्रात्मकस्य च ।
पिबन्त्यम्बुमयं देवा मधु सौम्यं सुधामयम् ।।६०
सम्भृतञ्चार्द्धमासेन अमृत सूर्यतेजसा ।
भक्षार्थमम । सौम्य पौर्णमास्यामुपासते ।।६१
एकरात्रं सुर सर्वं पितृभिश्च म. षिभि ।
सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य च ।।६२
प्रक्षीयते परस्परन्तु पीयमाना कलाः क्रमात् ।
त्रयस्त्रिंशत्शतश्चान्ये त्रयस्त्रिंशत्सहस्रकाः ।
एव दिनक्रमात्पीते विबुधास्तु निशाकरम् ।
पीत्वार्द्धमासङ्गच्छन्ति अमावास्यां सुरोत्तमाः ।
पितरश्चोपतिष्ठन्ति अमावास्यां निशाकरम् ।।६४
ततः पञ्चदशो भाग किञ्चिच्छिष्टः कलात्मकः ।
अपराह्णे पितृगणा जघन्य पर्युपासते ।।६५

पौर्णमासी तिथि मे सम्पूर्ण मण्डल शुक्ल दिखलाई देता है । इस प्रकार से सोम (चन्द्र) शुक्लपक्ष मे दिनों के क्रम से आप्यायित हुआ करता है ।। ५९ ।। फिर इसके उपरान्त मे द्वितीया तिथि से चतुर्दशी तक जलों के सार भूत इन्दु का जो कि रस मात्रात्मक ही होता है उसके अम्बुमय मधु सौम्य

और अमृतमय को देवता लोग पान किया करते हैं ॥ ६० ॥ सूर्य के तेज से अर्ध मास में वह अमृत पुनः सम्भृत हो जाता है। सौम्य जो अमृत है उसका भक्षण करने के लिये पूर्णमासी तिथि में उपासना की जाती है ॥ ६१ ॥ भास्कर की अभिमुख में स्थित चन्द्रमा की कृष्णपक्ष के आदि में एक रात्रि में देवता, सोमस्व पिता और महर्षियों के द्वारा पीई गयी कलाएँ क्रम से पुर के अन्दर क्षीण हो जाया करती हैं। जो शुक्लपक्ष में आप्यायित होती हैं वे सब कृष्णपक्ष में क्षीण हो जाया करती हैं ॥ ६२ ॥ इस प्रकार से दिनों के क्रम के व्यतीत होने पर पितृ लोग निशाकर का पान करके अमावस्या तिथि में सुरोत्तम अद्र्ध का आसन्न मन किया करते हैं। अमावस्या में पितृगण निपान करके उपस्थान को करते हैं। ६३-६४ ॥ इसके अनन्तर कलात्मक पन्द्रहवें भाग के कुछ शेष रहने पर अपराह्न में जघन्य वह पितृगणों के द्वारा पर्युपासित किया जाता है ॥ ६५ ॥

पिबन्ति द्विकलाकाल शिष्टा तस्य तु या कला ।
निःसृत तदमावास्यान्तुभस्तिभ्य स्वधामृतम् ।
ता स्वधा मासतृप्त्यै तु पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम् ॥६६
सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्तास्तथैव च ।
काव्याश्चैव तु ये प्रोक्ता पितरः सर्व एव ते ॥६७
संवत्सरास्तु वै काव्याः पञ्चाब्दा ये द्विजैः स्मृताः ।
सौम्यास्तु ऋतवो ज्ञेया मासा बर्हिषदः स्मृताः ।
अग्निष्वात्तार्तवश्चैव पितृसर्गो हि वै द्विजाः ॥६८
पितृभिः पीयमानस्य पञ्चदश्या कला तु वै ।
यावन्न क्षीयते तस्य भागः पञ्चदशस्तु सः ॥६९
अमावस्यान्तदा तस्य अन्तमापूर्यते परम् ।
वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडश्याः शशिनः स्मृतौ ॥७०
एवं सूर्यनिमित्तैषा क्षयवृद्धिर्निशाकरे ।
ताराग्रहाणां वक्ष्यामि स्वर्भानोश्च रथं पुनः ॥७१
तोयतेजोमयः शुभ्रः सोमपुत्रस्य वै रथः ।

मुक्तो हरी पिशङ्गस्तु अष्टाभिर्वानरहुनै ॥७२

उनको जो कला शिष्ट होती है उसे दो कला के काल तक पान किया करते हैं । अमावस्या में किरणों के द्वारा जो स्वधामृत निःसृत होता है उस स्वधामृत को वे एक मास की तृप्ति के लिये पान कर जाते हैं ॥ ६६ ॥ सौम्य बर्हिषद अग्निष्वात्त और काव्य जो ये कहे गये हैं वे सभी पितर होते हैं ॥६७॥ सम्वत्सर काव्य होते हैं जो द्विजो में पाँच अब्द बतलाये हैं । सौम्य ऋतुएँ जाननी चाहिए और मास बर्हिषद कहे गये हैं । अग्निष्वात्त आर्तव होते हैं । हे द्विजो ! ये सब पितृगण का सर्ग होता है ॥ ६८ ॥ पितृगणों के द्वारा पीयमान चन्द्र की पन्द्रहवी (अमावस्या) में जब तक पन्द्रहवा भाग शेष नहीं होता है तब तक अमावस्या में उसके अन्दर पर आपूरित हो जाता है । चन्द्र के षोडशी में पक्ष के आदि में वृद्धि और क्षय कहे गये हैं ॥ ७ ॥ इस प्रकार से निशाकर में जो भी क्षय एवं वृद्धि होती है सब के निमित्त वाली हो हुआ करती है । ताराग्रहों को और स्वर्भानु के रथ को फिर बतलाया जायगा ॥ ७१ ॥ सोम पुत्र का रथ तोय (जल) और तेज से परिपूर्ण होता है और शब्द वाला होता है । और यह रथ आठ वायु के तुल्य वेग वाले एवं पिशङ्ग अश्वों से युक्त होता है ॥ ७२ ॥

समरूप सानुकर्ष सता दिव्या रथ महान् ।
सोपासङ्गपताकस्तु सध्वजो मेघसन्निभः ॥७३
भार्गवस्य रथः श्रीमांस्तेजसा सूर्यसन्निभः ।
पृथिवीसम्भवैर्युक्तो नानावर्णैर्हयोत्तमैः ॥७४
श्वेत पिशङ्ग सारङ्गो नील पीतो विलोहित ।
कृष्णश्च हरितश्चैव पृषत पृश्निरेव च ।
दशभिस्तैर्महाभागैरकृशैर्वातवेगिभि ॥७५
अष्टाश्व काञ्चन श्रीमान् भौमस्यापि रथोऽभवत् ।
पद्मरागारुणैरश्वैः संयुक्तो वह्निसम्भवैः ।
सर्वतोऽसौ कुमारो वै ऋजुवक्रानुवक्रगः ॥७६
ततस्तथाङ्गिरसो विद्वान् देवाचार्यो बृहस्पतिः ।

शोणैरश्वैः कानजेन स्यन्दनेन प्रसर्पति ॥७७
युक्तस्तु वाजिभिर्दिव्यैरष्टाभिर्वायुरंहसैः ।
नक्षत्रेऽब्दमेकं निवसति सवेगस्तेन गच्छति ॥७८
ततः शनैश्चरोऽप्यश्वैः शबलैर्व्योमसम्भवैः ।
कार्ष्णायसं समारुह्य स्यन्दनं याति वै शनैः ॥७९

उस रथ में वरूथ के सहित अनुकर्ष से युक्त महान्, दिव्य सून होता है। और यह उपासङ्ग एवं पताका से अन्वित एवं ध्वजा के सहित मेघ के तुल्य होता है ॥ ७३ ॥ भार्गव का रथ तेज से सूर्य के सदृश होता है। यह पृथ्वी में जन्म लेने वाले नाना प्रकार के वर्ण वाले उत्तम अश्वों से युक्त होता है ॥ ७४ ॥ अब उन अश्वों के नामों की यहाँ परिगणना की जाती है। श्वेत, पिशङ्ग, सारङ्ग, नील, पीत, विलोहित, कृष्ण, हरित पृषत और पृष्णि ये दश अकृश वायु के वेग वाले महाभाग अश्वों से युक्त रथ होता है ॥ ७५ ॥ आठ अश्वों वाला सुवर्ण का बना हुआ शोभा से युक्त सोम का रथ था। सवन जाने वाले, सङ्ग से रहित, अग्नि से समुत्पन्न लोहित अश्वों के द्वारा ऋजु और वक्र चक्र का अनुग यह कुमार सर्पण किया करता है ॥ ७६ ॥ इसके आगे आङ्गिरस, देवों के आचार्य परम विद्वान बृहस्पति शोण अश्वों से युक्त सुवर्णमय रथ से प्रसर्पण करते हैं ॥ ७७ ॥ दिव्य और वायु के सदृश आठ अश्वों से युक्त होता हुआ नक्षत्र पर एक अब्द तक निवास किया करता है फिर वेग के साथ उससे छूट जाता है ॥७८॥ फिर इसके अनन्तर शनैश्चर व्योम से समुत्पन्न शबल अर्थात् रङ्ग-बिरंगे अश्वों से युक्त काले लोह से निर्मित रथ में चढ़कर धीरे से जाया करता है ॥ ७९ ॥

स्वर्भानोस्तु तथैवाश्वाः कृष्णा ह्यष्टौ मनोजवाः ।
रथन्तमोमयन्तस्य सकृद्युक्ता वहन्त्युत ॥८०
आदित्यान्निःसृतो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु ।
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु ॥८१
अथ केतुरथस्याश्वा अष्टाष्टौ वातरंहसः ।
पलालधूमसङ्काशाः शबला रासभारुणाः ॥८२

एते वाहा ग्रहाणां च मया प्रोक्ता रथै सह ।
सर्वे ध्रुवनिबद्धास्ते प्रबद्धा वातरश्मिभिः ॥८३

एते च भ्राम्यमाणास्तु यथा योगं भ्रमन्ति च ।
वायव्याभिरदृश्याभिः प्रबद्धा वातरश्मिभिः ॥८४
परिभ्रमन्ति तद्बद्धाश्चन्द्रसूर्यग्रहा दिवि ।
भ्रमन्तमनुगच्छन्ति ध्रुवं ते ज्योतिषां गणाः ॥८५

यथा नद्युदके नौस्तु सलिलेन सहोह्यते ।
तथा देवालया ह्येते उह्यन्ते वातरश्मिभिः ।
तस्मात्स्वर्गेण दृश्यन्ते व्योम्नि देवगणास्तु ते ॥८६

स्वर्भानु के अश्व भी इसी प्रकार के होते हैं। वे काले और आठ होते हैं जिनका मन के तुल्य वेग होता है। उसके अष्टकात्मक रथ से एक बार युक्त होते हुए वहन किया करते हैं ॥ ८० ॥ आदित्य से निकला हुआ राहु पर्वों में चन्द्रमा को चला जाता है। पुनः सौर पर्वों में सोम से निकलकर आदित्य में आया करता है ॥ ८१ ॥ इसके अनन्तर केतु के रथ के भी आठ अश्व होते हैं जिनका वेग वायु के तुल्य हुआ करता है। इनका रंग पलाल के धुओं के समान होता है भयद और दारुणाङ्ग होता है ॥ ८२ ॥ ये ग्रहों के वाहन अपने रथों के सहित बतला दिए हैं। ये सब ध्रुव से निबद्ध और वात रश्मियों से प्रबद्ध होते हैं ॥ ८३ ॥ ये भ्राम्यमाण होते हुए योग के अनुसार ही भ्रमण किया करते हैं। अदृश्य वायव्याओं से वातरश्मियों प्रबद्ध हैं ॥ ८४ ॥ उनसे बद्ध चन्द्र सूर्य और ग्रह दिव में परिभ्रमण किया करते हैं। भ्रमण करते हुए ध्रुव के पीछे ज्योतियों के गण अनुगमन किया करते हैं ॥ ८५ ॥ जिस प्रकार से नदी के जल में नौका सलिल के साथ ही उह्यमान होती है उसी प्रकार से ये देवालय भी वातरश्मियों से उह्यमान हुआ करते हैं। इसी से वे देवगण आकाश में स्वर्ग के द्वारा दिखलाई दिया करते हैं ॥ ८६ ॥

यावन्त्यश्चैव ताराश्च तावन्तो वातरश्मयः ।
सर्वा ध्रुवनिबद्धास्ता भ्रमन्त्यो भ्रामयन्ति तम् ॥८७

तैलपीडाकरं चक्रं भ्रमद्भ्रामयते यथा ।
तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातबद्धानि सर्वशः ॥८८
अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु ।
तस्माज्ज्योतींषि वहते प्रवहस्तेन स स्मृतः ॥८९
एवं ध्रुवनिबद्धोऽसौ भ्रमते ज्योतिषां गणः ।
एष तारामयो ज्ञेयः शिशुमारो ध्रुवो दिवि ।
यदह्ना कुरुते पापं दृष्ट्वा तं निशि मुच्यते ॥९०
यावन्त्यश्चैव तारास्ताः शिशुमाराश्रिता दिवि ।
तावन्त्येव तु वर्षाणि जीवत्यभ्यधिकानि तु ॥९१
शाश्वतः शिशुमारोऽसौ विज्ञेयः प्रविभागशः ।
उत्तानपादस्तस्याथ विज्ञेयो ह्युत्तरो हनुः ॥९२
यज्ञोऽधरस्तु विज्ञेयो धर्मो मूर्द्धानमाश्रितः ।
हृदि नारायणः साध्या अश्विनौ पूर्वपादयोः ॥९३

आकाश मण्डल में जितने तारागण हैं उतनी ही वात रश्मियाँ भी हैं । ये सभी ध्रुव के द्वारा निबद्ध होती हुई स्वयं भ्रमण किया करती हैं और उनको भ्रमण कराया भी करती हैं ॥ ८७ ॥ तैल पीडाकर चक्र (कोल्हू) जिस तरह भ्रमता हुआ भ्रमण कराया करता है उसी प्रकार सब ओर से वातबद्ध होकर ज्योतियाँ भी भ्रमण करती हैं ॥ ८८ ॥ वात चक्र से प्रेरित होकर अलात के चक्र की भाँति ये जाया करते हैं । इससे यह ज्योतियों को प्रवहन करता हुआ स्वयं बहता है, ऐसा कहा गया है ॥ ८९ ॥ इस प्रकार से ध्रुव के द्वारा निबद्ध हुआ हुआ ज्योतियों का गण भ्रमण किया करता है । यह यह दिव में तारामय शिशुमार ध्रुव जानना चाहिए । जो कि दिन में पाप किया करता है और उसको रात में देखकर उस पाप से छुटकारा पा जाता है ॥ ९० ॥ जितने ही ये तारा दिवि में शिशुमार के आश्रित होते हैं उतने ही अधिक वर्ष जीवित रहा करते हैं ॥ ९१ ॥ प्रविभाग से इस शिशुमार को शाश्वत जानना चाहिए । यह उत्तान पाद का उत्तर हनु है ॥ ९२ ॥ यज्ञ को अधर और धर्म को मूर्द्धा का आश्रय लेने वाला जानना चाहिए । हृदय में भगवान् नारायण को साध्य करना चाहिए, अश्विनीकुमारों का पूर्वपादों में साधन करना चाहिए ॥ ९३ ॥

वरुणश्चायमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनि ।
शिश्न संवत्सरस्तस्य मित्रश्चाने समाश्रित ॥९४
पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च मरीचि कश्यपो ध्रुव ।
तारका शिशुमारस्य नास्तमेति चतुष्टयम् ॥९५
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ।
उन्मुखाभिमुखा सर्वे चक्रीभूताश्रिता दिवि ॥९६
ध्रुवेणाधिष्ठिता सर्वे ध्रुवमेव प्रदक्षिणम् ।
प्रयान्तीह चरं चाग्निमेधीभूत ध्रुवं दिवि ॥९७
ध्रुवाग्निकश्यपानां तु वरस्यासौ ध्रुव स्मृत ।
एक एव भ्रमत्येष मेरुपर्वतमूर्द्धनि ॥९८
ज्योतिषाञ्चक्रमेतद्धि सदा कर्षन्नवाङ्मुख ।
मेरुमालोकयत्येष प्रयातीह प्रदक्षिणम् ॥९९

उसके पश्चिम सक्थि में वरुण तथा अयमा का ध्यान करना चाहिए । उसका शिश्न संवत्सर है । मित्र अपान में समाश्रित रहता है ॥ ९४ ॥ पुच्छ में अग्नि महेन्द्र मरीचि कश्यप और ध्रुव-तारक और शिशुमार ये चतुष्टय अस्त नहीं होते हैं ॥ ९५ ॥ नक्षत्र चन्द्र सूर्य ग्रह तारागणों के साथ उन्मुख तथा अभिमुख सब दिवि में चक्रीभूत होकर स्थित रहते हैं ॥ ९६ ॥ ये सब ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित हैं और ध्रुव ही प्रदक्षिण है । यहाँ चर अग्नि और एधीभूत ध्रुव को दिवि में प्रयाण किया करते हैं । ९७ ॥ ध्रुव अग्नि और कश्यप इन तीनों में ध्रुव ही श्रेष्ठ कहा गया है । यह एक ही मेरु पर्वत के मूर्द्धा में भ्रमण किया करता है । यह ज्योतियों का चक्र अवाङ्मुख होता हुआ सदा कर्षण किया करता है । यह मेरु को देखता है और वहाँ प्रदक्षिण को जाता है ॥ ९८ ९९ ॥

॥ प्रकरण ३५—ज्योतिमण्डल का विस्तार ॥

एतच्छ्रुत्वा तु मुनय पुनस्ते संशयान्विता ।
पप्रच्छुरुत्तरं भूयस्तदा वै लोमहर्षणम् ॥१

यदेतदुक्तम्भवता गृहाण्येतानि विश्रुतम् ।
कथं देवगृहाणि स्युः कथं ज्योतींषि वर्णय ॥२
एतत्सर्वं समाचक्ष्व ज्योतिषाञ्चैव निश्चयम् ।
श्रुत्वा तु वचनं तेषां तदा सूतः समाहितः ॥३
अस्मिन्नर्थे महाप्राज्ञैर्यदुक्तं ज्ञानबुद्धिभिः ।
तद्वोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्मतम् ।
यथा देवगृहाणीह सूर्याचन्द्रमसोर्गृहम् ॥४
अतः परं त्रिविधाग्नेर्वक्ष्येऽहन्तु समुद्भवम् ।
दिव्यस्य भौतिकस्याग्नेरथाग्नेः पार्थिवस्य च ॥५
व्युष्टायान्तु रजन्यां वै ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
अव्याकृतमिदन्त्वासीन्नैशेन तमसावृतम् ॥६
चतुर्भूतावशिष्टेऽस्मिन् पार्थिवः सोऽग्निरुच्यते ।
यश्चादौ तपते सूर्ये शुचिरग्निस्तु स स्मृतः ॥७

श्री शांशपायन ने कहा—मुनिगण ने यह सुनकर पुनः संशय से युक्त होकर अपने प्रश्न का लोमहर्षण से उत्तर पूछा ॥१॥ ऋषियों ने कहा—आपने जो यह कहा कि ये विश्रुत ग्रह हैं तो देवग्रह किस प्रकार से हैं और ज्योतियाँ किस तरह से हैं ? कृपा कर यह वर्णन करिये ॥ २ ॥ यह सब ज्योतियों का निश्चय बताइये । यह उनका वचन सुनकर उस समय सूत जी समाहित हुए और उन्होंने ऋषियों से कहा—॥ ३ ॥ महान् पण्डित तथा ज्ञान और बुद्धि वाले आप ने इस विषय में जो कुछ कहा है वह सब मैं आपसे सूर्य, चन्द्र का कथन करता हूँ । यहाँ पर जिस प्रकार से देवगृह सूर्य, चन्द्र के गृह हैं ॥ ४ ॥ इसके आगे मैं तीन प्रकार की अग्नि का समुद्भव भी कहूँगा । दिव्य अग्नि, भौतिक अग्नि और पार्थिव अग्नि—इन तीनों प्रकार की अग्नियों की उत्पत्ति भलीभाँति बतलाई जाती है ॥ ५ ॥ व्युष्ट रात्रि में अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा की यह निशा के अन्धकार से आवृत अव्याकृत था ॥ ६ ॥ चार भूतों में अवशिष्ट इसमें वह पार्थिव अग्नि कहा जाता है । जो आदि में सूर्य में ताप देता है वह शुचि अग्नि कहा गया है ॥ ७ ॥

वैद्युताख्यस्तु विज्ञ यस्तेषां वक्ष्येऽथ लक्षणम् ।
वैद्युतो जाठर सौरो ह्यपाङ्गर्भास्त्रयोऽग्नयः ।
तस्मादप पिबन् सूर्यो गोभिर्दीप्यत्यसौ दिवि ।।८
वद्युतेन समाविष्टो वार्क्ष्यो नाद्भि प्रशाम्यति ।
मानवानाञ्च कुक्षिस्थो नाद्भि शाम्यति पावक ।।९
अर्चिष्मान् पवन सोऽग्नि प्रभवो जाठर स्मृत ।
यश्चाय मण्डली शुक्लो निरुष्मा सम्प्रकाशते ।।१०
प्रभा हि सौरी पादेन ह्यस्त याति दिवाकरे ।
अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात् प्रकाशते ।।११
उद्यन्त च पुन सूर्यमौष्ण्यमाग्नेयमाविशन् ।
पादेन पार्थिवस्याग्नेस्तस्मादग्निस्तपत्यसौ ।।१२
प्रकाशश्च तथौष्ण्य च सौर्याग्नेये तु तेजसी ।
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ।।१३
उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तस्मादस्मिश्च दक्षिणे ।
उत्तिष्ठति पुन सूर्ये रात्रिराविशते ह्यप ।
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ।।१४

जो अग्नि वैद्युत—इस नाम वाला होता है उसका लक्षण बताया जायगा। तीन प्रकार की अग्नि होती है। एक वैद्युत दूसरा जाठर और तीसरा अपाङ्गर्भ होता है। इससे जलों का पान करता हुआ सूर्य आकाश में किरणों से दीप्त हुआ करता है ।। ८ ।। वैद्युत से समाविष्ट अग्नि जलों से कभी शान्त नहीं करता है। जो मानवों की कुक्षि में स्थित रहने वाला जाठर अग्नि होता है वह भी जल से शमन को प्राप्त नहीं हुआ करता है ।। ९ ।। यह अग्नि परम अर्चियों वाला होता है जिसका प्रभव जाठर कहा गया है। जो यह मण्डली शुक्ल और बिना ऊष्मा वाला सम्प्रकाशित होता है ।। १० ।। सौरी प्रभा पाद से दिवाकर के अस्ताचलगामी हो जाने पर अग्नि में आविष्ट हो जाती है। रात्रि में वह दूर से प्रकाश देती है ।। ११ ।। यह आग्नेय उष्णता उगते हुए सूर्य में पुनः आविष्ट हो जाया करती है। पाद से पार्थिव अग्नि में है अतएव यह अग्नि ताप दिया

करती है ॥ १२ ॥ प्रकाश और उष्णता सौर तथा आग्नेय तेज रात-दिन परस्पर मे अनुप्रवेश पाकर आप्यायित हुआ करते हैं ॥ १३ ॥ उत्तर के भूमि के अर्ध भाग मे और उससे इस दक्षिण मे पुन सूर्य के उदित होने पर रात्रि अप मे अर्थात् जल मे प्रवेश करती है। इसी से जल ताम्र वर्ण वाले हो जाते हैं क्योंकि दिन और रात्रि मे उनका प्रवेशन होता है ॥ १४ ॥

अस्तं याति पुन सूर्ये अहर्वै प्रविशत्यप ।
तस्मात्क्त पुन शुक्ला आपो विशन्ति भास्करे ॥१५
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे ।
उदयास्तमये नित्यमहोरात्र विशत्यप ॥१६
यश्चासौ तपते सूर्ये पिबन्नम्भो गभस्तिभि ।
पार्थिवो हि विमिश्रोऽसौ दिव्य शुचिरिति स्मृत ॥१७
सहस्रपाद सोऽग्निस्तु वृत्त कुम्भनिभ शुचि ।
आदत्ते तत्तु रश्मीना सहस्रेण समन्तत ॥१८
नादेयीश्चैव सामुद्री कौप्याश्चैव सधान्वनी ।
स्थावरा जङ्गमाश्चैव यश्च सूर्यो हिरण्मय ।
तस्य रश्मिसहस्रन्तु वर्षशीतोष्णनि सृतम् ॥१९
तासाञ्चतु शता नाड्यो वर्षन्ति चित्रमूर्तय ।
चन्दनाश्चैव चन्द्राश्च केतना भूतनास्तथा ।
अमृता नामत सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जना ॥२०
हिमवाहाश्च ताभ्योऽन्या रश्मयस्त्रिशता पुन ।
दृश्या मेध्याश्च वाह्याश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जना ॥२१
चन्द्रास्ता नामत सर्वा पीताभास्तु गभस्तय ।
शुक्लाश्च ककुभश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा ॥२२

पुन सूर्य के अस्ताचलगामी होने पर दिन जल मे प्रवेश किया करता है। इसी से रात्रि मे शुक्ल जल भास्कर मे आविष्ट होते हैं ॥ १५ ॥ इस क्रम के योग से दक्षिणोत्तर भूमि के अर्द्ध मे उदयास्तमय मे नित्य ही दिन-रात जल मे प्रवेश किया करते हैं ॥ १६ ॥ जो यह सूर्य जलो का अपनी

किरणों के द्वारा पान करता हुआ तपता है यह निश्चय ही पावित्र और विमिश्र विश्व सृष्टि है—ऐसा कहा गया है ॥ १७ ॥ सहस्र चरणों वाला यह अग्नि कुम्भ के सदृश जाथि हो गया है जो कि सहस्र रश्मियों से सब ओर से उसे ग्रहण किया करता है ॥ १८ ॥ वे जल नादेयी सामुद्री कौप्य सदाश्मनी स्यावर और जङ्गम होते हैं और जो सूर्य है वह हिरण्मय होता है। उसकी सहस्र रश्मियाँ यहाँ शीत और उष्णता का निसर्ग करने वाली होती हैं ॥ १९ ॥ उनकी चित्रमूर्ति वाली चार सौ नाड़ी बरसती हैं। चन्दना चन्द्रा ममना नूतना अमृता इन नामों वाली होती हैं। ये सब रश्मियाँ सृष्टि के सर्जन करने वाली हैं ॥ २० ॥ उनसे भी अन्य तीन सौ हिमवाहा रश्मियाँ होती हैं। वे दृश्या मेघ्या बाह्या ह्लादिनी हिमवजना और चन्द्रा नामों वाली हैं। ये सब पीत आभा वाली गभस्तियाँ (किरणें) होती हैं। सबका शुक्ल नाम विश्रुत होती है ॥ २१ ॥

शुक्लास्ता नामतः सर्वास्त्रिशता घर्मसर्जना।
समं बिभर्ति ताभिस्तु मनुष्यपितृदेवताः ॥२३

मनुष्यानौषधेनेह स्वधया च पितृनपि।
अमृतेन सुरान् सर्वांस्त्रिभिस्तर्पयत्यसौ ॥२४

वसन्ते चैव ग्रीष्मे च स वै सन्तपते त्रिभिः।
वर्षास्वथो शरदि चतुर्भिः सम्प्रवर्षति ॥२५

हेमन्ते शिशिरे चैव हिमं स सृजते त्रिभिः।
ओषधीषु बलं धत्ते स्वधया च पितृनपि।
सूर्योऽमरत्वममृतमयं त्रिषु नियच्छति ॥२६

एवं रश्मिसहस्रं तत् सौरं लोकार्थसाधकम्।
भिद्यते ऋतुमासाद्य जलशीतोष्णनिःस्रवम् ॥२७

इत्येतन्मण्डलं शुक्लं भास्वरं सूर्यसंज्ञितम्।
नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठायोनिरेव च।
नक्षत्रग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसम्भवाः ॥२८

नक्षत्राधिपतिः सोमो ग्रहराजो दिवाकरः ।
शेषाः पञ्चग्रहा ज्ञेया ईश्वराः कामरूपिणः ॥२९

जो नाम से शुक्ल हैं वे सब तीन सौ हैं और घर्म का सृजन करने वाली हैं । उनसे समान रूप से मनुष्य, पितर और देवों का भरण किया जाता है ॥२३॥ यहाँ मनुष्यों को औषध से, स्वधा से पितरों और अमृत से देवों को इन सब तीनों को यह तीनों से तृप्त किया करता है ॥२४॥ बसन्त और ग्रीष्म में यह तीनों से भली प्रकार तपा करता है । वर्षा और शरद में चारों से अच्छी प्रकार से प्रवर्षण किया करता है ॥२५॥ हेमन्त और शिशिर में यह तीनों से हिम का सृजन किया करता है । ओषधियों में बल धारण करता है, स्वधा से पितरों को भी सूर्य तीनों में अमृतमय अमरत्व को दिया करता है ॥२६॥ इस प्रकार से सूर्य सम्बन्धी सहस्र रश्मियाँ लोक के अर्थ की साधक होती हैं । ऋतु को प्राप्तकर जल, शीत और उष्णता के स्रवण का सेवन करती हैं ॥२७॥ इतना यह मण्डल शुक्ल एवं भास्वर सूर्य की संज्ञा वाला है और नक्षत्र, ग्रह और चन्द्र की प्रतिष्ठा का जन्म स्थान ही है । अतः चन्द्रमा और ग्रह ये सब सूर्य से ही उत्पन्न होने वाले होते हैं—ऐसा जान लेना चाहिए ॥२८॥ नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा है और ग्रहों का राजा सूर्य होता है । शेष पाँच ग्रह कामरूपी ईश्वर जानने चाहिए ॥२९॥

पठ्यते चाग्निरादित्य औदकश्चन्द्रमा स्मृतः ।
शेषाणां प्रकृतिं सम्यग्वर्ण्यमानां निबोधत ॥३०
सुरसेनापतिः स्कन्दः पठ्यतेऽङ्गारको ग्रहः ।
नारायणं बुधं प्राहुर्देवं ज्ञानविदो विदुः ॥३१
रुद्रो वैवस्वतः साक्षाद्धर्मो प्रभु स्वयम् ।
महाग्रहो द्विजश्रेष्ठो मन्दगामी शनैश्चरः ॥३२
देवासुरगुरू द्वौ तु भानुमन्तौ महाग्रहौ ।
प्रजापतिसुतावेतावुभौ शुक्रबृहस्पती ।
दैत्यो महेन्द्रश्च तयोराधिपत्ये विनिर्मितौ ॥३३
आदित्यमूलमखिलं त्रिलोकं नात्र संशयः ।

भवत्यस्य जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम ॥२४
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्राग्न्यदिवौकसाम ।
द्युतिर्द्युतिमतां कृत्स्ना यत्तेज सार्वलौकिकम् ॥३५
सर्वात्मा सर्वलोकेशो मूलं परमदैवतम ।
तत सञ्जायते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते ॥३६

आदि य मग्नि कहा जाता है और चन्द्रमा सौदक कहा गया है । धर्मों की प्रकृति को जोकि भली भांति कथन की जाने वाली है कहते हैं ॥३ ॥ देवगणों की सेना का स्वामी स्कन्द है और अङ्गारक ग्रह कहा जाता है । बुध को नारायण कहते हैं और देव को ज्ञान के वेत्ता जानते हैं ॥३१॥ धर्मवर्त्ता है जो लोक में साक्षात् यम एवं स्वयं प्रभु हैं । द्विजो मे मन्दगमन करने वाला महाग्रह शनैश्चर है ॥३२॥ देवासुरगुरु (अर्थात् बृहस्पति और शुक्र) ये दोनों भानुमान् महाग्रह होते हैं । ये दोनों प्रजापति के पुत्र शुक्र और बृहस्पति नाम वाले हैं । ॥३३ और महेन्द्र इन दोनों के आधिपत्य में विनिर्मित हुए हैं ॥३४॥ यह समस्त त्रैलोक्य आदित्य के मूल वाला है इसमें कुछ भी संशय नहीं है । सम्पूर्ण जगत् देव असुर और मानवों के सहित इसका होता है ॥३४॥ हे विप्रेन्द्र गण । रुद्र इन्द्र उपेन्द्र चन्द्र देवों की जोकि द्युतिमान हैं समस्त द्युति और सार्वलौकिक तेज है उन सब की आत्मा समस्त लोकों के ईश मूल परम दैवत है अर्थात् सूर्य ही मूल और सबसे बड़ा देवता है । उससे ही सब उत्पन्न होता है सब कुछ उसी में प्रलीन हुआ करता है ॥३५॥३६॥

भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्नि सृतौ पुरा ।
जगज्ज्ञेयो ग्रहो विप्रा दीप्तिमान् सुप्रभो रवि ॥३७
यत्र गच्छन्ति निधनं जायन्ते च पुन पुन ।
क्षणा मुहूर्ता दिवसा निशा पक्षाश्च कृत्स्नश ।
मासा संवत्सराश्च च ऋतवोऽब्दयुगानि च ॥३८
तदादित्यादृते ह्येषां कालसंख्या न विद्यते ।
कालादृते न नियमो न दीक्षा नाह्निकक्रम ॥३९

ऋतुनामविभागश्च पुष्पमूलफल कुत ।
कुत सस्याभिनिष्पत्तिर्गुणौषधिगणादि वा ॥४०
अभावो व्यवहाराणा देवाना दिवि नेह च ।
जगत्प्रतापनमृते भास्कर वारितस्करम् ॥४१
स एव कालश्चाग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापति ।
तपत्येप द्विजश्रेष्ठास्त्रैलोक्य सचराचरम् ॥४२

समस्त लोको के भाव और अभाव पहिले आदित्य से निकले थे । हे विप्रो ! यह जगत् ग्रह समझना चाहिए और दीप्तिमान रवि को सुग्रह जानना चाहिए ॥३७॥ यहाँ पर क्षण, मुहूर्त-दिवसनिशा, पूर्णतया पक्ष, मास, सम्वसर, ऋतु, अयन और युग निधन को प्राप्त होते हैं अर्थात् समाप्त होते हैं और बार-बार उत्पन्न हुआ करते हैं ॥३८॥ उस समय आदित्य के बिना उनकी काल सख्या नहीं होती है । काल के बिना नियम नहीं होता है, न दीक्षा होती है और न कोई आह्निक क्रम ही होता है ॥३९॥ जब ऋतुओं का कोई विभाग ही नहीं है तो फिर पुष्प-मूल और फल कहाँ से कैसे हो सकते हैं ? सस्य की अभिनिष्पत्ति, गुण और ओषधिगणआदि भी कैसे हो सकेंगे ? ॥४०॥ दिव और देवों का और यहाँ पर भी सभी व्यवहारों का अभाव हो जायगा । वारि के तस्कर अर्थात् अपहरण करने वाले भास्कर के बिना जगत का प्रतापन हो जायगा ॥४१॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! यह ही काल और अग्नि प्रजापति द्वादश स्वरूप वाला है । यह त्रैलोक्य मे समस्त चराचर को तपता है ॥४२॥

स एव तेजसा राशि समस्त सार्वलौकिक ।
उत्तम मार्गमास्थाय वायोर्भाभिरिदञ्जगत् ।
पार्श्वमूर्द्धमधश्चैव तापयत्येष सर्वश ॥४३
रवेरश्मिसहस्र यत् प्राड्मया समुदाहृतम् ।
तेषा श्रेष्ठा पुन सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः ॥४४
सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च ।
विश्वश्रवा पुनश्चान्य सम्पद्वसुरत परम् ।
अर्वावसु पुनश्चान्यो मया चात्र प्रकीर्तित ॥४५

सुषुम्नः सूर्य रश्मिस्तु क्षीणं शशिनमेधयत् ।
तिर्य्यगूर्ध्वप्रभावोऽसौ सुषुम्नः परिकीर्त्यते ॥४६
हरिकेशः पुरस्त्वाद्यो ऋक्षयोनिः प्रकीर्त्यते ।
दक्षिणे विश्वकर्मा तु रश्मि र्वर्द्धयते बुधम् ॥४७
विश्वव्यचास्तु यः पश्चात् शुक्रयोनिः स्मृतो बुधैः ।
सम्पद्वसुश्च यो रश्मिः सा योनिर्लोहितस्य च ॥४८
षष्ठस्त्वर्वावसू रश्मिर्योनिस्तु स बृहस्पतेः ।
शनैश्चरं पुनश्चापि रश्मिराप्यायते स्वराट् ॥४९

यह यह ही समस्त एवं सार्वलौकिक तेजों की राशि है। वायु के उत्तम भाग में आस्थित होकर अपनी प्रभाओं से इस जगत् को पाताल में-ऊपर को और मध्यभाग में सब ओर से यह ताप देता है ॥४३॥ सूर्य की सहस्र रश्मियों को मात्र मय समुच्छ्रित हुई हैं उनमें भी फिर सात ग्रहों की उत्पत्ति स्थल रश्मियाँ होती हैं ॥४४॥ अब यहाँ कुछ रश्मियों के नाम और उनके काम बत लाये जाते हैं। सुषुम्ना हरिकेश विश्वकर्मा विश्वव्यचा फिर अन्य परम सम्पद्वसु रस अर्वावसु—ये रश्मियाँ प्रकाशित की गई हैं ॥४५॥ सुषुम्ना नाम वाली जो सूर्य की रश्मि है वह क्षीण शशि को वृद्ध करती है। इसका प्रभाव तिर्यक् और ऊर्ध्व को हुआ करता है इसी लिये यह सुषुम्ना कही जाती है ॥४६॥ हरि केश नामक रश्मि आद्यरश्मि है और यह नक्षत्रों का जन्म स्थान कही जाती है। विश्वकर्मा नाम वाली जो रश्मि है वह दक्षिण में बुध का वर्धन किया करती है ॥४७॥ विश्वव्यचा नामक रश्मि भी है यह बुध के द्वारा पश्चात् शुक्र की योनि कही गई है। सम्पद्वसु जो रश्मि है यह लोहित की योनि होती है ॥४८॥ षष्ठ रश्मि अर्वावसु होती है वह बृहस्पति का जन्म स्थान होती है। और स्वराट् रश्मि फिर शनैश्चर को आप्यायित किया करती है ॥४९॥

एवं सूर्यप्रभावेण ग्रहनक्षत्रतारकाः ।
वर्द्धन्ते विदिता सर्वा विश्वञ्चेदं पुनर्जगत् ।
न क्षीयन्ते पुनस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता ॥५०

क्षेत्राण्येतानि वै पूर्वमापतन्ति गभस्तिभिः ।
तेषां क्षेत्राण्यथादत्ते सूर्यो नक्षत्रताऽकृतः ॥५१॥
तीर्णानि सुकृतेनेह सुकृतान्ते ग्रहाश्रयात् ।
ताराणां तारका ह्येता शुक्लत्वाच्चैव तारकाः ॥५२॥
दिव्यानां पार्थिवानाञ्च नैशानाञ्चैव सर्वशः ।
आदानान्नित्यमादित्यस्तमसा तेजसा महान् ॥५३॥
सुवति स्पन्दनार्थे च धातुरेष विभाव्यते ।
सवनात्तेजसोऽपाञ्च तेनासौ सविता मतः ॥५४॥
बह्वर्थश्चन्द्र इत्येष ह्लादने धातुरिष्यते ।
शुक्लत्वे चामृतत्वे च शीतत्वे च विभाव्यते ॥५५॥
सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे ।
ज्वलत्तेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भनिभे शुभे ॥५६॥

इस प्रकार से सूर्य के प्रभाव से सब ग्रह नक्षत्र और तारागण बनते हैं। यह सर्व विदित है। यह विश्व और यह जगत् भी सूर्य के प्रभाव से ही वर्द्धित होता है। फिर ये क्षीण नहीं होते हैं इसी से नक्षत्रता कही गई है ॥५०॥ पहिले ये क्षेत्र गभस्तियों से आपतित होते हैं। उनके क्षेत्रों को सूर्य नक्षत्रता को प्राप्त हुआ ले लेता है ॥५१॥ इस संसार में सुकृत से तीर्ण और सुकृत के अन्त में ग्रहों के आश्रय से ताराओं में ये तारक हैं और शुक्ल होने से ही तारक होते हैं ॥५२॥ दिव्य-पार्थिव और नैश अर्थात् रात्रि में होने वाले अन्धकारों को तेजों के आदान करने से ही यह महान् आदित्य हुआ है अर्थात् आदान से आदित्य नाम पड़ा है ॥५३॥ स्पन्दन अर्थ में सुवति यह धातु विभावित होती है। तेजों के और जलों के सवन करने से यह सविता इस नाम वाला कहा गया है ॥५४॥ चन्द्र, यह बहुत अर्थ वाला है। ह्लादन में धातु होता है शुक्लत्व-अमृतत्व और शीतत्व में यह विभावित होता है ॥५५॥ सूर्य और चन्द्रमा के दिव्य आकाश में गमन करने वाले भास्वर मण्डल हैं, ये ज्वलन्त, तेजोमय, शुक्ल शुभ और वृत्त कुम्भ के तुल्य होते हैं ॥५६॥

घनतोयात्मकं तत्र मण्डलं शशिनः स्मृतम् ।

घनतेजोमयं शुक्लं मण्डलं भास्करस्य तु ॥५७॥
विशन्ति सर्वदेवास्तु स्थानान्येतानि सर्वशः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋक्षसूर्यग्रहाश्रयाः ॥५८॥
तानि देवगृहाण्येव तदाख्यास्ते भवन्ति च ।
सौरं सूर्यो विशत्स्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च ॥५९॥
शौक्रं शुक्रो विशत्स्थानं षोडशार्चिः प्रतापवान् ।
बृहद्बृहस्पतिश्चैव लोहितश्चैव लोहितम् ।
शानैश्चरं तथा स्थानं देवश्चैव शनैश्चरः ॥६०॥
आदित्यरश्मिसंयोगात् सम्प्रकाशात्मिकाः स्मृताः ।
नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः ॥६१॥
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलस्य प्रमाणतः ।
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः ॥६२॥
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाऽधस्तात् प्रसर्पति ।
उद्धृत्य पार्थिवच्छायां निर्मितो मण्डलाकृतिः ॥६३॥

यह घन तेजोमय शशि का मण्डल कहा गया है और भास्कर का मण्डल भी तेजोमय शुक्ल कहा गया है ॥५७॥ समस्त देवता लोग सब ओर से इन स्थानों में प्रवेश किया करते हैं। समस्त मन्वन्तरों में नक्षत्र-सूर्य और ग्रहों के आश्रय होते हैं ॥५८॥ ये देवों के गृह ही हैं और उस आख्या अर्थात् नाम से ये होते हैं। सूर्य सौर विशत्स्थान है और सोम सौम्य विशत्स्थान होता है ॥५९॥ सोलह अर्चि वाला प्रताप से युक्त शुक्र शौक्र का प्रवेश स्थान है। बृहद् (बड़ा) बृहस्पति और लोहित का लोहित तथा देव शनैश्चर शानैश्चर विशत्स्थान होता है ॥६०॥ ये सब आदित्य के रश्मियों के संयोग से सम्प्रकाशात्मक कहे गये हैं। सविता का विष्कम्भ नौ सहस्र योजन वाला होता है—ऐसा कहा गया है ॥६१॥ उसका विस्तार तिगुना और प्रमाण से मण्डल होता है। सूर्य के विस्तार से दुगना शशि का विस्तार कहा गया है ॥६२॥ इन दोनों के तुल्य स्वर्भानु होकर नीचे से प्रसर्पण किया करता है। पार्थिव अर्थात् पृथ्वी की छाया का उद्धरण करके यह मण्डल की आकृति वाला निर्मित हुआ करता है ॥६३॥

स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थानन्निर्मितं यत्तमोमयम् ।
आदित्यात्तच्च निष्क्रम्य सोमं गच्छति पर्वसु ॥६४
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सोमश्च पर्वसु ।
स्वर्भासा नुदते यस्मात्तत स्वर्भानुरुच्यते ॥६५
चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते ।
विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव योजनाग्रात् प्रमाणतः ॥६६
भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः ।
बृहस्पतेः पादहीनौ कुजसौरावुभौ स्मृतौ ।
विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः ॥६७
तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै ।
बुधेन समरूपाणि विस्तारान्मण्डलात्तथा ॥६८
प्रायशश्चन्द्रयोगानि विद्यादृक्षाणि तत्त्ववित् ।
तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम् ॥६९
शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने ।
पूर्वापरनिकृष्टानि तारकामण्डलानि तु ।
योजनान्यर्द्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते ॥७०

स्वर्भानु का बृहत् स्थान जोकि तमोमय निर्मित हुआ है वह आदित्य से निकल कर पर्वों में सोम को जाया करता है ॥६४॥ सोम से आदित्य में जाता है और फिर पर्वों में सोम को जाया करता है। अपनी दीप्ति से नुदन किया करता है इसी कारण से यह स्वर्भानु-ऐसा कहा जाया करता है ॥६५॥ चन्द्रमा का सोलहवां भाग शुक्र होता है जोकि विष्कम्भ मण्डल और योजनाग्र के प्रमाण से होता है ॥६६॥ भार्गव से एक पाद हीन बृहस्पति को जानना चाहिए और बृहस्पति से एक पाद कम यानि कुज और सौर दोनों कहे गये हैं। विस्तार और मण्डल से उन दोनों से एक पाद हीन बुध को कहा गया है ॥६७॥ यहाँ जो अपने वपु वाले तारा नक्षत्र रूप से युक्त हैं वे सब विस्तार तथा मण्डल से बुध के समान ही होते हैं ॥६८॥ तत्ववेत्ता को चाहिए कि प्राय इन्हें चन्द्र के योग वाले जानें। तारा नक्षत्र रूप वाले परस्पर में हीन हैं ॥६९॥ सौ-पांच-

चार तीन और दो योजन अर्कमण्डल पूर्वापर म निकृष्ट होते हैं। उनमें आधे योजन से छोटा कोई भी नहीं होता है ॥७ ॥

उपरिष्टात्त्रयस्तेषां ग्रहा ये दूरसर्पिण ।
सौरोऽङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेया मन्दविचारिण ॥७१
तेभ्योऽधस्तात्तु चत्वार पुनरन्ये महाग्रहा ।
सूर्य सोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगा ॥७२
यावन्त्यस्तारका कोट्यस्तावदृक्षाणि सर्वश ।
वीथीनां नियमाच्च ऋक्षमार्गो व्यवस्थित ॥७३
गतिस्तासां स्वेव सूर्यस्य नीचोच्चत्वेऽयनक्रमात् ।
उत्तरायण मार्गस्थो यदा पर्वसु चन्द्रमा ।
वीथ वीथोऽथ स्वर्भानु स्वर्भानो स्थानमाश्रित ॥८४
नक्षत्राणि च सर्वाणि नक्षत्राणि विशन्त्युत ।
गृहाण्येतानि सर्वाणि ज्योतींषि सुकृतात्मनाम् ॥७८
कल्पादौ सम्प्रवृत्तानि निर्मितानि स्वयम्भुवा ।
स्थानान्येतानि तिष्ठन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥७९
मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवतायतनानि च ।
अभिमानिनोऽवतिष्ठन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥७७

उनसे ऊपर से तीन ग्रह दूर सर्पी अर्थात् दूरतक गमन करने वाले होते हैं। और मङ्गिरस तथा वक ये म न्दचारी जानने के योग्य होते हैं ॥७१॥ उनके नीचे फिर चार अन्य महाग्रह होते हैं जो शीघ्र गमन करने वाले हैं ये सूर्य सोम बुध और भार्गव होते हैं ॥७२॥ जितने करोड़ तारका हैं उतने ही ऋक्ष और नक्षत्र होते हैं। वीथियों के नियम से ही नक्षत्रों का मार्ग व्यवस्थित होता है ॥७३॥ सूर्य की यह गति नीच उच्च अयन के क्रम से ही होती है। जब चन्द्रमा उत्तरायण मार्ग में स्थित पर्वों में होता है तब वीथ वीथ का और स्वर्भानु स्वर्भानु के स्थान में आश्रित होता है ॥७४॥ समस्त नक्षत्र नक्षत्रों में प्रवेश किया करते हैं। ये सब ज्योतियाँ सुकृतात्माओं के गृह होते हैं ॥७५॥ कल्प के आदि में सम्प्रवृत्त स्वयम्भू के द्वारा निर्मित ये स्थान हैं और भूत सम्प्लव पर्यन्त रहते

है ॥७६॥ समस्त मन्वन्तरों में देवताओं के आगत अभिमान वाले जन सत मूल पालय होता है अवस्थित हुआ करते हैं ॥७७॥

अतीतैस्तु सहातीता भाव्या भाव्यैः सुरासुरैः ।
वर्त्तन्ते वर्तमानैश्च स्थानिनस्ते सह ग्रहैः ॥७८
अस्मिन् मन्वन्तरे चैव ग्रहा वैमानिकाः स्मृताः ।
विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वैवस्वतेऽन्तरे ॥७९
त्विषिमान्धर्मपुत्रस्तु सोमदेवो वसुः स्मृतः ।
शुक्रो देवस्तु विज्ञेयो भार्गवोऽसुरयाजकः ॥८०
बृहत्तेजाः स्मृतो देवो देवाचार्योऽङ्गिरःसुतः ।
बुधो मनोहरश्चैव त्विषिपुत्रस्तु स स्मृतः ॥८१
अग्निर्विकेश्यां जज्ञे तु युवाऽसौ लोहिताधिपः ।
नक्षत्रऋक्षनामिन्यो दाक्षायण्यः स्मृतास्तु ताः ॥८२
स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसन्तापनोऽसुरः ।
सोमर्क्षग्रहसूर्येषु कीर्तितास्त्वभिमानिनः ॥८३
स्थानान्येतान्ययोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः ।
शुक्लमग्निमयं स्थानं सहस्रांशोर्विवस्वतः ॥८४
सहस्रांशोस्त्विषः स्थानमम्मयं शुक्लमेव च ।
आप्यं श्यामं मनोज्ञस्य पञ्चरश्मेर्गृहं स्मृतम् ॥८५
शुक्रस्याप्यम्मयं स्थानं पद्मं षोडशरश्मिवत् ।
नवरश्मेस्तु सूनोर्हि लोहितस्थानमम्मयम् ॥८६
हरिद्राभं बृहच्चापि द्वादशांशोर्बृहस्पतेः ।
अष्टरश्मेर्गृहं प्रोक्तं कृष्णं वृद्धस्य चाम्मयम् ॥८७

अतीतों के साथ अतीत और भाव्यों के साथ भाव्य ये सुरासुर वर्त्त-मानों के साथ अपने ग्रहों के साथ वर्त्तमान स्थान होते हैं ॥७८॥ इस मन्वन्तर में ग्रह वैमानिक कहे गये हैं। वैवस्वत अन्तर में सूर्य अदिति का पुत्र कहा गया है ॥७९॥ त्विषिमान् धर्म का पुत्र और सोमदेव वसु कहा गया है शुक्रदेव असुरराज भार्गव जानना चाहिए ॥८०॥ अङ्गिरा के

पुत्र महत् त्रं च वाला देव वृहस्पति देवाचार्य कहा गया है। मनोहर बुध त्रिविष पुत्र कहा गया है ॥८१॥ अग्नि विकृत से उत्पन्न हुआ जोकि लोहितार्चि है। नक्षत्र सत्ता में गमन करने वालों के दाताधकी कही गई है ॥८२॥ स्वर्भानु सिंहिका का पुत्र है और प्राणियों को सन्ताप देने वाला असुर होता है। सोम नक्षत्र ग्रह सूर्य इनके अभिमानी कीर्तित किए गये हैं ॥८३॥ ये सब स्थान जैसे बताये गये हैं और स्थानीय देवता भी बताये गये हैं उनमें विवस्वान् सूर्य का स्थान शुक्ल एवं अग्निमय स्थान होता है ॥८४॥ त्रिविध सहस्रांश का स्थान जलमय और शुक्ल होता है। इसके अनन्तर मनोज्ञ का श्याम गृह कहा गया है ॥८५॥ शुक्र का भी स्थान जलमय तथा षोडश रश्मि के मुख्य मध्य होता है। नवरश्मि भौम का अपमय लोहित स्थान होता है ॥८६॥ द्वादश बृहस्पति का हरित आप्य और बृहत् स्थान होता है। अष्टरश्मि शनि का गृह कृष्ण लोह मय कहा गया है ॥८७॥

स्वर्भानोस्तामसं स्थानं भूतसन्तापनालयम् ।
विज्ञेयास्तारकाः सर्वास्त्वेकरश्मयः ॥८८

आश्रयाः पुण्यकीर्तीनां सुशुक्लाश्च वर्णतः ।
घनतोयात्मिका ज्ञेया कल्पादौ देवनिर्मिता ॥८९

उत्तरत्वादृश्यन्ते शीघ्ररश्मि वक्र गभस्तिभिः ।
तथा दक्षिणमार्गस्थो नीचैर्वीथीसमाश्रितः ॥९०
भूमिरेखावृतः सूर्य पूर्णिमावास्ययोस्तथा ।
न दृश्यते यथाकालं शीघ्रं ह्यस्तमुपैति च ॥९१
तस्मादुत्तरमार्गस्थो ह्यमावास्यां निशाकरः ।
दृश्यते दक्षिणे मार्गे नियमाद्दृश्यते न च ॥९२
ज्योतिषां गतियोगेन सूर्याचन्द्रमसावपी ।
समानकालास्तमयौ विषुवत्सु समोदयौ ॥९३
उत्तरासु च वीथीषु व्यन्तरास्तमयोदयौ ।
पूर्णमावास्ययोर्ज्ञेयौ ज्योतिश्चक्रानुवर्तिनौ ॥९४

स्पर्शानुका स्थान वामन होता है जो कि भूतों के सन्ताप देने वाला घर होता है। समस्त तारका जो हैं वे एक रश्मि वाले और सप्तम जानने के योग्य होते हैं ॥८८॥ जो पुण्य कीर्ति होते हैं उनके आश्रय अच्छे वर्ण से शुक्ल हुआ करते हैं और वे घन-तोयात्मक होते हैं और उन्हें कल्प के आदि में ही वेद निर्मित जानना चाहिए ॥८९॥ उच्च होने से रश्मियों के द्वारा अभिव्यक्ति होने के कारण शीघ्र दिखलाई दिया करते हैं तथा दक्षिण मार्ग में स्थित नीचि वीथी में समाश्रित होता है ॥९०॥ पूर्णिमा और अमावस्या में सूर्य भूमि लेखा से आवृत होता है। वह यथाकाल दिखलाई नहीं देता है और शीघ्र ही अस्तता को प्राप्त हो जाया करता है ॥९१॥ इससे उत्तर मार्ग में स्थित अमावस्या में निशाकर दक्षिण मार्ग में दिखाई देता है और नियम से दिखलाई नहीं दिया करता है ॥९२॥ ज्योतिषियों के ग्रह योग से सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों समान काल में अस्तमय तथा विषुवत् में समान काल में उदय वाले होते हैं ॥९३॥ उत्तरा वीथियों में अन्तर अस्त और उदय वाले होते हैं। पूर्णिमा और अमावस्या में इन्हें ज्योतिश्चक्र के अनुवर्ती जानना चाहिए ॥९४॥

दक्षिणायनमार्गस्थो यदा भवति रश्मिवान्।
तदा सर्वग्रहाणां स सूर्योऽधस्तात् प्रसर्पति ॥९५
विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्ध्वं चरते शशी।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति ॥९६
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधादूर्ध्वं बृहस्पति।
तस्माच्छनैश्चरश्चोर्ध्वं तस्मात्सप्तर्षिमण्डलम्।
ऋषीणां च सप्तानां ध्रुव ऊर्ध्वं व्यवस्थितः ॥९७
द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च।
ताराग्रहान्तराणि स्युरुपरिष्टाद्यथाक्रमम् ॥९८
ग्रहाश्च चन्द्रसूर्यौ तु दिवि दिव्येन तेजसा।
नित्यमृक्षेषु युज्यन्ति गच्छन्ति नियतक्रमात् ॥९९
ग्रहनक्षत्रसूर्यास्तु नीचोच्चमृदुसंस्थिताः।
समागमे च भेदे च पश्यन्ति युगपत् प्रजाः ॥१००

परस्परस्थिता ह्येते युज्यन्ते च परस्परम् ।
असङ्करेण विज्ञेयस्तेषां योगस्तु वै बुधैः ॥१०१

जिस समय रश्मिमान् दक्षिणायन मार्ग में स्थित होता है उस समय वह सूर्य समस्त ग्रहों के अधोभाग में भ्रमण किया करता है ॥९५॥ मण्डल को विस्तीर्ण करके उसके ऊर्ध्व भाग में चन्द्रमा सञ्चारण किया करता है। समस्त नक्षत्र मण्डल चन्द्र से ऊपर भ्रमण किया करता है ॥९६॥ नक्षत्रों से ऊपर बुध और बुध से भी ऊर्ध्वभाग में बृहस्पति चरण किया करता है। इससे ऊपर शनैश्चर और उसके ऊर्ध्वभाग में सप्तर्षियों का मण्डल चरण करता है। सातों ऋषियों के ऊपर ध्रुव संस्थित है ॥९७॥ दो सौ सहस्र योजनों के ऊपर यथाक्रम ताराग्रहों के अन्तर हैं ॥९८॥ समस्त ग्रह चन्द्र और सूर्य दिव में दिव्य तेज से नित्य ही ऋक्षों में युक्त होते हैं और नियम के क्रम से जाते हैं ॥९९॥ ग्रह नक्षत्र और सूर्य नीच–उच्च और मृदु अवस्थित होते हैं। ये समागम में और भेद में एकसाथ प्रजा को देखते हैं ॥१०० ॥ परस्पर स्थित ये परस्पर में युक्त होते हैं। विद्वान् पुरुषों के द्वारा उन का योग असङ्कर रूप से जानना चाहिए ॥१०१॥

इत्येष सन्निवेशो वै पृथिव्यां ज्योतिषस्य च ।
द्वीपानामुदधीनां च पर्वतानां तथैव च ॥१०२
वर्षाणां च नदीनां च ये च तेषु वसन्ति वै ।
एते चैव ग्रहाः पूर्वं नक्षत्रेषु समुत्थिताः ॥१०३
विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वै चाक्षुषेऽन्तरे ।
विशाखासु समुत्पन्नो ग्रहाणां प्रथमो ग्रहः ॥१०४
त्विषिमान् धर्मपुत्रस्तु सोमो विश्वावसुस्तथा ।
शीतरश्मिः समुत्पन्नः कृत्तिकासु निशाकरः ॥१०५
षोडशार्चिर्भृगोः पुत्रः शुक्रः सूर्यादनन्तरम् ।
ताराग्रहाणां प्रवरस्तिष्येऽभि समुत्थितः ॥१०६
ग्रहश्चाङ्गिरसः पुत्रो द्वादशार्चिर्बृहस्पतिः ।
फाल्गुनीषु समुत्पन्नः सर्वासु च जगद्गुरुः ॥१०७

नवार्चिर्लोहिताङ्गस्तु प्रजापतिसुतो ग्रहः ।
आषाढास्विह पूर्वासु समुत्पन्न इति श्रुतिः ॥१०८

इनका यह आपका पृथिवी में सन्निवेश और ज्योतिष का सन्निवेश है। इसी प्रकार से द्वीपों का, समुद्रों का, पर्वतों का तथा वर्षों का और नदियों का है जिनमें वास किया करते हैं। ये सब ग्रह पहिले नक्षत्रों में समुत्थित होते हैं। ॥१०२॥१०३॥ चाक्षुष अन्तर में विवस्वान् सूर्य अदिति का पुत्र है और यह विशाखाओं में उत्पन्न हुआ है तथा समस्त ग्रहों में प्रथम ग्रह कहा जाता है ॥१०४॥ त्विषिमान् धर्म का पुत्र है और सोम विश्वावसु इसी प्रकार से है। यह शीतरश्मि निशाकर कृत्तिकाओं में समुत्पन्न हुआ है ॥१०५॥ षोडशार्चि भृगु का पुत्र है अनन्तर में सूर्य से शुक्र है जो तारागृहों में प्रकट है और तिष्य में समुत्थित हुआ है ॥१०६॥ द्वादशार्चि बृहस्पति अङ्गिरा का पुत्र है और फाल्गुनी में उत्पन्न हुआ है तथा समस्त देवों में यह जगद्गुरु है ॥१०७॥ नवार्चि लोहिताङ्ग ग्रह प्रजापति का पुत्र है और यह पूर्वाषाढ में समुत्पन्न हुआ है ऐसा श्रुति है ॥१०८॥

रेवतीष्वेव सप्तार्चिः स्थाने सौरिः शनैश्चरः ।
रोहिणीषु समुत्पन्नौ ग्रहौ चान्द्रार्कमर्द्दनौ ॥१०९
एते तारग्रहाश्चैव बोद्धव्या भार्गवादयः ।
जन्मनक्षत्रपीडासु यान्ति वैगुण्यतामतः ।
स्पृश्यन्ते तेन दोषेण ततस्ते ग्रहभक्तिषु ॥११०
सर्वग्रहाणामेतेषामादिरादित्य उच्यते ।
ताराग्रहाणां शुक्रस्तु केतूनाञ्चैव धूमवान् ॥१११
ध्रुवः काजी ग्रहाणां तु विभक्तानां चतुर्दिशाम् ।
नक्षत्राणां श्रविष्ठा स्यादयनानां तथोत्तरम् ॥११२
वर्षाणाञ्चापि पञ्चानामाद्यः संवत्सरः स्मृतः ।
ऋतूनां शिशिरश्चापि मासानां माघ एव च ॥११३
पक्षाणां शुक्लपक्षस्तु तिथीनां प्रतिपत्तथा ।
अहोरात्रविभागानामहश्चापि प्रकीर्तितम् ॥११४

मुहूर्त्तानां तथैवाभिर्मुहूर्त्तो रुद्रदैवत ।
अक्ष्णोश्चापि निमेषादि काल कालविदो मत ॥११५

धर्ताधि शनैश्चर सौर है और रेवती में ही समुत्पन्न हुआ है तथा चन्द्रमा के मन्दन ये दो ग्रह रोहिणी में समुत्पन्न हुए हैं ॥१०९॥ ये नाग आदि सब ताराग्रह जानने के योग्य हैं क्योंकि ये जन्म नक्षत्र पीड़ाओं में विगुणता को प्राप्त किया करते हैं। इसके पश्चात् ग्रहभक्ति न ये उस दोष से स्पर्श करते हैं ॥११०॥ इन समस्त ग्रहों में आदित्य आदि कहा जाता है। ताराग्रहों में शुक्र और केतुओं में धूमवान् है ॥१११॥ चारों दिशाओं में विभक्त ग्रहों का ध्रुव काल होता है नक्षत्रों का श्रविष्ठा और अयनों का उत्तर होता है ॥११२॥ पाँचों वर्षों में आद्य सम्वत्सर कहा गया है। समस्त ऋतुओं में शिशिर और सम्पूर्ण मासों में माघमास आद्य होता है ॥११३॥ पक्षों में शुक्ल पक्ष तिथियों में प्रतिपत् और अहोरात्र के विभागों में अहः आदि कहा गया है ॥११४॥ मुहूर्त्तों में आदि मुहूर्त रुद्र दैवत होता है तथा अक्षियों में निमेष और कालविदों में काल माना गया है ॥११५॥

श्रवणान्त श्रविष्ठादियुग स्यात् पञ्चवार्षिकम् ।
भानोर्गतिविशेषेण चक्रवत् परिवर्त्तते ॥११६
दिवाकर स्मृतस्तस्मात्कालस्तं विद्धि चेश्वरम् ।
चतुर्विधानां भूतानां प्रवर्त्तकनिवर्त्तक ॥११७
इत्येष ज्योतिषामेष सन्निवेशोऽर्थनिश्चयात् ।
लोकसव्यवहारार्थमीश्वरेण विनिर्मित ॥११८
उत्पन्न श्रवणनासौ सन्निमत्त ध्रुव तथा ।
नाभिसोऽन्तेय विस्तीर्णो भूतसार इति स्थिति ॥११९
बद्धिमन्भगवता कल्पादा सप्रकीर्तित ।
साश्रय सोऽभिमानी च सर्वस्य ज्योतिरात्मक ।
विश्वरूप प्रधानस्य परिणामोऽयमद्भुत ॥१२०
नव शक्य प्रसख्यातु याथातथ्येन केनचित् ।
गतागत मनुष्येषु ज्योतिषा मांसचक्षुषा ॥१२१

आगमादनुमानाच्च प्रत्यक्षादुपपत्तितः ।
परीक्ष्य निपुणं भक्त्या श्रद्धातव्यं विपश्चिता ॥१२२
चक्षुः शास्त्रं जलं लेख्यं गणितं बुद्धिसत्तमाः ।
पञ्चैते हेतवो ज्ञेया ज्योतिर्गणविचिन्तने ॥१२३

धनिष्ठा के आदि में लेकर श्रवण के अन्त तक पाँच वर्ष का युग होता है। भानु की गति की विशेषता से चक्र की भाँति परिवर्तित होता है ॥११६॥ दिवाकर को काल कहा गया है और उस को ईश्वर जानो। चार प्रकार के प्राणियों का यह प्रवर्त्तक तथा निवर्त्तक होता है ॥११७॥ यह इतना सर्ग के विषय से ज्योतियों का ही सन्निवेश है और इसे लोक के सम्यक् प्रकार से व्यवहार के लिये ईश्वर ने निर्मित किया है ॥११८॥ यह श्रवण से उत्पन्न तथा ध्रुव में संस्थित सब ओर से अन्तों में विस्तीर्ण वृक्ष के आकार जैसी इसकी स्थिति होती है ॥११९॥ भगवान् ने कल्प के आदि में बुद्धि के साथ इसे सम्प्रकल्पित किया है। यह आश्रय के अभिमानी और सब का ज्योतिरात्मक है। विश्वरूप वाला यह प्रधान का एक अद्भुत परिणाम है ॥१२०॥ यह किसी के भी द्वारा यथार्थ रूप से प्रसंख्यात नहीं किया जा सकता है। मनुष्यों में ज्योतियों के गतागत को मांस-चक्षु से देखा भी नहीं जा सकता है ॥१२१॥ आगम से—अनुमान से और उपपत्ति से विद्वान् पुरुष को भलीभाँति परीक्षण करके भक्ति से श्रद्धा करनी चाहिए ॥१२२॥ चक्षु—शास्त्र—जल—लेख्य और गणित-बुद्धिसत्तमो! ये पाँच हेतु ज्योतियों के गण के विचिन्तन में जानने के योग्य हैं ॥१२३॥

॥ प्रकरण ३२—नीलकण्ठस्तुति ॥

कस्मिन् देशे महापुण्यमेतदाख्यानमुत्तमम् ।
वृत्तं ब्रह्मपुरोगाणां कस्मिन् काले महाद्युते ।
एतदाख्याहि नः सम्यग् यथा वृत्तं तपोधन ॥१
यथा श्रुतं मया पूर्वं वायुना जगदायुना ।
कथ्यमानं द्विजश्रेष्ठाः सर्गे वर्षसहस्रके ॥२

नीलता येन कण्ठस्य देवदेवस्य शूलिनः ।
तदहं कीर्त्तयिष्यामि शृणुध्वं शंसितव्रताः ॥३
उत्तरे शैलराजस्य सरांसि सरितो ह्रदाः ।
पुण्योद्यानेषु तीर्थेषु देवतायतनेषु च ।
गिरिशृङ्गेषु तुङ्गेषु गह्वरोपवनेषु च ॥४
देवभक्ता महात्मानो मुनयः शंसितव्रताः ।
स्तुवन्ति च महादेवं यत्र यत्र यथाविधि ॥५
ऋग्यजुः सामवेदैश्च नृत्यगीतैश्च वादितैः ।
ओङ्कारेण नमस्कारैरर्चयन्ति सदा शिवम् ॥६
प्रवृत्ते ज्योतिषां चक्रे मध्यस्थाने दिवाकरे ।
देवता नियतात्मानः सर्वे तिष्ठन्ति तां कथाम् ।
अथ नियमप्रवृत्ताश्च प्राणेऽपि यतस्थिताः ॥७

ऋषि लोग बोले किस देश में महान् पुण्य वाला यह उत्तम आख्यान हुआ ? हे महान् धन वाले ! ब्रह्म-पुरोगों का यह आख्यान किस काल में हुआ है ? तपोधन ! यह सब हमसे यथोचित कहिए जैसे भी हुआ हो ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठो ! एक सहस्र वर्ष वाले सत्र में इस जगत् की आत्मा वायु के द्वारा कथ्यमान पहिले ऐसा भी मैंने सुना है ॥२॥ जिसके द्वारा देवों के भी देव भगवान् शूली के कण्ठ की नीलता हुई उसे मैं अब कहता हूँ आप शंसित व्रत वाले सब श्रवण करो ॥३॥ शैलराज के उत्तर में सरित सर और ह्रद हैं । पुण्योद्यानों में—तीर्थों में—देवताओं के आयतनों में पर्वतों के शिखरों में जो कि बहुत ऊँचे हैं और गह्वरउपवनों में देव के भक्त शंसित व्रत वाले महान् आत्मा वाले मुनि लोग जहाँ तहाँ यथाविधि महादेव की स्तुति किया करते हैं ॥४॥५॥ ऋक् यजु और साम वेदों के द्वारा नृत्य गीत और वादन आदि से ओङ्कार से और नमस्कार से सदाशिव की अर्चा किया करते हैं ॥६॥ ज्योतियों के चक्र के प्रवृत्त होने पर दिवाकर के मध्य में स्थित हो जाने पर नियत आत्मा वाले देवगण सब उस कथा को करते हैं । इसके अनन्तर नियमों में वे प्रवृत्त होते हैं कि उनके केवल प्राण ही यत व्यवस्थित होते हैं ॥७

नमस्ते नीलकण्ठाय इत्युवाच सदागति ।
तच्छ्रुत्वा भावितात्मानो मुनयः शंसितव्रता. ।
बालखिल्येति विख्याता पतङ्गसहचारिण ॥८
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनां मूर्द्ध्वरेतसाम् ।
तस्मात् पृच्छन्ति वं वायु वायुपर्णाम्बुभोजना ॥९
नीलकण्ठेति यत् प्रोक्त त्वया पवनसत्तम ।
एतद्गुह्य पवित्राणा पुण्य पुण्यकृता वरा ॥१०
सद्वय श्रोतुमिच्छामस्त्वत्प्रसादात्प्रभञ्जन ।
नीलता येन कण्ठस्य कारणेनाम्बिकापते ॥११
श्रोतुमिच्छामहे सम्यक् तव वक्त्राद्विशेपत ।
यावद्वाच प्रवर्त्तन्ते सार्थास्ताश्च त्वयेरिता ॥१२
वर्णस्थानगते वायौ वाग्विधि सप्रवर्त्तते ।
ज्ञान पूर्वमथोत्साहस्त्वत्तो वायो प्रवर्तते ॥१३
त्वयि निष्पन्दमाने तु शेषा वर्णप्रवृत्तय ।
यत्र वाचो निवर्त्तन्ते देहबन्धाश्च दुर्लभा. ॥१४

सदागति अर्थात् वायु ने 'नीले कण्ठ वाले आपके लिये नमस्कार है'— यह कहा । यह सुनकर शमित व्रत वाले भावितात्मा मुनिगण जो कि बालखिल्य इस नाम से विख्यात है और पतङ्ग (सूर्य) के सहचारी हैं और ऊर्ध्वरेता मुनियों में अट्ठासी सहस्र हैं तथा केवल वायु, पत्ते और जल के भोजन करने वाले थे वे सब वायु से पूछते हैं ॥ ८ ९ ॥ ऋषियों ने कहा—हे पवन सत्तम ! आपने अभी 'नीलकण्ठ'—यह जो कहा है—यह गुह्य विषय है जो पवित्रो का, पुण्यकृतों का पुण्य एव श्रेष्ठ है । हे प्रभञ्जन ! इसे हम आपकी कृपा से सुनने की इच्छा करते हैं जिस कारण से अम्बिका के पति के कण्ठ की नीलता हुई थी, आपके मुख से विशेष रूप से उसे भली-भाँति श्रवण करने की इच्छा रखते हैं । जितनी भी वाणी प्रवृत्त होती है वह आपके द्वारा ईरित होती हुई सार्थ हुआ करती है ॥ १०-११-१२ ॥ वायु के वर्ण और स्थान पर जाने पर वाग् की विधि सम्प्रवृत्त होती है । हे वायो ! पहिले ज्ञान और इसके उपरान्त उत्साह

आपसे प्रवृत्त होता है ॥ १३ ॥ आपके निष्प्रयाण होने पर ही शेष वर्णों की प्रवृत्ति हुआ करती है । जहाँ वाणी निवृत्त हो जाती है वहाँ वैकल्य दुर्लभ होता है ॥ १४ ॥

तत्रापि तेऽस्ति सद्भावः सर्वगस्त्वं सदानिल ।
नान्यः सर्वगतो देवस्त्वदृतेऽस्ति समीरण ॥१५
एष च जीवलोकस्ते प्रत्यक्षः सर्वतोऽनिल ।
वेत्थ वाचस्पतिं देवं मनोनायकमीश्वरम् ॥१६
ब्रूहि तस्यैकदेशस्य किं कृता रूपविक्रिया ।
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तेषामृषीणां भावितात्मनाम् ।
प्रत्युवाच महातेजा वायुर्लोकनमस्कृतः ॥१७
पुरा कृतयुगे विप्रो वेदनिर्णयतत्परः ।
वसिष्ठो नाम धर्मात्मा मानसो व प्रजापतेः ॥१८
अपृच्छत् कार्तिकेयं च मयूरवरवाहनम् ।
महिषासुरनारीणां नयनाञ्जनतस्करम् ॥१९
महासेनं महात्मानं मेघस्तनितनिःस्वनम् ।
उमामनःप्रहर्षेण बालकं छद्मरूपिणम् ॥२०
क्रौञ्चजीवितहर्तारं पार्वतीहृदिनन्दनम्
वसिष्ठः पृच्छते भगवान् कार्तिकेयं महाबलम् ॥२१

वहाँ पर भी आपका सद्भाव रहता है हे अनिल ! आप सदा सर्वत्र गमन करने वाले हैं । हे समीरण ! आपके बिना अन्य कोई भी देव सर्वगत नहीं है ॥ १५ ॥ हे अनिल ! यह जीवों का लोक सब ओर से आपके लिये प्रत्यक्ष ही है । आप वाणी के पति और मन के नायक देव ईश्वर को जानते हैं ॥ १६ ॥ आप बतलाइये उनके एक देश के रूप की विक्रिया किस कारण से हुई है । इसके अनन्तर भावित आत्मा वाले उन ऋषियों के इस वचन को सुनकर लोकों के द्वारा नमस्कृत महान तेज से युक्त वायुदेव कहने लगे ॥ १७ ॥ श्री वायुदेव ने कहा—प्राचीन समय में कृतयुग में वेद के निर्णय करने में परायण वसिष्ठ नाम वाले ब्राह्मण बहुत ही धर्मात्मा तथा प्रजापति के मानस पुत्र थे

॥ १८ ॥ मयूर के श्रेष्ठ वाहन वाले कार्त्तिकेय से वसिष्ठ ने पूछा था जो कि महिषासुर की स्त्रियों के नयनों के अञ्जन के चुराने वाले तस्कर थे। जो महा-घोष—महारथा और मेघ के गर्जित के समान ध्वनि वाले थे। उमा के मन के भ्रमर तु पावक रूप वाले एवं छद्म रूपी थे तथा क्रौञ्च के जीवन का हरण करने वाले और पार्वती के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले थे। ऐसे महान् यश वाले स्वामी कार्त्तिकेय से वसिष्ठ मुनि पूछते हैं और भक्ति के भाव के साथ पूछते हैं ॥ १९-२०-२१ ॥

नमस्ते हरनन्दाय उमागर्भ नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते अग्निगर्भाय गङ्गागर्भ नमोऽस्तु ते ॥२२
नमस्ते शरगर्भाय नमस्ते कृत्तिकासुत ।
नमो द्वादशनेत्राय षण्मुखाय नमोऽस्तु ते ॥२३
नमस्ते शक्तिहस्ताय दिव्यघण्टापताकिने ।
एवं स्तुत्वा महासेनं पप्रच्छ शिखिवाहनम् ॥२४
यदेतद्दृश्यते वर्णं शुभ्रं शुभ्राञ्जनप्रभम् ।
तदिदं सर्वं समुत्पन्नं कण्ठे कुन्देन्दुसप्रभे ॥२५
एतदाख्याय भक्ताय दान्ताय ब्रूहि पृच्छते ।
कथा मङ्गलसंयुक्ता पवित्रा पापनाशिनीम् ।
मत्प्रियार्थं महाभाग वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥२६
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ।
प्रत्युवाच महातेजा सुरारिबलसूदनः ॥२७
शृणुष्व वदतां श्रेष्ठ कथ्यमानं वचो मम ।
उमोत्सङ्गनिविष्टेन मया पूर्वं यथाश्रुतम् ॥२८

वसिष्ठ जी ने कहा—महादेव को आनन्द प्रदान करने वाले हे उमा-गर्भ ! आपको हमारा नमस्कार है। अग्निगर्भ आपके लिये है गङ्गागर्भ ! हमारा नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे कृत्तिका सुत ! शरगर्भ ! आपके लिये नमस्कार है। द्वादश नेत्रों वाले तथा षट् मुखों वाले आपके लिये नमस्कार है। शक्ति को हाथ में रखने वाले तथा दिव्य घण्टा और पताका वाले आपके लिये नमस्कार

है। इस प्रकार से स्तवन करके शिवजी के महान् ज्ञान महादेव से पूछा ॥ २४ २४ ॥ जो यह शुभ्र कञ्चन की प्रभा के समान शुभ वर्ण है वह कुन्द एवं इन्दु के सदृश प्रभा वाले कण्ठ में नीलता कैसे उत्पन्न हुई है ॥२५॥ यह परम मङ्गलदान्त तथा मङ्गल से संयुक्त-पवित्र और पापों के नाश करने वाली कथा के पूछने वाले मुझे बतलाइये। हे महाभाग ! मेरे प्रिय के लिये आप सम्पूर्ण रूप से कहने के योग्य होते हैं ॥२६॥ इसके अनन्तर महात्मा उस वशिष्ठ के वचन को सुनकर सुरों के शत्रुओं के बल के नाशक महान् तेज से युक्त वायु ने कहा है ॥२७॥ हे बोलने वालों में श्रेष्ठ ! कहे जाने वाले मेरे वचन का श्रवण करो क्योंकि उमा के क्रोड़ में बैठे हुए मैंने पहिले जैसा भी कुछ सुना है ॥२८॥

पार्वत्या सह संवादं भवस्य च महात्मनः ।
तदहं कीर्तयिष्यामि त्वत्प्रियार्थं महामुने ॥२९
विशुद्धमुक्तामणिरत्नभूषिते शिलातले हेममये मनोरमे ।
सुखोपविष्टं मदनाङ्गनाशनं प्रोवाच वाक्यं गिरिराजपुत्री ॥३०
भगवन् भूतभव्येश गोवृषाङ्कितशासन ।
तव कण्ठे महादेव भ्राजतेऽम्बुदसन्निभम् ॥३१
नात्युल्बणं नातिशुभ्रं नीलाञ्जनचयोपमम् ।
किमिदं दीप्यते देव कण्ठे कामाङ्गनाशन ॥ ३२
को हेतुः कारणं किं च कण्ठे नीलत्वमीश्वर ।
एतत्सर्वं यथान्यायं ब्रूहि कौतूहलं हि मे ॥३३
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्याः पार्वत्याः पार्वतीप्रियः ।
कथां मङ्गलसंयुक्तां कथयामास शङ्करः ॥३४
मथ्यमानेऽमृते पूर्वं क्षीरोदे सुरदानवैः ।
अग्रे समुत्थितं तस्मिन् विषं कालानलप्रभम् ॥३५
तं दृष्ट्वा सुरसङ्घाश्च दैत्याश्च च भयानने ।
विषण्णवदना सर्वे गतास्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥३६

विशुद्ध मुक्ता और मणियों तथा रत्नों से भूषित हेममय एवं परम सुन्दर शिलातल पर सुखपूर्वक विराजमान मदन के अङ्ग को दग्ध करने वाले

शम्भु से गिरिराज पुत्री बोली ॥२६॥ देवी ने कहा—हे भगवन् ! हे भूत भावेश ! हे गो वृषाङ्कित शासन ! हे महादेव । आपके कण्ठ में अम्बुद के तुल्य भासमान होता है । हे काम के अङ्ग के नाशन । यह न तो अत्यन्त उत्वण ही है और न शुभ्र ही है—यह नील अञ्जन के ढेर के समान हे देव ! क्या कण्ठ दीप्यमान हो रहा है ॥३०-३१॥ हे ईश्वर ! मे नीलत्व होने का क्या हेतु है और क्या कारण है ? यह सभी यथान्याय बतलाइये, मुझे इस बात के सम्बन्ध में बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ॥३२॥ इसके उपरान्त पार्वती के प्रिय ने उस अपनी प्रिया पार्वती का यह वचन सुनकर शङ्कर भगवान् ने मङ्गल से संयुक्त कथा को कहना आरम्भ किया था ॥३३॥ पहिले समय में देव और दानवों के द्वारा क्षीर समुद्र के मथ्यमान होने पर अर्थात् अमृत के लिये उसका मन्थन किये जाने पर प्रथम उसमें काले अनल के प्रभा के समान विष उत्पन्न हुआ था ॥३४॥ हे वर आनन वाली । उसको देख कर देवों के समुदाय और दैत्यों के समूह भी सभी बहुत ही विषाद से युक्त मुख वाले हो कर ब्रह्मा जी के समीप में गये ॥३५॥३६॥

दृष्ट्वा सुरगणान् भीतान् ब्रह्मोवाच महाद्युतिः ।
किमर्थं भो महाभागा भीता उद्विग्नचेतसः ॥३७
मयाष्टगुणमैश्वर्यं भवतां सम्प्रकल्पितम् ।
केन व्यावर्त्तितैश्वर्या यूयं वै सुरसत्तमाः ॥ ३८
त्रैलोक्यस्येश्वरा यूयं सर्वे वै विगतज्वराः ।
प्रजासर्गं च सोऽस्तीह आज्ञा यो मे निवर्त्तयेत् ॥३९
विमानगामिनः सर्वे सर्वे स्वच्छन्दगामिनः ।
अध्यात्मे चाधिभूते च अधिदैवे च नित्यशः ।
प्रजा कर्मविपाकेन शक्ता यूयं प्रबाधितुम् ॥४०
तत्किमर्थं भयोद्विग्ना मृगाः सिंहार्दिता इव ।
किं दुःखं केन सन्तापः कुतो वा भयमागतम् ।
एतत्सर्वं यथान्यायं शीघ्रमाख्यातुमर्हथ ॥४१

उस समय में समस्त देवों के गणों को बहुत ही भीत देख कर श्रीब्रह्मा जी जो कि महान् शक्ति वाले थे बोले—हे महान् भाग वालो। आप लोग किस लिये इतने भयभीत (डरे हुए) और उद्विग्न चित्त वाले हो रहे हैं ॥७६॥ मैंने आप लोगों को आठ गुण वाला ऐश्वर्य सम्प्रदान किया है। अब किसके द्वारा यह ऐश्वर्य व्यावर्तित कर दिया गया है जो आप उससे रहित से हो सुस्थ सी इस समय हो रहे हैं ॥७७॥ आप सब तीनों लोकों के ईश्वर हैं और आप सब समस्त प्रकार के दुःख से रहित हैं। इस प्रजा की सृष्टि में कोई भी ऐसा नहीं है जो कि मेरी आज्ञा को निवृत्त न कर देवे ॥८०॥ आप सब तो वायु में उड़ कर जाने वाले विमानों से गमन करने वाले हैं और अत्यन्त स्वच्छन्द रूप से गमन करने वाले हैं। आप समस्त प्रजा को आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक मे नित्य ही कर्मों के विपाक से प्रवृत्त करने के लिये समर्थ हैं। ॥५२॥ कि आप किस कारण से सिंह के द्वारा सताये गये मृगों के समान ऐसे भय से उद्विग्न हो रहे हैं? क्या दुःख है? किसके द्वारा सन्ताप प्राप्त हो रहा है? भय कहाँ से प्राप्त हो रहा है? यह सभी बात न्यायानुसार शीघ्र आप लोग बताने को योग्य होते हैं ॥४-॥५१॥

श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य ब्रह्मणो वै महात्मनः ।
ऊचुस्ते ऋषिभिः सार्द्धं सुरदैत्येन्द्रदानवाः ॥५२
सुरासुरमथ्यमाने पाथोधौ च महात्मभिः ।
भुजङ्गभृङ्गसङ्काश नीलजीमूतसन्निभम् ।
प्रादुर्भूतं विषं घोरं संवर्ताग्निसमप्रभम् ॥५३
कालमृत्युरिवोद्भूतं युगान्तादित्यवर्चसम् ।
त्रैलोक्योत्सादि सूर्याभं प्रस्फुरन्तं समन्ततः ॥५४
विषेणोत्तिष्ठमानेन कालानलसमत्विषा ।
निर्दग्धो रक्तगौराङ्गः कृतकृष्णो जनार्दनः ॥५५
दृष्ट्वा तं रक्तगौराङ्गं कृतकृष्णं जनार्दनम् ।
भीताः सर्वे वयं देवास्त्वामेव शरणं गताः ॥५६
सुराणामसुराणाञ्च श्रुत्वा वाक्यं पितामहः ।

प्रत्युवाच महातेजा लोकानां हितकाम्यया ॥४७

शृणुध्वं देवताः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ।

यत्तदग्रे समुद्भूतं मथ्यमाने महोदधौ ॥४८

विषं कालानलप्रख्यं कालकूटेति विश्रुतम् ।

येन प्रोद्भूतमात्रेण कृष्णकृष्णो जनार्दनः ॥ ४९

इस प्रकार से महान् आत्मा वाले ब्रह्मा जी के इस वाक्य को सुनकर उस समय ऋषियों के साथ में रहने वाले देव असुर और दानव सभी ने कहा ।।४२।। महात्मा देव और असुरों के द्वारा पायोधि के मन्थन किये जाने पर कृष्णमर्प तथा भौंरा के समान एवं नील वर्ण वाले मेघ के तुल्य सम्वर्ताग्नि की प्रभा वाला घोर विष उसमें से प्रादुर्भूत हुआ है ।।४३।। काल मृत्यु की भाँति उद्भूत वह है जो कि युग के अन्त समय में आदित्य के प्रभाव के समान वर्चस् वाला, त्रैलोक्य को उत्सादित करने वाला चारों ओर से प्रस्फुरित सूर्य की आभा वाला है ।।४४।। उस कालानल के समान कान्ति वाले उत्तिष्ठमान विष से निर्दग्ध रक्त और अङ्ग वाले जनार्दन कृष्णकृष्ण हो गये हैं ।।४५।। उन रक्त और अङ्ग से युक्त जनार्दन को कृष्णीभूत देखकर हम सभी भीत होते हुए देवगण इस समय आपकी शरण में आये हुए हैं ।।४६।। तब तो पितामह श्रीब्रह्माजी ने सुर तथा असुरों के इन वचन को सुनकर महान् तेज से युक्त लोकों के हित की कामना से कहा—।।४७।। हे समस्त देवताओ और हे तप के ही धन वाले समस्त ऋषिगणो ! सुनिये, जो सबसे पहिले समुद्र मन्थन करने पर उत्पन्न हुआ करता है वह काले अनल के समान विष कालकूट विश्रुत है जिसके उत्पन्न होने मात्र से ही जनार्दन कृष्ण कृष्ण हो गये हैं ।।४८।।४९।।

तस्य विष्णुरहञ्चापि सर्वे ते सुरपुङ्गवाः ।

न शक्नुवन्ति वै सोढुं वेगमन्ये तु शङ्करात् ॥५०

इत्युक्त्वा पद्मगर्भाभः पद्मयोनिरयोनिजः ।

ततः स्तोतुं समारब्धो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥५१

तस्मै भीतो ह्यहं तस्मै महाक्षे सुमहात्मने ।

ततोऽहं सूक्ष्मया वाचा पितामहमथाब्रुवम् ॥५२

भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते ।
किं कार्यं ते मया ब्रह्मन् कर्त्तव्यं वद सुव्रत ॥५३
श्रुत्वा वाक्यं ततो ब्रह्मा मत्सुधाम्बुजेक्षण ।
भूतभव्यभवनाथ श्रूयतां कारणं भव ॥५४
सुरासुरैर्मथ्यमाने पयोधावम्बुजेक्षण ।
भगवन्मेघसङ्काश नीलजीमूतसन्निभम् ॥५५
प्रादुर्भूतं विषं घोरं संवर्त्ताग्निसमप्रभम् ।
कालमृत्युरिवोद्भूतं युगान्तादित्यवर्चसम् ॥५६
त्रैलोक्योत्सादि सूर्याभं विस्फुरन्तं समन्ततः ।
अग्रे समुत्थितं तस्मिन् विषं कालानलप्रभम् ॥५७

उसके इस महान् वेग को भगवान् विष्णु—मैं और सभी सुरों में श्रेष्ठ मान लोग कोई ग्रहण करने में समर्थ नहीं हैं केवल शङ्कर ही उसे ग्रहण कर सकते हैं ॥५१॥ यह कह कर पद्मभव की आज्ञा था कि—अयोनिज और यशयोनि लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने स्तुति करना का आरम्भ कर दिया ॥५२॥ इसके अनन्तर उन सुमहात्मा ब्रह्मा पर मैं परम प्रसन्न हो गया और शुभ्र वाणी से मैंने पितामह से कहा ॥५३॥ हे भगवन् ! हे भूत और भव्य के स्वामिन् ! हे लोकों के नाथ ! हे जगत् के पति ! हे ब्रह्मन् ! आपको मुझसे क्या कराना है यह सुव्रत ! अब आप मुझे बतादें ॥५३॥ कमल के समान नेत्रों वाले ब्रह्मा जी ने मेरे इस वाक्य को सुन कर फिर कहा—॥५४॥ संवर्त्ताग्नि के समान प्रभा वाला महाघोर विष प्रादुर्भूत हो गया है । वह विष कालमृत्यु की भाँति उद्भूत हुआ है जो युग के अन्त में होने वाले आदित्य के तुल्य वर्चस वाला और त्रैलोक्य के उत्सादन करने वाले सूर्य की आभावाला है क्योंकि सभी ओर निरन्तर रूप से स्फुरित है । यह कालानल के समान प्रभा वाला उसके आगे समुत्थित है ॥५५॥५६॥५७॥

तं दृष्ट्वा तु भयं सर्वे भीता सम्भ्रान्तचेतसः ।
तत् पिबस्व महादेव लोकानां हितकाम्यया ।
भवानग्रस्य भोक्ता च सर्वेषामेव सर्व प्रभुः ॥५८

त्वामृतेऽन्यो महादेव विष सोढुं न विद्यते ।
नास्तिकश्चित् पुमान् शक्तस्त्रिलोकेषु च गीयते ॥५९
एवं तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
बाढमित्येव तद्वाक्यं प्रतिगृह्य वरानने ॥६०
ततोऽहं पातुमारब्धो विषमन्तकसन्निभम् ।
पिबतो मे महाघोरं विषं सुरभयकरम् ।
कण्ठः समभवत्तूर्णं कृष्णो मे वरवर्णिनि ॥६१
तं दृष्ट्वोत्पलपत्राभं कण्ठं सक्तमिवोरगम् ।
तक्षकं नागराजानं लेलिहानमिव स्थितम् ॥६२
अथोवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
शोभसे त्वं महादेव कण्ठेनानेन सुव्रत ॥६३
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा मया गिरिवरात्मजे ।
पश्यतां देवसङ्घानां दैत्यानाञ्च वरानने ॥६४
यक्षगन्धर्वभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम् ।
धृतं कण्ठे विषं घोरं नीलकण्ठस्ततो ह्यहम् ॥६५

उसे देख कर हम सब सम्भ्रान्त चित्त वाले डरे हुए हैं सो उसे हे महादेव ! आप लोकों की हितकामना से पान कर जाइये । आप सबसे पूर्व में निकलने वाले का भोग करने वाले हैं और आप ही प्रभु वरदान हैं ॥५८॥ हे महादेव ! आपको छोड़कर अन्य किसी की भी सामर्थ्य नहीं है जो उस विषको सहन कर सके । इस त्रैलोकी में ऐसा शक्तिशाली कोई पुरुष नहीं बताया जाता है ॥५९॥ हे वरानने ! परमेष्ठी ब्रह्माजी के इस प्रकार के वचन को सुनकर 'बहुत अच्छा'—यही वचन कह कर मैंने स्वीकार कर लिया था ॥६०॥ उस अन्तक-सन्निभ विष को पीना आरम्भ कर दिया था । उस महान् घोर सुरों को भी भय देने वाले विष को पान करते हुए मेरा कण्ठ हे वर वर्णिनी ! तुरन्त ही कृष्ण हो गया था ॥६१॥ उत्पल की आभा वाले-कण्ठ मे सक्त उरग की भाँति चाटते हुए नागराज तक्षक के समान स्थित उस को देख कर पितामह बोले॥६२॥ इसके उपरान्त महान् तेज से युक्त लोक पितामह ब्रह्माजी ने कहा— हे सुव्रत !

महादेव ! आप इस नील वर्ण वाले कण्ठ से परम शोभा को प्राप्त होते हैं ॥६३॥ हे गिरिवर की आत्मजे ! इसके पश्चात् मैंने उनके इस वचन को सुन कर देवों के समूह—दैत्य—यक्ष—गन्धर्व भूत—पिशाच—उरग और राक्षस आदि सब के देखते हुए फिर उस महाविष को कण्ठ में ही धारण कर लिया था। तब से ही मैं नीलकण्ठ हो गया हूँ ॥६४॥

॥ प्रकरण २७ - लिङ्गोद्भव स्तुति ॥

गुणकर्मप्रभावश्च कोऽधिको भवता वर ।
श्रोतुमिच्छामहे सम्यगाख्यानं गुणविस्तरम् ॥१
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
महादेवस्य माहात्म्यं विभुत्वञ्च महात्मनः ॥२
पूर्वं त्रैलोक्यविजये विष्णुना समुदाहृतम् ।
बलिं बद्ध्वा महौजास्तु त्रैलोक्याधिपतिं पुरा ॥३
प्रणष्टेषु च दैत्येषु प्रहृष्टे च शचीपतौ ।
अथाजग्मुः प्रभुं द्रष्टुं देवाः सवासवाः ॥४
यत्रास्ते विश्वरूपात्मा क्षीरोदस्य समीपतः ।
सिद्धब्रह्मर्षयो यक्षा गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः ॥५
नागा देवर्षयश्चैव नद्यः सर्वे च पर्वताः ।
अभिगम्य महात्मानं स्तुवन्ति पुरुषं हरिम् ॥६
त्वं धाता त्वञ्च कर्त्ताऽसि त्वं लोकान् सृजसि प्रभो ।
त्वत्प्रसादाच्च कल्याणं प्राप्तं त्रैलोक्यमव्ययम् ।
असुराश्च जिताः सर्वे बलिर्बद्धश्च वै त्वया ॥७

ऋषियों ने कहा—बोलने वालों में श्रेष्ठ ! गुण कर्म और प्रभाव में कौन अधिक है। इस गुणों के विस्तार वाले आख्यान को हम सुनना चाहते हैं ॥१॥ श्रीसूतजी ने कहा—यहाँ पर इस पुरातन इतिहास का उदाहरण करते हैं जिसमें महादेव का माहात्म्य और उन महान आत्मा वाले का विभुत्व वर्णित होता है ॥२॥ पहिले त्रैलोक्य के विजय में भगवान् विष्णु ने समुदाहृत किया

है। बीज से युक्त त्रैलोक्य के अधिपति ने पहले समय में बलिराजा को बाँधकर ही यह उदाहरण किया था ।३। समस्त दैत्यों के नष्ट हो जाने पर शची के पति इन्द्रदेव के परम प्रसन्न होने पर इसके उपरान्त इन्द्र के सहित समस्त देवगण प्रभु के दर्शन करने के लिये आये थे ।।४।। वह विश्वरूपात्मा क्षीरसागर के समीप में जहाँ पर थे वहाँ सिद्ध—ब्रह्मर्षि—यक्ष—गन्धर्व—अप्सराओं के समूह-नाग देवर्षि नदी समस्त पर्वत आकर महान् आत्मा वाले पुरुष हरि का स्तवन करते हैं ।।५।। ।।६।। हे प्रभो ! इस समस्त विश्व के आप ही धाता हैं आप ही कर्त्ता हैं और आप ही इन लोकों का सृजन किया करते हैं। आपके प्रसाद से ही यह अव्यय त्रैलोक्य कल्याण को प्राप्त होता है। आपने समस्त असुरों को जीत लिया है और असुरों के राजा बलि को भी बद्ध कर दिया है ।।७।।

एवमुक्तः सुरैर्विष्णुः सिद्धैश्च परमर्षिभिः ।
प्रत्युवाच ततो देवान् सर्वांस्तान् पुरुषोत्तमः ।।८
श्रूयतामभिधास्यामि कारणं सुरसत्तमाः ।
यः स्रष्टा सर्वभूतानां कालः कालकरः प्रभुः ।।९
येन हि ब्रह्मणा सार्द्धं सृष्टा लोकाश्च मायया ।
तस्यैव च प्रसादेन आदौ सिद्धत्वमागतम् ।।१०
पुरा तमसि चाव्यक्ते त्रैलोक्ये ग्रासिते मया ।
उदरस्थेषु भूतेषु लोकेऽहं शयितस्तदा ।।११
सहस्रशीर्षा भूत्वा च सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
शङ्खचक्रगदापाणिः शयितो विमलेऽम्भसि ।।१२
एतस्मिन्नन्तरे दूरात् पश्यामि ह्यमितप्रभम् ।
शतसूर्यप्रतीकाशं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ।।१३
चतुर्वक्त्रं महायोगं पुरुषं काञ्चनप्रभम् ।
निमेषान्तरमात्रेण प्राप्तोऽसौ पुरुषोत्तमः ।।१४

इस प्रकार से कहे हुए सुर-सिद्ध और बड़े महर्षियों के द्वारा स्तुत भगवान् विष्णु पुरुषोत्तम समस्त देवों से कहने लगे ।।८।। हे सुरसत्तमो ! इसका कारण मैं बताऊँगा आप सब सुनिये। जो समस्त प्राणियों का सृजन करने

वाला है वह काल को भी कलने वाला प्रभु काल है ॥१०॥ जिस ब्रह्मा के साथ माया से लोकों का सृजन किया गया है उसी के प्रसाद से आदि में सिद्धत्व को आया ॥११॥ पहिले अव्यक्त तम में मेरे द्वारा स चौकर के प्रासित होने पर उस समय समस्त प्राणियों के उपरत होने पर मैं शोक में शयन करने वाला था ॥१२॥ मैं उस समय सहस्र शीर्षों वाला-सहस्र नेत्रों से युक्त तथा सहस्र चरणों वाला शङ्ख-चक्र गदा हाथों में लिये हुए विमल जल में शयन करता था। ॥१३॥ इसी समय में दूर से अमित प्रभा वाला तथा एक शत सूर्यों के प्रकाश अपने ही तेज से प्रज्वलित होते हुए चार मुखों वाले महान् योग से युक्त सुवर्ण के जैसी प्रभा से परिपूर्ण कृष्ण मृग चर्मधारी कमण्डलु से भूषित देव पुरुष को देखकर हुँ जो कि एक निमिष में ही यह पुरुषोत्तम प्राप्त हो गया ॥१४॥

तातो मामब्रवीद्ब्रह्मा सर्वलोकैर्नमस्कृत ।
कस्त्वं कुतो वा किञ्चेह तिष्ठसे वद मे विभो ॥१५
अहं कर्त्तास्मि लोकानां स्वयम्भूर्विश्वतोमुख ।
एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणाहमुवाचनम ॥१६
अहं कर्त्ता च लोकानां संहर्त्ता च पुनः पुनः ।
एवं सम्भाषमाणाभ्यां परस्परजयैषिणाम् ।
उत्तरां दिशमास्थाय ज्वाला दृष्टाभ्यवस्थिता ॥१७
ज्वालान्तां तस्यामालोक्य विस्मितौ च तदानघौ ।
तेजसा चैव तेनाथ सर्वं ज्योतिकृतं जगत् ॥१८
वर्द्धमाने तदा वह्नावत्यन्तपरमाद्भुते ।
अतिक्रान्त सा ज्वाला ब्रह्मा चाहञ्च सत्वर ॥१९
दिवं भूमिञ्च विष्टभ्य तिष्ठन्तं ज्वालमण्डलम् ।
तस्य ज्वालस्य मध्ये तु पश्यावो विपुलप्रभम् ॥२०
प्रादेशमात्रमव्यक्तं लिङ्गं परमदीपितम् ।
न च तत्काञ्चनं मध्ये न शैलं न च राजतम् ॥२१

इसके अनन्तर समस्त लोकों के द्वारा नमस्कृत अर्थात् वन्दित ब्रह्मा जी ने मुझसे कहा —हे विभो! आप कौन है-कहाँ से और क्यों यहाँ स्थित हैं मुझे

वक्ताहरे ॥१५॥ मैं तो समस्त लोकों का कर्ता हूँ और विश्वतोमुख स्वयम्भू हूँ। इस प्रकार से उस ब्रह्मा के द्वारा कहे गये मैंने उनसे कहा—॥१६॥ इन समस्त लोकों का सृजन करने वाला तथा संहार करने वाला और बार-बार ऐसा ही करते रहने वाला मैं हूँ। इस तरह से आपस में सम्भाषण करने वाले दोनों के, जो कि परस्पर में जय प्राप्त करने की इच्छा वाले थे उत्तर दिशा में आस्थित होकर अधिष्ठित ज्वाला देखी गई ॥१७॥ ज्वाला के मध्य से उसको देखकर विस्मित हुए। तब इनके तेज से सब जल ज्योतिष्मत होगया ॥१८॥ उस समय अत्यन्त एवं परम अद्भुत वह्नि के बढ़जाने पर ब्रह्मा और मैंने शीघ्रता से उस ज्वाला का अभि द्रवण किया ॥१९॥ दिव और भूमि को विष्टब्ध करके स्थित रहने वाले उस ज्वालाओं के मण्डल के मध्य में एक विपुल प्रभा वाले पुरुष को हम दोनों देखते हैं ॥२०॥ वह प्रादेश मात्र अत्यन्त दीप्ति अव्यक्त लिङ्ग था। न तो काञ्चन था, मध्य में न राजत (चाँदी का) शैल ही था ॥२१॥

अनिर्देश्यमचिन्त्यञ्च लक्ष्यालक्ष्यं पुनः पुनः ।
महौजसं महाघोरं वर्द्धमानं भृशं तदा ।
ज्वालामालायुतं व्यस्तं सर्वभूतभयङ्करम् ॥२२
अस्य लिङ्गस्य योऽन्तं वै गच्छते मन्त्रकारणम् ।
घोरं रूपिणमत्यर्थं भिन्दन्तमिव रोदसी ॥२३
ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा अधो गच्छ त्वतन्द्रित ।
अन्तमस्य विजानीमो लिङ्गस्य तु महात्मनः ॥२४
अहं मूर्द्ध्वं गमिष्यामि यावदन्तोऽस्य दृश्यते ।
तदा तौ समयं कृत्वा गतावूर्द्ध्वमधश्च ह ॥२५
ततो वर्षसहस्रन्तु अहं पुनरधो गतः ।
न च पश्यामि तस्यान्तं भीतश्चाहं न संशयः ॥२६
तथा ब्रह्मा च श्रान्तश्च न चान्तस्तस्य पश्यति ।
समागतो मया सार्द्धं तत्रैव च महाम्भसि ॥२७
ततो विस्मयमापन्नावुभौ तस्य महात्मनः ।
मायया मोहितौ तेन नष्टसंज्ञौ व्यवस्थितौ ॥२८

यह अनिर्देश्य और न चिन्तन करने के योग्य तथा बार बार सक्ष्य लक्ष्य था। महान् ओज से युक्त- महाघोर और उस समय बहुत ही अधिक बढ़ने वाला था। ज्वालामाला जहाँ व्याप्त एवं व्यक्त तथा समस्त प्राणियों को बड़ा भयङ्कर था ॥२२ इस लिङ्ग के जो अन्त तक जाता है उसका कारण भय ही है। यह अत्यन्त घोर रूप धारी ऐसा था मानों रोदसी का भेदन करता हुआ हो ॥२३॥ इस के अनन्तर ब्रह्मा ने मुझसे कहा कि आप अतन्द्रित होते हुए नीचे की ओर जाव। इस महात्मा लिङ्ग का अन्त हम जान लेवें ॥२४॥ मैं ऊपर के भाग में जाता हूँ जब तक कि इसका अन्त दिखाई देता है। तब उस समय उस प्रकार से वायदा करके ऊर्ध्वभाग में तथा अधोभाग में गये ॥२५॥ इसके पश्चात् एक सहस्र वर्ष तक मैं वहाँ नीचे के भाग में गया था। वहाँ मैंने उसका कहीं अन्त नहीं देखा और मैं भीत हो गया—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२६॥ उसी प्रकार से ब्रह्मा भी श्रान्त हो गये और वह भी उसका अन्त नहीं देखते हैं और मेरे साथ उसी महाजल से वापिस आगये थे ॥२७॥ तब हम दोनों उस महात्मा के विषय में परम आश्चर्य को प्राप्त हुए और उसके द्वारा माया से मोहित हो गये एवं नष्ट संज्ञा वाले होकर व्यथित हो गये थे ॥२८॥

ततो ध्यानगतन्तत्र ईश्वरं सर्वतोमुखम् ।
प्रभवं निधनञ्चैव लोकानां प्रभुमव्ययम् ॥२९
ब्रह्माञ्जलिपुटो भूत्वा तस्मै शर्वाय शूलिने ।
महाभैरवनादाय भीमरूपाय दंष्ट्रिणे ।
अव्यक्ताय महान्ताय नमस्कारं प्रकुर्महे ॥३०
नमोऽस्तु ते लोकसुरेश देव नमोऽस्तु ते भूतपते महाप्रभ ।
नमोऽस्तु ते शाश्वत सिद्धयोने नमोऽस्तु ते सर्वजगत्प्रतिष्ठ ॥३१
परमेष्ठी परं ब्रह्म अक्षरं परमं पदम्
श्रेष्ठस्त्वं वामदेवश्च रुद्रः स्कन्दः शिवः प्रभुः ॥३२
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः परं पदम् ।
स्वाहाकारो नमस्कारः संस्कारः सर्वकर्मणाम् ॥३३
स्वधाकारश्च जाप्यश्च व्रतानि नियमास्तथा ।

वेदा लोकाश्च देवाश्च भगवानेव सर्वश ॥३४
आकाशस्य च शब्दस्त्वं भूतानां प्रभवाव्ययम् ।
भूमेर्गन्धो रसश्चापां तेजोरूपं महेश्वर ॥३५

इसके अनन्तर वहाँ पर सर्वतोमुख ईश्वर के ध्यानगत हुए जो लोकों के प्रभव तथा निधन एवं अव्यक्त प्रभु थे ॥२९॥ तब ब्रह्माजी अञ्जलिपुट वाले होकर उन शर्व—शूलधारण करने वाले—महान् भैरवनाद वाले—भीम रूप धारी-दंष्ट्रा वाले-अव्यक्त और महान्त के लिये नमस्कार करते हैं ॥३०॥ हे लोक सुरेश ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है। हे भूतों के पति। हे महान्। आपके लिये नमस्कार है। हे शाश्वत ! हे सिद्धयोनि ! आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥३१॥ आप परमेष्ठी-परब्रह्म-अक्षर और परम पद हैं। आप श्रेष्ठ हैं। वामदेव-रुद्र-स्कन्द-शिव और प्रभु हैं ॥३२॥ आप यज्ञ हैं-वषटकार हैं-ओंकार हैं और परम पद हैं। आप ही स्वाहाकार हैं। नमस्कार है। आप हैं-आप ही व्रत हैं और नियम रूप हैं। वेद और लोक तथा देव और सब प्रकार से भगवान् ही आप हैं ॥३४॥ आप इस आकाश के शब्द हैं और आप प्राणियों के प्रभव तथा अव्यय हैं। भूमि के गन्ध,जल के रस और तेज के रूप ! हे महेश्वर ! यह सब आप ही हैं ॥३५॥

वायो स्पर्शश्च देवेश वपुश्चन्द्रमस स्तथा ।
बुधो ज्ञानश्च देवेश प्रकृतौ बीजमेव च ॥३६
त्व कर्ता सर्वभूतानां कालो मृत्युर्यमोऽन्तक ।
त्व धारयसि लोकांस्त्रींस्त्वमेव सृजसि प्रभो ॥३७
पूर्वेण वदनेन त्वमिन्द्रत्वञ्च प्रकाशसे ।
दक्षिणेन च वक्त्रेण लोकान् संक्षीयसे प्रभो ॥३८
पश्चिमेन तु वक्त्रेण वरुणत्वं करोषि वै ।
उत्तरेण तु वक्त्रेण सौम्यत्वञ्च व्यवस्थितम् ॥३९
राजसे बहुधा देव लोकानां प्रभवाव्यय ।
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनीसुतौ ॥४०
साध्या विद्याधरा नागाश्चारणाश्च तपोधना. ।

बालखिल्या महात्मानस्तप सिद्धाश्च सुव्रता ॥४१
त्वत्त प्रसूता देवेश ये चान्ये नियतव्रता ।
उमा सीता सिनी वाली कुहूर्गायत्रिरेव च ॥४२
लक्ष्मी कीर्तिघृ तिर्मेधा लज्जा क्षान्तिवपु स्वधा ।
तुष्टि पु ष्टि क्रिया चव वाचा देवी सरस्वती ।
त्वत्त प्रसूता देवेश सन्ध्या रात्रिस्तथैव च ॥४३

वायु का स्पर्श तेज तथा चन्द्रमा का वपु आप ही हैं। बुध-ज्ञान और प्रकृति में बीज भी हे देवेश ! आप ही हैं ॥३६॥ आप समस्त प्राणियों के कर्त्ता काल मृत्यु-यम और अ तक आप ही हैं। आप इन तीनों लोकों को धारण किया करते हैं और हे प्रभो ! आप ही इनका सृजन भी किया करते हैं ॥३७॥ आप पूर्व वदन से इन्द्रत्व का प्रकाश करते हैं दक्षिण वक्त्र से हे प्रभो ! आप लोकों का संक्षय किया करते हैं तथा पश्चिम वदन से वरुणत्व को करते हैं और आप अपने उत्तर वक्त्र से सौम्यत्व की व्यवस्था करते हैं ॥३८॥३९॥ हे देव ! बहुधा लोकों का प्रभवाव्यय आदित्य-वसु-मरुत और अश्विनी सुत हैं ॥४० ॥ तथा साध्य विद्याधर-नाग-चारण तपोधन बालखिल्य-महात्मा-तप सिद्ध और सुव्रत ये सब हे देवेश ! तथा अन्य नियम व्रत वाले आपसे ही प्रसूत हुए हैं। उमा सीता सिनीवाली कुहू गायत्री लक्ष्मी-कीर्ति धृति मेधा लज्जा वपु स्वधा-तुष्टि-पुष्टि क्रिया और वाणियों की देवी सरस्वती-सन्ध्या तथा रात्रि ये सभी हे देवेश ! आप से ही प्रसूत हैं ॥४१॥४२॥४३॥

सूर्यायुतानामयुतप्रभा च नमोऽस्तु ते चन्द्रसहस्रगोचर ।
नमोऽस्तु ते पर्वतरूपधारिणे नमोऽस्तु ते सर्वगुणा कराय ॥४४
नमोऽस्तु ते पट्टिशस्पधारिणे नमोऽस्तु चर्मविभूतिधारिणे ।
नमोऽस्तु ते चन्पिनाकपाणये नमोऽस्तु ते सद्दायकचक्रधारिणे ॥४५
नमोऽस्तु ते भस्मविभूषिताङ्ग नमोऽस्तु ते कामशरीरनाशन ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवाससे नमोऽस्तु ते देव हिरण्यबाहवे ॥४६
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यरूप नमोऽस्तु ते देव हिरण्यनाभ ।
नमोऽस्तु ते नेत्रसहस्रचित्र नमोऽस्तु ते देव हिरण्यरेत ॥४७

नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवर्ण नमोऽस्तु ते देव हिरण्यगर्भ ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यचीर नमोऽस्तु ते देव हिरण्यदायिने ॥४८
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यमालिने नमोऽस्तु ते देव हिरण्यबाहिने ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवर्मने नमोऽस्तु ते भैरवनादनादिने ॥४९
नमोऽस्तु ते भैरववेगवेग नमोऽस्तु ते शङ्कर नीलकण्ठ ।
नमोऽस्तु ते दिव्यसहस्रबाहो नमोऽस्तु ते नर्त्तनवादनप्रिय ॥५०

हे पद्मसहस्र गोचर ! अतुल सूर्यों जैसी अतुल प्रभा है आपके लिये नमस्कार है । पर्वत के रूप को धारण करने वाले तथा समस्त के आकर आपके लिये हमारा सबका नमस्कार है ॥४४॥ पट्टिका रूप के धारी तथा चर्म और विभूति के धारण करने वाले आपके लिये नमस्कार है । रुद्र पिनाकपाणि के लिये नमस्कार है तथा सारे भस्म से विभूषित अङ्गों वाले हे देव ! हे हिरण्यनाभ ! आपके लिये हमारा नमस्कार है । हे काम के शरीर को नाश करने वाले ! आपके लिये हमारा नमस्कार है । हे देव ! हे नेत्र सहस्रचित्र ! हे हिरण्यरेता ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है ॥४६॥४७॥ हे हिरण्य-वर्ण ! हे हिरण्यगर्भ ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है । हे हिरण्य चीरदेव ! हिरण्य के देने वाले आपके लिये नमस्कार है ॥४८॥ हिरण्य की माला वाले और हिरण्यबाही आपके लिये हे देव ! हमारा नमस्कार है । भैरवनाद के नादी तथा हिरण्यवर्मा आपके लिये हे देव ! हमारा नमस्कार है ॥४९॥ हे भैरव वेग ! हे नीलकण्ठ ! आपके लिये हमारा सबका नमस्कार है । हे दिव्य सहस्रबाहु वाले ! हे नृत्य और वादन पर प्यार करने वाले ! आप के लिये नमस्कार है ॥५०॥

एवं संस्तूयमानस्तु व्यक्तो भूत्वा महामतिः ।
भाति देवो महायोगी सूर्यकोटिसमप्रभ ॥५१
अभिभाष्यस्तदा हृष्टो महादेवो महेश्वर ।
वक्त्रकोटिसहस्रेण ग्रसमान इवाम्बरम् ॥५२
एकग्रीवस्त्वेकजटो नानाभूषणभूषित ।
नानाचित्रविचित्राङ्गो नानामाल्यानुलेपन ॥५३

पिनाकपाणिर्भगवान् वृषभस्थश्च शूलधृक् ।
दण्डकृष्णाजिनधरः कपाली घोररूपधृक् ॥५४
व्यालयज्ञोपवीती च सुराणामभयङ्करः ।
दुन्दुभिस्वननिर्घोषपर्जन्यनिनदोपमः ।
मुक्तो हासस्तदा तेन नभः सर्वमपूरयत् ॥५५
तेन शब्देन महता वयं भीता महात्मना ।
तथोवाच महायोगी प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ ॥५६
पश्येतां च महामायां भयं सर्वं प्रमुच्यताम् ।
युवां प्रसूतौ गात्रेषु मम पूर्वं सनातनौ ॥५७

इस प्रकार भली भाँति स्तुति किये जाने वाले महामति व्यक्त हो कर महायोगी और करोड़ों सूर्य के समान प्रभावशाली देव शोभा देते हैं ॥५१॥ उस समय में प्रसन्न महेश्वर महादेव अभिभाषण करने के योग्य थे । उस समय वे ऐसे प्रदीप्त हो रहे थे जैसे सहस्रों करोड़ सूर्यों से जगत् को प्रज्वलित हो रहे हों ॥५२॥ एक ग्रीवा वाले एक जटाधारी अनेक भूषित-माला वस्त्रों से विभिन्न अङ्गों वाले और अनेक प्रकार की माल्य तथा अनुलेपन से युक्त पिनाक को हाथ में लिये हुए वृषभ के आसन पर शूल को धारण करने वाले तथा दण्ड और कृष्ण अजिन को धारण करने वाले कपाली और घोर रूप को रखने वाले शिव हैं ॥५३॥५४॥ व्याल के यज्ञोपवीत को पहिने हुए और देवों को अभय का दान देने वाले तथा दुन्दुभि की ध्वनि के समान शब्द वाले एवं मेघ की गर्जना के सदृश ध्वनि से युक्त उन शिव ने उस समय हास छोड़ा था जिससे समस्त आकाशमण्डल पूरित हो गया था ॥५५॥ उस समय में उस हास के महान् शब्द से जो कि उन महात्मा ने किया था हम डर कर भये । तब महायोगी बोले हे सुर सत्तमो ! मैं आपसे प्रसन्न हूँ ॥५६॥ महामाया को देखो और समस्त भय का त्याग करदो । तुम दोनों सनातन मेरे गात्रों में प्रसूत हुए हो ॥५।

सव्यं मे दक्षिणो बाहुर्ब्रह्मा लोकपितामहः ।
वामो बाहुश्च मे विष्णुर्नित्यं युद्धेषु तिष्ठति ।
प्रीतोऽहं युवयोः सम्यग्वरं दद्मि यथेप्सितम् ॥५८

तत प्रहृष्टमनसौ प्रणतौ पादयो पुन ।
ऊचतुश्च महात्मानौ पुनरेव तदानघौ ॥५९
यदि प्रीति समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ ।
भक्तिर्भवतु नौ नित्य त्वयि देव सुरेश्वर ॥६०
एवमस्तु महाभागौ सृजता विविधा प्रजा ।
एवमुक्त्वा स भगवास्तत्रैवान्तरधीयत ॥६१
एवमेष यथोक्तो व प्रभावस्तस्य योगिन ।
तेन सर्वमिद सृष्ट हेतुमात्रा वयन्त्विह ॥६२
एतद्धि रूपमज्ञातमव्यक्त शिवसज्ञितम् ।
अचिन्त्य तदहश्यश्च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुष ॥६३
तस्मै देवाधिपतये नमस्कार प्रयुड्क्ष्महे ।
येन सूक्ष्ममचिन्त्यञ्च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुष ॥६४

यह लोकपितामह ब्रह्मा मेरा दक्षिण बाहु है। विष्णु मेरा बाँया बाहु है जोकि नित्य ही युद्धो मे वर्त्तमान रहा करते हैं। मैं आप दोनो से परम प्रसन्न हूँ और आपको यथोचित वरदान देता हूँ ॥५८॥ इसके अनन्तर दोनो ही प्रहृष्ट मन प्रणत हुए और फिर चरणो मे गिरगये महान् आत्मा वाले और पाप रहित उन दोनों ने फिर कहा—॥५९॥ हे सुरेश्वर ! हे देव ! यदि आपके हृदय में हमारे प्रति प्रीति उत्पन्न हो गई है और हम दोनो को वरदान देना है तो हम यही चाहते हैं कि हम दोनो की आपके चरणो मे नित्य भक्ति होवे ॥६०॥ श्रीभगवान् ने कहा—हे महान् भाग वाले ! ऐसा ही होवे। अब आप दोनो अनेक प्रकार की प्रजाओ का सृजन करो। ऐसा कह करके भगवान् वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गये थे ॥६१॥ इस प्रकार से मेरे द्वारा उन योगी का प्रभाव आपके सामने कहा गया है। उसने ही यह सब सृजन किया है, हम तो केवल हेतुमात्र ही हैं ॥६२॥ यह शिव इस सज्ञा वाला रूप अव्यक्त एव अज्ञात होता है। यह रूप चिन्तन करने के योग्य नहीं है और अदृश्य भी है। ज्ञान के चक्षुवाले ही उसे देखा करते हैं ॥६३॥ उस देवो के अधिपति के लिये नमस्कार का प्रयोग करते है जिससे ज्ञान की चक्षु वाले उस सूक्ष्म तथा चिन्तन न करने के लिये योग्य को देखा करते हैं ॥६४॥

महादेव नमस्तेऽस्तु महेश्वर नमोऽस्तु ते ।
सुरासुरवर श्रेष्ठ मनोहर नमोऽस्तु ते ।।६५
एतच्छ्रुत्वा गताः सर्वे सुराः स्वं स्वं निवेशनम् ।
नमस्कारं प्रयुञ्जाना शङ्कराय महात्मने ।।६६
इमं स्तवं पठेद्यस्तु ईश्वरस्य महात्मनः ।
कामांश्च लभते सर्वान् पापेभ्यस्तु विमुच्यते ।।६७
एतत्सर्वं तदा तेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
महादेवप्रसादेन उक्तं ब्रह्म सनातनम् ।
एतद्वः सर्वमाख्यातं मया माहेश्वरं वचः ।।६८

हे महादेव ! हे महेश्वर ! आपके लिये हमारा नमस्कार है । हे सुरासुर वर ! हे श्रेष्ठ ! हे मनोहर ! आपके लिये नमस्कार है ।।६५।। श्री सूत जी ने कहा—यह श्रवण करके समस्त देवगण अपने अपने निवास स्थान को चले गये और जाने के समय में सब महात्मा शङ्कर के लिये नमस्कार करते हुए गये थे ।।६६।। महान् आत्मा वाले ईश्वर के इस स्तव को जो कोई पढ़ता है वह समस्त कामनाओं को प्राप्त किया करता है और सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा जाता है ।।६ ।। उन सबने तदा उस प्रभविष्णु ने महादेव के प्रसाद से सनातन ब्रह्म कहा है । यह सब माहेश्वर के वच से आपसे मैंने कह दिया है ।।६८।।

।। प्रकरण ३८—पितर-वर्णन ।।

अथात्कथममावास्यां मासि मासि दिवं नृप ।
ऐलः पुरूरवा सूत कथं चातर्पयत् पितॄन् ।।१
तस्य चाहं प्रवक्ष्यामि प्रभावं शांशपायन ।
ऐलस्यादित्यसंयोगं सोमस्य च महात्मनः ।।२
अमावास्यमपस्येन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
ह्रासवृद्धी पितृमतः पक्षस्य च विनिर्णय ।।३
सोमाच्चैवामृतप्राप्तिं पितॄणां तर्पणं तथा ।
कव्याग्नेष्वात्तसोमानां पितृणाञ्च च दर्शनम् ।।४

यथा पुरूरवाश्चैलस्तर्पयामास वै पितृन् ।
एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि पर्वाणि च यथाक्रमम् ॥५
यदा तु चन्द्रसूर्यौ तौ नक्षत्रेण समागतौ ।
अमावास्यान्निवसत एकरात्रं कमण्डले ॥६
सगच्छति तदा द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरौ ।
अमावस्याममावास्या मातामहपितामहौ ।
अभिवाद्य तदा तत्र कालपेक्ष प्रतीक्ष्यते ॥७

श्री शांशपायन ने कहा—हे सूतजी ! राजा ऐल पुरूरवा मास-मास में अमावस्या में दिव मे कैसे गया और किस प्रकार से वहाँ पितरो को तृप्त किया था । सूतजी ने कहा—हे शांशपायन ! मैं उसके प्रभाव को बतलाऊँगा । ऐल का आदित्य के साथ तथा महात्मा चन्द्र के साथ जो संयोग हुआ वह भी बताया जायगा ॥२॥ जलो का सारमय जो चन्द्रमा है उसका कृष्ण और शुक्ल पक्षो में ह्रास और वृद्धि हुआ करती है । यह पक्ष का विशेष निर्णय पितृमत है ॥३॥ सोम से ही अमृत की प्राप्ति हुआ करती है तथा पितरो का दर्शन होता है ॥४॥ इस प्रकार से पुरूरवा ऐल राजा पितरो की तृप्ति किया करता था । यह सब और क्रम के अनुसार पर्वों को मैं बतलाऊँगा ॥५॥ जिस समय वे दोनो चन्द्र और सूर्य नक्षत्र से समागत होते है तो अमावस्या मे एक रात्रि तक मण्डल मे निवास किया करते है ॥६॥ उस समय वह दिवाकर और निशाकर का दर्शन प्राप्त करने के लिये जाता है । अमावस्या मे माता-मह और पिता मह को अभिवादन करके उस समय वहाँ पर कालकी अपेक्षा वाला प्रतीक्षा किया जाया करता है ॥७॥

प्रसीदमानान् सोमाच्च पित्रर्थं तत्परिस्रवात् ।
ऐल पुरूरवा विद्वान् मासि मासि प्रयत्नत ।
उपास्ते पितृमन्त स ससोम स दिवास्थितः ॥८
द्विलव कुहूमात्र तु ते उभे तु विचार्य स. ।
सिनीवालीप्रमाणेन सिनीवालीमुपासक ॥९
कुहूमात्रा कलाश्चैव ज्ञात्वोपास्तो कुहू पुन ।
स तदा भानुमत्येक कालापेक्षी प्रपश्यति ॥१०

सुधामृतं कुतः सोमात् प्रसवे मासतृप्तये ।
दशभिः पञ्चभिश्चैव सुधामृतपरिस्रवैः ॥११
कृष्णपक्षे तदा पीत्वा दुह्यमानं तथांशुभिः ।
सद्यः प्रक्षरता तेन सौम्येन मधुना च सः ॥१२
निर्वापणार्थं दत्तेन पितृभ्यो विधिना नृप ।
सुधामृतेन राजेन्द्र तर्पयामास वै पितॄन् ।
सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ॥१३
ऋतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स तु संवत्सरो मतः ।
जज्ञिरे ऋतवस्तस्मादृतुभ्यश्चार्त्तवाश्च ये ॥१४

प्रक्षीयमाण अर्थात् क्षयमाण प्राप्त हुए सोम से पितरों के लिये उसकी परिस्रव से पीत सुधा का बिन्दु माघ मास में मघवा के साथ वह दिन में आ विस्मित होता हुआ सद्योम निःमार्ग उस की उपासना करता है ॥८॥ दो अर्ध कुहूमात्र में दोनों विचार करके वह सिनीवाली प्रमाण से सिनीवाली का उपा सक होता है ॥९॥ कुहूमात्रा और कला को जानकर फिर कुहू की उपासना करता है। वह उस समय में मासमात्र में एक काल की अपेक्षा करने वाला प्रकाश रूप से देखता है ॥१०॥ मास तृप्ति के लिये वहाँ सोम से सुधामृत का प्रसव होता है। दस और पाँच सुधामृत परिस्रवों से प्राप्त करता है ॥११॥ उस समय कृष्ण पक्ष में अंशुओं से दुह्यमान को पीकर सद्यः वह उस सौम्य मधु से पर्याप्त होता है ॥१२॥ वह राजा पितृ दिये हुए से जो कि निर्वापण के लिये ही दिया गया है विधिपूर्वक राजेन्द्र सुधामृत के द्वारा पितरों को तृप्त किया करता था। उनमें सौम्य-बर्हिषद काव्य और अग्निष्वात्त ये सभी हैं ॥१३॥ ऋतु अग्नि जो कहा गया है उससे ऋतुएँ उत्पन्न हुई और ऋतुओं से ये आर्त्तव उत्पन्न हुए हैं ॥१४॥

आर्त्तवा ह्यर्द्धमासाख्याः पितरो ह्यब्दसूनवः ।
ऋतुः पितामहा मासा ऋतवश्चाब्दसूनवः ॥१५
प्रपितामहास्तु वै देवाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः ।
सौम्यास्तु सौम्यजा ज्ञेयाः काव्या ज्ञेयाः कवेः सुताः ॥१६

उपहूता स्मृता देवा सोमजा सोमपास्तथा ।
आज्यपास्तु स्मृता काव्यास्तृप्यन्ति पितृजातय ॥१७
काव्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ते त्रिधा ।
गृहस्था ये च यज्वाना ऋतुर्बर्हिषदो ध्रुवम् ॥१८
गृहस्थाश्चापि यज्वाना अग्निष्वात्तास्तथार्तवा ।
अष्टकापतय काव्या पञ्चाब्दास्तान्निबोधत ॥१९
एषा सवत्सरो ह्यग्नि सूर्यस्तु परिवत्सर ।
सोम इद्वत्सर प्रोक्तो वायुश्चैवानुवत्सर ॥२०

जो आर्तव हैं वे अर्धमास नाम वाले हैं । पितर अब्द के पुत्र हैं । ऋतु के पितामह मास हैं और ऋतु अब्द सूनु हैं ॥१७॥ इनके प्रपितामह तो ब्रह्मा के पुत्र देव पञ्चाब्द हैं । जो सौम्य हैं वे सोमपज जानने चाहिए और जो काव्य हैं वे कवि के पुत्र समझने चाहिए ॥१६॥ उपहूत देव सोमज तथा सोमप कहे गये हैं । जो आज्यप हैं वे काव्य कहे गये हैं । ये पितृ जातियाँ हैं जोकि तृप्त हुआ करती हैं ॥१७॥ वे काव्य बर्हिषद और अग्नि ष्वात्त तीन प्रकार के हुआ करते हैं । जो यज्वान गृहस्थ होते हैं उनका बर्हिषद ऋतु होता है । गृहस्थ यज्वान जो होते हैं अग्निष्वात्त उनके आर्तव होते हैं । अष्टका पति काव्य हैं । उनको पञ्चाब्द जानना चाहिए ॥१८॥१६॥ इनका सम्वत्सर अग्नि है और सूर्य परिवत्सर होता है । सोम इद्वत्सर कहा गया है और वायु ही अनुवत्सर होता है ॥२०॥

रुद्रस्तु वत्सरस्तेषा पञ्चाब्दा ये युगात्मका ।
लेखाश्चैवोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्च ते स्मृता ॥२१
एते पिबन्त्यमावास्या मासि मासि सुधा दिवि ।
तास्तेन तर्पयामास यावदासीत् पुरूरवाः ॥२२
यस्मात् प्रस्रवते सोमान्मासि मासि निबोधत ।
तस्मात् सुधामृत तद्वै पितॄणा सोमपायिनाम् ॥२३॥
एव तदमृत सौम्य सुधा च मधु चैव हि ।
कृष्णपक्षे यथा चेन्दो' कला' पञ्चदश क्रमात् ॥२४

पिबन्त्यम्बुमयीर्देवाश्चमयस्त्रिंशत्तु छन्दजा ।
पीत्वा च मासं गच्छन्ति चतुर्दश्यां सुधामृतम् ॥२५
इत्येवं पीयमानस्तु देवैश्च निशाकरः ।
समागच्छदमावास्यां भागे पञ्चदशे स्थितः ॥२६
सुषुम्नाप्यायितञ्च व अमावास्यां यथाक्रमम् ।
पिबन्ति द्विकलं कालं पितरस्ते सुधामृतम् ॥२७
ततः पीतक्षये सोमे सूर्योऽसावेकरश्मिना ।
आप्याययत्सुषुम्नेन पितॄणां सोमपायिनाम् ॥२८

या उनका वत्सर होता है वे युगात्मक पञ्चाब्द होते हैं। वे सेव्य उभयपा और दिव्याकीर्त्ति कहे गये हैं ॥२१। वे अमावस्या में मास मास में विधि में सुधा का पान किया करते हैं। उनके मुख्य जब तक है उनका तर्पण करता था ॥२२॥ जिससे मास मास में दोनों का प्रसव करता है उसे जान लो। उससे सुधामृत सोमपायी पितरों का होता है ॥२३॥ इस प्रकार से वह सौम्य अमृत सुधा और मधु होता है। जिस प्रकार से कृष्ण पक्ष में च न्द्रमा की क्रम से पन्द्रह कलाएँ होती हैं ॥२४॥ देव अम्बुमयी का पान करते हैं और तैंतीस छन्दज होते हैं और चतुर्दशी में मास तक सुधामृत को पाकर चले जाते हैं ॥२५॥ इस प्रकार से देवों के द्वारा पीयमान निशाकर अमावस्या को पन्द्रहवें भाग में स्थित आ गया था ॥२६॥ सुषुम्ना से आप्यायित अमावस्या को यथाक्रम द्विकल काल तक पितर सुधामृत का पान करते हैं ॥२७॥ इसके अनन्तर पीत होने से क्षय वाले सोम के होने पर यह सूर्य एक रश्मि से सुषुम्ना के द्वारा सोमपायी पितरों को आप्यायित करता है ॥२८॥

निःशेषायां कलायान्तु सोममाप्याययत् पुनः ।
सुषुम्नाप्यायमानस्य भागं भागं महः क्रमात् ।
कला क्षीयन्ति ताः कृष्णाः शुक्लाश्चाप्याययन्ति च ॥ २९
एवं सूर्यस्य वीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ।
दृश्यते पौर्णमास्यां वै शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः ।

संसिद्धिरेव सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।।३०
इत्येष पितृमान् सोमः स्मृत इद्वत्सरः क्रमात् ।
क्रान्तः पञ्चदशैः सार्द्धं सुधामृतपरिस्रवैः ।।३१
अतः पर्वाणि वक्ष्यामि पर्वणां सन्धयस्तथा ।
ग्रन्थिमन्ति यथा पर्वाणीक्षुवेण्वोर्भवन्त्युत ।।३२
तथार्द्धमासपर्वाणि शुक्लकृष्णानि वै विदुः ।
पूर्णमावास्ययोर्भेदैर्ग्रन्थियाः सन्धयश्च वै ।
अर्द्धमासास्तु पर्वाणि तृतीयाप्रभृतीनि तु ।।३३
अग्न्याधानक्रिया यस्मात् क्रियते पर्वसन्धिषु ।
सायाह्ने प्रतिपच्चैव स कालः पौर्णमासिकः ।।३४
व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखोर्द्ध्वं तु युगान्तरे ।
युगान्तरोदिते चैव लेखोर्द्ध्वं शशिनः क्रमात् ।।३५

कला के निःशेष होने पर भी फिर सोम को आप्यायित करता है । सुषुम्ना से आप्यायमान की भाग-भाग महा के क्रम से वे कृष्ण कलाक्षीण हो जाती हैं और शुक्ल को आप्यायित किया करती हैं ।।२९।। इस प्रकार से सूर्य के वीर्य से चन्द्र का शरीर भी आप्यायित होता है । पौर्णमासी में शुक्ल सम्पूर्ण मण्डल दिखलाई दिया करता है इस प्रकार से शुक्ल कृष्ण पक्षों में सोम की संसिद्ध होती है ।।३०।। यह पितृमान् सोम क्रम से इद्वत्सर कहा गया है । पन्द्रह सुधामृत परिस्रवों के साथ क्रान्त होता है ।।३१।। इस के आगे अब मैं पर्वों को तथा पर्व सन्धियों को बताऊँगा । जिस प्रकार से इक्षु वेणुओं के पर्व ग्रन्थिमान् होते हैं ।।३२।। उसी प्रकार से अर्धमास के पर्व शुक्ल कृष्ण जानने चाहिए । पूर्णिमा और अमावस्या के भेदों से जो ग्रन्थि और जो सन्धियाँ हैं । अर्धमास तृतीया प्रभृति हैं ।।३३।। जिससे पर्वों पर अग्न्याधान की क्रिया की जाती है । सायाह्न में प्रतिपद् ही वह पौर्णमासिक काल होता है ।।३४।। सूर्य के व्यतीपात में स्थित होने पर युगान्तर में लेखोर्द्ध्व होता है और युगान्तर में उदित होने पर क्रम से लेखोर्द्ध्व शशि का होता है ।।३५।।

पौर्णमासे व्यतीपाते यदीक्षेते परस्परम् ।
यस्मिन्काले स सीमान्तः स व्यतीपात एव तु ॥३६
कालं सूर्यस्य निर्देशं दृष्ट्वा सङ्ख्या तु सर्पति ।
स वै पर्व क्रियाकालः कालस्वधो विधीयते ॥३७
पूर्णेन्दो पूर्णपक्षे तु रात्रिसन्धिषु पूर्णिमा ।
यस्मात्तामनुपश्यन्ति पितरो दैवतैः सह ।
तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णिमा प्रथमा स्मृता ॥३८
अत्यर्थं भ्राजते यस्माद् पौर्णमास्यां निशाकरः ।
रञ्जनाच्च व चन्द्रस्य राकेति कवयो विदुः ॥३९
अमा वसेतामृक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ ।
एकां पञ्चदशीं रात्रिममावास्या ततः स्मृता ॥४०
ततोऽपरस्य दैर्घ्य तु पौर्णमास्यां निशाकरः ।
यदीक्षेते व्यतीपाते दिवा पूर्णं परस्परम् ।
चन्द्रार्कावपराह्ने तु पूर्णात्मानौ तु पूर्णिमा ॥४१
विच्छिन्नां तामवावास्यां पश्यतस्तु समागतौ ।
अन्योन्यं चन्द्रसूर्यौ तौ यदा तद्दर्श उच्यते ॥४२

पौर्णमास व्यतीपात में जो परस्पर में देखते हैं जिसकाल में वह सीमान्त में है वह व्यतीपात नहीं है ।।३६।। सूर्य काल के निर्देश को देख कर सङ्ख्या सर्पण किया करती है वह ही निश्चय रूप से क्रिया का काल के स्वधा ही पर्व का विधान किया करता है ।।३७।। पूर्ण चन्द्र के पूर्ण पक्ष में रात्रि की सन्धियों में पूर्णिमा है जिससे देवों के साथ पितर उसे देखते हैं । इससे अनुमति नाम वाली प्रथम पूर्णिमा कही गई ।।३८।। जिससे पौर्णमासी में निशाकर अत्य-धिक रूप से भ्राजमान होता है । चन्द्र के रञ्जन करने से पूर्णिमा की रात्रि का नाम राका—यह पड़ गया है जिसे कवि लोग जानते हैं ।।३९।। अमा ऋक्ष में वास करते हैं जब कि चन्द्र और दिनकर दोनों एक पञ्चदशी की रात्रि को वास किया करते हैं । इसी से अमावस्या ही कही गई है ।।४० ।। फिर दूसरे का उसके द्वारा पौर्णमासी में निशाकर व्यतीपात में पूर्ण दिन के परस्पर में

दीखता है। अपराह्न में तो चन्द्र और सूर्य स्वरूप वाले होते हैं इसीलिये पूर्णिमा यह कही जाती है ॥४१॥ समागत वे दोनों उस अमावस्या को विच्छिन्न देखते हैं। वे दोनों चन्द्र और सूर्य अन्योन्य में जब देखते हैं तो वह दर्श ऐसा कहा जाता ॥४२॥

द्वौ द्वौ लवावमावास्या यः कालः पर्वसन्धिषु ।
द्व्यक्षरः कुहूमात्रश्च पर्वकालस्तु स स्मृतः ।
नष्टचन्द्राप्यमावास्या मध्याह्नसूर्येण सङ्गता ॥४३
दिवसार्द्धेन रात्र्यर्द्धं सूर्यं प्राप्य तु चन्द्रमा ।
सूर्येण सहसा मुक्तिं गत्वा प्रातस्तनोत्सवौ ।
द्वौ कालौ सङ्गमश्चैव मध्याह्ने निष्पतेद्रविः ॥४४
प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमाः सूर्यमण्डलात् ।
निर्मुच्यमानयोर्मध्ये तयोर्मण्डलयोस्तु वै ॥४५
स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य च वषट्क्रिया ।
एतद्दतुमुखं ज्ञेयममावास्यास्य पर्वणः ॥४६
दिवा पर्वण्यमावास्या क्षीणेन्दौ बहुले तु वै ।
तस्माद्दिवा ह्यमावास्या गृह्यतेऽसौ दिवाकरः ।
गृह्यते वै दिवा ह्यस्मादमावास्या दिविक्षये ॥४७
कलानामपि वै तासां वर्द्धमान्याजहात्मकैः ।
तिथीनां नाम धेयानि विद्वद्भिः संज्ञितानि वै ॥४८
दर्शयेतामथान्योन्यं सूर्याचन्द्रमसावुभौ ।
निष्क्रामत्यथ तेनैव क्रमशः सूर्यमण्डलात् ॥४९

अमावस्या में दो-दो लव पर्वसन्धियों में जो काल होता है वह द्व्यक्षर कुहूमात्र इस प्रकार से काल कहा गया है। नष्ट चन्द्र वाली भी अमावस्या मध्य सूर्य के साथ सङ्गत होती है ॥४३॥ दिवसार्द्ध के साथ रात्रि के अर्ध को चन्द्रमा सूर्य को प्राप्त कर, सूर्य से सहसा छुटकारा पाकर प्रातःकालीन उत्सव वाले दो काल हैं और सङ्गम है। मध्याह्न में सूर्य का निपतन होता है ॥४४॥ शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् को चन्द्रमा सूर्य मण्डल से

उन लिप्तुमात्र मण्डलों के मध्य में होता है ॥४८॥ उस समय में वह आहुति का काल तथा दश की वषट्क्रिया होती है। इस पर्व की अमावस्या यह आदि मुख जानना चाहिए ॥४६॥ दिवा पक्ष में अमावस्या को अधिक चन्द्र के क्षीण हो जाने पर उसके दिवा में अमावस्या को यह दिवाकर ग्रहण किया जाता है। दिवा ग्रहण किया जाता है इससे दिनिमयों से अमावस्या होती है ॥४७॥ पर्व कलाओं की भी अमावस्याओं के द्वारा बाहुमान्या होती है। विद्वानों ने तिथियों के भी नामों की संज्ञा की है ॥४८॥ सूर्य और चन्द्रमा दोनों मध्यों में को देखते हैं और क्रम से उसी के साथ सूर्य मण्डल से निकलता ॥४६॥

द्विलवेन ह्यहो रात्र भास्कर स्पृशते शशी ।
स तदा ह्याहुते कालो दर्शस्य च वषट् क्रिया ॥५०
कुहेति कोकिलेनोक्तो य काल परिचिह्नित ।
तत्काल स जिता यस्मादमावास्या कुहू स्मृता ॥५१
सिनीवालीप्रमाणेन क्षीणशेषो निशाकर ।
अमावास्या विशत्यर्क सिनीवाली तत स्मृता ॥५२
पर्वण पर्वकालस्तु तुल्यो वै तु वषट् क्रिया ।
चन्द्रसूर्यव्यतीपाते उभे ते पूर्णिमे स्मृते ॥५३
प्रतिपत्पञ्चदश्योश्च पर्वकालो द्विमात्रक ।
काल कुहूसिनीवाल्यो समुद्रो द्विलव स्मृत ॥५४
अर्काग्निमण्डले सोमे पर्व काल कलाश्रय ।
एव स शुक्लपक्षो वै रजन्या पर्वसन्धिषु ॥५५
सम्पूर्णमण्डल श्रीमाश्चन्द्रमा उपरज्यते ।
यस्मादाप्यायते सोम पञ्चदश्यान्तु पूर्णिमा ॥५६

अहोरात्र में चन्द्रमा को जब भास्कर का स्पर्श किया करता है। उस समय वह आहुति का तथा दश की वषट् क्रिया काल होता है ॥५ ॥ कोकिल से उक्त जो काल कुहू ऐसा परिचिह्नित होता है उसकाल से जित वाली अमावस्या कुहू कही जाती है ॥५१॥ सिनीवाली के प्रमाण से क्षीण शेष निशाकर अमावस्या के दिन सूर्य में प्रवेश किया करता है इसी से सिनीवाली कही गई है।

॥५३॥ पक्षता पर्व काल को स्पष्ट किया के हृदय ही होता है। चन्द्र और सूर्य के व्यतीपात में वे दोनों पूर्णिमा कही गई हैं ॥५३॥ प्रतिपत् और पञ्चदशी का पर्वकाल छिद्रविभक्त ही होता है। गिन्नीवाली और गृह का सम्पूर्ण दिवस कहा गया है ॥५४॥ साम के अपरान्ह मण्डल में पर्व का काल चन्द्र के काश्य वाला होता है। इस प्रकार से पर्व की सन्धि में रात से शुक्ल पक्ष होता है ॥५५॥ सम्पूर्ण मण्डल वाला श्रीमान् चन्द्र उपरक्षित होता है जिस से पञ्चदशी में सोम आप्यायित होता है इससे पूर्णिमा होती है ॥५६॥

दशभि पञ्चभिश्चैव कलाभिर्दिवसक्रमात् ।
तस्मात् कला पञ्चदशी सोमे नास्ति तु षोडशी ।
तस्मात्सोमस्य भवति पञ्चदश्यां महाक्षय ॥५७
इत्येते पितरो देवा सोमपा सोमवर्द्धना ।
आर्त्तवा ऋतवो यस्मात्ते देवा भावयन्ति च ॥५८
अत पितृन् प्रवक्ष्यामि मासश्राद्धभुजस्तु ये ।
तेषां गतिञ्च सत्वञ्च गतिं श्राद्धस्य चैव हि ॥५९
न मृतानां गति शक्या विज्ञातुं पुनरागति ।
तपसापि प्रसिद्धेन किं पुनर्मांसचक्षुषा ॥६०
श्राद्धदेवान् पितृनेतान् पितरो लौकिका स्मृता ।
देवा सौम्याश्च यज्वान सर्वे चैव ह्ययोनिजा ॥६१
देवास्ते पितर सर्वे देवास्तान् भावयन्त्युत ।
मनुष्या पितरश्चैव तेभ्योऽन्ये लौकिका स्मृता ॥६२
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामह ।
यज्वानो ये तु सोमेन सोमवन्तस्तु ते स्मृता ॥६३

दश और पाँच कलाओं से दिवसों के क्रम से पन्द्रह कला सोम में होती हैं सोलहवीं नहीं होती है। इससे सोम का पञ्चदशी में महान् क्षय होता है। ॥५७॥ इतने ये पितर देव सोमप और सोमवर्द्धन हैं। जिससे आर्त्तव और ऋतुएँ हैं, वे देव भावित किया करते हैं ॥५८॥ इसलिये पितृगण को बताऊँगा जो कि मास श्राद्ध के भोगी होते हैं। उनकी गति और सत्व तथा श्राद्ध की गति

को भी बतलाया जायगा ॥५९॥ इन मनुष्यों की गति तथा पुनरावृत्ति बताई नहीं जा सकती है। यह प्रसिद्ध तप से भी नहीं बता सकते हैं इन मोह कर्मों की बात ही क्या है। ६ ॥ श्राद्धदेव न इन पितरों को लौकिक पितर कहा गया है। देवसोम और सब्याज ये सब मायायोगिक होते हैं ॥६१॥ वे सब देव पितर हैं और उनको देव ही भावित किया करते हैं। मनुष्य और पितर उनसे अन्य लौकिक कहे गये हैं ॥६२॥ पिता पितामह और प्रपितामह जो योग के द्वारा य ज्ञान होते हैं वे सोमप त कहे गये हैं ॥६३॥

ये यज्वान स्मतास्तेषा ते व बर्हिषद स्मता ।
कर्मस्वेतेषु युक्तास्ते तृप्यन्त्याबेहसम्भवात् ॥६४
अग्निष्वात्ता स्मतास्तेषा होमिनो याज्ययाजिन ।
ये वाप्याश्रमधर्मेण प्रस्थानेषु व्यवस्थिता ॥६५
अन्ते च नव सीदन्ति श्रद्धायुक्त न कम णा ।
ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञ न प्रजया च न ॥६६
श्रद्धया विद्यया च व प्रदानेन च सप्तधा ।
कम स्वेतेष ये युक्ता भवन्त्या देहपातनात् ॥६७
देवस्त पितृभि सार्द्धं सूक्ष्मक सोमपायक ।
स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्तमुपासते ॥६८
प्रजावता प्रजाप स्मता पितरा क्रियावताम् ।
तेषां निवापदत्ताम सत्कुलीनश्च बान्धव ॥६९
मास श्राद्धभुजस्तृप्ति लभन्त सोमलौकिका ।
एत मनुष्या पितरो मासि श्राद्धभुजस्तु ते ॥७०

जो यज्वान कहे गये हैं उनके वे बर्हिषद कहे गये हैं। इन कर्मों में युक्त वे देह सम्भव तक तृप्त होते हैं ॥६४॥ उनके याज्ययाजी होमी अग्निष्वात्त कहे गये हैं। अथवा जो भी आश्रम धर्म से प्रस्थानों में व्यवस्थित हैं। ॥६५॥ श्रद्धा से युक्त कर्म के द्वारा अन्त समय में दुःखी नहीं होते हैं। इसी प्रकार जो ब्रह्मचर्य-तप यज्ञ और प्रजा से युक्त होते हैं वे भी दुःखी नहीं होते

हैं ॥६६॥ श्रद्धा से विद्या से और प्रदान से सात प्रकार से इन कर्मों में जो युक्त होते हैं और अपने देह के पातन तक इसी प्रकार से रहते हैं वे इन देवो के-पितरों के और सूक्ष्मक सोमपायकों के साथ स्वर्ग में गये हुए मोदयुक्त होते हैं तथा दिवि में पितृमान् की उपासना किया करते हैं ॥६८॥ प्रजा वालों की प्रशंसा ही कही गई है और क्रिया वालों की वह सिद्ध है। इनके निवाप दत्त अन्न को जो कि कुलीनों के द्वारा एवं बान्धवों के द्वारा दिया गया है मास पर्यन्त श्राद्धभोजी लोग लौकिक तृप्ति को प्राप्त किया करते हैं। ये जो कि मास में श्राद्धभोगी होते हैं वे मनुष्य पितर हैं ॥७०॥

तेभ्योऽपरे तु ये चान्ये सङ्कीर्णाः कर्मयोनिषु ।
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेभ्यः स्वधास्वाहाविवर्जिताः ॥७१
भिन्नदेहा दुरात्मानः प्रेतभूता यमक्षये ।
स्वकर्माण्येव शोचन्ति यातनास्थानमागताः ॥७२
दीर्घायुषोऽतिशुष्काश्च विवर्णाश्च विवाससः ।
क्षुत्पिपासापरीताश्च विद्रवन्ति इतस्ततः ॥७३
सरित्सरस्तडागानि वापीश्चैव जलेप्सवः ।
परान्नानि च लिप्सन्तः कष्यमानास्ततस्ततः ॥७४
स्थानेषु पात्यमानाश्च यातनास्थेषु तेषु वै ।
शाल्मलौ वैतरण्याञ्च कुम्भीपाकेषु तेषु च ॥७५
करम्भवालुकायाश्च असिपत्रवने तथा ।
शिलासम्पेषणे चैव पात्यमानाः स्वकर्मभिः ॥७६
तत्र स्थानानि तेषां वै दुःखानामप्यनेकवत् ।
लोकान्तरस्थाना विविधैर्नामगोत्रतः ॥७७

इनसे ऊपर जो अन्य हैं वे कर्मयोनियाँ सङ्कीर्ण हैं और आश्रमों के धर्मों से भ्रष्ट हुए स्वाहा तथा स्वधा से विवर्जित होते हैं ॥७१॥ भिन्न देह वाले दुष्ट आत्मा से युक्त और यमराज में प्रेत भूत यातना के स्थानों में गये हुए अपने किये हुए कर्मों को ही सोचा करते हैं ॥७२॥ दीर्घ आयु वाले, अत्यन्त शुष्क, विवर्ण और बिना वस्त्र वाले भूख और प्यास से परीत हुए इधर-उधर

विचरण किया करती हैं ॥७३॥ प्यास से व्याकुल जल प्राप्त करने की इच्छा वाले नदी सरोवर-तालाब और बावड़ी तथा पराये अन्न को इधर-उधर खोजते हुए चाहा करते हैं ॥७४॥ इन महापापियों के स्थानों में पाकयान शाल्मली में और वैतरणी में और उन कुम्भीपाकों में-करम्भ बालुका में असिपत्र वन में और शिला सम्पेषण में अपने कर्मों के द्वारा गिराये हुए होते हैं ॥७५॥७६॥ अन्नादि की भाँति यहाँ पर उन दुःखों के स्थान अन्य लोकों में स्थित उनके विविध नाम और गोत्र से होते हैं ॥७७॥

भूम्यामसंस्पृशन्तोऽपि दत्त्वा पिण्डत्रयन्तु वै ।
प्रीतिं सन्तर्पयन्ति च प्रेतस्थानेष्वधिष्ठिता ॥७८
अपापा यातनास्थाने सूक्ष्मा ये पूर्व पञ्चधा ।
पश्वादिस्थावरान्तेषु भूतानां तेषु कर्मसु ॥७९
नानारूपासु जातीषु तिर्यग्योनिषु जातिषु ।
यदाहारा भवन्त्येते तासु तास्विह योनिषु ।
तस्मिंस्तस्मिंस्तदाहारं श्राद्धदत्तोऽपितिष्ठति ॥८०
काले न्यायागतं पात्रे विधिना प्रतिपादितम् ।
प्राप्नोत्यन्नं यथा दत्तं जन्तुर्यत्रावतिष्ठते ॥८१
यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा श्राद्धे तद्दिष्टानां मन्त्रः प्रापयते पितॄन् ॥८२
एवं ह्यविकलं श्राद्धदत्तन्तु मन्यत ।
सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन् दिव्येन चक्षुषा ।
गतागतिज्ञः प्रेतानां प्राप्तिं श्राद्धस्य चैव हि ॥८३
बह्नीकाष्ठोष्मपाश्च ये दिवाकीर्त्याश्च ते स्मृताः ।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥८४

भूमि में असंस्पृश्य पर्णों में तीन पिण्ड देकर प्रेत स्थानों में अधिष्ठित वह प्रीति का तर्पण किया करते हैं ॥७८॥ जो यातना के स्थान में अपाप सूक्ष्म हैं व पाँच प्रकार के होते हैं। पशु आदि स्थावरान्तों में भी भूतों के उन कर्मों में नाना प्रकार की जातियों में तिर्यग्योनियों में यदाहार होते हैं। उस

इससे उनका आहार अन्न से दिया हुआ उपस्थित रहता है ॥७९॥ ॥८०॥ काल के व्यतीत हो जाने पर आया हुआ पात्र विधि से प्रतिपादित न हो ... का दान किया करता है वहीं उनको उपस्थित रहता है ॥८१॥ जिस तरह से गौओं के झुण्ड में छिपी हुई भी माता का बछड़ा प्राप्त किया करता है इसी प्रकार से श्राद्ध में लक्षित को मन्त्र पितरों को प्राप्त करता है ॥८२॥ मन्त्र से दिया हुआ श्राद्ध अविकल श्राद्ध होता है, इस बात को दिव्य चक्षु से देखने वाले सनत्कुमार ने कहा था जो कि गतागति के ज्ञाता और प्रेतों के भी श्राद्ध के ज्ञाता थे ॥८३॥ जो कि उष्मपा और दिवाकीर्त्य ये कहे गये हैं। उनका कृष्ण पक्ष दिन होता है और शुक्ल पक्ष सोने के लिये शर्वरी (रात्रि) होती है ॥८४॥

एते ते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च ये ।
परस्परा अनेके तु अन्योन्यपितरः स्मृताः ॥८५
एते तु पितरो देवा मानुषाः पितरश्च ये ।
प्रीतैस्तैः प्रीयन्ते श्रद्धायुक्तेन कर्मणा ॥८६
इत्येव पितरः प्रोक्ताः पितॄणां सोमपायिनाम् ।
एतत् पितृमहत्त्वं हि पुराणे निश्चयं गतम् ॥८७
इत्येष पितृसोमानामैलस्य च समागमः ।
सुधामृतस्य चावाप्तिः पितॄणां चैव तर्पणम् ॥८८
पूर्णिमावास्ययोः कालः पितॄणां स्थानमेव च ।
समासात्कीर्तितस्तुभ्यमेष सर्गः सनातनः ॥८९
वैश्वरूप्यन्तु सर्गस्य कथितं ह्येकदेशिकम् ।
न शक्यं परिसंख्यातुं श्रद्धेयं भूतिमिच्छता ॥९०
स्वायम्भुवस्य ह्येष सर्गः कान्तो मयात्र वै ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम् ॥९१

ये इतने पितर-देव और देव और पितर तथा परस्पर में ऐसे अनेक अन्योन्य पितर कहे गये हैं ॥८५॥ ये पितर देव और ये मानुष पितर हैं। श्रद्धा से युक्त कर्म के द्वारा उनके प्रसन्न होने पर प्रीतियुक्त होते हैं ॥८६॥ इस

प्रकार से पितर कहे गये हैं। सोमपायी पितरों का यह पितृमण्डल निश्चय रूप से पुराण में माना गया है ॥८७॥ यह अब पितृ सोमों का तथा ऐल का समागम और युगसमूह की प्रवृत्ति और पितरों का तर्पण पूर्णिमा और अमावस्या का काल और पितरों का स्थान ये सभी का संक्षेप से तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया है। यही सनातन अर्थात् सर्वदा से चले आने वाला सर्ग है ॥८८॥ ॥८९॥ सबका स्वरूप और दैनिक कह दिया है। यह परिसंख्या मानी नहीं हो सकती है। भक्ति को चाहने वाले को श्रद्धा करने के योग्य होता है ॥९०॥ यह पीछे स्वायम्भुव का सर्ग कहा है फिर आगे विस्तार के तथा आनुपूर्वी के साथ में क्या वर्णन करूँ ? ॥९१॥

॥ प्रकरण ३९—यज्ञप्रथा वर्णन ॥

चतुर्युगानि यान्यासन् पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
तेषां निसर्गं तत्त्वं च श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ॥१॥
पृथिव्यादिप्रसङ्गेन यन्मया प्रागुदाहृतम् ।
तेषां चतुर्युगं ह्येतत् प्रवक्ष्यामि निबोधत ॥२॥
संख्ययेह प्रसंख्याय विस्ताराच्चैव सर्वशः ।
युगं च युगभेदं च युगधर्मं तथैव च ॥३॥
युगसन्ध्यंशकं चैव युगसन्धानमेव च ।
षट्प्रकारयुगाख्यानां प्रवक्ष्यामीह तत्त्वतः ॥४॥
लौकिकेन प्रमाणेन निष्पन्नोऽब्दस्तु मानुषः ।
तेनाब्देन प्रसंख्याय वक्ष्यामीह चतुर्युगम् ॥५॥
निमेषकालः काष्ठा च कलाश्चापि मुहूर्त्तकाः ।
निमेषकालतुल्यं हि विद्याल्लघ्वक्षरं च यत् ॥६॥
काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलास्ताः ।
त्रिंशत् कलाश्चैव भवेन्मुहूर्त्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते ॥७॥

ऋषियों ने कहा—स्वायम्भुव मन्वन्तर में पहिले जो चार युग थे उनका निसर्ग और तत्त्व विस्तार पूर्वक हम श्रवण करना चाहते हैं ॥१॥ श्री सूतजी ने

कहा—पृथिवी आदि के प्रसङ्ग में जो मैंने पहिले उदाहृत किया है उनका यह चतुर्युग अब बतलाऊँगा, तुम भली भाँति समझलो ॥२॥ यहाँ संख्या से प्रसंख्यान करके और सब प्रकार से एवं विस्तार से युगसन्धि भाग तथा युग संख्यान ऐसे इन दो प्रकार के युग नाम वालों को मैं तत्त्वपूर्वक अच्छी तरह बतलाऊँगा ॥३।४॥ लौकिक प्रमाण में विबुद्ध अब्द जो मानुष होता है। उस अब्द से प्रगणना करके चतुर्युग को यहाँ बतलाया जायेगा ॥५॥ निमेष काल-काष्ठा कला और मुहूर्त्तक होते हैं। निमेष काल के समान ही जो लघ्वक्षर हुआ है उसे जानना चाहिए ॥६॥ पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा है और तीस काष्ठा की एक कला गिननी चाहिए। तीस कला का मुहूर्त्त और तीस मुहूर्त्त की रात्रि और दिन होते हैं ॥७॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ।
तत्राहः कर्मचेष्टायां रात्रिः स्वप्नाय कल्पते ॥८
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः ।
कृष्णः पक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥९
त्रिंशच्च मानुषा मासाः पित्र्यो मासश्च स स्मृतः ।
शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्यधिकानि वै ।
पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ॥१०
मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत् ।
पितॄणां त्रीणि वर्षाणि संख्यातानीह तानि वै ।
चत्वारश्चाधिका मासाः पित्र्ये चैवेह कीर्त्तिताः ॥११
लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः ।
एतद्दिव्यमहोरात्रं शास्त्रेऽस्मिन् निश्चयो मतः ॥१२
दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥१३
ये ते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसङ्ख्याते तयोः पुनः ।
त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ॥१४

मानुष और दैविक अहोरात्र का एक ही विभाग किया करता है। उन में दिन तो कर्मों की चेष्टा के लिये और रात्रि स्वप्न के लिए कल्पित की जाती है ॥८॥ पित्र्य और रात्रि और दिन तथा नाम इनका पुन विभाग होता है। उनका दिन कृष्ण पक्ष होता है और मास का शुक्ल पक्ष रात्रि होती है जो शयन के लिये ही है ॥९॥ मानुषका तीस मास और पित्र्य अर्थात् पितरो का यह एक मास कहा गया है। तीन सौ साठ मासो का पितरो का सम्वत्सर यह मानुष से विभावित किया जाता है ॥१० ॥ मानव मान से ही वर्षों का जो एक शतक होता है वे पितरो के यहाँ पर तीन वर्ष शतप्रमाण होते हैं। यहाँ पर चार अधिक मास पितृ के लिये ही कहे गये है ॥११॥ लौकिक मान से ही जो मानव वर्ष कहा गया है यह दिव्य अहोरात्र होता है। यह इस शास्त्र मे निश्चय माना गया है ॥१२॥ दिव्य रात्रि और दिन और फिर उन दोनो का प्रविभाग कहते है। यहाँ उत्तरायण दिन होता है और दक्षिणायन रात्रि हुआ करती है ॥१३॥ जो ये रात्रि और दिन दिव्य प्रसंख्यात किये गए हैं उन दोनो के फिर तीस वे वर्ष दिव्य मास कहा गया है ॥१४॥

मानुषं च शतं विद्धि दिव्यमासास्त्रयस्तु ते।
दश चैव तथाहानि दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ॥१५
त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि च।
दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः ॥१६
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः।
त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः ॥१७
नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु।
अन्यानि नवतिश्चैव क्रौञ्चः संवत्सरः स्मृतः ॥१८
षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु।
वर्षाणान्तु शतं ज्ञेयं दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ॥१९
त्रीण्येव नियुतान्येव वर्षाणां मानुषाणि च।
षष्टिश्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया।
दिव्यवर्षसहस्रन्तु प्राहुः संख्याविदो जनाः ॥२०

इत्येवमृषिभिर्गीतं दिव्या सङ्ख्यया न्वितम् ।
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसङ्ख्याप्रकल्पनम् ॥२१

मानुष वर्ष सौ सौ होते हैं किन्तु वे सौ वर्ष तीन दिव्यमास हुआ करते हैं और दश दिन यह दिव्य विधि कही गई है ॥१५॥ तीन सौ साठ वर्ष जो होते हैं यह दिव्य सम्वत्सर मानुष के द्वारा कीर्तित किया गया है ॥१६॥ मानुष प्रमाण से तीन सहस्र वर्ष और तीस जो वर्ष होते हैं वह सप्तर्षियों का वत्सर माना गया है ॥१७॥ मानुष के नौ सहस्र जो वर्ष होते हैं और नब्बे होते हैं वह क्रौंच सम्वत्सर कहा गया है ॥१८॥ मानुष छत्तीस हजार वर्षों का दिव्य वर्षों का एक सैकड़ा होता है यह विधि कही गई है ॥१९॥ मानुष के तीन नियुत वर्ष तथा साठ हजार वर्ष जो सङ्ख्या के सङ्ख्यात होते हैं उनको सङ्ख्या के ज्ञाता लोग दिव्य सहस्र वर्ष कहते हैं ॥२०॥ इसी प्रकार से दिव्य सङ्ख्या से अन्वित ऋषियों के द्वारा भी गाया गया है । दिव्य प्रमाण से ही युग सङ्ख्या का प्रकल्पन होता है ॥२१॥

चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः ।
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ।
द्वापरश्च कलिश्चैव युगान्येतानि कल्पयेत् ॥२२
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ।
तत्र तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥२३
इतरासु च सन्ध्यासु सन्ध्यांशेषु च वै त्रिषु ।
एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥२४
त्रेता त्रीणि सहस्राणि सङ्ख्ययैव परिकीर्त्यते ।
तस्यास्तु त्रिशती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥२५
द्वापरं द्वे सहस्रे तु युगमाहुर्मनीषिणः ।
तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्यांशः सन्ध्यया समः ॥२६
कलिं वर्षसहस्रन्तु युगमाहुर्मनीषिणः ।
तस्याप्येकशती सन्ध्या सन्ध्यांशः सन्ध्यया समः ॥२७

एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या परिकीर्तिता ।
कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चैव चतुष्टयम् ॥२८

कारतवर्ष में कविगण चार युग बतलाते हैं। पहिले कृतयुग अर्थात् सतयुग होता है इसके पश्चात् त्रेता का विधान किया जाता है। फिर द्वापर और कलियुग से युग कल्पित किये जाने चाहिए ॥२२॥ चार सहस्र वर्षों का कृतयुग होता है किन्तु यहाँ वर्ष दिव्य ही माने गये हैं। यहाँ पर उतनी ही शती सन्ध्या की होती है और सन्ध्यांश भी उसी प्रकार का हुआ करता है ॥२३॥ इतर सन्ध्याओं में तथा तीन सन्ध्यांशों में एकापाय से सहस्र और शत होते हैं। ॥२४॥ त्रेता की संख्या तीन सहस्र संख्यात वर्ष परिकीर्तित की जाती है। उसकी तिगुनी सन्ध्या होती है और उसी प्रकार का सन्ध्यांश भी हुआ करता है ॥२५॥ मनीषी लोग द्वापर को दो सहस्र वर्षों का युग कहते हैं। उसकी द्विगुनी सन्ध्या तथा सन्ध्या के बराबर ही सन्ध्यांश होता है ॥२६॥ कलियुग को एक सहस्र वाला मनीषी गण कहा करते हैं। उसकी भी सहस्र के हिसाब से एकशत वाली सन्ध्या होती है और सन्ध्या के तुल्य ही सन्ध्यांश होता है ॥२७॥ यह बारह सहस्र की युगाख्या कही गई है इसमें कृत त्रेता-द्वापर और कलियुग ये चार युग होते हैं ॥२८॥

अत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः ।
कृतस्य तावद्वक्ष्यामि वर्षाणां तत्प्रमाणतः ॥२९
सहस्राणां शतान्यत्र चतुर्दश तु संख्यया ।
चत्वारिंशत् सहस्राणि कालिकास्युगस्य तु ॥३
एवं संख्यातकालश्च कालेष्विह विशेषतः ।
एष चतुर्युगः कालो विना सन्ध्यांशकैः स्मृतः ॥३१
चत्वारिंशत्त्रीणि चैव नियुतानि च संख्यया ।
विंशतिश्च सहस्राणि ससन्ध्यांशाश्चतुर्युगः ॥३२
एवं चतुर्युगाख्या तु साधिका ह्येकसप्ततिः ।
कृतत्रेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ॥३३

मन्वन्तरस्य संख्यातु मानुषेण निबोधत ।
त्रिंशत्कोट्यस्तु वर्षाणां मानुषेण प्रकीर्तिताः ॥३४
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतान्यधिकानि तु ।
विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं साधिकां विना ॥३५

यहाँ पर मानुष के द्वारा प्रमाण से संवत्सरों का कथन किया गया है । उस कृत युग के वर्षों को उस प्रमाण से बतलाया जाता है ॥२९॥ दो हजार चौदह सहस्रा से चालीस सहस्र कलि के युग का काल होता है ॥३०॥ यहाँ काला में विशेष रूप से इस प्रकार का सन्ध्यांश काल है । इस तरह बिना सन्ध्यांश के चारों युगों का काल कहा गया है ॥३१॥ सन्ध्या से सैंतालीस नियुत बीस सहस्र चारों युगों का सन्ध्यांश होता है ॥३२॥ इस प्रकार से चारों युगों की नाम वाली इकहत्तर साधिका है । कृत और त्रेता आदि से युक्त वह मनु का अन्तर कहा जाता है ॥३३॥ मन्वन्तर की संख्या मानुष से जाननी चाहिए । मानुष के द्वारा तीस करोड़ वर्ष कहे गये हैं ॥३४॥ सड़सठ नियुत अन्य अधिक और बीस सहस्र का यह काल साधिका के बिना होता है ॥३५॥

मन्वन्तरस्य संख्यैषा संख्याविद्भिर्द्विजैः स्मृता ।
मन्वन्तरस्य कालोऽयं युगैः सार्द्धं प्रकीर्तितः ॥३६
चतुः सहस्रयुक्तं वै प्रथमं तत् कृतं युगम् ।
त्रेतावशिष्टं वक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च ॥३७
युगपत्समवेतार्थो द्विधा वक्तुं न शक्यते ।
क्रमागतं मया ह्येतत्तुभ्यं प्रोक्तं युगद्वयम् ।
ऋषिवंशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वात्तथैव च ॥३८
तत्र त्रेतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ते ।
श्रौतं स्मार्तञ्च धर्मञ्च ब्रह्मणा च प्रचोदितम् ॥३९
दाराग्निहोत्रसम्बन्धमृग्यजुः सामसंज्ञितम् ।
इत्यादिलक्षणं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ॥४०
परम्परागतं धर्मं स्मार्तं त्वाचारलक्षणम् ।

वर्णाश्रमाचारयुतं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥४१

सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा च वै।

तेषां सुतप्तपसामार्षेण क्रमेण तु ॥४२

परम्परा के विद्वान् ब्राह्मणों ने मन्वन्तर की यह संख्या बतलाई है। मन्वन्तर का यह काल पर्वो के साथ प्रकीर्तित किया गया है ॥३६॥ चार सहस्र वर्ष का प्रथम कृतयुग है। अतीत द्वापर कलि जो अनागत हैं उन्हें बतलाया जायेगा ॥३७॥ एक साथ सर्वत्र धर्म दो प्रकार से कहा नहीं जा सकता है। क्रम से प्राप्त हुआ यह मैंने तुम से दो प्रकार से कहे हैं। ऋषियों के प्रसङ्ग से व्याकुल होने से उसी प्रकार से कहे हैं ॥३८॥ यहाँ पर त्रेता युग के आदि में मनु और वे सप्तर्षि थे। श्रौत और स्मार्त धर्म था जो कि ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित किया गया था ॥३९॥ दारा(स्त्री)सहित अग्नि होत्र संज्ञा वाला ऋक् यजु और साम संज्ञा से युक्त इत्यादि लक्षण वाले श्रौत धर्म को सप्तर्षियों ने कहा था ॥४०॥ परम्परा से आया हुआ आचार के लक्षण से युक्त तथा वर्णों और आश्रमों के आचार वाले स्मार्त धर्म को स्वायम्भुव मनु ने कहा था ॥४१॥ सत्य ब्रह्मचर्य श्रुति और तप से भलीभाँति तप करने वाले उनके आर्षेय क्रम से कहा गया है ॥४२॥

सप्तर्षीणां मनोश्चैव आद्यं त्रेतायुगस्य तु।

अबुद्धिपूर्वकं तेषामक्रियापूर्वमेव च ॥४३

अभिव्यक्तास्तु ते मन्त्रास्तारकाद्यैर्निदर्शनैः।

आदिकल्पे तु देवानां प्रादुर्भूतास्तु ते स्वयम् ॥४४

प्रणाशे स्वथ सिद्धिनामन्यासाञ्च प्रवर्तनम्।

आसन् मन्त्रा व्यतीतेषु ये कल्पेषु सहस्रशः।

ते मन्त्रा वै पुनस्तेषां प्रतिभासमुपस्थिताः ॥ ४५

ऋचो यजूंषि सामानि मन्त्राश्चाथर्वणानि च।

सप्तर्षिभिस्तु ते प्रोक्ताः स्मार्तं धर्मं मनुर्जगौ ॥४६

त्रेतादौ संहिता वेदाः केवला धर्मसेतवः।

सर्वोत्पादानुपूर्व्यं च भवन्तो द्वापरेषु ते ।।४७

श्रूयस्तना देवाः कली च द्वापरेषु वै ।

अनादिनिधना दिव्या पूर्वं सृष्टा स्वयम्भुवा ।। ४८

स्वधर्मा सप्रजा साङ्गा यथाधर्मं युगं युगे ।

विक्रीडन्ते समानार्था वेदवादा यथायुगम् ।। ४६

आरम्भयज्ञा क्षत्रस्य हविर्यज्ञा विशाम्पते ।

परिचार यज्ञाच्छूद्रास्तु जपयज्ञा द्विजोत्तमा ।। ५०

त्रेता युग आदि में महर्षियों के और मनु के इनके अशुद्धि पूर्वक तथा अविधा पूर्वक ही कहा गया है ।।४३।। तारकाद्य निदर्शनों में वे मन्त्र अभिव्यक्त हुए हैं देवों के आदि कल्प में जो वे स्वयं ही प्रादुर्भूत हुए थे ।।४४।। इनके अनन्तर सिद्धियों के प्रणाश होने पर और इनका प्रवर्त्तन हुआ । व्यतीत कल्पों में जो सहस्रों मन्त्र थे वे मन्त्र पुनः उनके प्रतिभास से समुत्थित हुए हैं । ।।४५।। ऋग्-यजु साम और अथर्व के मन्त्रों को महर्षियों ने कहा था और स्मृति धर्म को मनु ने कहा था ।।४६।। त्रेता के आदि में केवल वेद संहिता थी सम्बन्ध से और आयु के संक्षेप में वे द्वापर में व्यस्यमान होते हैं ।।४७।। कलियुग में और द्वापर में तप में ऋषिगण देव अनादि निधन अर्थात् आदि और निधन (मृत्यु) न होने वाले एवं दिव्य पहिले स्वयम्भू ने सृष्ट किये थे ।।४८।। धर्म के सहित प्रजा के सहित और अङ्गों के सहित युग युग में धर्म के अनुसार यथायुग वेद वाद समान अर्थ वाले विशेष क्रीडा किया करते हैं ।।४६।। आरम्भयज्ञ क्षत्रिय-हविर्यज्ञ वाले वैश्य-परिचार के यज्ञ वाले शूद्र और जप के ही यज्ञ वाले ब्राह्मण थे ।।५०।।

तथा प्रमुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्मपालिता ।

क्रियावन्त प्रजावन्त समृद्धा सुखिनस्तथा ।।५१

ब्राह्मणाननुवर्त्तन्ते क्षत्रिया क्षत्रियान् विशः ।

वैश्यानुवर्त्तिन शूद्रा परस्परमनुव्रता ।।५२

शुभा प्रकृतयस्तेषा धर्मा वर्णाश्रमास्तथा ।

सङ्कल्पितेन मनसा वाचोक्तेन हस्तकर्मणा ।

वाले मत्त मातङ्ग पर चढ़कर गमन करने वाले मन्त्र धारी ऐसे विशेष गुण। ये भूमि समस्त शुभ एवं सुन्दर लक्षणों से सम्पन्न एवं न्यग्रोध परिमण्डल वाले देव गण में चक्रवर्ती राजा थे ॥६४।६५।६६॥

अप्राजौ तौ स्मृतौ बाहू व्यामो न्यग्रोध उच्यते ।
व्यामेनोच्छ्रय यस्य राम ऊर्ध्वं तु देहिनः ।
समुच्छ्रय परीणाहो न्यग्रोधपरिमण्डलः ॥६७
चक्रं रथो मणिर्भार्या निधिरश्वो गजस्तथा ।
सप्तैतानि रत्नानि सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ॥६८
चक्रं रथो मणिः खड्गं धनू रत्नञ्च पञ्चमम् ।
केतुर्निधिश्च सप्तैते प्राणहीनाः प्रकीर्तिताः ॥६९
भार्या पुरोहितश्चैव सेनानी रथकृच्च यः ।
मन्त्र्यश्वः कलभश्चैव प्राणिनः सम्प्रकीर्तिताः ॥७०
रत्नान्येतानि दिव्यानि सिद्धानि महात्मनाम् ।
चतुर्दश विधेयानि सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ॥७१
विष्णोरंशेन जायन्ते पृथिव्यां चक्रवर्तिनः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेषु वै ॥७२
भूतभव्यानि यानीह वर्तमानानि यानि च ।
त्रेतायुगादिष्वेवं जायन्ते चक्रवर्तिनः ॥ ७३

ये दोनों प्रगाढ़ बाहु कहे गये हैं और जो व्याम है वह न्यग्रोध कहा जाता है। जिस देहधारी का नाम से ही ऊर्ध्व रूप से उच्छ्रय है। समुच्छ्रय परीणाह न्यग्रोध मण्डल जानने कि वो ७ होता है ॥६७॥ चक्र रथ मणि खड्ग धनु यह पाँचवा रत्न था। केतु और निधि ये सात रत्न प्राणों से हीन कहे गये हैं ॥६८।६९॥ भार्या-पुरोहित सेनानी और रथकृत् मन्त्री अश्व कलभ ये साथ प्राण वाले अर्थात् प्राणधारी रत्न कहे गये हैं जो सब चक्रवर्तियों के होते थे ॥७०॥ ये दिव्य रत्न महान् आत्मा वालों के सिद्ध होते थे। और समस्त चक्रवर्तियों के ये चौदह विधेय थे ॥७१॥ समस्त मन्वन्तरों में जो अतीत हैं तथा अनागत हैं पृथिवी में चक्रवर्ती विष्णु भगवान् के अंश से ही उत्पन्न

हुआ करते हैं ॥७२॥ भूत भव्य और जो वर्तमान है यहाँ ऐसा युगादि में चक्रवर्ती उत्पन्न होते हैं ॥७३॥

महान्तीमानि तेषां वै भवन्तीह महीक्षिताम्।
अद्भुतानि च चत्वारि बलं धर्मं सुखं धनम् ॥७४
अन्योन्यस्याविरोधेन प्राप्यन्ते वै नृपैः समम्।
अर्थो धर्मश्च कामश्च यशो विजय एव च ॥७५
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्त्या तथैव च।
अन्येन तपसा चैव ऋषीनभिभवन्ति च।
बलेन तपसा चैव देवदानवमानुषान् ॥७६
लक्षणैश्चापि जायन्ते शरीरस्थैरमानुषैः।
केशस्थिता ललाटोर्णा जिह्वा चास्यप्रमार्जनी।
ताम्रप्रभाश्चतुर्दंष्ट्राः श्रीवत्साश्चोर्ध्वरोमशाः ॥७७
आजानुबाहवश्चैव जालहस्ता वृषाङ्किताः।
न्यग्रोधपरिणाहाश्च सिंहस्कन्धाः सुमेहनाः।
गजेन्द्रगतयश्चैव महाहनव एव च ॥७८
पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपद्मौ तु हस्तयोः।
पञ्चाशीतिसहस्राणि ते भवन्त्यजरा नृपाः ॥७९
असङ्गा गतयस्तेषां चतस्रश्चक्रवर्तिनाम्।
अन्तरिक्षे समुद्रे च पाताले पर्वतेषु च ॥८०

यहाँ उन राजाओं के ये परम महान् और अत्यन्त अद्भुत चार बल धर्म-सुख और धन होते हैं ॥७४॥ नृपों के द्वारा अन्योन्य के अविरोध से समान रूप से प्राप्त किये जाते हैं ये अर्थ धर्म काम यश और विजय हैं ॥७५॥ ये अणिमादि ऐश्वर्य से तथा प्रभुशक्ति से और अन्य तप से ऋषियों का भी अभिभव किया करते हैं। बल और तप से ये समस्त देव दानव और मानवों को अभिभूत किया करते हैं ॥७६॥ शरीर में रहने वाले जो लक्षण होते हैं, उनसे भी युक्त ये उत्पन्न होते हैं। ये लक्षण भी ऐसे हैं और अमानुषी हैं अर्थात् मनुष्यों में

नहीं होने का। होते हैं। पैरों पर स्थित ऊण लगाइ वाले और इसको प्रमा जन करने वाली जिह्वा थी। ताम्र के समान प्रभा वाले ओष्ठ एवं दन्तोष्ठ वाले श्रीवत्स तथा ऊर्ध्व रोमता थे ।।७७।। आजानुपर्यन्त बाहुओं वाले लाल हस्त तथा वृषाङ्कित सदृश के समान परिणाह वाले सिंह के सदृश स्कन्ध वाले और सुशोभन थे। गजेन्द्र के समान गति वाले तथा महती हनु (ठोडी) वाले थे ।।७८।। जिनके पैरों में चक्र एवं मत्स्य के चिह्न थे तथा हाथों में शङ्ख और पद्म के चिह्न थे ऐसे चिह्नों वाले अजर अर्थात् वृद्धता से रहित नृप थे। ।।७९।। उन चक्रवर्तियों की चार गतियाँ अगम्य थी ? अन्तरिक्ष में समुद्र में पाताल में और पर्वतों में सर्वत्र उनकी गति थी ।।८०।।

इज्या दानं तपः सत्यं च तार्यां धर्म उच्यते।
तदा प्रवर्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः ।।८१
मर्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्तते।
हृष्टपुष्टा प्रजाः सर्वा अरोगा पूर्णमानसा ।।८२
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायुगविधौ स्मृतः।
त्रीणि वर्षसहस्राणि तदा जीवन्ति मानवाः ।।८३
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण तु।
एष त्रेतायुगे धर्मस्त्रेतासन्ध्यां निबोधत ।।८४
त्रेतायुगस्वभावस्तु सन्ध्यापादेन वर्तते।
सन्ध्यायां च स्वभावस्तु युगपादेन तिष्ठति ।।८५
चन्द्र त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम्।
पूर्वं स्वायम्भुवे सर्गे यथावत्प्रब्रवीहि मे ।।८६
अन्तर्हितायां सन्ध्यायां सार्द्धं कृतयुगेन वै।
कलाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तदा।
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृत्वमन्तश्च वै पुनः ।। ८७

इज्या, दान, तप और सत्य ये चारों बातें त्रेता युग में धर्म कही जाती हैं। उस समय में वर्ण और आश्रमों के प्रविभाग से धर्म प्रवृत्त होता था ।।८१।। मर्यादा की स्थापना करने के लिये ही दण्डनीति की प्रवृत्ति होती है। समस्त

[illegible] प्रसन्न एवं पुष्ट, रोगों से रहित और पूर्ण मनोरथ वाले थे ॥८२॥ त्रेतायुग की विधि में चातुर्वर्ण्य एक वेद कहा गया है। उस समय में मानव लोग सहस्र वर्षों तक जीवित रहा करते हैं ॥८३॥ पुत्र और पौत्रों से पूर्ण होकर मरणशील हो जाते थे तब क्रम से मृत्युगत हुआ करते थे। इस प्रकार से त्रेतायुग का यह धर्म है। अब त्रेता की सन्धि में जो धर्म था उसे जानलो। त्रेता युग का स्वभाव सन्ध्या पाद से हीन है और सन्ध्या में स्वभाव युगपाद से रहता है ॥८४॥८५॥ श्री शांशपायन ने कहा त्रेतायुग के मुख में यज्ञ का प्रवर्तन कैसे होता था ? पहिले स्वायम्भुव सर्ग में जिस प्रकार से हुआ वह मुझे बतलाइये ॥८६॥ कृत युग के साथ सन्ध्या के अन्तर्हित हो जाने पर उस समय में त्रेता युग के प्राप्त होने पर कालाख्या अर्थात् काल नाम वालों के प्रवृत्त होने पर फिर वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था की थी ॥८७॥

सम्भारांस्तांश्च सम्भृत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः ।
एतच्छ्रुत्वाब्रवीत्सूतः श्रूयतां शांशपायन ॥८८
यथा त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम् ।
औषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ।
प्रतिष्ठितायां वार्तायां गृहाश्रमपुरेषु च ॥८९
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृत्वा मन्त्रांश्च संहिताम् ।
मन्त्रान् संयोजयित्वाथ इहामुत्रेषु कर्मसु ॥९०
तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत्तदा ।
दैवतैः सहितः सर्वैः सर्वसम्भारसम्भृतम् ॥९१
तस्याश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः ।
यजन्तं पशुभिर्मेध्यैर्हुत्वा सर्वे समागताः ॥९२
कर्मव्यग्रेषु ऋत्विक्षु संततौ यज्ञकर्मणि ।
सम्प्रगीतेषु देवेषु सामगेष्वथ सुस्वरम् ॥९३
परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्युवृषभेषु च ।
आलब्धेषु च मेध्येषु तथा पशुगणेषु वै ॥९४

नहीं होते मात्र होते हैं। केशों पर चिक्कण ऊर्ण ललाट वाले और इसकी प्रमार्जन करने वाली जिह्वा थी। ताम्र के समान प्रभा वाले ओष्ठ एवं दन्तोष्ठ वाले श्रीवत्स तथा ऊर्ध्व रोमक थे ।७७। आजानु बाहुओं वाले लाल हस्त तथा न्यग्रोध शरीर के समान परिणाह से युक्त सिंह के सदृश स्कन्ध वाले और सुमेहन थे। गजेन्द्र के समान ... तथा महान् हनु (ठोढ़ी) वाले थे ।।७८।। जिनके चरणों में चक्र एवं मत्स्य के चिह्न थे तथा हाथों में शङ्ख और पद्म के चिह्न थे ऐसे ... अजर अर्थात् वृद्धता से रहित हुए थे। ।।७९।। उन चक्रवर्तियों की चार गतियाँ अप्रतिहत थी? अन्तरिक्ष में समुद्र में पाताल में और पर्वतों में सर्वत्र उनकी गति थी ।।८०।।

इज्या दानं तपः सत्यं त्रेतायां धर्म उच्यते ।
तदा प्रवर्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः ।।८१
मर्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्तते ।
हृष्टपुष्टाः प्रजाः सर्वा अरोगाः पूर्णमानसाः ।।८२
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायुगविधौ स्मृतः ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि तदा जीवन्ति मानवाः ।।८३
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण तु ।
एष त्रेतायुगे धर्मस्त्रेतासन्ध्यां निबोधत ।।८४
त्रेतायुगस्वभावस्तु सन्ध्यापादेन वर्तते ।
सन्ध्यायाश्च स्वभावस्तु युगपादेन तिष्ठति ।।८५
कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम् ।
पूर्वं स्वायम्भुवे सर्गे यथावत्तद्ब्रवीहि मे ।।८६
अन्तर्हितायां सन्ध्यायां सार्द्धं कृतयुगेन वै ।
कालाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तदा ।
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृत्वा ... च पुनः ।।८७

इज्या, दान, तप और सत्य ये चारों वाले त्रेता युग में धर्म कहा जाता है। उस समय में वर्ण और आश्रमों के प्रविभाग से धर्म प्रवृत्त होता था ।।८१।। मर्यादा की स्थापना करने के लिये ही दण्डनीति की प्रवृत्ति होती है। समस्त

प्रजायें परम प्रसन्न एवं पुष्ट, रोगों से रहित और पूर्ण मानस वाले थे ॥८२॥ त्रेतायुग की विधि में चतुष्पाद एक वेद कहा गया है। उस समय में मानव तीन सहस्र वर्षों तक जीवित रहा करते हैं ॥८३॥ पुत्र और पौत्रों से पूर्ण प्रजायें समाकीर्ण हो जाते थे एवं क्रम से मृत्युगत हुआ करते थे। इस प्रकार से त्रेतायुग का यह धर्म है। अब त्रेता की सन्धि में जो धर्म था उसे जानलो। त्रेता युग का स्वभाव सन्ध्या पाद से रहता है और सन्ध्या में स्वभाव युगपाद से रहता है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ श्री शांशपायन ने कहा—त्रेतायुग के मुख में यज्ञ का प्रवर्त्तन कैसे होता था? पहिले स्वायम्भुव सर्ग में जिस प्रकार से है वह मुझे बतलाइये ॥८६॥ कृत युग के साथ सन्ध्या के अन्त हित हो जाने पर उस समय में त्रेता युग के प्राप्त होने पर कालाख्या अर्थात् काल नाम वाली के प्रवृत्त होने पर फिर वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था की थी ॥८७॥

> सम्भारांस्तांश्च सम्भृत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः ।
> एतच्छ्रुत्वाब्रवीत्सूतः श्रूयतां शांशपायन ॥८८
> यथा त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम् ।
> ओषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ।
> प्रतिष्ठितायां वार्तायां गृहाश्रमपुरेषु च ॥८९
> वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृत्वा मन्त्रांश्च संहिताम् ।
> मन्त्रान् संयोजयित्वाथ इहामुत्रेषु कर्मसु ॥९०
> तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत्तदा ।
> दैवतैः सहितः सर्वैः सर्वसम्भारसम्भृतम् ॥९१
> अथाश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः ।
> यजन्तं पशुभिर्मेध्यैर्दृष्ट्वा सर्वे समागताः ॥९२
> कर्मव्यग्रेषु ऋत्विक्षु सततो यज्ञकर्मणि ।
> सम्प्रगीतेषु तेष्वेवमागमेष्वथ सत्वरम् ॥९३
> परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्युवृषभेषु च ।
> आलब्धेषु च मेध्येषु तथा पशुगणेषु वै ॥९४

हविष्यन्तो हूयमाने देवाना देवहोतृभि ।
आहूतेषु च देवेषु यज्ञभाक्षु महात्मसु ॥९५
य इन्द्रियात्मका देवा यज्ञभागभुजस्तथा तु ये ।
तान् यजन्ते तदा देवा कल्पादिषु भवन्ति ये ॥९६

इन सम्भारों को सम्भृत करके यज्ञ किस प्रकार से प्रवृत्त हुआ था यह बतलाइये। यह सुनकर श्री सूतजी बोले — हे शांशपायन ! अब तुम मुझ से श्रवण करो ॥८८॥ जिस प्रकार से त्रेता युग के मुख में यज्ञ की प्रवृत्ति थी। वृष्टि के सृजन होने में औषधियों के उत्पन्न होने पर गृह और आश्रम तथा पुरों में वार्ता के प्रतिष्ठित होने पर वर्ण और आश्रमों की पृथक् व्यवस्था करके तथा मन्त्रों और संहिता को व्यवस्थित बनाकर एवं यहाँ और परलोक के कर्मों में मन्त्रों का संयोजन करके तब विश्व का भोग करने वाले इन्द्र ने यज्ञ को प्रवृत्त कराया था जो कि समस्त देवों के साथ समस्त सम्भारों से सम्भृत था ॥८९॥९०॥९१॥ इसके अनन्तर अश्वमेध के वितत होने पर महर्षिगण समागत हुए थे। और सबने समागमन करके मेध्यजातीय पशुओं के द्वारा यजन किया था ॥९२॥ यजन होने वाले यज्ञों के कर्म ऋत्विजों के कर्म करने में व्यस्त होने पर और सस्वर ही इन समस्त आगमों के सम्प्रगीत होने पर तथा साम स्वर और मूर्च्छनाओं के परिकल्पित होने पर तथा मेध्यों के आलम्भन हो जाने पर एवं अग्नि में हवियों के हूयमान हो जाने पर और देव होताओं के द्वारा देवों के आहूत किये जाने पर जो कि महान् आत्मा वाले देव यज्ञों के भाग को ग्रहण करने वाले थे जो इन्द्रियात्मक देव यज्ञ के भाग लेने वाले थे उस समय जो कल्पादि में होते हैं उनका ही यजन किया करते हैं ॥९३॥९४॥ ॥९५॥

अध्वर्यव प्रैषकाले व्युत्थिता ये महर्षय ।
महर्षयस्तु तान् दृष्ट्वा दीनान् पशुगणान् स्थितान् ।
पप्रच्छुरिन्द्रं सम्भूय कोऽयं यज्ञविधिस्तव ॥९७
अधर्मो बलवानेष हिंसाधर्मेप्सया तव ।
नेष्टः पशुवधस्त्वेष तव यज्ञ सुरोत्तम ॥९८

अधर्मो धर्मघाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया ।
नायं धर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसा धर्म उच्यते ॥९९
आगमेन भवान् यज्ञं करोतु यदिहेच्छसि ।
विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मेणाव्यहेतुना ।
यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ येषु हिंसा न विद्यते ॥१००
त्रिवर्षपरम कालमुषितैरप्ररोहिभिः ।
एष धर्मो महानिन्द्र स्वयम्भु विहितः पुरा ॥१०१
एवं विश्वभुगिन्द्रस्तु मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ।
जङ्गमैः स्थावरैर्वेति यष्टव्यमिहोच्यते ॥१०२
ते तु खिन्ना विवादेन तत्वयुक्ता महर्षयः ।
सन्धाय वाक्यमिन्द्रेण प्रपच्छुश्चेश्वरं वसुम् ॥१०३
महाप्राज्ञ कथं दृष्टस्त्वया यज्ञविधिर्नृप
उत्तानपादे शीघ्रं हि संशयं छिन्धि नः प्रभो ॥१०४

श्रेष्ठ काल में जो महर्षि अव्यग्र अनुद्विग्न हुए थे तो उस समय में उन दीन एवं स्थित पशुगणों को देख कर महर्षियों ने सम्भूत हो कर इन्द्र से पूछा था कि यह आपके यज्ञ की क्या विधि है ? ॥ ९७॥ आपकी हिंसा धर्म की इच्छा से यह यज्ञ अवश्य अधर्म किया जाता है । हे सुरोत्तम ! आपके यज्ञ में यह पशुओं का वध तो इष्ट नहीं है ॥९८॥ आपने पशुओं के द्वारा धर्म का नाश करने के लिये यह अधर्म आरम्भ कर दिया है । यह तो धर्म नहीं है । यह तो अधर्म ही है । हिंसा कभी धर्म नहीं कहा जाया करता है आप यदि चाहते ही हैं तो आगम के द्वारा यज्ञ करियेगा । हे सुरश्रेष्ठ ! धर्म अव्यय का हेतु विधिदृष्ट यज्ञ तथा यज्ञ-बीजों के द्वारा यजन होना चाहिए जिसमें हिंसा न हो वे ॥१००। हे इन्द्र ! तीन वर्ष तक परमकाल में अप्ररोहियों के द्वारा उषित रहते हुए यह धर्म महान् स्वयम्भू के द्वारा विहित है जोकि पहिले किया गया है ॥१०१॥ इस प्रकार से विश्वभुक इन्द्र देव तत्व के द्रष्टा महर्षियों के द्वारा कहा जाता है कि स्थावरों से ही हमको यजन करना चाहिए ॥१०२। वे तत्वों से युक्त महर्षिगण विवाद से बहुत ही खिन्न

हुए और इन्द्र के द्वारा वाक्य का सन्धान करके ईश्वर वसु से उन्होंने पूछा था ॥१ ३॥ ऋषियों ने कहा—हे महा प्राज्ञ ! हे नृप ! आपने यज्ञ करी और कैसा यज्ञ की विधि देखी है ? उत्तान पाद के विषय मे बतलाइये हे प्रभो ! हमारे इस संशय का छेदन करिये ॥१ ४॥

श्रुत्वा वाक्यं ततस्तेषामविचार्य बलाबलम् ।
वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह ॥
यथोपदिष्टं यष्टव्यमिति ह्रोवाच पार्थिवः ।१ ५
यष्टव्य पशुभिर्मेध्यैरथ बीज फलैस्तथा ।
हिंसास्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शनं परम् ॥१०६
यथेह संहिता मन्त्रा हिंसालिङ्गा महर्षिभि ।
दीर्घेण तपसा युक्त दर्शनस्तारकादिभि ॥
तत्प्रमाणं मया चोक्त तस्मान्मा मन्तुमर्ह थ ॥१०७
यदि प्रमाण तान्येव मन्त्रवाक्यानि व द्विजा ।
तथा भावस्ततो यज्ञो ह्य यथा नोऽनृतं वच ॥
एव कृतोत्तरास्ते व युक्तात्मानस्तपोधना ॥१ ८
अवश्यं भवन दृष्ट्वा तमथ वाग्यतो भव ।
मिथ्यावादी नृपो यस्मात् प्रविवेश रसातलम् ॥१ ९
इत्युक्तमात्रे नृपति प्रविवेश रसातलम् ।
ऊर्ध्वचारी वसुर्भूत्वा रसातलचरोऽभवत् ॥११०
वसुधातलवासी तु तेन वाक्येन सोऽभवत् ।
धर्माणां संशयच्छेत्ता राजा वसुरधोगत ॥१११
तस्मान्न वाच्यमेकेन बहुज्ञेनापि संशय ।
बहुद्वारस्य धर्मस्य सूक्ष्मा दुरनुगा गति ॥११२
तस्मान्न निश्चयाद्वक्तुं धर्म शक्यस्तु केनचित् ।
देवानृषीननुपादाय स्वायम्भुवमृते मनुम् ॥११३
तस्मान्न हिंसा धर्मस्य द्वारमुक्त महर्षिभि ।
ऋषिकोटिसहस्राणि स्वैस्तपोभिर्दिवं गताः ॥११४

इसके अनन्तर उनके वाक्य को सुनकर और बलाबल का विचार न कर के तथा वेद शास्त्र का अनुसरण करके यज्ञ के तत्व को बतलाया था। पार्थिव ने कहा जैसा भी उपदिष्ट है उसी से यजन करना चाहिए ॥१०५॥ मेध्य पशुओं द्वारा, बीजों के द्वारा और फलों के द्वारा यजन करना चाहिए। मुझे यह दिखलाई देता है कि यज्ञ का हिंसा स्वभाव होता है ॥१०६॥ यहीं पर उमा संहिता के मन्त्र हैं जिनका कि लिङ्ग ही हिंसा है दीप तप से युक्त महर्षियों ने और तारिकादि दर्शनों से कहा है। उसी के प्रामाण्य से मैंने कहा है इसलिए मुझ विषय में मुझे मत मानो। अर्थात् मुझे ही मानने के योग्य नहीं होते हैं ॥१०७॥ हे द्विज गणो! यदि वे ही मन्त्र वाक्य प्रमाण हैं तो यज्ञ को प्रवृत्त करो अन्यथा हमारा वचन असत्य है। इस प्रकार से युक्तात्मा वे तपोधन हूतोत्तर हो गये अर्थात् चुप हो गये थे ॥१०८॥ नीचे भवन को देखकर उनके लिये वाग्यत अर्थात् मौन हो जाओ। जिससे मिथ्यावादी नृप ने रसातल में प्रवेश किया था ॥१०९॥ इतना केवल कहने पर राजा ने रसातल में प्रवेश किया था और ऊर्ध्वचारी वसु होकर रसातल में प्रवेश करने वाला हो गया था ॥११०॥ उस वाक्य से वह वसुधा तल का वासी हो गया था। धर्मों के संशय का छेदन करने वाला राजा वसु इसके अनन्तर आ गया ॥१११॥ इसलिये चाहे बहुत कुछ जानने वाला भी क्यों न हो कभी भी किसी एक को संशय का निराकरण नहीं बोलना चाहिए। बहुत प्रकार वाले धर्म की सूक्ष्मता से दूर उपागति होती है ॥११२॥ इस कारण से किसी के द्वारा निश्चय पूर्वक धर्म का विषय बोला नहीं जा सकता है। केवल देवों को और ऋषियों को लेकर स्वायम्भुव मनु ही ही धर्म को जानते हैं। इनको छोड़कर अन्य कोई नहीं जान सकता है ॥११३॥ इसलिये महर्षियों ने हिंसा को धर्म का द्वार नहीं कहा है। सहस्रों करोड़ ऋषि अपने कर्मों से स्वर्ग को गये थे ॥११४॥

तस्मान्न दानं यज्ञं वा प्रशसन्ति महर्षय ।
उञ्छ मूल फल शाकमुदपात्रं तपोधनाः ।
एवं दत्वा विभवतः स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः ॥११५

अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तप ।
ब्रह्मचर्य तथा सत्यमनुक्रोश क्षमा धृति ।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद्दुरासदम् ॥११६
धर्मो मन्त्रात्मको यज्ञस्तपश्चानशनात्मकम् ।
यज्ञै न देवानाप्नोति वैराज्य तपसा पुन ॥११७
ब्रह्मण्य कर्मसन्यासाद्वैराग्यात् प्रकृतौ लयम् ।
ज्ञानात् प्राप्नोति कैवल्य पञ्च ता गतय स्मृता ॥११८
एव विवाद सुमहान् यज्ञस्यासीत् प्रवर्त्तने ।
ऋषीणा देवतानाश्च पूर्व स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥११९
ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वा हृत धर्म बलेन तु ।
वसोर्वाक्यमनादृत्य जग्मुस्ते व यथागता ॥१२०
गतेषु देवसङ्घेषु देवा यज्ञमवाप्नुयु ।
श्रूयन्ते हि तप सिद्धा ब्रह्मक्षत्रमया नृपा ॥१२१

इसके महर्षिगण दान अथवा यज्ञ की प्रशंसा नहीं किया करते हैं। क्यों धन अर्थात् तपस्वी लोग तुच्छ मूल फल शाक और उदकपात्र दान देकर इस प्रकार से विभव से स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होते हैं ॥११५॥ अद्रोह लोभ न करना दम प्राणियों पर दया-तपस्या ब्रह्मचर्य-सत्य क्षमा क्रोध क्षमा धृति यह सब सनातन धर्म को दुरासद (दुर्लभ) मूल होता है ॥११६॥ धर्म मन्त्रात्मक यज्ञ होता है। और अनशन स्वरूप वाला तप होता है। यज्ञ से देवों को प्राप्त किया करता है और फिर तप से वैराज्य का लाभ करता है ॥११७॥ कर्मों के सन्यास (त्याग) से ब्रह्मण्य को और वैराग्य से लय को प्रकृति किया करता है। ज्ञान से कैवल्य (अपवर्ग) को प्राप्त करता है ये पाँच ही गतियाँ कही गई हैं। ११८॥ पहिले स्वायम्भुव मन्वन्तर में इस प्रकार से देवताओं का और ऋषियों का यज्ञ के प्रवर्त्तन में बहुत बड़ा विवाद हुआ था ॥११९॥ इसके अनन्तर ऋषिगण बल से अद्भुत मार्ग देख कर और वसु के वाक्य का अनादर करके जैसे आये थे वैसे ही वे चले गये थे ॥१२०॥ देवों के समूह के चले जाने पर देवों ने यज्ञ की प्राप्ति की और तप से सिद्ध ब्रह्मक्षत्रमय नृप श्रूयमाण होते हैं ॥१२१॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसुः ।
सुमेधा विरजाश्चैव शङ्खपाद्रज एव च ।
प्राचीनबर्हिः पर्जन्यो हविर्धानादयो नृपाः ।।१२३
एते चान्ये च बहवो नृपाः सिद्धा दिवं गताः ।
तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तपः सर्वेषु कारणैः ।
ब्रह्मणा तपसा सृष्टं जगद्विश्वमिदं पुरा ।।१२४
तस्मान्नाप्नोति तद्यज्ञं तपोमूलमिदं स्मृतम् ।
यज्ञप्रवर्त्तनं ह्येवमासीत् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
तत प्रभृति यज्ञोऽयं युगैः सह व्यवर्त्तत ।।१२५

प्रियव्रत उत्तानपाद-ध्रुव मेधातिथि-वसु-सुमेधा विरजा शङ्खपाद रज प्राचीनबर्हि पर्जन्य और हविर्धानि आदि राजा—ये तथा अन्य बहुत से राजा सिद्ध थे और वे स्वर्ग को गये थे । ये राजर्षिगण महान् सत्व से युक्त थे जितनी कि कीर्ति प्रतिष्ठित है ।।१२३।। इसलिये सबमें कारणों के द्वारा तप यज्ञ से विशिष्ट हुआ करता है । पहले श्री ब्रह्माजी ने तप से ही इस जगत् तथा विश्व को सृष्ट किया था ।।१२४।। इसलिये वह यज्ञ अधिक नहीं होता है । यह तप के मूल वाला कहा गया है इस प्रकार से स्वायम्भुव मन्वन्तर में यज्ञ का प्रवर्त्तन हुआ था । तब से लेकर यह यज्ञ युगों के साथ विशेष रूप से हुआ था ।।१२५।।

।। प्रकरण ४० — चारों युगों का आख्यान ।।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः ।
तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते ।।१
द्वापरादौ प्रजानान्तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या ।
परिवृत्ते युगे तस्मिंस्ततः सा सम्प्रणश्यति ।।२
ततः प्रवर्त्तते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः ।
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ।।३
सम्भेदश्चैव वर्णानां कार्याणाञ्च विनिर्णयः ।
यज्ञोपधे पशोर्दण्डो मदो दम्भोऽक्षमा बलम् ।

एषा रजस्तमोयुक्ता प्रवृत्तिर्द्वापरे स्मृता ॥ ४ ॥
आद्ये कृते च धर्मोऽस्ति त्रेतायां सम्प्रवर्त्तते ।
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यन्ति कलौ युगे ॥ ५ ॥
वर्णानां विपरिध्वंसः संकीर्यन्ते तथाश्रमाः ।
द्वैधमुत्पद्यते चैव युगे तस्मिन् श्रुतौ स्मृतौ ॥ ६ ॥
द्वैधात् श्रुतेः स्मृतेश्चैव निश्चयो नाधिगम्यते ।
अनिश्चयाधिगमनाद्धर्मतत्त्वं न विद्यते ।
धर्मतत्त्वे तु भिन्नानां मतिभेदो भवेन्नृणाम् ॥ ७ ॥

श्री सूतजी ने कहा—इसके आगे युग द्वापर की विधि को कहूँगा। वहाँ पर त्रेतायुग के क्षीण हो जाने पर द्वापर युग प्रविष्ट होता है ॥ १ ॥ प्रजा-जनों की त्रेतायुग में जो सिद्धि थी वह द्वापर के आरम्भ में युग के परिवृत्त हो जाने पर उस द्वापर में वह फिर प्रनष्ट हो जाती है ॥ २ ॥ द्वापर में फिर उन प्रजाओं के लोभ धृति वणिग्युद्ध तत्त्वों का अविनिश्चय वर्णों का सम्भेद कार्यों का अविनिश्चय यज्ञावधि पशु का दण्ड मद दम्भ क्षमा बल ये सब प्रवृत्त होते हैं और इनकी रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त द्वापर में प्रवृत्ति कही गई है ॥ ४ ॥ आद्य कृत युग में धर्म है त्रेता में वह सम्पन्न होता है और द्वापर में व्याकुली भूत होकर कलियुग में प्रनष्ट हो जाया करता है ॥ ५ ॥ वर्णों का विशेष रूप से परिध्वंस संकीर्तित किया जाता है। उस युग में श्रुति स्मृति में आश्रम भी इसी प्रकार से द्वैध भाव को प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥ श्रुति के और स्मृति के द्वैध भाव से किसी भी निश्चय का अधिगम नहीं किया जाता है। अनिश्चय के अधिगमन से धर्म का तत्त्व नहीं जाना करता है। धर्म के तत्त्व में भिन्न मनुष्यों का मतभेद हो जाता है ॥ ७ ॥

परस्परविभिन्नैस्तैर्दृष्टीनां विभ्रमेण च ।
अयं धर्मो ह्ययं नेति निश्चयो नाधिगम्यते ॥ ८ ॥
कारणानां च वैकल्यात् कारणस्याप्यनिश्चयात् ।
मतिभेदे च तेषां वै दृष्टीनां विभ्रमो भवेत् ॥ ९ ॥

ततो दृष्टिविभिन्नैस्तैः कृतं शास्त्रकुलन्त्विदम् ।
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते ॥ १० ॥
संरोधादायुषश्चैव दृश्यते द्वापरेषु च ।
वेदव्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ॥ ११ ॥
ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः ।
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः ॥ १२ ॥
संहिता ऋग्यजुःसाम्नां संहन्यन्ते श्रुतर्षिभिः ।
सामान्याद्वैकृताच्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित्क्वचित् ॥ १३ ॥
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मन्त्रप्रवचनानि च ।
अन्ये तु प्रहितास्तेषां केचित्तान् प्रत्यवस्थिताः ॥ १४ ॥

परस्पर मे विभिन्न उन मनुष्यो के द्वारा और दृष्टियो के विभ्रम के होने से—'यह धर्म है और यह धर्म नही है' यह निश्चय नही किया जाता है कि वस्तुतः धर्म क्या है ॥ ८ ॥ कारणो के संशय होने से और कारण का भी निश्चय नही होने से और उस के मतिभेद होने से दृष्टियो का विभ्रम हो जाया करता है ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् दृष्टि से विभिन्न उनके द्वारा यह शास्त्र कुल दिया गया है । इस त्रेता मे यहाँ एक वेद चार पादो वाला विधान किया जाता है ॥ १० ॥ द्वापरों में आयुके संरोध से दिखलाई देता है । द्वापरादि में वेद व्यास के द्वारा चार प्रकार से व्यस्यमान किया जाता है ॥ ११ ॥ ऋषियो के पुत्रो के द्वारा दृष्टि के विभ्रमो से वेदो के पुनः भेद किये जाया करते हैं मन्त्र और ब्राह्मण भाग के विन्यासो के द्वारा तथा स्वर वर्ण के विपर्ययो के द्वारा भेद किये जाते हैं ॥ १२ ॥ ऋग्-यजु और साम वेदो की संहिता महर्षियों पर दृष्टि से भिन्न श्रुतर्षियों के द्वारा सामान्य तथा वैकृत रूप से संहन्यमान होती है ॥ १३ ॥ ब्राह्मण, कल्पसूत्र और मन्त्र प्रवचन अन्य तीर्थों के द्वारा प्रहित है । कुछ लोग उनके प्रति अवस्थित है ॥ १४ ॥

द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते भिन्नवृत्ताश्रमा द्विजाः ।
एकमाध्वर्यवं पूर्वमासीद्द्वैधं पुनस्ततः ॥ १५ ॥
सामान्यविपरीतार्थैः कृतं शास्त्रकुलन्त्विदम् ।
आध्वर्यवस्य प्रस्तावैर्बहुधा व्याकुलं कृतम् ॥ १६ ॥

तथैवाथर्वऋक्साम्नां विकल्पैश्चाप्यसंशयैः ।
व्याकुलं द्वापरे भिन्नं क्रियते भिन्नदर्शनैः ॥ १७ ॥
तेषां भेदाः प्रभेदाश्च विकल्पाश्चाप्यसंख्यशः ।
द्वापरे सम्प्रवर्त्तन्ते विनश्यन्ति पुनः कलौ ॥ १८ ॥
तेषां विपर्ययोत्पत्तिर्भवन्ति द्वापरे पुनः ।
अवृष्टिर्मरणञ्चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः ॥ १९ ॥
वाङ्मनःकर्मजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते पुनः ।
निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा ॥ २० ॥
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम् ।
दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसम्भवः ॥ २१ ॥

द्वापर में भिन्न वृत्त और शास्त्रों वाले हुआ प्रचलित होते हैं। एक पहिले आध्वर्यव था वह फिर द्वैध हो गया ॥ १५ ॥ सामान्य और विपरीत अर्थों से यह शास्त्र व्याकुल किया गया है। आध्वर्यव के प्रस्तावों से बहुधा व्याकुल कर दिया है ॥ १६ ॥ इसी प्रकार से अथर्व ऋक् और सामों के विकल्प जो हैं भी भिन्न द्वापर में भिन्न दर्शनों से व्याकुल किया जाता है ॥ १७ ॥ उनके भेद और प्रभेद और विकल्पों से भी असंख्य द्वापर में सम्प्रवृत्त होते हैं और फिर कलियुग में विनष्ट हो जाया करते हैं ॥ १८ ॥ द्वापर में फिर उन के विपर्यय भी होते हैं। अवृष्टि मृत्यु और इसी प्रकार से व्याधियों के उपद्रव होते हैं ॥ १९ ॥ वाणी मन और कर्म से उत्पन्न दुःखों से फिर निर्वेद (वैराग्य) हो जाता है। निर्वेद हो जाने से उनको दुःख से छुटकारा पाने की विचारणा होती है ॥ २० ॥ विचारणा से वैराग्य होता है और वैराग्य से सांसारिक वस्तुओं में दोषों का दर्शन होने लगता है और दोषों के देखने से द्वापर में ज्ञान की उत्पत्ति होती है ॥ २१ ॥

तेषाञ्च मानिनां पूर्वमाद्ये स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
उत्पद्यन्ते हि शास्त्राणां द्वापरे परिपन्थिनः ॥ २२ ॥

आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गानां ज्योतिषस्य च ।
अर्थशास्त्रविकल्पाश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम् ॥ २३ ॥
स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्च प्रस्थानानि पृथक् पृथक् ।
द्वापरेष्वभिवर्त्तन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम् ॥ २४ ॥
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद् वार्त्ता प्रसिद्ध्यति ।
द्वापरे सर्वभूतानां कायक्लेशपुरस्कृता ॥ २५ ॥
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ।
वेदशास्त्रप्रणयनं धर्माणां सङ्करस्तथा ॥ २६ ॥
द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते रोगो लोभो वधस्तथा ।
वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामद्वेषौ तथैव च ॥ २७ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे द्वे परमायुस्तथा नृणाम् ।
निःशेषे द्वापरे तस्मिन् तस्य सन्ध्या तु पादतः ॥ २८ ॥

पहले आद्य स्वायम्भुव मन्वन्तर में उन मानी शास्त्रों के द्वापर में परिपन्थी उत्पन्न होते हैं ॥ २२ ॥ अङ्गों के और ज्योतिष के आयुर्वेद विकल्प हैं । अर्थशास्त्र विकल्प और हेतुशास्त्र विकल्प हैं ॥ २३ ॥ स्मृतिशास्त्र के प्रभेद पृथक् पृथक् प्रस्थान हैं । द्वापर में इस प्रकार से मनुष्यों के मतिभेद अभिवर्तित होते हैं ॥ २४ ॥ मन से, वाणी से, कर्म से, कष्ट से वार्ता प्रसिद्ध होती है । द्वापर में समस्त प्राणियों की वार्ता कायक्लेश से पुरस्कृता होती है ॥ २५ ॥ लोभ, अधैर्य, वणिग्युद्ध तत्त्वों का निश्चय न होना, वेद शास्त्रों का प्रणयन और धर्मों का सङ्कट, रोग, लोभ, वध, वर्णों और आश्रमों का परिध्वंस, काम और द्वेष ये सब द्वापर में प्रवृत्त होते हैं ॥ २७ ॥ मनुष्यों की परमायु पूर्ण दो सहस्र वर्ष होती है । उस द्वापर के निःशेष होने पर उसकी सन्ध्या एक पाद से होती है ॥ २८ ॥

प्रतिष्ठते गुणैर्हीनो धर्मोऽसौ द्वापरस्य तु ।
तथैव सन्ध्यापादेन अंशस्तस्यावतिष्ठते ॥ २९ ॥
द्वापरस्य च पर्यायं तिष्यस्य तु निबोधत ।
द्वापरस्यांशशेषेण प्रतिपत्तिः कलेरतः ॥ ३० ॥

हिंसासूयानृतं माया वधश्चैव तपस्विनाम् ।
एते स्वभावास्तिष्यस्य साधयन्ति च वै प्रजाः ॥ ३१ ॥
एष धर्मः कृतः कृत्स्नो धर्मश्च परिहीयते ।
मनसा कर्मणा स्तुत्या वार्ता सिध्यति वा न वा ॥ ३२ ॥
कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद्भयानि च ।
अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विपर्ययः ॥ ३३ ॥
न प्रमाणं स्मृतेरस्ति तिष्ये लोके युगे युगे ।
गर्भस्थो म्रियते कश्चिद्यौवनस्थस्तथापरः ।
स्थाविरे मध्यकौमारे म्रियन्ते च कलौ प्रजाः ॥ ३४ ॥
अधार्मिकास्त्वनाचारास्तीक्ष्णकोपाल्पतेजसः ।
अनृतं ब्रुवन्तः सततं तिष्ये जायन्ति वै प्रजाः ॥ ३५ ॥

द्वापर का यह धर्म गुणों से हीन प्रतिष्ठित होता है । उसी प्रकार से सन्ध्यापाद में उसका अंश अवस्थित होता है ॥ २९ ॥ द्वापर के अन्त में जो तिष्य की है उसे समझ लो । द्वापर के अंश शेष में इसमें कलियुग की प्रतिपत्ति हो जाती है ॥ ३० ॥ हिंसा असूया अनृत, माया और तपस्वियों का वध ये स्वभाव तिष्य के हुआ करते हैं । उस समय प्रजा इनका साधन किया करती है ॥ ३१ ॥ यह किया हुआ पूर्ण धर्म है और धर्म परिहीन हो जाता है । मन से कर्म से और वाणी से (वाणी का ही पर्याय स्तुति है) वार्ता सिद्ध होती है और नहीं भी होती है ॥ ३२ ॥ कलियुग में जो रोग होता है वह मरण रूप से मारक हुआ करता है और निरन्तर क्षुधा के कष्ट सहने का भय बना रहा करता है । वर्षा के बिल्कुल न होने का भय तथा घोर देशों का विपर्यय होता है ॥ ३३ ॥ तिष्य लोक में युग युग में स्मृति का प्रमाण नहीं होता है । कोई गर्भ में स्थित ही मर जाता है और दूसरा पुरुष यौवनावस्था में स्थित ही मृत हो जाता है । कलियुग में स्थाविर में मध्य कौमार में प्रजा मर जाया करती है ॥ ३४ ॥ तिष्य में प्रजा अधार्मिक अनाचार से युक्त तीक्ष्ण कोप वाली अल्प तेज से युक्त और मिथ्या बोलने वाली निरन्तर उत्पन्न हुआ करती है ॥ ३५ ॥

दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः ।
विप्राणां कर्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भयम् ॥ ३६ ॥
हिंसा माया तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाऽक्षमाऽनृतम् ।
तिष्ये भवन्ति जन्तूनां रागो लोभश्च सर्वशः ॥ ३७ ॥
संक्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम् ।
नाधीयन्ते तदा वेदा न यजन्ते द्विजातयः ।
उत्सीदन्ति नराश्चैव क्षत्रियाः सविशः क्रमात् ॥ ३८ ॥
शूद्राणां मन्त्रयोनिस्तु सम्बन्धो ब्राह्मणैः सह ।
भवन्तीह कलौ तस्मिन् शयनासनभोजनैः ॥ ३९ ॥
राजानः शूद्रभूयिष्ठाः पाषण्डानां प्रवर्तकाः ।
भ्रूणहत्याः प्रजास्तत्र प्रजा एवं प्रवर्तते ॥ ४० ॥
आयुर्मेधा बलं रूपं कुलं चैव प्रहीयते ।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः ॥ ४१ ॥
राजवृत्ते स्थिताश्चौराश्चौरवृत्ताश्च पार्थिवाः ।
भृत्याश्च नष्टसुहृदो युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ४२ ॥

बुरे इष्ट वाले, बुरा अध्ययन करने वाले, बुरे आचार वाले और बुरे आगम वाले ब्राह्मणों के इन कर्म दोषों से प्रजा जनों को भय उत्पन्न हुआ करता है ॥ ३६ ॥ हिंसा, माया, ईर्ष्या, क्रोध, असूया, अक्षमा, अनृत, राग और लोभ तिष्य में सब ओर से जन्तुओं को हुआ करते हैं ॥ ३७ ॥ कलियुग प्राप्त करके जीवों को अत्यन्त संक्षोभ हुआ करता है। उस कलि के समय में द्विजाति वेदों को नहीं पढ़ा करते हैं और न वे यजन ही किया करते हैं। इससे मनुष्य और वैश्यों के सहित क्षत्रिय क्रम से उत्पीड़ित हुआ करते हैं ॥ ३८ ॥ शूद्रों का और अन्य योनि का सम्बन्ध ब्राह्मणों के साथ इस कलियुग में शयन, आसन और भोजन के द्वारा हुआ करते हैं ॥ ३९ ॥ राजा लोग शूद्रों की अधिकता वाले प्राय हुआ करता है और पाषण्डों के प्रवर्त्तक होते हैं। उनमें प्रजा ऐसी होती है जो भ्रूण हत्या वाली होती है ॥ ४० ॥ आयु, मेधा, बल, रूप और कुल परिहीन होता है। जो शूद्र होते हैं उनके भी ब्राह्मणों जैसे आचार होते हैं और जो ब्राह्मण होते हैं उनके शूद्रों के समान आचार हुआ करते हैं

जीव-लोक हो जायगा । युगान्त का यह लक्षण है कि पतित से अवस्था हुआ करती है ॥५४॥ वसुमती सभी से रहित एवं शून्य हो जायगी । देशों में और नगरों में यहाँ मण्डल होंगे ॥५५॥ वसुन्धरा यह थोड़े जल वाली और थोड़ा ही फल देने वाली हो जायगी । जो रक्षा करने वाले हैं वे ही भक्षक और शासन रहित होंगे ॥५६॥

हर्तारः पररत्नानां परदारप्रधर्षकाः ।
कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधमाः साहसप्रियाः ॥ ५७ ॥
प्रनष्टचेतना पुंसो मुक्तकेशास्तु चूलिकाः ।
ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये ॥ ५८ ॥
शुक्लदन्ता जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः ।
शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ५९ ॥
सस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलाभिमर्शिनः ।
चौराश्चौरस्य हर्तारो हन्तुर्हन्तार एव च ॥ ६० ॥
ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते ।
कीटमूषिकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् ॥ ६१ ॥
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सामर्थ्यं दुर्लभं भवेत् ।
कौशिकान् प्रतिपत्स्यन्ति देशान् क्षुद्भयपीडिताः ॥ ६२ ॥
दुःखेनाभिप्लुतानां च परमायुः शतं भवेत् ।
दृश्यन्ते न च दृश्यन्ते वेदाः कलियुगेऽखिलाः ॥ ६३ ॥

दूसरों के रत्नों का हरण करने वाले और पराई स्त्री का धर्षण करने वाले कामात्मा और दुष्ट आत्मा वाले और अधर्म के काम में साहस दिखाने वाले तथा चेतना नष्ट न होने वाले पुरुष के केश खुले हुए तथा चुटिया खुली रखने वाले और सोलह वर्ष से भी कम उम्र वाले युग के क्षय में उत्पन्न होते हैं ॥५७॥५८॥ शुक्ल दन्त जिताक्ष मुण्ड और काषाय वस्त्रों के धारण करने वाले शूद्र युगान्त के पर्युपस्थित होने पर धर्म का आचरण किया करेंगे ॥५९॥ सस्य के चुराने वाले तथा चैल (वस्त्र) के अभिमर्षण करने वाले चोर के हरण करने वाले और तथा हनन करने वालों का हरण करने वाले लोग होंगे ॥६०॥ ज्ञान

कि कर्म में उपरत लोक में जयकि यह सबका निष्फलता को प्राप्त हो जायगा, कीट, मूषक और सब मनुष्यों का घर्षण किया करेंगे ॥६१॥ सुभिक्ष-क्षेम और आरोग्य एवं सामर्थ्य यह सब दुर्लभ हो जायेंगे। भूख और व्याध के भय से पीड़ित देशों में कोई निवास किया करेंगे ॥६२॥ दुःख से अभिप्लुत लोगों की परमायु सौ वर्ष की हो जायगी। कलियुग में सम्पूर्ण वेद दिखलाई देते हैं और नहीं भी दिखलाई दिया करते हैं ॥६३॥

उत्सीदन्ति तथा यज्ञा केवला धर्मपीडिता।
कषायिणश्च निर्ग्रन्थास्तथा कापालिनश्च ह ॥ ६४ ॥
वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणोऽपरे।
वर्णाश्रमाणां ये चान्ये पाषण्डा परिपन्थिन ॥ ६५ ॥
उत्पद्यन्ते तथा ते वै सम्प्राप्ते तु कलौ युगे।
नाधीयन्ते तदा वेदा शूद्रा धर्मार्थकोविदा' ॥ ६६ ॥
यजन्ते नाश्वमेधेन राजान शूद्रयोनय।
स्त्रीवधं गोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम्।
उपहन्युस्तदान्योन्यं साधयन्ति तथा प्रजा ॥ ६७ ॥
दुःखप्रचारतोऽल्पायुर्देशोत्सादः सरोगता।
मोहो ग्लानिस्तथासौख्यं तमोवृत्तं कलौ स्मृतम् ॥ ६८ ॥
प्रजा तु भ्रूणहत्यायामथ वै सम्प्रवर्तते।
तस्मादायुर्बलं रूपं कलिं प्राप्य प्रहीयते।
दुःखेनाभिप्लुतानां वै परमायुः नृणाम् ॥ ६९ ॥
दृश्यन्ते नाभिदृश्यन्ते वेदा कलियुगेऽखिला।
उत्सीदन्ते तदा यज्ञा केवला धर्मपीडिता ॥ ७० ॥

केवल धर्म पीड़ित यज्ञ उत्पन्न होते हैं। कषाय वस्त्रधारी तथा निर्ग्रन्थ कपाली, दूसरे वेदों के बेचने वाले तथा तीर्थों के विक्रय करने वाले और वर्णाश्रमों के पाखण्ड प्रकट करने वाले परिपन्थी लोग इस कलियुग के सम्प्राप्त होने पर उत्पन्न होंगे। उस समय कोई भी वेदों का अध्ययन नहीं किया करेंगे केवल शूद्र ही धर्मार्थ के पण्डित होंगे ॥६४॥६५॥६६॥ शूद्र योनि राजा लोग अश्वमेध

का भजन नहीं किया करते हैं तथा स्त्री का बच-गौ का वध करके और परस्पर मे हनन करके वह एक दूसरे का उपद्रवन करेंगे और इस तरह से प्रजा का शोषन किया करते हैं ।।६७।। दु खी के प्रभाव से अल्प आयु देहोत्साह कोई प्रयोग व्याधि तथा अमोक्ष इस तरह से कलियुग मे वशीभूत कहा गया है ।।६८।। प्रजा सब क्षण समय मे सम्भवत होती है इसी से कलियुग को प्राप्त करके आयु बल और रूप सभी गुण नष्ट हो जाते हैं और सब और से दुखों में डूबे हुए मनुष्यो की आयु सबसे अधिक सौ वर्ष की ही जाती है ।६९।। समस्त वेद तो इस कलियुग मे दिखलाई देते हैं और नहीं भी दिखलाई दिया करते हैं। इ र समय केवल धन पीडित यज्ञ नष्ट हुआ करते हैं ।।७ ।।

तदा त्वल्पेन कालेन सिद्धि यास्यन्ति मानवा ।
धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते द्विजसत्तमा ।। ७१ ।।
श्रुतिस्मृत्युदित धर्म ये चरन्त्यनसूयका ।
त्रेतायां वार्षिको धर्मो द्वापरे मासिक स्मृत ।
यथाशक्ति चरन् प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुयात् कलौ ।। ७२ ।।
एषा कलियुगेऽवस्था स ध्यात्व तु निबोध मे ।
युगे-युगे तु हीयन्ते त्रींस्त्रीन् पादांश्च सिद्धय ।। ७३ ।।
युगस्वभावात्सन्ध्यास्तु तिष्ठन्तीमास्तु पादश ।
सन्ध्यास्वभावात्स्वांशेषु पादशस्ता प्रतिष्ठिता ।। ७४ ।।
एव सन्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके ।
तेषां शास्ता ह्यसाधूनां भृगूणां निधनोत्थित ।। ७५ ।।
गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमितिरुच्यते ।
माधवस्य तु सोंऽशेन पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ।। ७६ ।।
समा स विंशति पूर्णा पर्यटन् व वसुन्धराम् ।
आचकर्ष स वै सेनां सवाजिरथकुञ्जराम् ।। ७७ ।।
प्रगृहीतायुधैर्विप्र शतशोऽथ सहस्रश ।
स तदा त परिवृतो म्लेच्छान् हन्ति सहस्रश ।। ७८ ।।
स हत्वा सर्वशश्चैव राजस्तान् शूद्रयोनिजान्
पाषण्डान् स तत सर्वांन् निःशेषान् कृतवान् प्रभु ।। ७९ ।।

नात्यर्थं धार्मिका ये च तान् सर्वान् हन्ति सर्वश ।
वर्णव्यत्यासजाताश्च ये च तानुपजीविन ।। ८० ।।

उस युगान्त मे जो श्रेष्ठ द्विज धर्म का आचरण किया करते है वे मानव अल्प काल मे ही सिद्धि को प्राप्त कर लेते है । जो अनसूयक अर्थात् असूया न करने वाले लोग श्रुति स्मृति मे कहे हुए धर्म का आचरण किया करते है । त्रेता मे वार्षिक धर्म होता था—द्वापर मे वह मासिक कहा गया है और कलियुग मे प्राज्ञ तथा शक्ति करता हुआ एक दिन मे प्राप्त कर लेता है ।७१।।७०।। यह तो कलियुग की अवस्था है अब इनका सन्ध्यांश भी समझ लो । युग युग मे तीन-तीन पाद सिद्धियाँ हीन होती है ।।७३।। युग के स्वभाव से ये सन्ध्या पाद से रहा करती है । सन्ध्या के स्वभाव से अगो मे पाद मे प्रतिष्ठित होते हैं ।। ७४।। इस तरह से युगान्त मे सन्ध्यांश काल के सम्प्राप्त होने पर उन असाधु पुरुषों का शास्ता निधन से उत्थित होता है ।।७५।। गोत्र से चन्द्रमा के नाम से प्रमिति कही जाती है । स्वायम्भुव मन्वन्तर मे पहिले वह माधव के अश से होती है ।७६। पूरे तीस वर्ष तक इस वसुन्धरा पर पर्यटन करते हुए इसने घोड़े हाथियो से युक्त सेना का आकर्षण किया ।७७।। आयुध ग्रहण करने वाले विप्रो के द्वारा जो सख्या मे सैकडो और हजारो थे उनसे परिवृत्त होकर हजारो ही म्लेच्छो का हनन करता है ।।७८।। वह सर्वत्र जाने वाला उन शूद्र योनियों मे समुत्पन्न राजाओं को तथा समस्त पापण्डो को वह प्रभु निःशेष कर देते है ।।७९।। जो अत्यर्थ धार्मिक नही है उन सबको सब ओर से मार देते हैं जो भी वर्ण के व्यत्यास से उत्पन्न हुए है और अनुताप देने वाले है ।।८०।।

उदीच्यान्मध्यदेशाश्च पार्वतीयास्तथैव च ।
प्राच्यान् प्रतीच्याश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान् ।। ८१ ।।
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान् सिंहलै सह ।
गान्धारान् पारदांश्चैव पह्लवान् यवनास्तथा ।। ८२ ।।
तुषारान् बर्बरांश्चीनान् शूलिकान् दरदान् खसान् ।
लम्पाकानथ केतांश्च किरातानाञ्च जातय ।। ८३ ।।
प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्विभु ।

मनुष्य सर्वभूतानां चचाराथ वसुन्धराम् ॥ ८४ ॥
माधवस्य तु सोंशेन देवस्य हि विजज्ञिवान् ।
पूर्वजन्मनि विष्णोश्च प्रमतिर्नाम वीर्यवान् ॥ ८५ ॥
गोत्रेण वै चन्द्रमसः पूर्वे कलियुगे प्रभुः ।
द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रान्ते विंशतिं समाः ॥ ८६ ॥
विनिघ्नन् सर्वभूतानि मानवानि सहस्रशः ।
कृत्वा बीजावशेषान्तु पृथ्वीं क्रूरेण कर्मणा ॥
परस्परनिमित्तेन कोपेनाकस्मिकेन तु ॥ ८७ ॥
स साधयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्मिकान् ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्तः सहानुगः ॥ ८८ ॥

उत्तर में रहने वाले मध्य देश वाले पर्वतीय प्राच्य तथा प्रतीच्य अर्थात् पश्चिम में रहने वाले एवं विन्ध्य पृष्ठ परान्तिक दाक्षिणात्य और द्रविड़ों के साथ द्रविड़ सा चार-पारद-पह्लव तथा यवन-तुषार बर्बर चीन-शूलिक-दरद-खश-लम्पक केत और किरात जाति वाले इन सबका म्लेच्छों का प्रकृष्ट यह वसुधाम् विभु अन्त करने वाले ये जोकि समस्त प्राणियों के मनुष्य थे उनने इस वसुन्धरा पर चरण किया था ॥८१॥८२॥८३॥८४॥ उसने अपने को माधव देव के अंश से विकास किया था। पूर्व जन्म की विधि को जानने वालों के द्वारा वीर्यवान् प्रमिति नाम कहा गया है। पूर्व कलियुग में चन्द्रमा के गोत्र से प्रभु ने बत्तीस वर्ष के अभ्युदित होने पर बीस वर्ष पर्यन्त समस्त प्राणी तथा सहस्रों मानवों का हनन करते हुए क्रूर कर्म से पृथ्वी को बीजावशेष करके परस्पर निमित्त वाले आकस्मिक कोप से उसमें वृषलों की जोकि प्राय अधार्मिक थे साधना करके अपने अनुग के साथ गङ्गा यमुना के मध्य में निष्ठा प्राप्त की थी ॥८५॥ ॥८६॥८७॥८८॥।

ततो व्यतीते तस्मिंस्तु अमात्ये सहसैनिके ।
उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् म्लेच्छांश्चैव सहस्रशः ॥ ८९ ॥
तत्र सन्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके ।
स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्-क्वचित् ।

अप्रग्रहास्ततस्ता वै लोकचेष्टास्तु वृन्दश ।
उपहिंसन्ति चान्योन्यं प्रपद्यन्ते परस्परम् ॥ ६१ ॥
अराजके युगवशात् संशये समुपस्थिते ।
प्रजास्ता वै तत सर्वा परस्परभयार्दिता ॥ ६२ ॥
व्याकुलाश्च परिश्रान्तास्त्यक्त्वा दारान् गृहाणि च ।
स्वान् प्राणान् समवेक्षन्तो निद्रां प्राप्ता सुदु खिता ॥ ६३ ॥
नष्टे श्रौते स्मृते धर्मे परस्परहतास्तदा ।
निर्मर्यादा निराक्रन्दा नि स्नेहा निरपत्रपा ॥ ६४ ॥
नष्टे धर्मे प्रतिहता ह्रस्वका पञ्चविंशका ।
हित्वा दारांश्च विषादव्याकुलेन्द्रिया ॥ ६५ ॥

इसके पश्चात् उस सत्य सैनिक अमात्य के व्यतीत हो जाने पर समस्त पार्थिवों का तथा सहस्रों म्लेच्छों का उत्सादन करके वहाँ सन्ध्यांश काल में युगान्त के सम्प्राप्त होने पर कहीं-कहीं पर अत्यन्त अल्प प्रजाओं के अवशिष्ट रहजाने पर वे इसके अनन्तर अप्रग्रह रहित और वृन्दों में लोक चेष्टा से युक्त होकर एक दूसरे को आपस में उपहिंसन करते हैं ॥८६॥६०॥६१॥ युग-वश से अराजकता के संशय के समुपस्थित हो जाने पर वह समस्त प्रजा आपस में भय से परम दु खित थी ॥६२॥ अत्यन्त व्याकुल-परिश्रान्त होते हुए अपनी स्त्रियों को तथा घरों को छोड़कर अपने ही प्राणों को देखते हुए सुदु खित होते हुए निद्रा को प्राप्त हुए ॥६३॥ श्रौत तथा स्मार्त धर्म के नष्ट हो जाने पर उस समय में परस्पर में हत होते हुए बिना मर्यादा वाले—निराक्रन्द—नि स्नेह और निरपत्रप होगये थे ॥६४॥ धर्म के नष्ट होने पर प्रतिहत ह्रस्वके तथा पञ्च विंशक अपनी स्त्रियों एवं पुत्रों का त्याग करके विषाद से व्याकुलित इन्द्रियों वाले थे ॥६५॥

अनावृष्टिहताश्चैव वार्त्तामुत्सृज्य दु खिताः ।
प्रत्यन्तांस्तान्निषेवन्ते हित्वा जनपदान् स्वकान् ॥ ६६ ॥
सरित सागरान् कूपान् सेवन्ते पर्वतांस्तदा ।
मधुमांसैर्मूलफलैर्वर्त्तयन्ति सुदु खिता ॥ ६७ ॥

चीरपत्राजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः ।
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सङ्करं घोरमास्थिताः ॥ ९८ ॥

एताः काष्ठामनुप्राप्ता अल्पशेषास्तथा प्रजाः ।
जराव्याधिक्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमागमन् ॥ ९९ ॥

विचारणन्तु निर्वेदात् साम्यावस्था विचारणात् ।
साम्यावस्थासु सम्बोधः सम्बोधाद्धर्मशीलता ॥ १०० ॥

तासूपशमयुक्तासु कलिशिष्टासु वै स्वयम् ।
अहोरात्रं तदा तासां युगन्तु परिवर्तते ॥ १०१ ॥

चित्तसम्मोहनं कृत्वा तासान्तु सुप्तमत्तवत् ।
भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्तत ॥ १०२ ॥

प्रवृत्ते तु पुनस्तस्मिंस्ततः कृतयुगे तु वै ।
उत्पन्नाः कलिशिष्टास्तु कार्तयुग्याः प्रजास्तदा ॥ १०३ ॥

वे सब उस समय में अनावृष्टि से आहत थे और वार्ता का त्याग कर बहुत ही दुःखित हो रहे थे। अपने-अपने धन घरों को त्याग कर प्रत्यन्तों का सेवन करते थे। नदियों—सागर कूप और पर्वतों का सेवन करते थे। अत्यन्त दुःखित होते हुए मधु मांस तथा मूल फलों से जीवित रहते थे।९६।९७।। और वस्त्र तथा अजिन के धारण करने वाले निष्क्रिय एवं निष्परिग्रह वर्णाश्रम से परिभ्रष्ट घोर संकर में आस्थित थे ।।९८।। ऐसी काष्ठा को प्राप्त होने वाली बहुत थोड़ी सी बची हुई प्रजा जरा-व्याधि और क्षुधा से आविष्ट होती हुई दुःख से निर्वेद को प्राप्त हुई थी ।।९९।। निर्वेद से विचारणा हुई और विचारणा से साम्यावस्था हुई। साम्यावस्थाओं में कुछ सम्बोध हुआ और फिर सम्बोध से धर्मशीलता उत्पन्न हुई ।।१००।। कलियुग में बच गई और उपशम से युक्त उन में स्वयं उस समय अहोरात्र उनके युग परिवर्तित होते हैं ।।१०१।। उनके चित्त का सम्मोहन करके उनके द्वारा भावी अर्थ के बल से फिर उसमें कृत हुआ था ।।१०२।। फिर उसके पश्चात उस कृत युग के प्रवृत्त होने पर उस समय में कलिशिष्ट कार्तयुग्य प्रजा समुत्पन्न हुई थी ।।१०३।।

तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धा दृष्टा विचरन्ति च ।
सदा तानपयश्चैव तत्र ते च व्यवस्थिता ॥ १०४ ॥
ब्रह्मक्षत्रविश शूद्रा बीजार्थ ये स्मृता इह ।
कलिजै सह ते सर्वे निर्विशेषास्तदाभवन् ॥ १०५ ॥
तेषा सप्तर्षयो धर्म कथयन्तीतरेषु च ।
वर्णाश्रमाचारयुक्त श्रौत स्मार्तो द्विधा तु स ॥ १०६ ॥
ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्तन्ते वै प्रजा कृते ।
श्रौत स्मार्तं कृतानान्तु धर्मं सप्तर्षिदर्शित ॥ १०७ ॥
तानु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीहायुगक्षयात् ।
मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठन्ति मुनयस्तु वै ॥ १०८ ॥
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह ततो ऋतौ ।
नवाना प्रथम दृष्टस्तेषा मूले तु सम्भव ॥ १०९ ॥
एव युगाद्युगस्येह सन्तानस्तु परस्परम् ।
वर्तते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षय ॥ ११० ॥

यहा पर जो सिद्ध स्थित हैं वे सुदृष्ट होते हुए विचरण करते हैं और सदा वे सप्तर्षि लोग भी व्यवस्थित होते हैं ।।१०४।। ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य तथा शूद्र जो यहाँ बीज के लिये कहे गये हैं वे सब कलि मे समुत्पन्न होने वालो के साथ उस समय में निर्विशेष होगये थे ।।१०५।। उनके धर्म को और इतरो मे सप्तर्षि कहते हैं । वर्ण और आश्रम के आचार से युक्त वह धर्म दो प्रकार का था ।।१०६।। इसके अनन्तर कृत मे क्रियावान उनमे प्रजा रहती है और सप्तर्षियों के द्वारा दिखाया हुआ श्रौत तथा स्मार्त्त धर्म करने वाले हैं ।१०७।। यहाँ पर युग के क्षय से उनमे धर्म की व्यवस्था के लिये मन्वन्तराधिकारों मे मुनिगण स्थित रहते हैं ।।१०८।। जिस तरह से दावाग्नि से जले हुए तृणों पर उस ऋतु मे उनके मूल मे सम्भव नवीन तृणों का प्रथम दिखाई दिया हुआ होता है ।।१०९।। इसी भाँति यहाँ युग का युग से परस्पर में सन्तान होता है । जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है, तब तक वह अव्यवच्छेद से रहा करता है ।।११०।।

सुखमायुर्बलं रूपं धर्मार्थौ काम एव च ।
युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रीणि पादक्रमेण तु ॥ १११ ॥
ससन्ध्यांशेषु हीयन्ते युगानां धर्मसिद्धयः ।
इत्येष प्रतिसन्धिर्वः कीर्तितस्तु मया द्विजाः ॥ ११२ ॥
चतुर्युगाणां सर्वेषामेतदेव प्रसाधनम् ।
एषा चतुर्युगावृत्तिरासहस्रात् प्रवर्तते ॥ ११३ ॥
ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं रात्रिश्च तावती स्मृता ।
अत्रार्जवं जडीभावो भूतानामायुगक्षयात् ॥११४
एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम् ।
एषा चतुर्युगानान्तु गणना ह्येकसप्ततिः ।
क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरन्तरमुच्यते ॥११५
चतुर्युगे यथैकस्मिन् भवतीह यथाश्रुतम् ।
तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वै यथाक्रमम् ॥११६
सर्गे सर्गे यथा भेदा उत्पद्यन्ते तथैव तु ।
पञ्चविंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकास्तथा ॥११७

सुख—आयु बल रूप धर्म-अर्थ और काम ये सब तीन युगों में पाद क्रम से हीयमान होते हैं ॥१११॥ सन्ध्यांशों में युगों की धर्म सिद्धियाँ हीन होती हैं । हे द्विजो ! इस प्रकार से यह आपको प्रतिसन्धि मैंने कीर्तित कर दिया है । चारों युगों का सबके ही प्रसाधन होता है । यह चतुर्युगों की आवृत्ति सहस्र पर्यन्त हुआ करती है ॥११३॥ ब्रह्मा का वह दिन कहा गया है और उतनी रात्रि भी कही गई है । यहाँ पर प्राणियों का युग क्षय तक जडीभाव होता है ॥११४॥ यह ही समस्त युगों का लक्षण कहा गया है । यह चारों युगों की गणना इकहत्तर होती है । क्रम से परिवृत्त यह होती हुई मनु का अन्तर कहा जाता है ॥११५॥ यहाँ एक चतुर्युग में जिस प्रकार से यथाश्रुत होती है । उसी प्रकार से अन्यों में भी यह फिर यथाक्रम हुआ करती है ॥११६॥ सर्ग-सर्ग में जिस प्रकार से भेद उत्पन्न होते हैं उस प्रकार से वे पच्चीस की संख्या में परिमित होते हैं । न कम हैं और न अधिक ही होते हैं ॥११७॥

तथा कल्पयुगं सार्द्धं भवन्ति समलक्षणा ।
मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम् ॥११८
तथा युगानां परिवर्त्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।
तथा न सन्तिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः ॥११६॥
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः ।
अतीतानागतानां वै सर्वमन्वन्तरेष्विह ॥१२०
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ॥१२१
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै ।
व्याख्यातानि विजानीध्वं कल्पे कल्पेन चैव हि ॥१२२
अस्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत ।
देवा ह्यष्टविधा ये च इह मन्वन्तरेश्वराः ॥१२३

इस प्रकार से कल्प युगों के साथ समान लक्षण वाले होते हैं। समस्त मन्वन्तरों का यह ही लक्षण होता है ॥११८॥ इस प्रकार से युगों के परिवर्तन युगों के स्वभाव से चिर प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार से यह जीव लोक क्षय एवं उदय से परिवर्तमान होता हुआ नहीं संस्थित रहा करता है ॥११६॥ इतना यह युगों का संक्षेप से लक्षण मैंने कह दिया है जो कि अतीत हो गये हैं, अनागत हैं और यहाँ समस्त मन्वन्तरों में होते हैं ॥१२०॥ जो अनागत हैं और समस्त मन्वन्तरों में जो अतीत एवं अनागत हैं उनमें विज्ञ व्यक्ति को उसी भाँति से तर्क करना चाहिए ॥१२१॥ एक मन्वन्तर से समस्त मन्वन्तरों की व्याख्या करदी गई है। कल्प में कल्प से उसे जान लेना चाहिए ॥१२२॥ इसके अभिमानी सब नाम और रूपों से यहाँ मन्वन्तर में आठ प्रकार के मन्वन्तरेश्वर देव होते हैं ॥१२३॥

ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्याः प्रयोजने ।
एवं वर्णाश्रमाणान्तु प्रविभागो युगे युगे ॥१२४
युगस्वभावाच्च तथा विधत्ते वै सदा प्रभुः ।
वर्णाश्रमविभागश्च युगानि युगानि युगसिद्धये ॥१२५

पर्यन्त नवकाय होता है और जो भगवान् बाहु वाला होता है वह सुरों के द्वारा भी पूजित हुआ करता है ॥ ९ ॥ जो मनुष्य हस्ती महिष और स्थावर स्वरूप वालों की क्रम से इस योग से युग युग में ह्रास और वृद्धि हुआ करती है ॥१०॥ पशुओं की ऊँचाई छवसठ अंगुल और मनुष्य की होती है । हाथियों का उत्सेध हर एक सौ आठ अंगुल का पूर्ण कहा गया है ॥ ११ ॥ चत्वारिंशत् (चालीस) अंगुल के बिना एक सहस्र अंगुल और पश्चात् दूर्वों (लम्बे) का शाखियों (वृक्षों) का उत्सेध कहा गया है ॥ १२ ॥ मनुष्य के शरीर का सन्निवेश जैसा है उसी लक्षण वाला तत्त्व दर्शन से देवों का दिखलाई देता है ॥१३॥ देवों का शरीर बुद्धि के अतिशय से युक्त हुआ करता है—ऐसा कहा जाता है । देवों के अनतिशय वाला मनुष्य-काय कहा जाता है ॥ १४ ॥

इत्येते वै परिक्रान्ता भावा ये दिव्यमानुषाः ।
पशूनां पक्षिणाञ्चैव स्थावराणां निबोधत ॥ १५ ॥
गावो ह्यजा महिष्योऽश्वा हस्तिनः पक्षिणो मृगाः ।
उपयुक्ताः क्रियास्वेते यज्ञियास्विह सर्वशः ॥ १६ ॥
देवस्थानेषु जायन्ते तद्रूपा एव ते पुनः ।
यथाश्रयोपभोगास्तु देवानां शुभमूर्त्तयः ॥ १७ ॥
तेषां रूपानुरूपैस्तैः प्रमाणैः स्थावरजङ्गमैः ।
मनोज्ञैस्तत्र भावैस्ते सुखिनो ह्युपपेदिरे ॥ १८ ॥
अतः शिष्टान् प्रवक्ष्यामि सतः साधूंस्तथैव च ।
शिष्टिति ब्रह्मणः शब्दस्तद्युक्ता ये भवन्त्युत ।
सामुख्य ब्रह्मणोऽध्यक्षा तेन शिष्टाः प्रचक्षते ॥ १९ ॥
यथात्मके ये नियते कारणे चाह्वलक्षणे ।
न हृष्यन्ति न दुष्यन्ति जितात्मानस्तु ते स्मृताः ॥ २० ॥
सामान्येषु च धर्मेषु तथा वर्णाधिकेषु च ।
ब्रह्मक्षत्रविशो युक्ता यस्मात्तस्माद्द्विजातयः ॥ २१ ॥

ये इतने दिव्य मानुष भाव परिक्रान्त किये हैं । अब पशुओं का—पक्षियों का और स्थावरों का भाव समझ लो ॥ १५ ॥ गौ-अजा (बकरी) महिषी

(भेस) अश्व-हाथी-पक्षीगण और नग ये क्रियाओं में उपयुक्त होते हैं। यहाँ पर ये सब प्रकार से यज्ञीय कहे जाते हैं ।। १६ ।। देवस्थानों में जो उत्पन्न होते हैं वे फिर तद्रूप ही होते हैं। यथाशयोपभोग वाले देवों की ही शुभ मूर्तियाँ होती हैं ।। १७ ।। उसके रूप के अनुरूप स्थाणु जङ्गम उन प्रमाणों से जो कि मनोज्ञ और तत्त्वभाव के ज्ञाता हैं सुखी होते हैं ।। १८ ।। इससे आगे शिष्टों तथा सत् और साधुओं को बताऊँगा। सत् पद-ब्रह्म का मन्त्र है उसके रखने वाले जो होते हैं ब्रह्म का अत्यन्त सायुज्य होता है इसी से वे (सन्त)—ऐसे कहे जाते हैं ।। १९ ।। जो दशात्मक विषय में और आठ लक्षणों वाले कारण में न तो कोविद होते हैं और न प्रसन्न ही होते हैं वे जितात्म कहे जाते हैं ।।२०।। सामान्य धर्मों में तथा वैशेषिकों में क्योंकि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य युक्त होते हैं इसी लिए ये द्विजाति कहे जाते हैं ।। २१ ।।

वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गगोसुखचारिणः ।
श्रौतस्मार्तस्य धर्मस्य ज्ञानाद्धर्मः स उच्यते ।। २२ ।।
विद्यायाः साधनात्साधुर्ब्रह्मचारी गुरोर्हितः ।
क्रियाणां साधनाच्चैव गृहस्थः साधुरुच्यते ।। २३ ।।
साधनात्तपसोऽरण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः ।
यतमानो यतिः साधुः स्मृतो योगस्य साधनात् ।। २४ ।।
एवमाश्रमधर्माणां साधनात् साधवः स्मृताः ।
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।। २५ ।।
न च देवा न पितरो मुनयो न च मानवाः ।
अयं धर्मो ह्ययं नेति ब्रुवन्त्योऽभिन्नदर्शनाः ।। २६ ।।
धर्माधर्माविह प्रोक्तौ शब्दावेतौ क्रियात्मकौ ।
कुशलाकुशलं कर्म धर्माधर्माविति स्मृतौ ।। २७ ।।
धारणे धृतिरित्यस्माद्धातोर्धर्मः प्रकीर्तितः ।
अधारणेऽमहत्त्वे च अधर्म इति चोच्यते ।। २८ ।।

वर्णाश्रमों में युक्त तथा स्वर्ग गोसुख के चरण करने वाले श्रौतस्मार्त धर्म का ज्ञान होने से वह धर्म कहा जाता है ।। २२ ।। विद्या के साधन से

साधु—गुरु का हित ब्रह्मचारी और क्रियाओं के साधन से ही गृहस्थ साधु कहा जाता है ॥ २३ ॥ अरण्य में तप के साधन से साधु वानप्रस्थ कहा गया है। जो यत्नमान साधु यति योग के साधन से कहा गया है ॥२४॥ इस प्रकार से आश्रम के धर्मों के साधन से साधु कहे गये हैं। गृहस्थ-ब्रह्मचारी-वानप्रस्थ और भिक्षुक ये चार आश्रम हैं ॥ २५ ॥ न देव न पितृ एवं मुनिगण और न मानव यह धर्म है और यह नहीं है—यह बोलते हुए अभिन्न दर्शन होते हैं ॥ २६ ॥ यहाँ पर धर्म और अधर्म कहे गये हैं। ये दोनों ही शब्द क्रियात्मक होते हैं। कुशल कर्म धर्म है और अकुशल कर्म अधर्म है ऐसा कहा गया है ॥ २७ ॥ धातु का धृति यह अर्थ होने से धारण धर्म कहा गया है। अधारण और अमहत्त्व होने से यह अधर्म ऐसा कहा जाता है ॥ २८ ॥

अत्रेष्टप्रापको धर्म आचार्यैरुपदिश्यते ।
वृद्धा ह्यलोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदम्भकाः ।
सम्यग्विनीता ऋजवस्तानाचार्यान् प्रचक्षते ॥ २९ ॥
स्वयमाचरते यस्मादाचारं स्थापयत्यपि ।
आचिनोति च शास्त्रार्थान्यमैः सन्नियमैर्युतः ॥ ३० ॥
पूर्वेभ्यो वेदयित्वेह श्रौतं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ।
ऋचो यजूंषि सामानि ब्रह्मणोऽङ्गानि च श्रुतिः ॥ ३१ ॥
मन्वन्तरस्यातीतस्य स्मृत्वाचारं पुनर्मनुः
तस्मात्स्मार्तः स्मृतो धर्मो वर्णाश्रमविभागजः ॥ ३२ ॥
स एव द्विविधो धर्मः शिष्टाचार इहोच्यते ।
शेषशब्दात् शिष्ट इति शिष्टाचारः प्रचक्ष्यते ॥ ३३ ॥
मन्वन्तरेषु ये शिष्टा इह तिष्ठन्ति धार्मिकाः ।
मनुः सप्तर्षयश्चैव लोकसन्तानकारणात् ।
धर्मार्थं ये च शिष्टा वै याथात्म्यं प्रचक्ष्यते ॥ ३४ ॥
मन्वादयश्च ये शिष्टा ये यथा प्रागुदीरिता ।
तैः शिष्टैश्चरितो धर्मः सम्यगेव युगे युगे ॥ ३५ ॥

यहाँ पर आचार्यों के द्वारा जो इष्ट के प्रापक हैं उन्हें धर्म उपदेश

किया जाता है। वृद्ध, अलोलुप आत्मा वाले दम्भ से रहित, भली भांति विनीत और जो सरल-सीधे होते हैं उनको आचार्य कहते हैं ॥२६॥ स्वय भी आचरण करता है और आचार की स्थापना भी किया करता है। यज्ञ और अच्छे नियमो से युक्त होता हुआ शास्त्रों के अर्थों का चारो ओर से चयन किया करता है इसी कारण से आचार्य कहा जाता है ॥३०॥ पूर्व में होने वालो से जानकर यहाँ पर सप्तर्षियो ने श्रौत को बतलाया था। ऋग्—यजु—साम—ब्रह्म के अङ्गों को और श्रुति उन्होंने बतलाये थे ॥३१॥ जो मन्वन्तर व्यतीत हो गया उसका स्मरण करके आचार को फिर गाया था। इससे वर्ण और आश्रम के विभाग से जन्मने वाला स्मृत नम स्मार्त कहा गया है ॥३२॥ वह यह धर्म दो प्रकार का है। यहाँ पर शिष्टाचार कहा जाता है। शेष शब्द से शिष्ट यह होता है और इससे शिष्टाचार कहा जाता है ॥३३॥ मन्वन्तरों जो शिष्ट है यहाँ धार्मिक होते हैं जो कि मनु और सप्तर्षि लोक सन्तान के कारण से होते हैं। धर्म के लिए जो शिष्ट हैं उनका यथातथ्य कहा ॥३४॥ मन्वादि जो शिष्ट हैं और जो मैंने पहिले कहे हैं, उन शिष्टो के द्वारा चरित्र-धर्म युग-युग में अच्छा ही होता है ॥३५॥

त्रयी वार्ता दण्डनीतिरिज्या वर्णाश्रमास्तथा ।
शिष्टैराचर्यते यस्मान्मनुना च पुन पुन ।
पूर्वै पूर्वगतत्वाच्च शिष्टाचार स शाश्वत ॥३६॥
दान सत्यन्तपोऽलोभो विद्येज्याप्रजनी दया ।
अष्टौ तानि चरित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम् ॥३७॥
शिष्टा यस्माच्चरन्त्येन मनु सप्तर्षयश्च वै ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु शिष्टाचारस्तत स्मृत ॥३८॥
विज्ञेय श्रवणात् श्रौत स्मरणात् स्मार्त उच्यते ।
इज्या वेदात्मक श्रौत स्मार्तो वर्णाश्रमात्मक ।
प्रत्यङ्गानि च वक्ष्यामि धर्मस्येह तु लक्षणम् ॥३६॥
दृष्ट्वा प्रभूतमर्थं य पृष्टो वै न निगूहति ।
यथा भूतप्रवादस्तु इत्येतत्सत्यलक्षणम् ॥४०॥

ब्रह्मचर्यं तपो मौनं निराहारत्वमेव च ।
इत्येतत् तपसो मूलं सुघोरं तद्दुरासदम् ॥४१॥
पशूनां द्रव्यहविषामृक्सामयजुषां तथा ।
ऋत्विजां दक्षिणानाञ्च संयोगो योग उच्यते ॥४२॥

त्रयी वार्त्ता—दण्ड नीति—इज्या तथा वर्ण और आश्रम जिस कारण से शिष्टों के द्वारा बार-बार आचरित होते हैं पूर्वगत होने से पूर्वों के द्वारा यह शाश्वत शिष्टाचार कहा गया है ॥३६॥ दान—सत्य—तप—अलोभ—विद्या—इज्या-प्रजनी और दया—ये आठ ये चरित हैं जो कि शिष्टाचार का लक्षण होते हैं ॥३७॥ क्योंकि इसका शिष्ट चरण करते हैं मनु और सप्तर्षि गण चरण किया करते हैं ऐसा सभी मन्वन्तरों में किया जाता है इसलिये यह शिष्टाचार कहा गया है ॥३८॥ श्रवण करने से श्रौत जानना चाहिए और स्मरण से स्मार्त कहा जाता है । इज्या वेदात्मक होने से श्रौत है और वर्णाश्रमात्मक स्मार्त होता है । अब हम धर्म का लक्षण और यहाँ प्रत्यङ्गों को बतलायेंगे ॥३९॥ बहुत-सा धर्म देखकर जो पूछा गया है वह कुछ भी छिपाता नहीं है । जहाँ भूत प्रवाह हैं वही धर्म का लक्षण होना है ॥४०॥ ब्रह्मचर्य-तप-मौन-निराहारत्व यह इतना तप का सुघोर और दुरासद मूल होता है ॥४१॥ पशुओं का द्रव्य-हवियों का ऋक्, साम और यजु का ऋत्विजों का और दक्षिणाओं का जो संयोग होता है वही योग कहा जाता है ॥४२॥

आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हिताय शिवाय च ।
समा प्रवर्त्तते दृष्टिः कृत्स्ना ह्येषा दया स्मृता ॥४३॥
आक्रुष्टोऽभिहतो वापि नाक्रोशेद्यो न हन्ति वा ।
वाङ्मनःकर्मभिः क्षान्तिस्तितिक्षणा क्षमा स्मृता ॥४४॥
स्वामिनारक्ष्यमाणानामुत्सृष्टानाञ्च मृत्सु च ।
परस्वानामनादानमलोभ इह कीर्त्यते ॥४५॥
मैथुनस्यासमाचारो ह्यचिन्तनमकल्पनम् ।
निवृत्तिर्ब्रह्मचर्यं तदच्छिद्रं दम उच्यते ॥४६॥
आत्मार्थं वा परार्थं वा इन्द्रियाणीह यस्य वै ।
न मिथ्या सम्प्रवर्त्तन्ते शमस्यैतत्तु लक्षणम् ॥४७॥

दशात्मके यो विषये कारणे चाष्टलक्षणे ।
न क्रुध्येत् प्रतिहतः स जितात्मा विभाव्यते ॥४८॥
यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनोपागतञ्च यत् ।
तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम् ॥४९॥

जो हित और अहित के लिये समस्त प्राणियों में अपने ही समान दृष्टि को प्रवृत्त किया करता है वह पूर्ण दया कही गई है ॥४३॥ बुरा-भला कहा जाने वाला और अभिहत अर्थात् मारा-पीटा हुआ भी न तो बुरा-भला कह कर क्रोधित होता है और न मारता ही है, वाणी, मन और कर्म से जो क्षान्ति होती है वह तितिक्षा क्षमा कही गई है ॥४४॥ स्वामी के द्वारा अरक्षित और मिट्टी में यो ही उत्सृष्ट पराये धनों का न ग्रहण करना ही यहाँ पर अलोभ कहा जाता है ॥४५॥ मैथुन का असमाचार, अचिन्तन तथा अकल्पन, निवृत्ति, ब्रह्मचर्य जो होता है वह अच्छिद्र दम कहा जाता है ॥४६॥ अपने लिये या दूसरे के लिये यहाँ पर जिसकी इन्द्रियाँ प्रवृत्त नहीं होती हैं यही शम का अवसर होता है अर्थात् इसी को शम कहते हैं ॥४७॥ जो दशात्मक विषय में और आठ लक्षण वाले कारण में प्रतिहत होता भी क्रोध नहीं करता है, वह जितात्मा विभावित होता है ॥४८॥ जो-जो इष्टतम द्रव्य और जो न्याय से उपागत हैं वही वह गुणवान् को देना चाहिए यही दान का लक्षण होता है ॥४९॥

दानं त्रिविधमित्येतत् कनिष्ठज्येष्ठमध्यमम् ।
तत्र नैःश्रेयसं ज्येष्ठं कनिष्ठं स्वार्थसिद्धये ।
कारुण्यात्सर्वभूतेभ्यः संविभागस्तु बन्धुषु ॥५०॥
श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः ।
शिष्टाचाराविरुद्धश्च धर्मः सत्साधुसम्मतः ॥५१॥
अप्रद्वेषो ह्यनिष्टेषु तथेष्टानभिनन्दनम् ।
प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिर्विरक्तता ॥५२॥
सन्यासः कर्मणो न्यासः कृतानामकृतैः सह ।
कुशलाकुशलानाञ्च प्रहाणं त्याग उच्यते ॥५३॥
अव्यक्ताद्योऽविशेषान्तं विकारोऽस्मिन्नचेतने ।
चेतनाचेतनान्यत्वविज्ञानं ज्ञानमुच्यते ॥५४॥

प्रत्यङ्गाना तु धर्मस्य इत्येतल्लक्षणं स्मृतम् ।
ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैः पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥५५॥
अत्र वो वर्त्तयिष्यामि विधिमन्वन्तरस्य च ।
इतरेतरवर्णस्य चातुर्वर्ण्यस्य चैव हि ।
प्रतिमन्वन्तरञ्चैव श्रुतिरन्या विधीयते ॥५६॥

दान भी तीन प्रकार का होता है—कनिष्ठ मध्यम और ज्येष्ठ—ये तीन दान के भेद हैं। इनमें जो दान नि यम से सम्बन्धित है वही ज्येष्ठ दान होता है—जो अपने धर्म की सिद्धि के लिये दिया जाता है वह कनिष्ठ दान होता है। जो करुणा से समस्त प्राणियों के लिये बन्धुओं में भली भाँति विभाग करना मध्यम दान होता है ॥५ ॥ श्रुति और स्मृति के द्वारा विहित वर्णाश्रमात्मक धर्म है। शिष्टाचार से अविरुद्ध सत् एवं साधु पुरुषों के द्वारा सम्मत धर्म है ॥५१॥ अभीष्ट वस्तुओं में प्रकृष्ट द्वेष का न होना तथा इष्ट वस्तु का विशेष अभिनन्दन न करना—प्रीति ताप और विषादों से विशेष निवृत्ति विरक्तता होती है ॥५२॥ कर्म का भली भाँति न्यास ही सन्यास होता है। अकृतों के साथ कृतों का कुशल और अकुशलों का जो प्रहाण होता है वही त्याग कहा जाता है ॥५३॥ जो अव्यय है और अविशेष से इस चेतन में विकार है तथा चेतना चेतनान्यत्व का विशेष ज्ञान है वही ज्ञान कहा जाता है ॥५४॥ धर्म के प्रत्यङ्गों का यह लक्षण कहा गया है जो कि धर्म तत्त्व के ज्ञाता पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर में ऋषियों ने कहा है ॥५५॥ यहाँ मैं आपको मन्वन्तर की जो विधि है बताऊँगा। इतरेतर वर्ण का तथा चातुर्वर्ण्य का प्रति मन्वन्तर में अन्य श्रुति का विधान किया जाता है ॥५६॥

ऋचो यजूंषि सामानि यथावत् प्रतिदैवतम् ।
आमूत संप्लवस्यापि यज्ञैक शतरुद्रियम् ॥५७॥
विधिर्होत्र तथा स्तोत्रं पूर्ववत्सम्प्रवर्त्तते ।
द्रव्यस्तोत्रं गुणस्तोत्रं कर्मस्तोत्रं तथैव च ।
अभुधमाभिजनिकं स्तोत्रमेतच्चतुर्विधम् ॥५८॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु यथा देवा भवन्ति ये ।
प्रवर्त्तयति तेषां वै ब्रह्मस्तोत्रं चतुर्विधम् ।
एवं मन्त्रगुणानाञ्च समुत्पत्तिश्चतुर्विधा ॥५६॥
अथर्वयजुषां साम्नां वेदेष्विह पृथक् पृथक् ।
ऋषीणान्तप्यतामुग्रन्तपः परमदुश्चरम् ॥६०॥
मन्त्राः प्रादुर्बभूवुर्हि पूर्वमन्वन्तरेष्विह ।
परितोषाद्भयाद्दुःखात्सुखाच्छोकाच्च पञ्चधा ॥६१॥
ऋषीणां तपः कार्त्स्न्येन दर्शनेन यदृच्छया ।
ऋषीणां यदृषित्वं हि तद्वक्ष्यामीह लक्षणैः ॥६२॥
अतीतानागतानान्तु पञ्चधा ऋषिरुच्यते ।
अतस्त्वृषीणां वक्ष्यामि ह्यार्षस्य च समुद्भवम् ॥६३॥

ऋक्-यजु और साम प्रति दैवत यथावत है । आभूत सम्प्लव का भी एक यतरूप्प चर्य्य होता है ॥५७॥ विधिहोत्र तथा स्तोत्र यह भी पूर्व की भांति सम्प्रवृत्त होते हैं द्रव्य स्तोत्र—गुण स्तोत्र—कर्म स्तोत्र और चौथा आभिजानिक स्तोत्र इस तरह से यह स्तोत्र चार प्रकार का होता है ॥५८॥ समस्त मन्वन्तरों मे जो देव जिस प्रकार से होते हैं उनका चारों प्रकार का ब्रह्म स्तोत्र प्रवृत्त होता है । इस प्रकार से मन्त्र गुणों की चार प्रकार की समुत्पत्ति होती है ॥५९॥ अथर्व यजु और साम वेदों मे यहाँ पृथक्-पृथक् होती है । तप करते हुए ऋषियों का उग्र तप परम दुश्चर हुआ करता है ॥६०॥ पूर्व मन्वन्तरों मे यहाँ मन्त्र प्रादुर्भूत हुये थे । वे परितोष से—भय से—दुःख से—सुख से और शोक से पाँच प्रकार के है ॥६१॥ तप की कृत्स्नता से ऋषियों के यदृच्छा से दर्शन से ऋषियों का जो ऋषित्व होता है वह लक्षणों के द्वारा बतलाऊगा ॥६२॥ अतीत और अनागतों मे पाँच प्रकार के ऋषि कहे जाते है । इसलिए ऋषियों के आर्ष के समुद्भव को कहूँगा ॥६३॥

गुणसाम्ये वर्त्तमाने सर्वसम्प्रलये तदा ।
अविभागे तु देवानामनिर्देशे तयोर्यथा ॥६४॥

अबुद्धिपूर्वक तद्ध चेतनाय प्रवर्त्तते ।
तेन ह्यबुद्धिपूर्व तच्चेतनेन ह्यधिष्ठितम् ॥६५॥
वर्त्तते च यथा तौ तु यथा मत्स्योदके उभे ।
चेतनाधिष्ठितं तत्त्व प्रवर्त्तति गुणात्मना ॥६६॥
करणत्वात्तथा काय तथा तस्य प्रवर्त्तते ।
विषये विषयात्वाच्च ह्यर्थेऽर्थत्वात्तथैव च ॥६७॥
कालेन प्रापणीयेन भेदास्तु कारणात्मका ।
संसिध्यन्ति तदा व्यक्ता क्रमेण महदादयः ॥६८॥
महतश्चाप्यहङ्कारस्तस्माद्भूतेन्द्रियाणि च ।
भूतभेदास्तु भेदेभ्यो जज्ञिरे ते परस्परम् ।
संसिद्धिकारण काय सद्य एव विवर्त्तते ॥६९॥
यथोल्मुकस्तु दन्नूद्ध मेककाल प्रवर्त्तते ।
तथा विवृत्त क्षेत्रज्ञ कालेनैकेन कर्मणा ॥७०॥
यथान्धकारे खद्योत सहसा सम्प्रदृश्यते ।
तथा विवृत्तो ह्यव्यक्तात् खद्योत इव चोल्बणः ॥७१॥

गुणों के साम्य के वर्तमान होने पर उस समय में सबका सम्प्रलय होने पर—दोनों के प्रतिचार होने पर उन दोनों के प्रतिवेश होने पर अबुद्धिपूर्वक वह चेतना के लिए प्रवृत्त होता है। अबुद्धिपूर्वक वह चेतन से अधिष्ठित होता है ॥६५॥ जिस प्रकार से वे दोनों मत्स्य और उदकचेतनाधिष्ठित तत्त्व को गुणात्मा से प्रवृत्त होता है ॥६६॥ उस समय करण होने से काय प्रवर्तित होता है। विषय में विषयत्व होने से तथा अर्थ में अर्थित्व होने से प्रवर्तित होता है ॥६७॥ प्रापणीय काल से कारणात्मक भेद उस समय में महदादि व्यक्त होते हुए वे सिद्ध होते हैं ॥६८॥ महत् से अहङ्कार और अहङ्कार से भूतेन्द्रियाँ होते हैं। भूतों के भेद तो भेदों से परस्पर में उत्पन्न होते हैं। संसिद्धि कारण काय तुरन्त ही विवर्तित हो जाता है ॥६९॥ जिस प्रकार से ऊपर के उल्मुक हटता हुआ एक काल में प्रवृत्त होता है उसी प्रकार से एक कालीन कर्म से

क्षेत्रज्ञ निवृत्त होता है। जिस तरह खद्योत अन्धकार में सहसा दिखलाई दिया करता है उसी प्रकार से निवृत्त उन्नयण खद्योत की भाँति ही होता है ॥७०-७१॥

स महान् सशरीरस्तु यत्रैवाग्रे व्यवस्थित ।
तत्रैव सस्थितो विद्वान् द्वारशालामुखे स्थित ॥७२॥
महांस्तु तमस पारे वैलक्षण्याद्विभाव्यते ।
तत्रैव सस्थितो विद्वांस्तमसोऽन्त इति श्रुति ॥७३॥
बुद्धिर्विवर्त्तमानस्य प्रादुर्भूता चतुर्विधा ।
ज्ञान वैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्चेति चतुष्टयम् ॥७४॥
सांसिद्धिकान्यथैतानि सुप्रतीकानि तस्य वै ।
महत सशरीरस्य वैवर्त्यात् सिद्धिरुच्यते ॥७५॥
अत्र शेते च यत्पुर्यां क्षेत्रज्ञानमथापि वा ।
पुरीशयत्वात्पुरुष क्षेत्रज्ञानात् समुच्यते ॥७६॥
क्षेत्रज्ञ क्षेत्रविज्ञानात् भगवान् मतिरुच्यते ।
यस्माद्बुद्ध्या तु शेते ह तस्माद्बोधात्मक स वै ।
ससिद्धये परिगत व्यक्ताव्यक्तमचेतनम् ॥७७॥

शरीर के सहित वह महान् जहाँ पर ही आगे व्यवस्थित होता है वहाँ पर ही द्वारशाला के मुख पर विद्वान सस्थित होता है ॥७२॥ महान् तो तम के पार में वैलक्षण्य होने के कारण से विभाजित होता है। वहाँ पर ही विद्वान तम के अन्दर सस्थित होता है—ऐसी श्रुति है ॥७३॥ विवर्तमान की बुद्धि चार प्रकार वाली प्रादुर्भूत हुई। ज्ञान—वैराग्य—ऐश्वर्य और धर्म ये उसके चार भेद होते हैं ॥७४॥ सशरीर उस महत् के ये सांसिद्धिक सुप्रतीक हैं। वैवर्त्य से सिद्धि कही जाती है ॥७५॥ यहाँ पर पुरी में जो क्षेत्र ज्ञान शयन करता है वह पुरी में शयन करने से पुरुष क्षेत्र ज्ञान से भली भाँति कहा जाता है ॥७६॥ क्षेत्र के विज्ञान के होने से क्षेत्रज्ञ—भगवान् और मति कहा जाता है। जिस कारण से बुद्धि से शयन करता है उससे वह बोधात्मक निश्चय रूप से होता है। ससिद्धि के लिए अचेतन व्यक्ताव्यक्त के परिगत होता है ॥७७॥

एव निवृत्ति क्षेत्रज्ञा क्षेत्रज्ञ नाभिस हिता।
क्षेत्रज्ञ न परिज्ञातो भोग्योऽस्य विषयस्त्विति ।।७८।।
ऋषीत्येष गतो धातु श्रुतौ सत्ये तपस्यथ ।
एतत्सञ्चियते तस्मिन् ब्रह्मणा स ऋषि स्मृत ।।७९।।
निवृत्तिसमकाल तु बुद्ध याव्यक्तऋषि स्वयम् ।
पर हि ऋषते यस्मात्परमर्षिस्तत स्मृत ।।८०।।
गत्यर्थादृषतेर्द्धातोर्नामनिवृ त्तिरादित ।
यस्मादेष स्वयम्भूतस्तस्माच्चात्मपिता स्मृता ।
ईश्वरा स्वयमुद्भूता मानसा ब्रह्मण सुता ।।८१।।
यस्मान्न हन्यते मानमहान् परिगत पुर ।
य स्माहृषन्ति ये धीरा महान्त सर्वतो गुण ।
तस्मा महर्षय प्रोक्ता बुद्ध परमदर्शिन ।।८२।।
ईश्वराणा सुतास्तेषा मानसाश्चौरसाश्च ते ।
अहङ्कार तमश्चैव त्यक्त्वा च ऋषिताङ्गता ।।८३।।
तस्मात् ऋषयस्ते व भूतादौ तत्त्वदर्शना ।
ऋषिपुत्रा ऋषीकास्तु मैथुनाद्गर्भसम्भवा ।।८४।।

इस प्रकार से क्षेत्रज्ञ से अभिसहित क्षेत्रज्ञा निवृत्ति होती है। क्षेत्रज्ञ के द्वारा परिज्ञात भोगने योग्य जो है वह विषय होता है ।।७८।। ऋषि यह धातु श्रवि से—श्रुति मे—सत्य मे और तप मे होती है। उसके बस सञ्चित होने पर ब्रह्मा के द्वारा ऋषि कहा गया है ।।७९।। निवृत्ति के समकाल मे ऋषि स्वय बुद्धि से अव्यक्त होता है। जिस कारण से पर को ऋष करता है इससे परमर्षि कहा जाता है ।।८ ।। गत्यर्थक ऋष धातु से आदि नाम की निवृत्ति होती है। क्योंकि यह स्वयम्भूत है इसलिए आत्मपिता कही गई है। ईश्वर स्वयं उद्भूत हुए है और वे ब्रह्मा के मानस पुत्र है ।।८१।। क्योंकि महा मानों से हन्यमान नहीं होता है माने महान् परिगत है। जिस कारण से ये धीर सब ओर से गुणों के द्वारा महान् को रिषते है इस कारण से बुद्धि परमदर्शी महर्षि कहे गए है ।।८२।। उन ईश्वरों के पुत्र वे मानसाश्च उस है और अहङ्कार तथा तम का

त्याग करके ऋषिता को प्राप्त हो गए हैं ॥८३॥ उनसे ये ऋषिगण भूतादि में तत्त्व के देखने वाले हैं। ऋषियों के पुत्र ऋषीक जो मैथुन के धर्म द्वारा गर्भ से उत्पन्न होने वाले होते हैं ॥८४॥

तन्मात्राणि च सत्यञ्च ऋषन्ते ते महौजसः।
सत्यर्षयस्ततस्ते वै परमाः सत्यदर्शनाः ॥८५॥
ऋषीणाञ्च सुतास्ते तु विज्ञेया ऋषिपुत्रकाः।
ऋषन्ति वै श्रुतं यस्माद्विशेषाश्चैव तत्त्वतः।
तस्मात् श्रुतर्षयस्तेऽपि श्रुतस्य परिदर्शनाः ॥८६॥
अव्यक्तात्मा महात्मा चाहङ्कारात्मा तथैव च।
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च तेषां तज्ज्ञानमुच्यते।
इत्येता ऋषिजातीस्तु नामभिः पञ्च वै शृणु ॥८७॥
भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः।
मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश।
ब्रह्मणो मानसा ह्येते उद्भूताः स्वयमीश्वराः ॥८८॥
प्रवर्त्तन्ते ऋषेर्यस्मान्महांस्तस्मान्महर्षयः।
ईश्वराणां सुतास्त्वेते ऋषयस्तान्निबोधत ॥८९॥
काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्चोशनास्तथा।
उतथ्यो वामदेवश्च अयोज्यश्चैशिजस्तथा ॥९०॥
कर्दमो विश्रवाः शक्तिर्बालखिल्यस्तथा धराः।
इत्येते ऋषयः प्रोक्ता ज्ञानतो ऋषिताङ्गताः ॥९१॥

वे महान् ओज वाले तन्मात्राओं को और सत्य ऋष करते हैं इस कारण से परम सत्य के देखने वाले सत्यर्षि होते हैं ॥८५॥ ऋषियों के जो पुत्र हैं वे ऋषि-पुत्रक जानने के योग्य होते हैं। क्योंकि श्रुत को ऋष करते हैं और तत्त्व से विशेषों को भी किया करते हैं इस कारण से श्रुत परिदर्शन करने वाले वे श्रुतर्षि भी कहे जाते हैं ॥८६॥ अव्यक्तात्मा—महात्मा—अहङ्कारात्मा—भूतात्मा और इन्द्रियात्मा उनका यह ज्ञान कहा जाता है। इतनी ये ऋषियों की जातियाँ हैं जो नामों से पाँच हैं उन्हें सुनो ॥८७॥ भृगु—मरीचि—अत्रि—अङ्गिरा—पुलह-

पञ्चमस्तु मणावरुण कुण्डिन सप्तमस्तथा।
सद्युम्नश्चाष्टमश्चैव नवमोऽथ बृहस्पति ।
दशमस्तु भरद्वाजो मन्त्रब्राह्मणकारका ॥१०६॥
एते चैव हि कर्तारो विषमध्वंसकारिणः ।
लक्षणं ब्राह्मणस्येतद्विहितं सर्वशाखिनाम् ॥१०७॥
हेतुर्हि ते स्मृतो धातोर्येनिहन्त्युदितम्पर ।
अथ वायपरिआप्तोर्हिनोनेगतिकमणः ॥१०८॥
तथा निवचन ब्रूयाद्धात्वर्थाव्धारणम् ।
निन्दा तामाहुराचार्या यद्दोषान्निन्द्यते वच ॥१०९॥
अपूर्वाच्छ्रुतेर्धातो प्रशंसा गुणवत्तया ।
इदन्त्विदमिद नेदमित्यनिश्चित्य सशय ॥११०॥

काश्यप वत्सार विभ्रम रैभ्य-असित देवल—ये छ ब्रह्मवादी होते हैं ॥१०३॥ अत्रि-अर्चिसम-श्यामावान् निष्ठुर-वल्गूतक मुनि धीमान्-पूर्वातिथि—महर्षि मन्त्रकार कहे गए हैं ॥१०४॥ वसिष्ठ-शक्ति पराशर-चौथा इन्द्रप्रमति और पाँचवाँ भरद्वसु—छठा मैत्रावरुण—सातवाँ कुण्डिन—आठवाँ सुद्युम्न—नवम् बृहस्पति—दशम् भरद्वाज ये मन्त्र और ब्राह्मण के करने वाले हैं ॥१०५॥१०६॥ ये सब करने वाले और विषम के ध्वंस करने वाले हैं। यह ब्राह्मण का लक्षण समस्त शाखा वालों में विदित है ॥१०७॥ हिति धातु से हेतु कहा गया है जो परों के द्वारा उदित का निहनन करते हैं। अर्थ और आप्ति परिक्रम वाली हिनोति से होता है ॥१०८॥ तथा धात्वर्थ कर अवधारण निर्वचन बोलना चाहिए। आचार्य लोग जिस दोष से वचन की निन्दा की जाती है उसको निन्दा कहते हैं ॥१०९॥ अपूर्वक श्रुत धातु से गुणवत्ता के कारण से प्रशंसा होती है अर्थात् प्रशंसा कही जाती है। यह है—यह नहीं है ऐसा अनिश्चय करके ही संशय होना है ॥११०॥

इवमेव विधातव्यमित्ययं विधिरुच्यते ।
अन्यस्यान्यस चोक्तत्वाद्बुध परकृति स्मृता ॥१११॥
यो ह्यन्यन्तरोऽस्य पुराकल्प स उच्यते।
पुराभिका तवाचिख्यात् पुराकल्पस्य कल्पना ॥११२॥

मन्त्रब्राह्मणकल्पैस्तु निगमैः शुद्धविस्तरैः ।
अनिश्चित्य कृतामाहुर्व्यवधारणकल्पनाम् ॥११३॥
यथा हीद तथा तद्धि इद वापि तथैव तत् ।
इत्येष ह्युपदेशोऽयं दशमो ब्राह्मणस्य तु ॥११४॥
इत्येतद्ब्राह्मणस्यादौ विहितं लक्षणं बुधैः ।
तस्य सद्वृत्तिरुद्दिष्टा व्याख्याप्यनुपदं द्विजैः ॥११५॥
मन्त्राणां कल्पनं चैव विधिदृष्टेषु कर्मसु ।
मन्त्रो मन्त्रयतेर्धातोर्ब्राह्मणो ब्रह्मणोऽवनात् ॥११६॥
अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् ।
अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥११७॥

यही करना चाहिए, इस प्रकार से जो होती है वह विधि कही जाती है। अन्य-अन्य के कथन होने से बुधों के द्वारा परकृति कही जाती है ॥१११॥ जो अत्यन्तर कहा गया है वह पुराकल्प कहा जाता है। पुरा निष्पन्न वाला होने से पुराकल्प की कल्पना होती है ॥११२॥ मन्त्र ब्राह्मण कल्पों के द्वारा और शुद्ध विस्तर निगमों के द्वारा अनिश्चय करके की हुई को व्यवधारण कल्पना कहते हैं ॥११३॥ जिस प्रकार से यह है वैसे ही वह है। यह अथवा उसी प्रकार से वह है, यह ब्राह्मण का दशम उपदेश है ॥११४॥ यह आदि में ब्राह्मण का लक्षण बुधों के द्वारा किया गया है। ब्राह्मणों के द्वारा अनुपद व्याख्या भी उसकी वृत्ति उद्दिष्ट की गई है ॥११५॥ विधि दृष्ट कर्मों में मन्त्रों का कल्पन होता है। मन्त्रयति धातु से मन्त्र होता है और ब्रह्म की रक्षा करने से ब्राह्मण कहा जाता है ॥ ११६॥ सूत्रों के ज्ञाता लोग अल्पाक्षर वाला—असन्दिग्ध—सार वाला—विश्वतोमुख—अस्तोभ अनवद्य को सूत्र कहते हैं ॥११७॥

॥ प्रकरण ४२—महास्थान तीर्थ वर्णन ॥

ऋषयस्तद्वच श्रुत्वा सूतमाहुः सुदुस्तरम् ।
कथं वेदा पुरा व्यस्तास्तन्नो ब्रूहि महामते ॥१॥
द्वापरे तु परावृत्ते मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
ब्रह्मा मनुमुवाचेदं तद्वदिष्ये महामते ॥२॥

माञ्चैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वर प्रभु ॥१६॥
एक आसीद्यजुर्वेदस्तञ्चतुर्द्धा व्यकल्पयत् ।
चातुर्होत्रमभूत्तस्मिस्तेन यज्ञमकल्पयत् ॥१७॥
आध्वर्यव यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्रं तथैव च ।
उद्गात्र सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वञ्चाप्यथर्वभि ।
ब्रह्मत्वमकरोत्तस्य वेदेनाथर्वणेन तु ॥१८॥
ततः स ऋचमुद्धृत्य ऋग्वेद समकल्पयत् ।
होतृक कल्प्यते तेन यज्ञवाह जगद्धितम् ॥१९॥
सामभि सामवेदञ्च तेनोद्गात्रमरोचयत् ।
राज्ञस्त्वथर्ववेदेन सर्वकर्माण्यकारयत् ॥२०॥
आख्यानै श्चाप्युपाख्यै गर्थाभि कुलकर्मभि ।
पुराणसहिताश्चक्रे पुराणार्थविशारद ॥२१॥

सामवेद के मद का धावक उसने जैमिनि को शिष्य ग्रहण किया था। इसी प्रकार से अथर्ववेद का अध्वक ऋषियों में श्रेष्ठ सुमन्तु को शिष्यत्व के रूप में ग्रहण किया था ॥१५॥ इतिहास पुराण का अच्छी प्रकार से प्रवक्ता भगवान् प्रभु ईश्वर ने मुझको ग्रहण किया था ॥१६॥ यजुर्वेद एक ही था उसको चार प्रकार के भेदों में कल्पित किया था। उसमें उसमें यज्ञ की कल्पना की थी कि चातुर्होत्र था ॥१७॥ यजु से आध्वर्यव ऋक से उसी प्रकार होत्र साम से उद्गात्र और अथर्व से ब्रह्मत्व किया। अथर्व वेद से यज्ञ में ब्रह्मत्व किया था ॥१८॥ इसके अनन्तर उसने ऋक का उद्धार करके ऋग्वेद की कल्पना की थी। उसके द्वारा होतृक यज्ञवाह जगत हित की कल्पना की जाती है ॥१९॥ सामों से सामवेद की और उससे उद्गात्र को रोचित किया था। राजा के अथर्व वेद से समस्त कर्मों को कराया था ॥२ ॥ आख्यानों से तथा उपाख्यानों से गाथाओं के द्वारा और कुल कर्मों से पुराणों के अर्थ के विशारद ने पुराण संहिता की अर्थात् पुराण संहिता की रचना की ॥२१॥

यच्छिष्टन्तु यजुर्वेदे तेन मन्त्रमथायुजत् ।
युञ्जान म यजुर्वेदे इति शास्त्रविनिश्चय ॥२२॥

पद्यानामुद्धृतत्वाच्च यजूंषि विषमाणि वै ।
स तेनाद्धृतवीर्यस्तु ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः ।
प्रयुज्यते ह्यश्वमेधस्तेन वा युज्यते तु सः ॥२३॥
ऋचो गृहीत्वा पैलस्तु व्यभजत्तद्द्विधा पुनः ।
द्विःकृत्वा सयुगे चैव शिष्याभ्यामददत्प्रभुः ॥२४॥
इन्द्रप्रमतये चैका द्वितीया बाष्कलाय च ।
चतस्रः संहिताः कृत्वा बाष्कलिर्द्विजसत्तम ।
शिष्यानध्यापयामास शुश्रूषाभिरतान् द्विजान् ॥२५॥
बोधन्तु प्रथमां शाखां द्वितीयामग्निमाठरम् ।
पाराशरं तृतीयान्तु याज्ञवल्क्यामथापराम् ॥२६॥
इन्द्रप्रमतिरेकान्तु संहितां द्विजसत्तम ।
अध्यापयन्महाभागं मार्कण्डेयं यशस्विनम् ॥२७॥
सत्यश्रवसमग्र्यन्तु पुत्रं स तु महायशाः ।
सत्यश्रवा सत्यहितं पुनरध्यापयद् द्विज ॥२८॥

जो कुछ यजुर्वेद में मिश्र था उसमें इसके पश्चात् यज्ञ को शोभित किया था। यजुर्वेद में वह मुख्यतया थे यही आरम्भ का विशेष रूप से निश्चय है ॥२२॥ पद्यों के उद्धृत होने के कारण से यजु विषम हैं। इससे उद्धृत वीर्य उसने वेद के पारगामी ऋत्विगों के द्वारा अश्वमेध को प्रयुक्त किया अथवा वह युज्यमान किया जाता है ॥२३॥ पैल ने तो ऋचाओं को ग्रहण करके उनको दो प्रकार से विभाजित किया था। दो करके प्रभु ने सयुग में शिष्यों के लिये दे दिया था ॥२४॥ एक को इन्द्रप्रमिति के लिये दिया और दूसरी को बाष्कलि के लिये दिया। द्विज श्रेष्ठ बाष्कलि ने चार संहिता करके जो सेवा में अनुराग रखने वाले और परमहित शिष्य थे उनको उनका अध्यापन करा दिया था ॥२५॥ प्रथम शाखा को बोध नामक शिष्य को पढ़ाया और दूसरी शाखा को अग्निमाठर को पढ़ाया था। तीसरी शाखा को पाराशर को और चौथी शाखा का अध्यापन याज्ञवल्क्य को करा दिया था ॥२६॥ द्विजों में परम श्रेष्ठ इन्द्र प्रमिति ने एक संहिता को अति यशस्वी महान् भाग वाले मार्कण्डेय को पढ़ा दिया

मन में ऐसा निश्चय करके उस धनों के स्वामी ने वृद्धि की मर्यादा विचार किया था ॥३६॥ सहस्र गौओं को लाकर और बहुत-सा सुवर्ण ग्राम एवं दासों को लाकर यह नराधिप बोला—मैं आप सब श्रेष्ठ भाग वालों को विशेष प्रणाम हूँ ॥३७॥ जो यह सब धन लाया गया है आप लोगों में परम श्रेष्ठ द्विज होगा है उत्तम ब्राह्मणो! विद्या में श्रम वाले को यह उपनीत किया जायगा ॥३८॥ उन श्रुतिक्षम मुनियों ने उस महान् सार वाले धन को देखकर धन की वृद्धि से उसे ग्रहण करने की इच्छा वाले होते हुए जनक के उस वचन को सुनकर वेद के ज्ञान के मद से उन्मत्त वे सब अन्योन्य में स्पर्धा करने लगे ॥३९॥ मन में गतचित्त वाले यह मेरा धन है अथवा यह मेरा ही है या यह नहीं अथवा कोई अन्य बोले क्या विकल्प किया जाता है। इस प्रकार से धन के लोभ से वहाँ अनेक प्रकार के वाद करने लगे ॥४ ॥ उस प्रकार से वहाँ पर अति विद्वान् ब्रह्मवाद का पुत्र कवि महान् तेज वाला तपस्वी और ब्रह्म वित्तम याज्ञवल्क्य जो कि ब्रह्माजी के अङ्ग से समुत्पन्न हुये थे शिष्य से सुन्दर वाक्य बोले—हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! आप इस धन को ग्रहण करिये ॥४२॥

नयस्व च गृहं वत्स मयैतच्छान्त संशय ।
सर्ववेदेष्वहं वक्ता नान्यः कश्चित्तु मत्समः ।
यो वा न प्रीयते विप्र स मे ब्रूयात माऽचिरम् ॥४३॥
ततो ब्रह्मार्णवः क्षुब्धः समुद्र इव सम्प्लवे ।
तानुवाच ततः स्वस्थो याज्ञवल्क्यो हसन्निव ॥४४॥
क्रोधं मा कार्षुः विद्वांसो भवन्तः सत्यवादिनः ।
वञ्चामहे यथायुक्तं जिज्ञासन्तः परस्परम् ॥४५॥
ततोऽभ्युपागमंस्तेषां वादा अभवन्नेकधा ।
सहस्रशः सुपर्यर्थं मृदुःदर्शनसम्भवैः ॥४६॥
लोके वेदे तथाध्यात्मे विद्यास्थानरलङ्कृताः ।
शास्त्रीतमगुणैर्युक्ता नयोपपरिवर्जिताः ।
वादाः समभवंस्तत्र धर्महेतोर्महात्मनाम् ॥४७॥

ऋषयस्त्वेकतः सर्वे याज्ञवल्क्यस्तथैकतः ।
सर्वोमिति होवाच वादकर्तारमञ्जसा ॥४६॥

हे वत्स ! इसे गृह में ले जाओ, यह सारा धन मेरा ही है, इसमें तनिक-भी संशय नहीं है। समस्त वेदों में मैं वक्ता हूँ और कोई भी मेरे समान यहाँ नहीं है। जो ब्राह्मण इस बात को पसन्द नहीं करता हो वह मेरे साथ बोलता करे। इसके पश्चात् सम्प्लव के समय में समुद्र की ही भाँति उस समय वह ब्राह्मणों का सागर क्षुब्ध हो उठा था। इसके अनन्तर परम स्वस्थ याज्ञवल्क्य हँसते हुए उन सबसे बोले ॥४३॥४४॥ आप सब विद्वान और सत्यवादी हैं इस समय क्रोध न करिए। परस्पर में जिज्ञासा रखने वाले हम यथायुक्त वाद करें ॥४५॥ इसके अनन्तर वहाँ उपस्थित होते हुए उनके सहस्रों प्रकार के सूक्ष्म दर्शन से उत्पन्न शुभ अर्थों के द्वारा अनेकों वाद हुए ॥४६॥ लोक में तथा वेद में विद्या स्थानों से विभूषित—सर्वोत्तम गुणों से युक्त—गुणों के समुदाय से परिवर्जन वाले महात्माओं के वहाँ अनेक वाद हुये थे ॥४७॥ एक तरफ तो समस्त ऋषिगण थे और एक ओर केवल एक याज्ञवल्क्य थे। वे सब मुनिगण धीमान् याज्ञवल्क्य के द्वारा एक-एक करके पूछे गए किन्तु कोई भी उनमें से उनका उत्तर नहीं बोला था ॥४८॥ तब उस ब्रह्म की राशि महान् बुद्धि वाले याज्ञवल्क्य उन समस्त मुनियों को विजित करके वाद के कर्त्ता शाकल्य से अचानक बोले ॥४९॥

शाकल्य वद वक्तव्यं किं ध्यायन्नवतिष्ठसे ।
पूर्णस्त्वन्तु जडमानेन वाताध्मातो यथा दृतिः ॥५०॥
एवं स धर्षितस्तेन रोषात्ताम्रायतलोचनः ।
प्रोवाच याज्ञवल्क्यं तं परुषं मुनिसन्निधौ ॥५१॥
त्वमस्मानस्तृणवत्यकृत्वा तथैवेमान् द्विजोत्तमान् ।
विद्याधनं महासारं स्वयमाहर्तुं जिघृक्षसि ॥५२॥
शाकल्येनैवमुक्तः स्याद्याज्ञवल्क्यः समब्रवीत् ।
ब्रह्मिष्ठानां बलं विद्धि विद्यातत्त्वार्थदर्शनम् ॥५३॥

प्रोवाच संहितास्तिस्रः शाकपूर्णरथीतरः ।
निरुक्तञ्च पुनश्चक्रे चतुर्थं द्विजसत्तम ॥६५
तस्य शिष्यास्तु चत्वारः केतवो दालकिस्तथा ।
धर्मशर्मा देवशर्मा सर्वे व्रतधरा द्विजाः ॥६६
शाकल्ये तु मृते सर्वे ब्रह्मघ्नास्ते बभूविरे ।
तदा चिन्तां परां प्राप्य गतास्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥६७
तान् ज्ञात्वा चेतसा ब्रह्मा प्रेषित पवने पुरे ।
तत्र गच्छत यूयं च सर्वं पापं प्रणश्यति ॥६८
द्वादशार्कं नमस्कृत्य तथा च वालुकेश्वरम् ।
एकादश तथा रुद्रान् वायुपुत्र विशेषतः ।
कुण्डे चतुष्टये स्नात्वा ब्रह्महत्यां तरिष्यथ ॥६९॥
सर्वे शीघ्रतरा भूत्वा तत्पुरं समुपागताः ।
स्नानं कृतं विधानेन देवानां दर्शनं कृतम् ॥७०॥

उसके पाँच शिष्य हुए थे उनके नाम मुद्गल—गोलक—खालीय—मत्स्य—और शैशिरेय पाँचवें थे ॥६४॥ शाकपूर्ण रथीतर ने तीन संहिता बोली और द्विज श्रेष्ठ ने फिर चौथा निरुक्त किया ॥६५॥ उसके चार शिष्य हुए थे जिनके नाम केतव—दालकि—धर्म शर्मा—देव शर्मा थे। ये सब ब्राह्मण व्रतधारी थे ॥६६॥ शाकल्य के मृत हो जाने पर वे सब ब्रह्मघ्न हो गये थे। इसके पश्चात् वे सब परम चिन्तित होकर ब्रह्माजी के समीप में गए ॥६७॥ ब्रह्माजी ने उनको चित्त से ही जानकर पवनपुर में प्रेषित किया। उन्होंने कहा—आप सब वहाँ जाओ वहाँ आपका सारा पाप पूर्णतया नष्ट हो जायगा ॥६८॥ द्वादश सूर्य को नमस्कार करके तथा वालुकेश्वर को प्रणाम करके और चारों कुण्डों में स्नान करके आप सब इस ब्रह्महत्या से तर जाओगे ॥६९॥ वे सब शीघ्रगामी होकर उस पुर में आ गये। वहाँ उन्होंने विधानपूर्वक स्नान किया और देवों का दर्शन करके पाप मुक्त हो गए ॥७०॥

॥ इति वायु-पुराण (प्रथम खण्ड) ॥